तमाम दुनिया के मजदूरो, एक हो !

धर्म

कार्ल मार्क्स
तथा
फ्रेडरिक एंगेल्स

इण्डिया पब्लिशर्स,
लखनऊ

धर्म

लेखक :
कार्ल मार्क्स तथा
फ्रेडरिक एंगेल्स

सम्पादक तथा हिन्दी अनुवादक :
रमेश सिनहा

प्रकाशक :
इण्डिया पब्लिशर्स,
सी — ७/२, रिवर बैंक कालोनी,
ल ख न ऊ

प्रथम संस्करण : जनवरी, १९६५

मूल्य : ८ रुपया

मुद्रक :
अधिकार प्रेस,
२२ कैसरबाग,
ल ख न ऊ

विषय-सूची

●●●

प्रकाशक की टिप्पणी

इस ग्रन्थ की सम्पूर्ण सामग्री सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति के मार्क्सवादी-लेनिनवादी संस्थान द्वारा रूसी भाषा मे तैयार किये गये ग्रन्थ पर आधारित है।

ग्रन्थ का अनुवाद उसके अंग्रेजी संस्करण से किया गया है।

अनुवादक ने मार्क्सवाद-लेनिनवाद की अनेक पुस्तको का अनुवाद किया है, किन्तु जितनी कठिनाई इस ग्रन्थ को हिन्दी मे प्रस्तुत करने में उसे हुई है उतनी और किसी मे नही हुई। फिर भी इतने बड़े और महत्वपूर्ण ग्रन्थ मे भूलो और अशुद्धियो का रह जाना संभव है: उनकी ओर ध्यान दिलाने के लिए अनुवादक और प्रकाशक विद्वान पाठको के आभारी होगे और अगले सस्करणो मे ऐसी तमाम कमजोरियो को दूर करने का प्रयत्न करेगे।

कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स

रूसी संस्करण का प्रस्तावना

वर्तमान संग्रह में मार्क्स और एंगेल्स की वे रचनाएँ संगृहीत है जिनमे धर्म के सार-तत्व, उसकी उत्पत्ति, तथा वर्ग समाज मे उसकी भूमिका के सम्बन्ध मे अपने विचारो का प्रतिपादन उन्होने किया है। ये रचनाएं सर्वहारा वर्गीय, मार्क्सवादी अनीश्वरवाद की सैद्धान्तिक आधार-शिला है। मार्क्स और एंगेल्स ने जिस विश्व दृष्टिकोण की स्थापना की है वह प्रकृति तथा समाज के वस्तुगत नियमों पर आधारित है। वह विज्ञान द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाले तथ्यो पर आधारित है और मूलत. धर्म का विरोधी है।

डाक्टर की उपाधि के लिए प्रस्तुत की गयी अपनी थीसिस (अन्वेष-प्रबन्ध) **दिमाक्रिटस के प्राकृतिक दर्शन तथा एपीक्यूरस के प्राकृतिक दर्शन के बीच का अन्तर** की प्रस्तावना मे, जिससे यह पुस्तक शुरू होती है, मार्क्स ने इस बात पर जोर दिया है कि एपीक्यूरस के भौतिकवादी दर्शन का धर्म के साथ मेल नही हो सकता। अपनी रचना **पवित्र परिवार अथवा आलोचनात्मक आलोचना की आलोचना** मे, जिसके कुछ अंग इस संग्रह मे दिये गये है, उस महान् भूमिका को मार्क्स और एंगेल्स ने स्पष्ट किया है जो प्रतिक्रियावादी, सामन्तवादी तथा धार्मिक दृष्टिकोण

के विरुद्ध संघर्ष में अट्ठारहवीं शताब्दी के फ्रान्सीसी भौतिकवादियों ने अदा की थी। साथ ही साथ, उन्होंने उसमें इस बात पर भी प्रकाश डाला है कि भौतिकवादी दर्शन के विकास तथा प्राकृतिक विज्ञानों की उपलब्धियों के साथ अनीश्वरवादी प्रचार का क्या सम्बन्ध है। मार्क्स और एंगेल्स बताते हैं कि अनीश्वरवाद प्रगतिशील वर्गों की विशिष्टता है, कि अंग्रेज और फ्रान्सीसी भौतिकवादी अनीश्वरवादी उठते हुए पूंजीपति वर्ग के सिद्धान्तकार थे। किन्तु ज्योंही पूंजीपति वर्ग ने अपना प्रभुत्व जमा लिया और सर्वहारा वर्ग तथा पूंजीपति वर्ग के बीच के वर्ग विरोध तीव्र हो उठे, त्योंही पूंजीपति वर्ग ने पहले के अपने मुक्त चिन्तन को तिलांजलि दे दी और धर्म का आम जनता के लिए एक नशे (अफीम) के रूप में इस्तेमाल करना आरम्भ कर दिया। एंगेल्स ने अपनी रचना, समाजवाद, काल्पनिक तथा वैज्ञानिक के अंग्रेजी संस्करण की भूमिका में इस बात की अत्यन्त सजीव तथा स्पष्ट व्याख्या की है। इस संग्रह में वह भूमिका भी शामिल है।

पहले के भौतिकवादी तथा अनीश्वरवादी प्रचार की सेवाओं के (यानी सत्रहवीं और अट्ठारहवीं शताब्दियों के अंग्रेज तथा फ्रान्सीसी भौतिकवादियों, एल० फायरबाख तथा अन्य लोगों की सेवाओं के) महत्व पर प्रकाश डालने के साथ-साथ, मार्क्सवाद के संस्थापकों ने पूंजीवादी अनीश्वरवाद की आधे-इधर आधे-उधर दृष्टिकोण की, उसकी असंगति तथा वर्गीय परिसीमा की, उसकी निष्क्रियता तथा आत्म-लीनता की, तथा धर्म की सामाजिक जड़ों को खोलकर साफ-साफ सामने रख सकने की उसकी अक्षमता की भी आलोचना की थी।

धर्म के असली रूप को पूरे तौर से साफ-साफ खोलकर मार्क्सवाद ही सामने ला सका था। उसने प्रमाणित कर दिया था कि "धर्म मनुष्यों के मस्तिष्कों में उन बाह्य शक्तियों का काल्पनिक प्रतिबिम्ब" है "जो उनके दैनिक जीवन को नियन्त्रित करती है, ऐसा प्रतिबिम्ब जिसमें लौकिक शक्तियाँ अलौकिक शक्तियों का स्वरूप ग्रहण कर लेती हैं।" इसके अलावा

वह कुछ नही है। (इसी संग्रह में आगे, ड्यूरिंग-खण्डन वाले भाग मे देखिए)।

पूँजी, ड्यूरिंग-खण्डन, लुडविग फायरवाख तथा अन्य रचनाओ मे मार्क्स और एंगेल्स ने धर्म की जड़ें कहाँ है यह वताया है। उन्होने सप्रमाण वताया है कि मानवी विकास की सवसे प्रारम्भिक अवस्थाओ मे धार्मिक विश्वास की उत्पत्ति जहाँ प्रकृति की शक्तियो के साथ संघर्ष मे मानव की असहायता के गर्भ से हुई थी, वही, एक अन्तर्विरोधी, वर्ग समाज के अन्तर्गत उसकी उत्पत्ति श्रमजीवी जनता के सामाजिक उत्पीड़न तथा शोषकों के विरुद्ध चलने वाले संघर्ष मे उसकी प्रत्यक्ष असहायता के गर्भ से होती है, और यही चीजे परलोक मे अपेक्षाकृत अच्छा जीवन पाने के विश्वास को, इहलोक के कष्टो के तथाकथित पुरस्कार के रूप मे उस लोक मे अधिक सुखमय जीवन प्राप्त करने के विश्वास को बढ़ावा देती है।

मार्क्स और एंगेल्स की रचनाओ जर्मन विचारधारा, "रिनेशर वियोवख्तर" का कम्युनिज्म तथा कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र के अवतरणो मे धर्म को सामाजिक चेतना का एक स्वरूप, वर्ग समाज मे उसकी ऊपरी इमारत का एक तत्व कहा गया है। मार्क्सवाद के संस्थापको ने वतलाया है कि धर्म किस प्रकार सामाजिक सम्वन्धो के विकास पर, समाज की वर्ग-रचना पर निर्भर करता है। उन्होने वतलाया है कि आम जनता की आँखों मे धूल झोकने और उसकी रोकथाम करने के एक साधन के रूप मे धर्म का पालन-पोषण करने मे शोषक वर्गों का क्या स्वार्थ होता है। १८४४ मे, मार्क्स ने लिखा था, "धर्म जनता के लिए अफीम है।" यह सारगर्भित उक्ति धर्म के सम्बन्ध मे सम्पूर्ण मार्क्सवादी दृष्टिकोण की आधार-शिला वन गयी है।

एंगेल्स की रचनाएँ **ब्रूनो वेयर तथा ईसाई मजहब का आरम्भिक काल, ईश्वरीय सन्देश की पुस्तक** तथा **ईसाई मजहब के प्रारम्भिक काल का इतिहास** रोमन साम्राज्य के क्षय के समय की सामाजिक, राजनीतिक

तथा विचारधारात्मक संघर्ष की उन ऐतिहासिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालती है जिन्होंने ईसाई धर्म को जन्म दिया था। ये लेख स्पष्ट और प्रामाणिक रूप से जाहिर कर देते हैं कि ईसाई धर्म का उदय सर्वथा निराश-हताश हो गये लोगों के दृष्टिकोण के रूप में उस समय हुआ था जिस समय कि रोमन साम्राज्य के जुए के विरुद्ध दासों, गरीब-भूखी जनता तथा गुलाम बना ली गयी जातियों के अनेक विद्रोहों को खून में डुबो दिया गया था।

प्रकृति-सम्बन्धी द्वन्द्ववाद से लिये गये अध्यायों तथा अवतरणों में एंगेल्स ने अत्यन्त स्पष्ट रूप से बतलाया है कि वैज्ञानिक तथा धार्मिक दृष्टिकोणों के बीच किस तरह अनवरत संघर्ष चलता आया है और किस तरह विज्ञान की प्रगति को धर्म ने रोका है। धर्म का इतिहास वैज्ञानिक चिन्तन के विकास के विरुद्ध संघर्ष का इतिहास है। ईसाई धर्म संघ (गिरजे) ने महानतम वैज्ञानिकों का बर्बर निर्दयता के साथ दमन किया है, उन्हें यातनाएँ दी हैं, टिकटी पर बाँधकर उन्हें जिन्दा जला दिया है, उनकी रचनाओं पर रोक लगा दी है अथवा उन्हें नष्ट कर दिया है। कैथोलिक धर्म संघ (गिरजा), जिसने मजहबी अदालत के औज़ार को ईजाद किया था, इस काम को करने में खासतौर से प्रचण्ड था। ईसाई धर्म संघ ने शताब्दियों तक अत्यन्त प्रतिक्रियावादी भूमिका अदा की है और जगत् की वैज्ञानिक धारणा तथा जनवादी और समाजवादी आन्दोलन के विरुद्ध निर्ममता के साथ लड़ाई लड़ी है। लेकिन ज्यों-ज्यों प्राकृतिक विज्ञान का विकास हुआ त्यों-त्यों, अनिवार्य रूप से, धार्मिक और भाववादी दृष्टिकोण की दीवारों में अधिकाधिक दरारें पैदा होती गयीं। मार्क्सवाद के संस्थापक इसीलिए मानते थे कि धर्म-विरोधी संघर्ष में सबसे शक्तिशाली अस्त्र वैज्ञानिक और भौतिकवादी प्रचार है।

धर्म के विरुद्ध दमनकारी उपायों का इस्तेमाल करने की अराजकतावादियों, ब्लांकीवादियों, ड्यूरिंग तथा दूसरे लोगों की कोशिशों की मार्क्स और एंगेल्स ने बहुत सख्ती से निन्दा की थी (देखिए: ड्यूरिंग-खंडन

तथा परावादी साहित्य; इस पुस्तक मे उनके कुछ अश दिये गये है)। उन्होने सिद्ध किया था कि धर्म के ऊपर रोक लगाने और उसका दमन करने से धार्मिक भावना केवल और तेज ही हो सकती है। दूसरी तरफ, हवाई विचारधारात्मक प्रचार और सकुचित सस्कृतिवाद वाले पूँजीवादी अनीश्वरवाद के विपरीत, मार्क्सवाद बतलाता है कि धर्म का तब तक अन्त नही किया जा सकता जब तक कि उन सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियो को नही मिटा दिया जाता जो उसका पोषण करती है। आर्थिक तथा राजनीतिक मुक्ति के अपने क्रान्तिकारी सघर्ष के दौरान मे श्रमजीवी जनता अपने को धार्मिक विचारो तथा अन्धविश्वासो से मुक्त कर लेती है। इस चीज मे भौतिकवादी दर्शन की शिक्षा से सहायता पहुँचती है। मार्क्सवाद के सस्थापको ने सर्वहारा पार्टी के नेताओ का आवाहन किया था कि मजदूरो के अन्दर भौतिकवादी साहित्य की सर्व-श्रेष्ठ रचनाओ का वे प्रचार करे तथा प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञानों की उपलब्धियो से उन्हे परिचित कराये।

धार्मिक विचारो को दूर करने के उपायो के सम्बन्ध मे मार्क्सवादी-लेनिनवादी धारणा सर्वथा सही है, इसे सोवियत समाजवादी राज्य के अनुभव ने पूर्णतया प्रमाणित कर दिया है। समाजवाद की विजय, शोषक वर्गों तथा राष्ट्रीय वैमनस्यो के अन्त, तथा सोवियत सघ के सास्कृतिक स्तर के ऊपर उठ जाने के परिणाम-स्वरूप, धर्म की सामाजिक तथा विचारधारात्मक जडे हमेशा के लिये उखड गयी है, जनता का बहुमत धार्मिक पूर्वग्रहो से कभी का मुक्त हो चुका है। लेकिन धार्मिक दृष्टिकोणो के अवशिष्ट सोवियत सघ के कुछ लोगो के अन्दर अब भी मौजूद है। इन परिस्थितियो मे मार्क्सवाद के मूलग्रन्थो मे दिये गये इस आदेश का अत्यधिक महत्व है कि धर्म-विरोधी सघर्ष को धार्मिक लोगो के मामलो मे प्रशासकीय हस्तक्षेप कर के हरगिज नही चलाया जाना चाहिए। उसे गम्भीर तथा व्यवस्थित वैज्ञानिक अनीश्वरवादी प्रचार के द्वारा ही चलाया जाना चाहिए।

मार्क्सवाद-लेनिनवाद तथा द्वन्द्वात्मक और भौतिकवादी दृष्टिकोण के आधार पर चलने वाली कम्युनिस्ट पार्टी प्राकृतिक, प्राविधिक तथा सामाजिक विज्ञानो को हर प्रकार से उन्नत करना अपना कर्त्तव्य समझती है। ये विज्ञान प्रकृति तथा समाज के वस्तुगत नियमो के सम्बन्ध में मानव की जानकारी को गहरा बनाते है और समाज की सेवा के लिए प्रकृति की शक्तियो का उपयोग करने मे उसकी सहायता करते है। यही कारण है कि इस अवैज्ञानिक धार्मिक दृष्टिकोण के विरुद्ध—जो मनुष्य की चेतना को धुँधला कर देता है, उसे निष्क्रियता के गढ्ढे मे ढकेल देता है और उसकी सृजनात्मक शक्ति तथा पहलकदमी के पैरो मे बेड़ियाँ डाल देता है—विधिपूर्वक विचारधारात्मक सघर्ष चलाना पार्टी अपना प्रत्यक्ष कर्तव्य मानती है। पार्टी इस बात की हमे बराबर याद दिलाती रहती है कि वैज्ञानिक अनीश्वरवादी प्रचार को खगोल विद्या, जीवशास्त्र, दैहिकी, भौतिकी, रसायन शास्त्र तथा अन्य विज्ञानो की उपलब्धियो को सरल ढग से व्याख्या करके उन्ही के आधार पर चलाया जाना चाहिए, क्योकि वे उपलब्धियाँ प्रकृति तथा समाज की भौतिकवादी धारणा की सचाई को प्रमाणित करती है।

× × ×

इस सग्रह मे जो सामग्री दी गयी है वह सब मार्क्स और एगेल्स की ग्रन्थावलियों मे तथा मार्क्सवादी-लेनिनवादी सस्थान के अन्य प्रकाशनो मे पहले प्रकाशित हो चुकी है। इसमे संगृहीत सामग्री सस्थान के नवीनतम सस्करणो से ली गयी है। सारी सामग्री को काल-क्रमानुसार रखा गया है। पुस्तक के अन्त मे सम्पादकीय टिप्पणियाँ, नामो की अनु-क्रमणिका, बाइबिल (इजील) मे मिलने वाले तथा अन्य पौराणिक नामो की एक सूची और एक सक्षिप्त विषय-सूची हमने दे दी है।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति का मार्क्सवादी-लेनिनवादी संस्थान

स.न वे

डिमोक्रिटस के प्राकृतिक दर्शन तथा एपीक्यूरस के प्राकृतिक दर्शन का अंतर

थीसिस (प्रबन्ध) की भूमिका

मूलरूप मे यह थीसिस (प्रबन्ध) अगर डाक्टरी की डिग्री (उपाधि) के लिए न लिखी गयी होती तो, एक ओर तो, इस निबन्ध का स्वरूप अधिक वैज्ञानिक होता, और, दूसरी ओर, कुछ बातो के सम्बन्ध मे जो पांडित्य प्रदर्शन इसमे किया गया है वह भी कम होता। परन्तु बाहरी कारणो की वजह से, वर्तमान रूप मे ही इसे छपवाने के लिए मैं मजबूर हूं। इसके अलावा, मेरा विश्वास है कि इसमे यूनानी दर्शन के इतिहास की एक ऐसी समस्या का समाधान मैंने प्रस्तुत किया है जिसका अभी तक समाधान नही मिला था।

विशेषज्ञ जानते है कि ऐसी कोई प्रारम्भिक रचनाएं नहीं है जो इस निबन्ध के विषय के सम्बन्ध मे किसी प्रकार की सहायता दे सकती। सिसरो तथा प्लूटार्क की अर्थहीन बातो की पुनरावृत्ति करते रहने के अतिरिक्त इस विषय मे अभी तक और कुछ नही किया गया है। गसेण्डी ने एपीक्यूरस को ईसाई धर्म सत्र (गिरजे) के धर्मपिताओ तथा सम्पूर्ण-मध्ययुग के निषेधो से—मूर्तिमान बुद्धिहीनता के उस युग के निषेधो से—मुक्त कर दिया था, किन्तु उनकी उक्तियो मे केवल एक ही मतलब की

बात मिलती है।[1] वह अपनी कैथोलिक आत्मा का अपने आसुरी ज्ञान के साथ तथा एपीक्यूरस का ईसाई धर्म सघ (यानी गिरजे) के साथ मेल कराने की चेष्टा करते है—जो कि स्पष्ट ही एक व्यर्थ की चेष्टा है। यह उसी प्रकार की चीज है जैसे कि एक ईसाइन मठवासिनी के वस्त्रो से किसी यूनानी गृहस्थ के भरे-पूरे शरीर को ढकने की चेष्टा की जाय। वास्तव में, एपीक्यूरस के दर्शन के सम्बन्ध मे हमे कुछ सिखलाने की अपेक्षा गसेण्डी ने एपीक्यूरस से स्वयम् दर्शन सीखने की चेष्टा अधिक की है।

इस निबन्ध को एक अधिक बड़े ग्रन्थ की भूमिका समझा जाना चाहिए। उस ग्रन्थ मे उन्हे सम्पूर्ण यूनानी परिकल्पी दर्शन के सन्दर्भ मे रख-कर एपीक्यूरसवादी, जितेन्द्रियवादी (स्टॉइक) तथा सन्देहवादी दर्शनो के चक्र की मैं सविस्तार व्याख्या करूँगा[2]। रूप आदि की जो कमजोरियाँ इस निबन्ध मे मौजूद है वे उस ग्रन्थ मे दूर हो जाएँगी।

उल्लिखित दार्शनिक सम्प्रदायो की सामान्य विशेषताओ की मोटे तौर पर हीगेल ने सही-सही परिभाषा की थी, परन्तु अपने उस ग्रथ—दर्शन के इतिहास की—जिसके आधार पर दर्शन के समस्त इतिहास का तिथि-निर्धारण किया जा सकता है—प्रशंसनीय रूप से व्यापक तथा साहसपूर्ण योजना की परिधि मे, एक ओर तो ब्यौरे की बातो मे जा सकना उनके लिए असम्भव था और, दूसरी ओर, जिसे वह श्रेष्ठतम परिकल्पी दर्शन कहते थे उसके सम्बध मे उस महान् विचारक की जो राय थी उसकी वजह से भी यूनानी दर्शन के इतिहास के लिए तथा आम-तौर से यूनानी मानस के लिए उन दार्शनिक सम्प्रदायो का जो अपेक्षाकृत अधिक महत्व है उसे वह नही स्वीकार कर सके थे। ये सम्प्रदाय ही यूनानी दर्शन के वास्तविक इतिहास को समझने की कुजी है। यूनानी जीवन के साथ उनका जो सम्बन्ध था उसका अधिक गम्भीर निदर्शन मेरे मित्र कॉपेन की रचना, फ्रेडरिक महान् तथा उनके विरोधी (Friedrich der Grosse und seine Widersacher) मे मिलती है।

एपीक्यूरस के ब्रह्मज्ञान के विरुद्ध प्लूटार्क के तर्कों की आलोचना यदि परिशिष्ट के रूप में उसमें दे दी गयी है, तो इसका कारण यह नहीं है कि उनके वे तर्क अनोखे हैं, बल्कि यह है कि वे तर्कों की एक ऐसी जाति (espece) के प्रतिनिधि हैं जो दर्शन की ओर ब्रह्मज्ञानी तर्क के दृष्टिकोण को बहुत अच्छी तरह से व्यक्त करती है।

दर्शन को धर्म की अदालत के सामने पेश करते समय प्लूटार्क के दृष्टिकोण में जो असत्यता रहती है उसका इस आलोचना में कोई उल्लेख नहीं किया गया है। इस बात के सम्बन्ध में किसी प्रकार की और बहस करने के बजाय डेविड ह्यूम का एक अवतरण दे देना ही उपयोगी होगा :

"निश्चय ही दर्शन का, जिसकी परम सत्ता को हर जगह स्वीकार किया जाना चाहिए, यह एक प्रकार से अपमान ही है कि उसे इस बातके लिए बाध्य किया जाय कि अपने निष्कर्षों के लिए हर अवसर पर वह माफी माँगे तथा अपने से रुष्ट हो जाने वाली हर विशेष कला और विज्ञान के सामने अपने को न्यायोचित ठहराने का प्रयत्न करे। इस विचार से घोर देश-द्रोह के लिए उसी की प्रजा के सामने सज़ा के लिए खड़े किये गये एक राजा का चित्र दिमाग में आ जाता है!"[3]

दर्शन के विश्व-विजयी, पूर्णतया मुक्त हृदय में जब तक लहू की एक भी बूँद बाकी है, तबतक अपने विरोधियों से एपीक्यूरस के शब्दों में यह कहना वह नहीं बन्द करेगा कि,

> "अपवित्र वह नहीं है जो भीड के देवताओं को मानने से इन्कार कर देता है, बल्कि वह है जो देवताओं के सम्बन्ध में भीड की राय को स्वय स्वीकार कर लेता है।"*

दर्शन इस बात को छिपाता नहीं है। प्रोमीथियस की आत्म-स्वीकृति यह थी :

---

* डायोजनस लायर्टियस की दसवीं पुस्तक के सबंध में मेनोकियस के नाम लिखे गये एपीक्यूरस के पत्र से। —सम्पादक

"वास्तव में, मै सारे ही देवताओं से घृणा करता हूँ ।"*

यह स्वय दर्शन की ही आत्म-स्वीकृति है; आकाश और पृथ्वी के उन तमाम देवताओ के विरुद्ध जो मानव की चेतना को ही सर्वोच्च दिव्यत्व नही मानते, यह स्वय दर्शन का ही नारा है ! उसके स्तर पर किसी भी देवता को नही रखा जाना चाहिए ।

और जहाँ तक उन अभागे पागलो का सवाल है जो दर्शन की सामाजिक स्थिति के ऊपरी ह्रास को लेकर खुशियाँ मना रहे हैं, उन्हे फिर वह उसी तरह से जवाब देता है जिस तरह कि प्रोमीथियस ने देवताओं के दूत, हरमेज को दिया था

"अपनी बेड़ियो की जगह दासो-जैसी गुलामी को
मै कभी नही खरीदूंगा ।
जियस**की सेवा म बन्दी बने रहने की अपेक्षा चट्टान से बँधा रहना कही अच्छा है !"

प्रोमीथियस—दर्शन के पञ्चाग का सबसे उदात्त सन्त और शहीद है।

बर्लिन, मार्च, १८४१

---

* एसकिलस द्वारा रचित "बन्दी प्रोमीथियस" से। —सम्पादक

** यूनानी इन्द्र । —सम्पादक

कार्ल मार्क्स

कौलनिशे ज़ीटुंग[4] के १७९ वें अंक का मुख्य सम्पादकीय लेख

अभी तक कौलनिशे ज़ीटुंग को, अगर "राइनलेण्ट के बुद्धिजीवियो का पत्र" नही, तो कम से कम राइनलण्ड के "विज्ञापन"* का पत्र हम मानते थे। उसके राजनीतिक अग्रलेखो को बुद्धिमत्तापूर्ण तथा चुना हुआ सबसे अधिक ऐसा साधन हम मानते थे जिसका काम था कि राजनीति के प्रति पाठक मे घृणा पैदा कर दे जिससे कि और भी अधिक व्यग्रता के साथ विज्ञापन के सजे-सजाये, फडकते हुए तथा बहुधा मोहक वाक्पटुता से पूर्ण क्षेत्र की ओर वह आकर्षित हो। इस प्रकार, इस क्षेत्र मे भी नीति-मत्र था per aspera ad astra**, अर्थात् राजनीति के माध्यम से आयस्टर मछलियो के पास पहुँचो। परन्तु कौलनिशे ज़ीटुंग राजनीति तथा विज्ञापन के बीच अब तक जो ठीक-ठीक अनुपात कायम किये हुए था उसमे हाल मे जिन्हे "राजनीतिक उद्योग-धन्धे के विज्ञापन" कहा जा सकता है उनकी वजह से व्याघात पैदा हो गया है। प्रारम्भिक

* मार्क्स यहाँ "Bllatt der Intelligenze"—बुद्धिजीवियों के पत्र—तथा "Intelligenzbllatt"—विज्ञापक—शब्दों को लेकर शब्द-क्रीडा कर रहे हैं।

—सम्पादक

** लैटिन शब्द Astra, तारे, तथा जर्मन Austern, आयस्टर मछली—की ध्वनियों की सादृश्यता को लेकर शब्द-क्रीडा की गयी है। —सम्पादक

अनिश्चितता के दौर में—जिसमे यह नही तय था कि नई चीज को कहाँ रक्खा जाय, हुआ यह कि विज्ञापन तो अग्रलेख बन गया और अग्रलेख एक ऐसा विज्ञापन जिसे राजनीतिक भाषा मे निन्दा करना कहा जाता है ! लेकिन, अगर उसके लिये भी पैसे दे दिये जाएँ तो उसे सिर्फ विज्ञापन ही कहा जाएगा । *

उत्तर मे यह प्रथा है कि अन्न भोजन के पहले मेहमानों को अच्छी से अच्छी शरावे पिलाई जाती हैं । अपने उत्तरी मेहमानो के सम्बन्ध मे इस प्रथा का अनुसरण करने और भोजन से पहले उन्हे उत्साहवर्द्धक पेय पिलाने के लिये हम इसलिए और भी राजी है कि स्वयम् भोजन में, कौलनिशे ज़ीटुंग के १७९वें अंक के "रोग-ग्रस्त"** लेख मे, कोई उत्साह-वर्द्धक वस्तु नही है ! इसलिए, सबसे पहले हम पाठक को लूसियन के **देवताओ के कथोपकथन** के एक सीन (दृश्य) के दर्शन कराते हैं ।[५] यह सीन उसके ऐसे अनुवाद से लिया गया है जो सर्व-सुलभ है, क्योंकि हमारे पाठको मे कम से कम एकाध तो जरूर ऐसा होगा जो हेलेनी (यूनानी) नहीं है ।

लूसियन द्वारा रचित

देवताओ का कथोपकथन

२४ हरमेज की शिकायतें

हरमेज़, मइया

हरमेज़ : प्यारी माँ, पूरे स्वर्ग मे क्या कोई भी ऐसा देवता है जो मुझसे अधिक परेशान हो ?

मइया : ऐसा मत बोल, मेरे बेटे !

---

*Anzeige का अर्थ जर्मन भाषा मे विज्ञापन अथवा निन्दा दोनों हो सकता है ।
—सम्पादक

** यहाँ leitender Artikel—अग्रलेख—तथा leidender Artikel—कमजोर, रोग-ग्रस्त, लेख—शब्दो को लेकर शब्द-क्रीडा की गयी है । —सम्पादक

हरमेज़ : क्यों न बोलूं ? मेरे सिर पर इतने बहुत से काम लदे हुए है, फिर भी क्या मुझे हमेशा अकेले ही काम करते रहना पडेगा और गुलामो की तरह इतने बहुत-से कर्त्तव्यो को पूरा करते रहना पड़ेगा ? पौ फटने से पहले ही उठकर मुझे डाइनिंग हाल (भोजनशाला) की सफाई करनी पड़ती है, काउन्सिल रूम के कुर्सी-सोफो को ठीक से लगाना पड़ता है, और, जब सब कुछ ठीक हो जाता है तब, जुपिटर (बृहस्पति) की सेवा मे लगकर सारे दिन उसके हरकारे के रूप मे सन्देशो को लेकर भटकते रहना पडता है। धूल से लथपथ ज्योही मै लौटता हूँ त्योही मुझे अमृत पिलाने के काम मे जुट जाना पडता है। और जो चीज सबसे बुरी लगती है वह यह है कि मैं ही अकेला ऐसा एक व्यक्ति हूँ जिसे रात मे भी शान्ति नही मिलती, क्योकि उस समय मुझे मृतको की आत्माओ को साथ लेकर यम (प्लूटो) के पास जाना पडता है और उनके न्याय-वितरण के समय एक चपरासी की तरह काम करना पडता है। जैसे कि दिनभर काम करना मेरे लिए काफी नही है, इसलिए मुझे व्यायाम मे शामिल होना पडता है, जनता की सभाओ मे **सूत्रधार या ढिंढोरची** का काम करना पडता है, और जनप्रिय वक्ताओ को उनके भाषण याद कराने मे सहायता देनी पड़ती है। नही, मुझे, जो इतने बहुत-से कामो के बोझ से दबा जा रहा हूँ—इन सबके अलावा, मृतकों के पूरे काम-काज को भी देखना पडता है !

ओलिम्पस से निकाल दिये जाने के बाद भी, आदत के जोर से अब भी अपने "गुलामो-जैसे कर्त्तव्यो" को पूरा करने तथा मृतको के तमाम काम-काज को देखने का कार्य हरमेज करता जा रहा है।

१७९वे अक के रुग्ण लेख को किसने लिखा था, स्वयम् हरमेज़ ने अथवा बकरे-जैसे देवता, उसके बेटे पैन ने—इस चीज का निर्णय करने का काम स्वयम् पाठक के ऊपर हम छोड़ देते है। इसका निर्णय करते

समय पाठक को इतना अवश्य याद रखना चाहिए कि यूनानियों का हरमेज़ वाक्-वैभव तथा तर्क का देवता था।

"पत्रो द्वारा दार्शनिक तथा धार्मिक विचारों का चाहे प्रचार किया जाए, चाहे उनमे उनका विरोध किया जाए—हमें ये दोनो ही चीजें एक ही समान अनुचित लगती है।"

बुड्ढा अपनी बकवास करता ही चला जा रहा था, इसलिए मैं आसानी से समझ गया कि अपनी उबाने वाली दिव्य वाणी का कीर्तन पूरा किये बिना वह* नही रुकेगा। लेकिन फिर मैंने अपने को समझाया कि एक ऐसे समझदार आदमी की बात पर मुझे क्यो न विश्वास कर लेना चाहिए जो इतना निष्पक्ष है कि स्वयम् अपने घर मे ही अपने मत को बिलकुल साफ-साफ जाहिर कर देता है। इसलिये मैंने अपने अधैर्य को शान्त किया और आगे बढता गया। किन्तु, देखिये तो! इस लेख मे, जिसमे एक भी दार्शनिक बात होने का दोष नही लगाया जा सकता, कम से कम इस बात की प्रवृत्ति तो है कि दार्शनिक विचारों का विरोध किया जाए और धार्मिक विचारो का प्रसार किया जाए।

ऐसा लेख हमारे लिए किस काम का हो सकता है जो स्वयम् अपने अस्तित्व के अधिकार को अस्वीकार करता है, जो स्वयम् अपनी अयोग्यता की घोषणा करके अपना परिचय देता है! वाचाल लेखक हमारे सवाल का जवाब देता है। वह बताता है कि उसके आडम्बरपूर्ण बडे-बडे शब्दोवाले लेखो को कैसे पढा जाए। वह केवल कुछ अंश सामने रखता है और उनके "सयोग और पारस्परिक सम्बन्ध" का पता लगाने का काम "वह अपने पाठकों की चतुराई" के मत्थे छोड़ देता है! जिस तरह की चीजो का वह विज्ञापन करता है उनके सम्बन्ध मे यही सबसे अच्छा तरीका है। अस्तु, हम "सयोग और परस्पर सम्बन्ध" ढूढेगे और फिर अगर यह जपनी—मोतियो की माला नही बन जाती तो इसका दोष हम पर नही होगा।

---

* हरमेज, "कौलनिशे जीटुग" के सम्पादक।—स०

लेखक कहता है :

"जो पार्टी इन साधनो का" (अखबारो मे दार्शनिक और धार्मिक विचारो का प्रचार और विरोध करने के लिए) "उपयोग करती है वह, हमारी राय मे, इस चीज के जरिए यह जाहिर कर देती है कि उसके इरादे **सम्मानपूर्ण नहीं** है और उसकी दिलचस्पी लोगो को सिखाने तथा उनके अन्दर ज्ञान का प्रसार करने मे इतनी नही है जितनी कि अपने किन्ही **गूढ़ लक्ष्यो** को प्राप्त करने मे है।"

उसकी राय यह है, इसलिए फिर गूढ लक्ष्यो को प्राप्त करने के अलावा और कोई उद्देश्य उसके लेख का नही हो सकता। किन्तु ये "गूढ लक्ष्य" गूढ नही रहेगे।

लेखक कहता है कि "**ग़ैर-पेशेवर** वकवासियों की जवान वन्द करने का" राज्य को न केवल अधिकार है, वल्कि ऐसा करना उसका कर्त्तव्य भी है। उसका मतलव अपने विचारो के **विरोधियो** से है, क्योंकि इस वात मे तो वह वहुत दिनो से स्वयम् अपने से सहमत है कि वह एक **पेशेवर** वकवासी है।

इसलिए, दरअसल, सवाल धार्मिक मामलो के सम्वन्ध मे सेन्सरशिप को और भी कसने का है, अखवारो के खिलाफ, जिन्होने अभी मुश्किल से ही आजादी से साँस लेना शुरू किया है, पुलिस द्वारा एक नया कदम उठाने का है।

"हमारे मतानुसार, राज्य के ऊपर अधिक कठोरता वरतने का अभियोग लगाने के वजाय उसपर आवश्यकता से अधिक सहनशीलता दिखलाने का दोष लगाया जा सकता है।"

परन्तु अग्र लेख का लेखक और भी समझदारी से काम लेता है : राज्य की निन्दा करना खतरनाक है, इसलिए वह अधिकारियो की वात करता है, अखवारो की स्वतन्त्रता के विरुद्ध उसका अभियोग सेन्सरवालो के विरुद्ध अभियोग वन जाता है; सेन्सरवालो को वह इस वात का दोप देता है कि वे "सेन्सर" करने का काम "वहुत कम" करते है।

"नये दार्शनिक स्कूल (सम्प्रदाय) के प्रति दोपणीय सहनशीलता दिखलायी गई है। उसे इस बात की छूट दे दी गयी है कि सार्वजनिक अखबारो मे तथा अन्य छपी हुई ऐसी कृतियो मे, जो केवल वैज्ञानिक पाठको के लिए नही रची जाती है, ईसाई धर्म के ऊपर वह सर्वथा अशोभनीय हमले कर सके। यह सही है कि यह छूट राज्य ने नही दी है, वल्कि 'वैयक्तिक' अधिकारियो ने दे रखी है।"

लेखक फिर रुक जाता है और इस विपय मे दुबारा सोचता है. आठ दिन भी नही बीते जब उसने कहा था कि सेन्सरशिप की आज़ादी होने की वजह से अखबारो की आज़ादी बहुत कम रह गयी है ; अब वह कहता है कि सेन्सर वालों पर ज़ोर पड़ने की वजह से सेन्सर के काम मे वहुत कम जोर रह गया है।

इस गडवडझाले को फिर कुछ ठीक करना चाहिए।

"सेन्सरशिप जबतक चालू है तबतक उसका यह सबसे आवश्यक कर्त्तव्य हो जाता है कि छोकरो की बदतमीजी से भरी उस गन्दी विष्टा पर रोक लगा दे जो हाल मे वार-बार हमारी आँखो के सामने तकलीफ-देह ढग से आयी है।"

आँखे कमजोर है ! कमजोर है ! और "एक ऐसे कथन मे, जो केवल आम जनता की समझने की शक्ति को लक्ष्य मे रखकर किया गया हो, कमजोर से कमजोर आँख को भी तकलीफ पहुँचेगी।"

ढीली सेन्सरशिप अगर गन्दी विष्टा को अखबारो मे आने की इजाज़त दे देती है, तब फिर अखबारो की आजादी से और किस चीज की आशा की जा सकती है ? अगर हमारी आँखे इतनी कमजोर है कि जो चीज सेन्सर कर दी गयी है उसकी "गुस्ताखी" (Ubermut) को भी वे नही सह सकती, तब फिर स्वतत्र प्रेस (अख़बारो) की "दिलेरी" (Mut) को सहने की शक्ति उनमे कहाँ से आयेगी ?

"जब तक सेन्सरशिप चालू है तब तक उसका यह सबसे आवश्यक कर्त्तव्य है कि......" और जब वह खत्म हो जायगी ?—तो वास्तव मे इस

वाक्य का अर्थ यह समझा जाना चाहिए: सेन्सरशिप का सबसे आवश्यक कर्त्तव्य यह है कि जब तक सम्भव हो तब तक वह चालू रहे।

और लेखक इसके बारे मे फिर सोचता है:

"सरकारी वकील (लोक-अभियोक्ता) का काम करना हमारा कर्त्तव्य नही है और इसलिए हम और भी अधिक साफ़-साफ़ तफ़सील बताने की जरूरत नही समझते।"

कैसी दिव्य दया भरी है इस आदमी में! वह और सही-सही "तफसील" बताने की जरूरत नही समझता, यद्यपि बिल्कुल ठीक-ठीक, बिल्कुल साफ-साफ़ सकेतो के द्वारा वह यह बता देता है और ज़ाहिर कर देता है कि उसकी राय का मतलब क्या है। खटका पैदा करने वाले शब्द वह कहता है, लेकिन अस्पष्ट रूप से, अर्द्ध चुपके से, कानो में! उसका कर्त्तव्य लोक-अभियोक्ता (सरकारी वकील) का काम करना नही है; उसका कर्त्तव्य एक रूहपोश (गुप्त) अभियोक्ता का काम करना है!

आखिरी बार फिर यह मुसीबत का मारा आदमी अपनी राय बदल देता है: उसका कर्त्तव्य उदार विचारोवाले अग्रलेख लिखना है, "अखबारो की स्वतत्रता के वफादार समर्थक" का नाटक करना है। अस्तु, वह अपनी अन्तिम स्थिति इस तरह ज़ाहिर करता है:

"हम ऐसे तरीके का विरोध किये बिना नही रह सकते जिसका लक्ष्य, अगर वह अनजानी असावधानी का परिणाम नही है, अखबारों की आज़ादी को और बढ़वाने के आन्दोलन को जनता की दृष्टि मे बदनाम करने और उसके उन विरोधियो के हाथ मजबूत करने के अलावा और कुछ नहीं हो सकता जिन्हे इस बात का डर है कि ईमानदारी बरती जाने से उनका नुकसान होगा।"

अख़बारो की आजादी का यह ज़बर्दस्त समर्थक—जो जितना मर्मज्ञ है उतना ही दिलेर भी है—कहता है कि सेन्सरशिप अगर केवल वह अंग्रेज़ चीता नही है जिसपर लिखा हुआ है, "मै सो रहा हूँ, मुझे जगाना मत!", तो उसने इस "अधर्मी" तरीके को इसलिए अपनाया है जिससे

कि अखवारो को और अधिक आज़ाद कराने के आन्दोलन को जनता की दृष्टि में वदनाम कर दिया जाए।

क्या अखवारों के ऐसे आन्दोलन को वदनाम करने की अव भी ज़रूरत है जो "अनजानी असावधानियो" की ओर सेन्सरशिप का ध्यान दिलाता है और जो जनता की दृष्टि मे "सेन्सर के चाकू" की मदद से सुर्ख़रू होने की उम्मीद करता है ?

इस आन्दोलन को उसी हद तक "आजाद" कहा जा सकता है जिस हद तक कि वेशर्मी की छूट को कभी-कभी "आजादी" कहा जाता है। और क्या यह हास्यास्पद और पाखण्डपूर्ण वेशर्मी नही है कि एक तरफ तो अखवारों की और अधिक आज़ादी के आन्दोलन का समर्थक वनने का दिखावा किया जाए और, दूसरी तरफ, उसी के साथ-साथ, यह सिखाया जाय कि दो वन्दूकधारी सिपाही उसके हाथो को ज्योंही अपनी गिरिफ्त से मुक्त कर देंगे त्योंही प्रेस (अखवार) नाली मे गिर जाएगा !

दार्शनिक अखवार जव स्वयम् जनता की दृष्टि मे अपने को वदनाम कर लेते है तव फिर सेन्सरशिप की हमें क्या ज़रूरत है, तव फिर इस अग्रलेख की हमे क्या जरूरत है ? निस्सन्देह, "वैज्ञानिक शोधकार्य की आज़ादी" को लेखक किसी प्रकार सीमित नही करना चाहता !

"वैज्ञानिक शोध के कार्य को वर्तमान काल मे जो व्यापकतम् और सर्वथा सीमाहीन छूट दे दी गयी है वह उचित ही है।"

किन्तु, वैज्ञानिक शोध-कार्य के सम्वध मे इस भलेमानुष की क्या धारणा है यह उसके निम्न कथन से स्पष्ट हो जायगा :

"इस चीज के वीच साफ-साफ भेद किया जाना चाहिए कि वैज्ञानिक शोध की स्वतंत्रता के लिए—जिससे स्वयम् ईसाई धर्म का लाभ ही हो सकता है—किस चीज़ की जरूरत है और कौन-सी चीज़ वैज्ञानिक शोध की सीमाओ से परे है।"

वैज्ञानिक शोध की सीमाएँ क्या हो, इसका निर्णय स्वयम् वैज्ञानिक

शोधकार्य को छोड़ कर और कौन करे ? किन्तु, अग्रलेख के अनुसार वैज्ञानिक शोधकार्य की सीमाएँ निर्धारित कर दी जानी चाहिए। इसलिए, अग्रलेख एक ऐसी **"सरकारी बुद्धि"** को जानता है जो वैज्ञानिक शोध से सीखती नही है, वल्कि उसे सिखलाती है और जो, एक सर्वज्ञानी भगवान की तरह, यह निर्धारित कर देती है कि हर वाल की लम्वाई कितनी होनी चाहिए जिससे कि कोई वैज्ञानिक दाढी विश्व-महत्व की एक वस्तु वन जाए। सेन्सरशिप की वैज्ञानिक प्रेरणा मे अग्रलेख की जवर्दस्त आस्था है।

"वैज्ञानिक शोध" के सम्बन्ध मे अग्रलेख की इन "मूर्खतापूर्ण" व्याख्याओ की और अधिक जाँच-पडताल करने से पहले, आइये, श्री ह०* के **"धर्म के दर्शन"** का, उनके "अपने विज्ञान" का, जरा मजा हम ले ले !

"धर्म ही राज्य की नीव है, क्योकि प्रत्येक ऐसे सामाजिक संघ के अस्तित्व की वह आधार-शिला है जिसका उद्देश्य केवल किसी प्रच्छन्न उद्देश्य को प्राप्त करना नही है।"

सबूत : "बचकानी जड़ासक्ति" के रूप में, अपनी सबसे कच्ची हालत मे भी वह (धर्म—स०) मनुष्य को किसी हद तक इन्द्रियजनक भूखो से ऊपर उठा देता है। मनुष्य अगर अपने ऊपर उनको एकदम हावी हो जाने देता है तो वे **(इन्द्रियजन्य क्षुधाएँ—स०) नीचे गिराकर उसे पशु की स्थिति मे पहुँचा देती है** और फिर उसे किसी उदात्त उद्देश्य को पूरा करने के योग्य नही रहने देती।"

जड़पूजा[६] को अग्रलेख धर्म का **"सबसे कच्चा स्वरूप"** कहता है। इस भाँति वह एक ऐसी चीज को मान लेता है जिसे विना उसकी राय के भी "वैज्ञानिक शोध" के तमाम मनुष्यो ने एक प्रमाणित वात के रूप मे मान लिया है। यह चीज यह है कि **"पशुपूजा"** जडपूजा की अपेक्षा एक **अधिक ऊँचा** धर्म है ! लेकिन क्या पशुपूजा मनुष्य को नीचे गिरा कर पशु से नीचे नही पहुँचा देती, क्या वह पशु को मनुष्य का ईश्वर नही बना देती ?

---

* हरमेज।—स०

अब इस "जडपूजा" की वात को हम जरा ले ले ! लेखक का ज्ञान वास्तव मे किसी टकही पत्रिका वाला ही ज्ञान है । जडासक्ति मनुष्य को भूखो (या अभिलापाओं—स०) से ऊपर उठाने से इतनी दूर है कि उल्टे उसे "**इन्द्रियजन्य भूखों का धर्म**" कहा जाता है । भूखो की कल्पना जड़-पूजक को प्रवंचना मे डालकर यह विश्वास दिला देती है कि उसकी कामनाओं को पूरा करने के लिए "जड वस्तु" अपने प्राकृतिक रूप को त्याग देगी । इसलिए, जड-पूजा जब जड़-पूजक की सबसे निष्ठा-वान् सेवक नही रह जाती तो जड-पूजक की क्रूर भूख जडासक्ति का विध्वंस कर देती है ।

"जिन राष्ट्रो ने अधिक ऊँची ऐतिहासिक प्रतिष्ठा प्राप्त की है उनके राष्ट्रीय जीवन का परमोत्कर्ष उनके धार्मिक भाव के सर्वोच्च विकास के साथ-साथ हुआ था, और उनकी महानता और शक्ति की क्षय उनकी धार्मिक सस्कृति की क्षय के साथ-साथ हुई थी ।"

सच्चाई लेखक के इस कथन को बिल्कुल उल्टा कर देने से प्राप्त होगी; इतिहास को उसने उल्टा खडा कर दिया है । प्राचीन काल के देशो मे यूनान और रोम असन्दिग्ध रूप से सर्वोच्च "ऐतिहासिक सस्कृति" के देश थे । यूनान की आन्तरिक प्रगति अपने उच्चतम् शिखर पर पेरी-क्लीज के ज़माने मे पहुँची थी, और उसकी वाह्य प्रतिष्ठा सबसे बुलन्दी पर सिकन्दर के ज़माने मे । पेरीक्लीज़ के जमाने मे धर्म का स्थान सोफी-वादियो ने, सुकरातने—जिसे दर्शन का अवतार कहा जा सकता है—कलाने, तथा वाग्-विलास ने ले लिया था । सिकन्दर का समय अरस्तू का समय था जिसने "वैयक्तिक" आत्मा की शाश्वतता तथा अस्तिवाची धर्मो के ईश्वर को मानने से इन्कार कर दिया था । और फिर रोम ! सिसरो को पढिये ! रोम जिस समय अपने चरम उत्कर्ष पर था उस समय सुसस्कृत रोमनो का धर्म एपीक्यूरसवादी, जितेन्द्रियवादी[७] अथवा सन्देहवादी[८] दर्शन था । पुराने राज्यो के पतन के साथ-साथ यदि पुराने राज्यों के धर्म भी मिट जाते है, तो इसका कारण इसके सिवा और कुछ नही है कि

प्राचीनकाल की कौमो का "वास्तविक धर्म" "उनकी राष्ट्रीयता" की, उनकी "राजसत्ता" की पूजा थी। पुराने राज्यो का पतन पुराने धर्मो के पतन के कारण नही हुआ था, वल्कि पुराने राज्यो के पतन के कारण ही पुराने धर्मो का पतन हो गया था। और तव भी उस अग्र-लेख जैसा अज्ञान अपने को "वैज्ञानिक शोध-कार्य का विधायक" घोषित करता है और दर्शन के नाम "फरमान" जारी करता है!

"सम्पूर्ण प्राचीन दुनिया का मिस्मार हो जाना अनिवार्य था क्योकि अपने वैज्ञानिक विकास मे कौमो ने जो प्रगति की है उसका आवश्यक नतीजा यह हुआ है कि उन गलतियो का पता चल गया है जिन पर उनके धार्मिक विचार टिके हुए थे।"

इस तरह, अग्रलेख के कथनानुसार, सम्पूर्ण प्राचीन दुनिया इसलिए नष्ट हो गई थी कि वैज्ञानिक शोध ने प्राचीन धर्मो की गलतियो को जाहिर कर दिया था। धर्मो की गलतियो के संवन्ध मे शोधकार्य अगर खामोश वना रहता, तो क्या प्राचीन दुनिया नष्ट न होती? अग्रलेख के लेखक ने रोम के अधिकारियो से अगर लुकरेटियस तथा लूसियन की रचनाओ को खत्म कर देने की सिफ़ारिश कर दी होती तो क्या प्राचीन दुनिया नष्ट न हो जाती?

वाकी, श्री ह० की विद्वत्ता मे हम वस केवल एक और टिप्पणी जोडने की धृष्टता करेगे।

प्राचीन दुनिया का पतन जिस समय नजदीक आ रहा था ठीक उसी समय अलक्जेन्ड्रिया के स्कूल (दार्शनिक सम्प्रदाय) का उदय हुआ था। इस स्कूल ने वल-पूर्वक यह प्रमाणित करने की कोशिश की कि यूनानी पौराणिक कथाओ में जो कुछ है वह "शाश्वत सत्य" है तथा "वैज्ञानिक शोध-कार्य के तथ्यो के साथ" उसका पूरा सामञ्जस्य है। सम्राट जूलियन भी उसी दर्शन के मानने वाले थे जिसका विचार था कि जमाने की उठती हुई नई भावना को न देखने के लिए उसकी तरफ अगर वह अपनी आँख वन्द किये रहेगा तो वह भावना खत्म हो जायगी। लेकिन फ़िलहाल

हम श्री ह० के निष्कर्षो पर विचार करे ! प्राचीन काल के धर्मो मे "दिव्यात्मा सम्बधी क्षीण भावनाएँ गलतियो की गहनतम रात्रि के आवरण मे छिपी हुई थी" और इसलिए वैज्ञानिक शोधो का विरोध करने की सामर्थ्य उनमे नही थी। ईसाई धर्म के सम्बन्ध मे यह स्थिति बिल्कुल उल्टी है—विचार करने वाली कोई भी मशीन इसी निष्कर्ष पर पहुँचेगी। वास्तव मे, श्री ह० कहते है

"वैज्ञानिक शोधकार्य के श्रेष्ठतम निष्कर्षो ने अभी तक ईसाई धर्म की सच्चाइयो को सही साबित करने का ही काम किया है।"

इस बात के बावजूद कि अतीत काल के प्रत्येक दर्शन पर, निरपवाद रूप से, धर्माचारियो ने स्वधर्म त्याग का अभियोग लगाया था—इस सम्बन्ध मे धर्म-निष्ठ मालेब्रांश तथा दिव्यज्ञान से प्रेरित जैकब बोहमे तक को नही बख्शा गया था, और लाइबनीज के ऊपर ब्रुन्सविक के किसानो द्वारा "Lowenix" होने का (Glaubenichts होने का–यानी ऐसा आदमी होने का जो किसी चीज मे विश्वास नही करता), तथा अंग्रेज़ क्लार्क और न्यूटन के दूसरे अनुयायियो द्वारा एक नास्तिक होने का अभियोग लगाया गया था, इस बात के बावजूद कि, जैसा कि सबसे योग्य तथा पक्के प्रोटेस्टेण्ट धर्माचार्य कहते है, ईसाई धर्म तर्क के साथ इसलिए एक राय नही हो सकता कि "सासारिक" तथा "धार्मिक" तर्क एक-दूसरे के विरोधी है—तरतूलियन ने इसी चीज को बडे क्लासिकल (परिनिष्ठित) ढंग से निम्न शब्दोमे व्यक्त किया था. "verum est,quia absurdum est"–फिर,इस सबके बावजूद, धर्म के साथ वैज्ञानिक शोध का मतैक्य इसके अतिरिक्त और किस तरह से प्रमाणित किया जा सकता है कि धर्म को अपने मार्ग पर चलने के लिए मुक्त छोडकर स्वय शोधकार्य को ही उसका रूप धारण करने के लिए बाध्य कर दिया जाय ? इस सम्बन्ध मे कम से कम बात जो हम कह सकते हैं वह यह है कि जोर-जबर्दस्ती प्रमाण का काम नही दे सकती !

बेशक, अगर आप पहले से ही यह तय कर ले कि केवल वही चीज़

वैज्ञानिक शोध की होगी जो स्वयम् आपके विचारों से मेल खाती है तो भविष्यवाणी करना आपके लिए कठिन नही होगा। किन्तु तव, आपके कथन का उस भारतीय ब्राह्मण के कथन से क्या अधिक महत्व होगा जो वेदो[१] को पढने के अधिकार को अकेले अपने लिए सुरक्षित रखकर उसकी पवित्रता प्रमाणित करता है ?

हाँ, ह० कहते है, "वैज्ञानिक शोध" करो, परन्तु जो भी शोधकार्य ईसाई धर्म का खण्डन करता है वह या तो "आधे ही रास्ते मे रुक जाता है", अथवा "ग़लत मार्ग अपना लेता है" ! इससे भी आसान तर्क-व्यवस्था अपने लिए क्या कोई कायम कर सकता है ?

वैज्ञानिक शोध अगर "उस चीज के सार को अपने को **'साफ़-साफ़ समझा लेती है'** जिसे उसने ढूँढ निकाला है, तो ईसाई धर्म की सच्चाइयो से वह कभी नही टकरायेगी" ; लेकिन, साथ ही साथ, राज्य को अच्छी तरह देखना चाहिए कि "**साफ़-साफ़ समझा लेने**" का यह कार्य असम्भव ही वना रहे। शोधकार्य को जनता की समझदारी की शक्ति को कभी नही अपील करनी चाहिए, अर्थात्, उसे न कभी लोकप्रिय वनना चाहिए और न **स्वयम् अपने को** ही स्पष्ट होना चाहिए। राजतंत्र के तमाम अवैज्ञानिक अखवार भी अगर उसके ऊपर हमला वोल दे तव भी उसे विनम्र और मूक ही वना रहना चाहिए।

ईसाई धर्म के अन्दर "किसी नयी पतनशीलता" की सम्भावना नही है, किन्तु पुलिस को उसकी रखवाली करनी चाहिए जिससे कि अखवारो के दर्शन वघारने वाले लेखक उसमें पतनशीलता न पैदा कर दे ; पुलिस को वहुत सख्त रखवाली करनी चाहिए ! सत्य के साथ संघर्ष मे, गलती स्वयम् अपने-आप मान ली जाएगी—वाहरी शक्ति से उसे कुचलने की कोई आवश्यकता नही होगी ; किन्तु, "गलती" के समर्थको को—उनकी आन्तरिक स्वतत्रता स तो नही, क्योकि उसे वह उनसे छीन नही सकता, परन्तु उस स्वतत्रता का उपयोग करने की सम्भावना से वंचित करके,

ज़िन्दा रहने की सम्भावना से वंचित करके—राज्य को चाहिए कि सत्य के सघर्ष को वह आसान बना दे !

ईसाई धर्म को अपनी विजय का विश्वास है, किन्तु, श्री ह० के कथनानुसार, विजय का उसे इतना विश्वास नही है कि पुलिस की सहायता को वह ठुकरा दे !

अगर शुरू से ही यह मान लेना है कि हर चीज जो आपकी भक्ति-भावना के विरुद्ध है वह गलत है और उसके साथ इसी ढंग से व्यवहार किया जाना चाहिए, तव आपके और मुसलमानों के दावो मे क्या फर्क है, आपके और किसी भी दूसरे धर्म के दावो मे क्या फर्क है ? क्या अन्धमत की बुनियादी सच्चाइयो का विरोध न हो सके इसलिए दर्शन को, इस कहावत के अनुसार कि "जैसा देश वैसा भेष", हर देश के लिए अलग-अलग सिद्धांतों को अपनाना चाहिए ? क्या उसे एक देश मे यह मानना चाहिए कि ३ × १ = १, दूसरे देश मे यह कि स्त्रियों के आत्मा नही होती, और किसी तीसरे देश में यह कि स्वर्ग में बीयर पी जाती है ? जिस तरह से पौधो तथा ख-पिण्डो की एक सार्वभौमिक प्रकृति है उसी तरह क्या कोई सार्वभौमिक मानव प्रकृति नही है ? दर्शन सत्य का पता लगाता है, उसका नही जिसे सत्य माना जाता है ; वह उसका पता लगाता है जो समस्त मानवो के लिए सच है, उसका नही जो व्यक्तियो के लिए सच है। दर्शन की अधिभूतवादी सच्चाइयाँ राजनीतिक भूगोल की सीमाएँ नही जानती ; उसकी राजनीतिक सच्चाइयाँ इस बात को बखूबी जानती हैं कि कहाँ ये सीमाएँ किसी विशेप दुनिया के मायावी क्षितिज को ही वास्तविकता मानने लगती है और कहाँ निरे राष्ट्रीय दृष्टिकोणों को ही वे मानवी मस्तिष्क का सच्चा क्षितिज समझ बैठती हैं। ईसाई धर्म के हिमायतियो मे ह० सबसे कमजोर है !

ईसाई धर्म के पक्ष मे उनका एकमात्र प्रमाण ईसाई धर्म का लम्बा अस्तित्व है। तो क्या दर्शन भी नही थेल्स के ज़माने से लेकर हमारे ज़माने तक चला आया है और क्या, स्वयम् ह० के कथनानुसार, अपने महत्व के

वारे मे उसे आज हमेशा से भी अधिक दावा करने और राय रखने का अधिकार नही है ?

और, अन्त में, ह० इस चीज़ को कैसे सावित करते हैं कि राज्य एक "ईसाई" राज्य है, कि नैतिक मानव-प्राणियो का एक स्वतत्र संघ होने के वजाय वह आस्तिकों का एक संघ है, कि उसका उद्देश्य स्वतत्रता को एक वास्तविकता वनाने के वजाय, अन्धमत को वास्तविक वनाना है ? "हमारे सारे योरोपीय राज्यो की नीव ईसाई धर्म है!"

फ़्रान्सीसी राज्य की भी ? शार्ट [१०] (चार्टर) की धारा ३ मे यह नही कहा गया है कि "नागरिक तथा सैनिक नौकरियाँ प्राप्त करने का अधिकार" "प्रत्येक ईसाई," अथवा "केवल ईसाई" को है, वल्कि यह कहा गया है कि उसका अधिकार " tous les Francais" (तमाम फ़्रान्सीसियों—अनु०) को एक समान है।"

प्रशा के Landrecht (विधान) के खण्ड २, भाग १३ मे भी कहा गया है कि,

"राज्य के सर्वोच्च प्रमुख का प्रथम कर्त्तव्य यह है कि आन्तरिक और वाह्य, दोनो जगहो की शान्ति तथा सुरक्षा की रखवाली करे और हर एक की उस चीज़ की, जो उसकी है, हिंसा तथा हस्तक्षेप से हिफाज़त करे।"

किन्तु, धारा १ के अनुसार, "राज्य के" तमाम "कर्त्तव्य तथा अधिकार" राज्य के सर्वोच्च प्रधान मे ही निहित रहते है। उसमे यह नही कहा गया है कि राज्य का प्रथम कर्त्तव्य विधर्मवादी गलतियो को दवाना तथा परलोक के परमानन्द की व्यवस्था करना है।

लेकिन, अगर कुछ योरोपीय राज्य वास्तव मे ईसाई धर्म की आधारशिला पर खड़े हुए है, तो क्या ये राज्य उनकी धारणा के समरूप है ? क्या किसी स्थिति का "मात्र अस्तित्व" उस स्थिति का एक अधिकार वन जाता है ?

हमारे ह० की दृष्टि मे ऐसा ही होता है, क्योंकि हीगेलवाद के

नौजवान समर्थकों को याद दिलाते हुए वे कहते है "कि राज्य के अधिकाश भाग मे प्रचलित कानूनों के अनुसार जो शादी गिरजे द्वारा अनुमंत्रित (पवित्र) नही कर दी गयी है उसे रखैल की स्थिति करार दे दिया जाता है और पुलिस की अदालतों द्वारा उसे दण्डित किया जाता है।"

इसलिए, उस "शादी को जिसे गिरजे ने अनुमन्त्रित नही किया है" राइन के किनारे नेपोलियन की आचार-संहिता के अनुसार अगर "शादी" माना जाता है और, इस्प्री के समीप, प्रशा के लाण्ड्रेख्त (कानून) के अनुसार "रखैल की स्थिति" कहा जाता है, तो "पुलिस की अदालत" द्वारा दिया जाने वाला दण्ड दार्शनिकों के लिए इस बात की एक दलील है कि जो चीज एक जगह सही है दूसरी जगह वही गलत हो सकती है, कि वैज्ञानिक तथा नैतिक रूप से शादी की बुद्धिसगत धारणा नेपोलियन की आचार-संहिता मे नही, बल्कि लाण्ड्रेख्त (जर्मन कानून) मे मिलती है। "पुलिस की अदालत के दण्ड का" यह "दर्शन" दूसरी जगहों के लोगों मे विश्वास पैदा कर सकता होगा, पर प्रशा मे उसे कोई नही मानता। बाकी, "पवित्र" शादी की ओर प्रशियाई लाण्ड्रेख्त (कानून) की कितनी कम अभिरुचि है यह उसके १२वें अध्याय के दूसरे भाग की धारा १ से स्पष्ट है :

"लेकिन, देश के कानूनो के अन्तर्गत जिस विवाह की अनुमति मिली हुई है उसकी नागरिक प्रामाणितकता इस बात से जरा भी कम नही होती कि उसके लिए धार्मिक अधिकारियो की अनुमति नही मांगी गई है, अथवा मागने पर वह इन्कार कर दी गयी है।"

यहाँ, प्रशा मे भी, शादी-विवाह को "धार्मिक अधिकारियो" के बन्धन से आशिक रूप से मुक्त कर लिया गया है और उसकी "नागरिक" प्रामाणिकता "पुरोहितो द्वारा दी जानेवाली" प्रामाणिकता से भिन्न है।

इसके कहने की आवश्यकता नही है कि राजसत्ता के सम्बन्ध मे ईसाई राज्य के हमारे इस महान् दार्शनिक की बहुत "ऊँची" राय नही है।

"चूंकि हमारे राज्य अधिकार पर आधारित संघ मात्र नही है, बल्कि

साथ ही साथ वे सच्ची शैक्षिक संस्थाएँ भी है—अन्तर केवल इतना है कि उनकी देखभाल का क्षेत्र नवयुवको," आदि "की शिक्षा के लिए बनायी गयी संस्थाओ के क्षेत्र से अधिक व्यापक है—इसलिए, समस्त सार्वजनिक शिक्षा" की आधारशिला "ईसाई धर्म" है।

हमारे स्कूली बच्चो की शिक्षा प्रश्नोत्तरी के द्वारा शिक्षा देने की पद्धति पर जितनी आधारित है उतनी ही वह प्राचीन शास्त्रीय ग्रथों तथा आम विज्ञान के ऊपर आधारित है।

ह० के कथनानुसार, राज्य तथा एक शिशु-गृह के बीच अन्तर सार-तत्व का नही, बल्कि आकार का है—राज्य "देखभाल" के अपने कार्य को एक अधिक व्यापक क्षेत्र मे करता है।

परन्तु राज्य की सच्ची "सार्वजनिक शिक्षा" का सम्बध इस बात से है कि राज्य विवेकपूर्ण तथा सार्वजनिक हो; अपने सदस्यो को राज्य का सदस्य बनाकर राजसत्ता स्वयम् उन्हे शिक्षित करती है, व्यक्तिगत लक्ष्यो को वह आम लक्ष्यो मे बदल देती है, स्थूल इच्छाओ को नैतिक प्रवृत्तियों मे, और प्राकृतिक स्वतंत्रता को परमार्थिक आजादी मे—जिससे कि व्यक्ति को सम्पूर्ण समाज के जीवन मे आनन्द मिलने लगता है और सम्पूर्ण समाज को प्रत्येक व्यक्ति के स्वभाव और व्यवहार मे !

इसके विपरीत, (कौलनिशे जीटुग का—अनु०) अग्रलेख राज्य को ऐसे मुक्त मानवो का सघ नही मानता जो एक दूसरे को शिक्षित करते रहते है, बल्कि ऐसे वयस्को की एक भीड मानता है जिनके भाग्य मे यही लिखा हुआ है कि उन्हे ऊपर से शिक्षा मिलती रहे और स्कूल के "संकुचित" कमरे से जब वे निकले तो बाहर के "अधिक व्यापक" स्कूल के कमरे मे पहुँच जाएँ।

शिक्षा तथा संरक्षण के इस सिद्धान्त को यहाँ पर अखबारों की स्वतं-त्रता के एक ऐसे हिमायती ने पेश किया है जो, उसके प्रति अपने उत्कट प्रेम के कारण, "सेन्सरशिप की असावधानियो" का उल्लेख करता है, जो जानता है कि "जनता की समझने की क्षमताओं" का उचित स्थान

पर कैसे वर्णन किया जाए (कदाचित् जनता की समझ की क्षमताएँ हाल मे कौलनिशे ज़ीटुंग को इसलिए इतनी खतरनाक लगने लगी है कि जनता ने उस "अदार्शनिक अखवार" की अच्छाइयो की तारीफ करना छोड दिया है ?), और जो वैज्ञानिको को सलाह देता है कि पब्लिक के सामने उन्हे एक विचार रखना चाहिए और उसके पीछे दूसरा !

अग्रलेख ने जिस प्रकार राज्य के सम्वन्ध मे अपने विचारो की "लघु" झाँकी हमे दिखला दी है, उसी प्रकार अव वह "ईसाई धर्म" के सम्बव मे अपने हीन विचारों से हमे परिचित कराएगा।

"किसी देश की ऐसी आवादी को, जो महसूस करती है कि आमतौर से वह अच्छी तरह और सुखी है, दुनिया के अखवारो के तमाम लेख भी कभी इस वात का विश्वास नही दिला पायेगे कि वह बुरी हालत मे है।"

हमारा भी यही खयाल है। दरअसल, अखवारों के ऐसे लेखो के विरुद्ध धार्मिक श्रद्धा की परम सुखदायी तथा सर्व-विजयी गारन्टी की अपेक्षा, खुशहाली और सुख की भौतिक भावना अधिक मजवूत कवच का काम करती है ! ह० यह गीत नही गाते कि "हमारा ईश्वर एक सुदृढ़ दुर्ग हे।" सम्भवत., "चन्द लोगो" की सांसारिक सस्कार-युक्त संस्कृति की अपेक्षा "जनता" के सचमुच विश्वासी हृदय पर अधिक आसानी से सदेह की जग लग सकती है।

ह० को एक "सुव्यवस्थित गिरजे" (यानी ईसाई धर्म-संघ—अनु०) के अदर "विद्रोह के उकसावे तक का" जितना डर लगता है उतना "एक सुव्यवस्थित राज्य के" सवन्ध मे भी नही लगता। गिरजे (यानी ईसाई धर्म-संघ) का पथ-निर्देशन चाहे स्वयम् "ईश्वर की आत्मा" ही करती हो, फिर भी वे उसमे विद्रोह के उकसावे तक से डरते है ! वे कैसे वढ़िया आस्तिक है, और तर्क भी उनके खूब ही है! वे फर्माते है कि राजनीतिक लेख तो जनता की समझ मे आ जाते है, किन्तु दार्शनिक लेख उसकी समझ से परे है !

अन्त मे, अग्रलेख के इस इशारे की तुलना—कि "नौजवान हीगेलवादियों के विरुद्ध हाल मे आधे मन से जो कार्रवाइयाँ की गयी है उनका वही अन्जाम हुआ है जो आधे मन मे की गयी कार्रवाइयो का आमतौर से होता है",—यदि हम इस उम्दा इच्छा के साथ करें कि आशा है कि हीगेलवादियों के पिछले कार्यों के लिए "उन्हे बहुत प्रतिकूल परिणाम नही" भुगतने पड़ेगे, तो किंग लियर मे कौर्नवाल के निम्न शब्दों का अर्थ हमारी समझ मे आ जायगा :

वह चापलूसी नहीं कर सकता, वह !—
ईमानदार आदमी है और सादा,—वह सच ही बोल सकता है :
और वे ऐसा ही मानेंगे; अगर नहीं, तो वह सादा है।
इस तरह के वंचकों को मैं जानता हूँ, जो अपनी सादगी में
अधिक कुटिलता और अधिक भ्रष्ट उद्देश्य छिपाये रहते हैं,
वनिस्वत वीस ऐसे सर झुकाये रहने वाले कर्मकाण्डियो के जो
अपने जाल अच्छी तरह फैलाते हैं।

हम सोचते है कि अगर हम यह मान ले कि रेनीशी-जीटुंग[11] के पाठक एक भूतपूर्व उदारवादी, "वीते ज़माने के एक नौजवान"[12] के उसकी उचित जगह पर वापिस भेज दिये जाने के गम्भीर प्रदर्शन की अपेक्षा एक हास्यास्पद प्रदर्शन से सन्तुष्ट हो जायँगे, तो हम उनका अपमान करेंगे। अव हम "असल बात" के सम्बन्ध मे ही कुछ शब्द कहना चाहते है। जब तक हम उस रोग-ग्रस्त लेख के साथ शास्त्रार्थ मे लगे हुए थे तव तक आत्म-विनाश की उसकी प्रक्रिया मे दखल देना ठीक न होता।

पहले सवाल उठाया जाता है : "क्या दर्शन को धार्मिक मामलो पर भी अखवारी लेखो मे बहस करनी चाहिए ?"

इस प्रश्न का उत्तर इसकी आलोचना करके ही दिया जा सकता है। दर्शन की, सबसे अधिक जर्मन दर्शन की, प्रवृत्ति एकान्त मे रहने की, एकदम अलहदा रहने की, निर्विकार भाव से आत्म-चिन्तन करते रहने की

है। यह प्रवृत्ति आरम्भ से ही हाजिर-जवाब और घटनाओ के सम्बन्ध मे सजग रहने वाले उन अखबारो से उसे पृथक् कर देती है जिनके एकमात्र आनन्द का सम्बन्ध सूचनाओं से है। अपने क्रमानुगत विकास में, दर्शन अलोकप्रिय है, गुप्त रूप से स्वयम् अपने अन्दर उसका ताने-बाने बुनता रहना साधारण आदमी को बहुत परिश्रम-साध्य और अव्यावहारिक पेशा मालूम होता है। उसे जादू के उस प्रोफेसर की तरह माना जाता है जिसके अभिचार-मत्र इसलिए बढे-चढे मालूम पडते है कि वे समझ मे नही आते।

अपने स्वभाव के अनुसार, दर्शन ने वैरागी जैसे अपने पुरोहिती वस्त्रो की जगह अखबारो के हलके-फुलके साधारण वेष को अपनाने की ओर पहला कदम भी कभी नही उठाया है। लेकिन, कुकुरमुत्तो की तरह, दार्शनिक ज़मीन से नही पैदा हो जाते, वे अपने काल और अपनी जनता की उपज होते है। उनके दार्शनिक विचारो मे उनके काल और उनकी जनता का ही अतिसूक्ष्म, मूल्यवान् तथा अदृश्य रस सचारित होता है। जो भावना मजदूरो के हाथो से रेलो का निर्माण कराती है वही दार्शनिको के मस्तिष्क में दार्शनिक मतों का निर्माण करती है। जिस तरह कि मनुष्य का मस्तिष्क इसलिए मनुष्य से बाहर नही कहा जा सकता क्योकि वह उसके पेट के अन्दर नही होता, उसी तरह दर्शन भी दुनिया से बाहर नही कही होता। परन्तु, निस्सन्देह, पृथ्वी पर अपने पैरो पर खड़े होने से पहले ही दर्शन अपने मस्तिष्क के साथ ससार मे आ जाता है। इसके विपरीत, अनेक अन्य ऐसे मानवी क्षेत्र हैं जो बहुत पहले से पृथ्वी पर मजबूती से अपने पैरो पर खडे है। इन क्षेत्रो ने इस बात को जानने से पहले ही कि "सिर" भी इसी दुनिया की चीज है, या कि यह दुनिया सिर की ही दुनिया है, ससार के फलों को अपने हाथो से तोडना शुरू कर दिया था!

प्रत्येक सच्चा दर्शन चूंकि अपने समय का सूक्ष्म सार (Spiritual quintessence) होता है, इसलिए ऐसे समय का आना अनिवार्य है जिसमे कि न केवल आन्तरिक रूप से, अपनी विषय-वस्तु के द्वारा, बल्कि बाह्य

रूप से, अपने प्रकाश्य रूप के भी द्वारा, दर्शन वास्तविक सम-सामयिक दुनिया के सम्पर्क मे आयेगा और उसके तथा इस दुनिया के वीच घात-प्रतिघात होगा। ऐसी स्थिति आने पर, अन्य निश्चित पद्धतियों की तरह दर्शन का कोई निश्चित दार्शनिक सम्प्रदाय नही रह जाता, वल्कि ससार का सामान्य दर्शन वह वन जाता है; वह वर्तमानकालीन ससार का दर्शन वन जाता है। वे ऊपरी लक्षण जो इस वात को जाहिर करते है कि दर्शन ने इतना महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है, कि वह सस्कृति की जीवित आत्मा वन गया है, कि दर्शन सासारिक वनता जा रहा है और ससार दार्शनिक होता जा रहा है—ये लक्षण हर जमाने मे एक ही जैसे थे। इतिहास की कोई भी पुस्तक उन सरलतम् कर्म-काण्डों को वता देगी जो असन्दिग्ध रूप से इस वात को स्पष्ट कर देते है कि दर्शन का ड्राइगरूमो (कुलीनघरो की वैठको) मे और पुरोहितो के अध्ययन कक्षो मे, अखवारो के सम्पादकीय दफ्तरो मे तथा अदालतों के कमरो मे और तत्कालीन जनता की घृणा और प्रेम मे प्रवेश हो गया है। यह चीज इतिहास की प्रत्येक पुस्तक मे उवानेवाली वफादारी के साथ वार-वार दुहरायी जाती मिल जायगी। दुनिया मे दर्शन का प्रवेश उसके दुश्मनो का शोरगुल करा देता है। उसके ये दुश्मन अपने अन्दर की सक्रामक वीमारी (नैतिक पतन—स०) के भेद को विचारो के प्रचण्ड प्रकाश के विरुद्ध सहायता की आर्त्त अपीलें करके खोल देते है। दर्शन के लिए उसके दुश्मनो का यह क्रन्दन वही अर्थ रखता है जो मा के आतुर कानो के लिए उसके शिशु के प्रथम क्रन्दन का होता है; वह क्रन्दन उन विचारो के जीवन की घोपणा का क्रन्दन होता है जो सुव्यवस्थित समाज के लिपे-पुते वक्कल को तोड़कर अन्दर घुस आये है और संसार के नागरिक वन गये हैं! वे कोरीवान्तीस और कैवीरी [13] (पडे-पुरोहित), जो शिशु जियस (यूनानी इद्र—अनु०) के जन्म की सूचना दुनिया को नगाड़ो की आवाज से देते है, सवसे पहले दार्शनिको के धार्मिक पक्ष का विरोध करते है। इसका कारण आशिक रूप से तो यह होता है कि धर्म के ठेकेदारो जैसी

उनकी पुलिसवादी प्रवृत्ति के लिये पब्लिक के इस भावात्मक पक्ष पर (धर्म वाले पक्ष पर–स०) दृढता से प्रभाव डालना अधिक आसान होता है; और आशिक रूप से इसका कारण यह भी होता है कि पब्लिक, जिसमें दर्शन के विरोधी भी रहते है, दर्शन के भावगत क्षेत्र की अनुभूति केवल अपनी भाव सम्बन्धी स्पर्शेन्द्रियों के द्वारा ही प्राप्त कर सकती है। और भावो का वह एकमात्र क्षेत्र, जिसको पब्लिक लगभग उतना ही महत्त्व देती है जितना कि वह अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति-व्यवस्था को देती है, धार्मिक भावों का ही क्षेत्र है। और, अन्त मे, इसका कारण यह भी होता है कि धर्म का टकराव दर्शन की किसी खास प्रणाली से नही, बल्कि निश्चित प्रणालियो वाले सभी दर्शनों से होता है।

जहाँ तक इस बात का सम्बन्ध है, वर्तमान काल के सच्चे दर्शन की किस्मत अतीत के किन्ही भी सच्चे दर्शनो की किस्मत से भिन्न नही है। वास्तव मे, उसकी यह किस्मत इतिहास का वह ऋण है, जो दर्शन की सच्चाई के प्रमाण के प्रति उसे चुकाना था।

और दर्शन के धार्मिक रुझान के विरुद्ध जर्मन अखबार छै साल से हो-हल्ला मचा रहे हैं, उसे बदनाम कर रहे है, उसे तोड-मरोड कर पेश कर रहे हैं, उसको बधिया बना रहे है।[१४] अल्जमीन आग्सबर्गर कर्मठता के गीत गा रहा था, उसके लगभग हर सुझाव का विषय यह रहता था कि दर्शन ऐसा विषय नही है जिस पर ज्ञान की शाहज़ादी को विचार-विनिमय करना चाहिए, वह तो युवको की महज़ झूठी शेखी है, थके-मांदे गिरोहो का केवल फैशन है! लेकिन, इस सब के बावजूद, उससे छुटकारा नही मिला और फिर और भी ढोल बजाये गये! दर्शन-विरोधी अपनी चीख-पुकार मे आग्सबर्गर को बस एक ही बाजा बजाना आता है—यह है एक ही तरह का कर्कश नगाडा! बर्लिनेर पालिटिशेज़ वोखेनब्लाट[१५] तथा हैम्बर्गर करेस्पाण्डेण्ट[१६] से लेकर अज्ञात स्थानीय अखबारों तक, कौलनिशे-ज़ीटुंग तक, तमाम जर्मन अखबारों ने हीगेल तथा शैलिग, फ़ायरबाख तथा बेयर, और ड्यूश जाहर्बुख़ेर, आदि के बारे मे शोर मचाना शुरू कर

दिया। अन्त मे, पब्लिक का कौतूहल जाग उठा और वह इस लेवियाथन (अद्भुत जानवर) को स्वयं अपनी आँखो से देखने के लिये व्यग्र हो उठी। उसकी यह व्यग्रता इसलिए और भी बढ गई कि अर्द्ध-सरकारी लेख दर्शन को इस बात की धमकी दे रहे थे कि उसके सम्बन्ध मे वे सरकारी तौर से एक कानूनी पाठ्य-विषय निर्धारित करवा देगे। यही समय था जब दर्शन के अखबारो मे दर्शन हुए! उस गरूर-भरे छिछलेपन के सामने जो अखबार के कुछ फीके फिकरों के जरिए यह दावा करता था कि प्रतिभाशाली व्यक्तियो के वर्षो के अध्ययन को, आत्म-बलिदान भरे एकात के कठिन प्रयत्नो से प्राप्त किये गये फलो को, गम्भीर चिन्तन के अदृश्य किन्तु धीरे-धीरे शरीर को घुला देने वाले सघर्ष के परिणामो को, साबुन के बुलबुलों की तरह वह फूंककर उड़ा दे सकता है—दर्शन बहुत दिनों तक चुप रहा था। वास्तव मे, यह कहकर अखबारो में उसके घसीटे जाने का उसने विरोध भी किया था कि उसके लिए वे उपयुक्त स्थान नही है; किन्तु, अन्त मे, उसे अपनी चुप्पी तोड़ने के लिये मजबूर हो जाना पड़ा था। वह अखबार का एक सम्वाददाता बन गया। और तब—जो चीज कभी नही सुनी गई थी वह सुनने को मिली!—अखबारो के झगडालू निन्दको के अन्दर अचानक ज्ञान का यह सूर्य उदय हो गया कि अखबार पढने वाली पब्लिक के लिए दर्शन उचित भोजन नही है। और फिर सरकारो से यह शिकायत करने से भी वे अपने को न रोक सके कि पब्लिक का ज्ञान-वर्द्धन करने के लिए नही, बल्कि अपने किन्ही गुप्त उद्देश्यो को प्राप्त करने लिए दर्शन और धर्म के सवालो को अखबारो के क्षेत्र मे लाना बेईमानी है!!

ऐसी कौन-सी बुरी चीज है जो धर्म के, या स्वय अपने बारे मे दर्शन कह सकता था जिसे आपके अखबारो के हो-हल्ले ने बहुत पहले ही उसके बारे मे कही बद्तर और कही अधिक हल्की भाषा मे नही कह दिया था? उसे बस उन चीज़ो को दोहरा देने भर की जरूरत है जिन्हे आप अ-दार्शनिक केपूचिनो (कनटोपधारी पादडियो) ने उसके बारे मे हजारो-

हजार भाषणो-लेखो मे प्रचारित किया है,—और तब बुरी से बुरी बात जो उसके बारे मे कही जा सकती है वह कह दी जा चुकी होगी।

किन्तु, धार्मिक तथा दार्शनिक विषयो के सम्बन्ध मे दर्शन आप लोगो से भिन्न ढंग से बात करता है। आप उनके बारे मे बिना अध्ययन किये ही गरजते-चिघाडते है, वह अध्ययन करने के बाद ही कुछ कहता है; आप भावनाओ को अपील करते है, वह बुद्धि को सम्बोधित करता है, आप गाली देते हे, वह शिक्षित करता है, आप स्वर्ग और पृथ्वी सब कुछ दिला देने का वादा करते हे, वह सत्य के अलावा और कुछ देने का वादा नही करता, आप अपने धर्म मे श्रद्धा की माँग करते है, वह अपने परिणामो के सबन्ध मे श्रद्धा की नही, बल्कि सन्देह करके उनको जाँचने-परखने की माँग करता है, आप डरवाते हे, वह शान्ति-प्रदान करता है। और, निस्सन्देह, दर्शन को इतना सासारिक ज्ञान तो है ही कि वह जान ले कि उसके निष्कर्षो से न स्वर्ग मे और न इस पार्थिव दुनिया मे ही मज़े उडाने, अथवा स्वार्थ सिद्ध करने की इच्छा की पूर्ति हो सकती है। परतु जो सत्य और ज्ञान से ही प्रेम करती है वह जनता स्वयम् फैसला कर सकेगी कि अज्ञानी, ख़ुशामदी, असगत तथा किराये के कलम-घसीटों की तुलना मे कौन सही है और कौन अधिक नैतिक है।

माना कि अपनी बुद्धि-हीनता अथवा विचारो की अपनी निकृष्टता के कारण, कोई व्यक्ति दर्शन की गलत-सलत व्याख्या कर सकता है, लेकिन क्या आप प्रोटेस्टेन्ट लोग स्वय यह नही कहते कि कैथोलिक लोग ईसाई धर्म की उल्टी-सीधी व्याख्या करते है, आंठवी और नवी शताब्दी की शर्मनाक घटनाओ, सेन्ट बार्थोलोम्यू की रात, और मजहबी अदालत की हरकतो के लिए क्या आप लोग स्वय ईसाई धर्म को दोषी नही ठहराते? इस बात के निर्णायक प्रमाण मौजूद है कि दार्शनिको के प्रति प्रोटेस्टेन्ट धर्म-दर्शन की नफरत की अधिकाश वजह यह है कि अपराध की स्वीकृति के सम्बन्ध मे दर्शन का दृष्टिकोण उदार और सहिष्णुतापूर्ण है। फायरबाख और स्ट्रौस की निन्दा यह कहने के लिए अधिक की गयी

थी कि कैथोलिक धर्म के अन्धमत वास्तव में ईसाई धर्म के ही अन्धमत है; उनकी निन्दा यह कहने के लिए नही की गयी थी कि ईसाई धर्म के अन्धमतो का बुद्धि से कोई वास्ता नही है !

किन्तु, कभी-कभी कोई व्यक्ति आधुनिक दर्शन को नही पचा पाते और दार्शनिक अतिसार के कारण मर जाते है तो इससे दर्शन के विरुद्ध कुछ नही प्रमाणित होता, उसी तरह जिस तरह कि रेल के व्वायलर (वाष्प-पात्र) के फट जाने की वजह से कुछ यात्रियो की मृत्यु हो जाने से यान्त्रिकी के विरुद्ध कुछ नही प्रमाणित होता ।

यह प्रश्न कि दार्शनिक और धार्मिक समस्याओं के सम्बन्ध मे अख-बारो मे वाद-विवाद किया जाना चाहिए या नही स्वयं अपने खोखलेपन को जाहिर कर देता है ।

ऐसी समस्याओ मे **अखबारी समस्याओं** के रूप मे जनता के अन्दर दिलचस्पी अगर पैदा हो गई है, वे **वक़्ती समस्याएँ** बन गयी है, तब फिर प्रश्न यह नही रह जाता कि उन पर बहस की जाय या न की जाय, बल्कि यह हो जाता है कि उन पर कहाँ और किस तरह बहस की जानी चाहिए । फिर प्रश्न यह हो जाता है कि क्या परिवार और होटलो की सीमा के अन्दर, स्कूलो और गिरजाघरो की सीमाओ के अन्दर तो उन पर बहस की जाय—लेकिन अखबारो मे उनका नाम न लिया जाय, दर्शन के विरोधियो द्वारा तो उन्हे उठाया जाय, किन्तु दार्शनिक उनके विषय मे पूर्ण मौन धारण किये रहे, प्राइवेट राय की दुर्वोध भाषा मे तो उस पर बहस की जाय, लेकिन पब्लिक की समझदारी की साफ-साफ भाषा मे उसके सम्बन्ध मे कुछ न कहा जाए ? तब प्रश्न यह उठता है कि जो चीज़ वास्तविकता के रूप मे मौजूद है क्या वह अखबारो के क्षेत्र मे भी आती है ? प्रश्न फिर अखबारो की किसी विशेष विषय-वस्तु का नही रह जाता, बल्कि यह आम प्रश्न हो जाता है कि आया अखबारो को वास्तव मे अखबार, अर्थात्, स्वतन्त्र अखबार होना चाहिए ?

पहले प्रश्न से इस दूसरे प्रश्न को हम बिलकुल अलग कर लेते हैं :

"एक तथाकथित ईसाई राज्य मे क्या राजनीति सम्बन्धी प्रश्नों पर अखबारों को दार्शनिक रूप से विचार करना चाहिए ?"

धर्म यदि एक राजनीतिक तत्व बन जाता है, राजनीति की एक वस्तु बन जाता है, तो इस बात का उल्लेख करने की मुश्किल से ही कोई आवश्यकता प्रतीत होती है कि राजनीतिक विषयो पर अखबार न केवल विचार कर सकते है, बल्कि ऐसा करना उनका धर्म हो जाता है। यह बात तो शुरू से ही स्पष्ट लगती है कि इस दुनिया के राज्य के विषय मे, राजसत्ता के विषय मे चिन्ता करने का दूसरी दुनिया के ज्ञान, यानी धर्म की अपेक्षा इस दुनिया के ज्ञान, यानी दर्शन को अधिक अधिकार है। प्रश्न यहाँ यह नही है कि राजसत्ता की दार्शनिक व्याख्या की जाए या न की जाए, बल्कि प्रश्न यह है कि उसकी दार्शनिक व्याख्या अच्छी तरह से की जाए या बुरी तरह से की जाए, दार्शनिक रूप से की जाए या अदार्शनिक रूप से की जाए, पूर्वग्रह के साथ की जाए, या बिना पूर्वग्रह के की जाए, सजग रूप से की जाए या बिना सजगता के की जाए, सुसगत रूप से की जाए या असगत रूप से की जाए, पूर्णतया बुद्धिसगत ढग से की जाए या अधकचरे ढग से की जाए। धर्म को राजसत्ता के अधिकार का सिद्धान्त यदि आप बना देते है, तो स्वय धर्म को ही आप एक प्रकार का दर्शन बना देते हैं।

और सबसे पहले ईसाई धर्म ही क्या वह चीज नही थी जिसने गिरजे (यानी ईसाई धर्म सघ) को राजसत्ता से अलग कर दिया था ?

सेन्ट ऑगस्टीन के "ईश्वर के नगर" *(De Civitate Dei)* को पढिए, गिरजे के पादरियो का और ईसाई धर्म की भावना का अध्ययन कीजिए, और फिर आकर हमे बताइए कि "ईसाई राज्य" कौन है, गिरजा या राज्य-सत्ता ! आपके व्यावहारिक जीवन का प्रत्येक मिनट क्या आपके सिद्धान्त को झूठा नही साबित करता है ? आपको जब धोखा दिया जाता है तब क्या अदालतो की शरण लेना आप गलत समझते है ? लेकिन ईश-दूत ने तो लिखा है कि ऐसा करना गलत है। आपके बाएँ गाल पर जब

तमाचा मारा जाता है तब क्या आप तमाचा मारने के लिए अपना दाहिना गाल प्रहार करने वाले की तरफ कर देते है, या हमला करने के जुर्म में अदालत में उस पर मुकदमा नही चला देते ? इसके बावजूद, बाइबिल (इजील) मे इसकी मनाही की गयी है ! इस दुनिया मे क्या आप अपने उचित अधिकार की माँग नही करते ? क्या ज़रा-सा भी टैक्स बढ़ जाने पर आप भुनभुनाने नही लगते ? आपकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर जरा भी आघात होता है तो क्या आप क्रुद्ध नही हो उठते ? लेकिन आपसे तो कहा गया है कि इस जीवन के कष्टो की भविष्य के परम सुख के साथ तुलना नही की जानी चाहिए, कि धैर्य-पूर्वक कष्ट सहते रहना तथा आशा के परम सुख मे रहते रहना महान् सद्गुण है !

आपकी अदालतो की अधिकाश कार्यवाहियो का तथा दीवानी के अधिकाश क़ानूनो का सम्बन्ध क्या सम्पत्ति से नही है ? लेकिन आपको तो बताया गया है कि आप का असली धन इस दुनिया मे नही है । अगर आप इस सिद्धान्त को मानकर चलते है कि सीजर का देय सीज़र को दिया जाना चाहिए और जो ईश्वर का देय है उसे ईश्वर को, तब केवल स्वर्ण के देवता को ही इस ससार का सीज़र आपको नही मानना चाहिए, बल्कि, कम से कम उसी मात्रा मे, स्वतन्त्र बुद्धि को भी इस ससार का सीजर स्वीकार करना चाहिए—और इस "स्वतन्त्र बुद्धि की क्रिया को" ही दार्शनिक रूप से विचार करना हम कहते है ।

शुरू-शुरू मे पवित्र समझौते (होली एलायन्स) के अन्तर्गत राज्यो का एक अर्द्ध-धार्मिक गुट सगठित करने और धर्म को योरप की राजकीय ध्वजा बनाने का प्रस्ताव जब रक्खा गया था तो, उसमे सम्मिलित होने से इन्कार करके, **पोप** ने गम्भीर समझदारी तथा पूर्ण सुसगतता का परिचय दिया था क्योकि, उनके विचार मे, राष्ट्रो को—ईसाई धर्म के आधार पर जोडने वाली सार्वभौमिक कड़ी गिरजा था—राजनय नही, राज्यों का कोई सांसारिक समझौता नही ।

सच्चे माने मे धर्मतन्त्रवादी राज्य ही धार्मिक राज्य हो सकता है; ऐसे

राज्यो का राजा या तो धर्म के ईश्वर को होना चाहिए या, यहूदियों के राज्य की तरह, स्वय जिहोवा को या, तिव्वत की तरह, ईश्वर के प्रतिनिधि दलाई लामा को या, अन्त मे, जैसा कि गौरेस ने अपनी अन्तिम रचना मे ईसाई राज्यो से सही-सही माँग की है : इन सव राज्यों को एक ऐसे गिरजे की अधीनता स्वीकार करनी चाहिए जो "कभी गलती न कर सकने वाला गिरजा हो।" क्योकि, अगर जिस तरह प्रोटेस्टेन्टवाद में कोई सर्वोच्च प्रधान नही होता है उसी तरह गिरजे का भी कोई सर्वोच्च प्रधान नही होगा; तव फिर धर्म के शासन का अर्थ शासन के धर्म के अतिरिक्त, सरकार की इच्छा की पूजा के अतिरिक्त और कुछ नही रह जाएगा।

एक वार किसी राज्य में कई धार्मिक सम्प्रदायो को अगर समान अधिकार प्राप्त हो जाते हैं तो फिर, अन्य धार्मिक सम्प्रदायों के अधिकारो का हनन किये विना, वह धार्मिक राज्य नही रह सकता; वह ऐसा गिरजा नही वन सकता जो अन्य धार्मिक सम्प्रदायों के अनुयाइयो को विधर्मी कहकर उनकी निन्दा करता है, जो रोटी के हर टुकडे को धार्मिक विश्वास के आधार पर मिलने वाली वस्तु वना देता है, जो अलग-अलग व्यक्तियों के अस्तित्व की कड़ी तथा राज्य के नागरिकों की हैसियत से उनके जीवन का आधार अन्धमत को वना देता है। "दीन हरे-भरे ऐरिन" के कैथोलिक निवासियो से पूछ देखिए, फ्रान्सीसी क्रान्ति से पहले के ह्यूजनाटो[१९] से पूछ देखिए : उन्होने धर्म के नाम पर नही अपील की थी, क्योकि उनका धर्म राज्य का धर्म नही था। उन्होने "मानवता के अधिकारों" के नाम पर अपील की थी। और दर्शन मानवता के अधिकारो की व्याख्या करता है और माँग करता है कि राज्य मानवी प्रकृति का राज्य हो।

किन्तु अवकचरी, सीमित वुद्धिवादिता, जो कि उतनी ही अविश्वासी है जितनी वह धर्मावलम्वी है, कहती है कि धार्मिक विश्वासो से सम्वन्धित मतभेद चाहे जैसे हों, किन्तु ईसाई धर्म की सार्वभौमिक भावना को ही राज्य की भावना होना चाहिए ! धर्म की आम भावना को सकारी

(अर्थात् अस्तिवाची) धर्म से अलग करना सबसे बडी अधार्मिकता है, सासारिक विवेक की विलासिता है। उसके अन्धमतो तथा उसकी संस्थाओं से धर्म को इस प्रकार अलहदा करने का मतलब यह कहना है . इन्साफ के निश्चित नियमो तथा उसकी सकारी सस्थाओ का कोई खयाल किये बिना, राज्य मे इन्साफ की सार्वभौमिक भावना का शासन होना चाहिए।

अगर आप धर्म से इतनी ऊँचाई पर खडे होने का दावा कर सकते है जहाँ आपको इस बात का अधिकार है कि धर्म की आम भावना को उसकी सकारी परिभाषाओं से अलहदा कर ले, तो दार्शनिको को इस बात के लिए आप कैसे दोषी ठहरा सकते है कि इस अलहदगी को वे अधूरी नही रहने देना चाहते, बल्कि उसे पूरा बना देना चाहते है, कि ईसाई धर्म की घोषणा न करके वे मानवी भावना की, धर्म की सार्वभौमिक भावना की घोषणा करते है ?

ईसाई धर्मावलम्बी भिन्न-भिन्न विधानो वाले राज्यो मे रहते है, कोई प्रजातत्र मे रहता है, कोई एकसत्तावादी राजतन्त्र मे, कोई वैधानिक राजतन्त्र मे। ईसाई धर्म यह नही तय करता कि कौन विधान सही है, कौन नही है, क्योकि वह विधानो के बीच भेद नही करता। वह, जैसा कि धर्म के लिए लाजमी है, सिखलाता है : सत्ता के सामने सिर झुकाओ, क्योंकि समस्त सत्ता ईश्वर प्रदत्त है। इसलिए, राज्यो के विधानो के सही होने या न होने का निर्णय ईसाई धर्म के अनुसार नही किया जा सकता, स्वय राज्य की प्रकृति, उसके सार-तत्व के अनुसार नही किया जा सकता, ईसाई समाज की प्रकृति के अनुसार भी नही किया जा सकता, उसका निर्णय मानव समाज की प्रकृति के अनुसार ही किया जा सकता है।

बाइजेन्टाइन राज्य असली माने मे धार्मिक राज्य था, क्योकि वहाँ अन्धमत ही राज्य के आधार थे, लेकिन बाइजेन्टाइन राज्य सबसे खराब राज्य था। प्राचीन शासनों के राज्य ईसाई धर्म को सबसे अधिक मानने वाले राज्य थे, इसके बावजूद वे "दरबार की इच्छा" पर आधारित राज्य हुआ करते थे।

यहाँ एक ऐसी समस्या आ उपस्थित होती है जिसे "शुद्ध" सहज-बुद्धि हल नही कर सकती। ईसाई राज्य या तो इस कल्पना के अनुरूप होता है कि राज्य को बुद्धि-सगत स्वतत्रता का साकार रूप होना चाहिए, और ऐसा होने के बाद फिर, ईसाई राज्य के रूप मे, उससे इसके अति-रिक्त और किसी चीज की माँग नही की जा सकती कि वह एक विवेक-पूर्ण राज्य हो। ऐसी दशा मे इतना ही काफ़ी होता है कि राज्य का विकास मानवी सम्बन्धो की विवेकयुक्तता के आधार पर कर लिया जाए। दर्शन इसी काम को पूरा करता है। अथवा फिर, ईसाई धर्म के अन्दर से बुद्धि-सगत स्वतत्रता के राज्य का विकास नही हो सकता; और, तव, आप स्वय स्वीकार करेंगे कि इसका कारण ईसाई धर्म की प्रवृत्ति नही हो सकती, क्योकि ईसाई धर्म बुरे राज्य की तो कामना नही करता, और कोई भी राज्य जो बुद्धि-सगत स्वतत्रता का साकार रूप नही है एक बुरा राज्य है।

इस समस्या का आप चाहे जिस तरह से जवाव दे—इस बात को तो आप को मानना ही पडेगा कि राज्य का निर्माण धर्म से नही, बल्कि स्वतत्रता के सिद्धान्त से ही हो सकता है। यह बात निपट अज्ञानी ही कह सकते है कि राज्य की कल्पना को धर्म से स्वतत्र रखने का सिद्धान्त आधुनिक दार्शनिको की वक्ती सनक है।

दर्शन ने राजनीति के क्षेत्र मे ऐसा कुछ नही किया है जो भौतिक-शास्त्र, गणित, चिकित्सा-शास्त्र, यानी प्रत्येक विज्ञान ने स्वय अपने क्षेत्र मे नही किया है। वेरुलम के वेकन ने कहा था कि धर्मशास्त्रीय भौतिकी एक अक्षत कुमारी थी जिसने अपने को ईश्वर को अर्पित कर दिया था और इसीलिए वह वाँझ थी। धर्म-तत्व से भौतिकी को उसने मुक्ति दिला दी और वह फलवती हो उठी। जिस तरह डाक्टर से आप यह नही पूछते कि धर्म मे उसका विश्वास है या नही, उसी तरह राजनीतिज्ञ से भी आपको ऐसा नही पूछना चाहिए। इससे ठीक पहले और सौर-परि-वारके सच्चे स्वरूप के सम्बन्ध मे कोपरनिकस की महान् खोजो के वाद,

राज्य की गुरुत्व-शक्ति के नियम की खोज हो गयी थी : पता चला था कि राज्य की गुरुत्व-शक्ति का केन्द्र स्वय राज्य के अन्दर होता है। अमल के आरम्भिक छिछलेपन के साथ इस निष्कर्ष को राज्यो के संतुलन की व्यवस्था के सम्बन्ध मे जिस तरह योरोप की विभिन्न सरकारों ने लागू करने की कोशिश की थी ठीक उसी तरह मेक्यावली और कैम्पानेला ने उनसे पहले ऐसा किया था और उनके वाद से हौब्स, स्पिनोजा और ह्यूगो ग्रोटियस से लेकर रूसो, फिख्ते तथा हीगेल तक उसे करते आये है। इन सव ने राज्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने की कोशिश की थी और उसके प्राकृतिक नियमो को धर्म-तत्व की वुनियाद पर नही, वल्कि वुद्धि और अनुभव की वुनियाद पर विकसित करने की चेष्टा की थी। धर्म-तत्व से अपने को उसी तरह उन्होने प्रभावित नही होने दिया था जिस तरह कि कोपरनिकस ने जोशुआ के सूर्य को गिडियन के ऊपर स्थिर खडे रहने तथा चाँद को अजालोन की घाटी के ऊपर स्थिर खडे रहने के तथाकथित आदेश से अपने को प्रभावित नही होने दिया था। आधुनिक दर्शन ने उस कार्य को केवल जारी रक्खा है जिसे हिराक्लिटस तथा अरस्तू ने वहुत पहले शुरू कर दिया था। इसलिए, अपने इस हमले के द्वारा दरअसल आधुनिक दर्शन के वुद्धि-सगत सिद्धान्त के विरुद्ध नही आप अपने शव्द-वाण चला रहे है, वल्कि वुद्धि-संगत विवेक के सदा आधुनिक दर्शन पर प्रहार कर रहे है। जिस अज्ञान को रेनीशी अथवा कोनिग्सवर्गर जीटुंग[20] मे राज्य के सम्वन्ध मे युगो पुराने विचारो का पता कल अथवा कदाचित् परसो ही चला है, उसके लिए स्वाभाविक है कि इतिहास के विचार उसे ऐसे विचार लगे जो रात भर मे यकायक ही किन्ही व्यक्तियो के दिमाग मे पैदा हो गये है। ये विचार उसे नये प्रतीत होते है और उनका ज्ञान उसे रातोरात ही हुआ है। वह यह भूल जाता है कि इस तरह उसने सोरवोन के उस डाक्टर की पुरानी भूमिका को अपना लिया है जो सार्वजनिक रूप से मांटेस्क्यू पर दोपारोपण करते रहना इसलिए अपना कर्त्तव्य समझा

यहाँ एक ऐसी समस्या आ उपस्थित होती है जिसे "शुद्ध" सहज-बुद्धि हल नही कर सकती। ईसाई राज्य या तो इस कल्पना के अनुरूप होता है कि राज्य को बुद्धि-संगत स्वतत्रता का साकार रूप होना चाहिए, और ऐसा होने के बाद फिर, ईसाई राज्य के रूप मे, उससे इसके अतिरिक्त और किसी चीज की माँग नही की जा सकती कि वह एक विवेक-पूर्ण राज्य हो। ऐसी दशा मे इतना ही काफ़ी होता है कि राज्य का विकास मानवी सम्बन्धो की विवेकयुक्तता के आधार पर कर लिया जाए। दर्शन इसी काम को पूरा करता है। अथवा फिर, ईसाई धर्म के अन्दर से बुद्धि-सगत स्वतत्रता के राज्य का विकास नही हो सकता; और, तब, आप स्वय स्वीकार करेगे कि इसका कारण ईसाई धर्म की प्रवृत्ति नही हो सकती, क्योकि ईसाई धर्म बुरे राज्य की तो कामना नही करता, और कोई भी राज्य जो बुद्धि-सगत स्वतत्रता का साकार रूप नही है एक बुरा राज्य है।

इस समस्या का आप चाहे जिस तरह से जवाब दे—इस बात को तो आप को मानना ही पडेगा कि राज्य का निर्माण धर्म से नही, बल्कि स्वतत्रता के सिद्धान्त से ही हो सकता है। यह बात निपट अज्ञानी ही कह सकते है कि राज्य की कल्पना को धर्म से स्वतत्र रखने का सिद्धान्त आधुनिक दार्शनिको की वक्ती सनक है।

दर्शन ने राजनीति के क्षेत्र मे ऐसा कुछ नही किया है जो भौतिक-शास्त्र, गणित, चिकित्सा-शास्त्र, यानी प्रत्येक विज्ञान ने स्वय अपने क्षेत्र मे नही किया है। वेरुलम के बेकन ने कहा था कि धर्मशास्त्रीय भौतिकी एक अक्षत कुमारी थी जिसने अपने को ईश्वर को अर्पित कर दिया था और इसीलिए वह बाँझ थी। धर्म-तत्व से भौतिकी को उसने मुक्ति दिला दी और वह फलवती हो उठी। जिस तरह डाक्टर से आप यह नही पूछते कि धर्म मे उसका विश्वास है या नही, उसी तरह राजनीतिज्ञ से भी आपको ऐसा नही पूछना चाहिए। इससे ठीक पहले और सौर-परिवारके सच्चे स्वरूप के सम्बन्ध मे कोपरनिकस की महान् खोजो के बाद,

राज्य की गुरुत्व-शक्ति के नियम की खोज हो गयी थी : पता चला था कि राज्य की गुरुत्व-शक्ति का केन्द्र स्वय राज्य के अन्दर होता है। अमल के आरम्भिक छिछलेपन के साथ इस निष्कर्ष को राज्यों के संतुलन की व्यवस्था के सम्बन्ध मे जिस तरह योरोप की विभिन्न सरकारों ने लागू करने की कोशिश की थी ठीक उसी तरह मेक्यावली और कैम्पानेला ने उनसे पहले ऐसा किया था और उनके वाद से हौब्स, स्पिनोज़ा और ह्यूगो ग्रोटियस से लेकर रूसो, फ़िख़्ते तथा हीगेल तक उसे करते आये है। इन सव ने राज्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने की कोशिश की थी और उसके प्राकृतिक नियमो को धर्म-तत्व की बुनियाद पर नही, वल्कि वुद्धि और अनुभव की वुनियाद पर विकसित करने की चेष्टा की थी। धर्म-तत्व से अपने को उसी तरह उन्होने प्रभावित नही होने दिया था जिस तरह कि कोपरनिकस ने जोशुआ के सूर्य को गिडियन के ऊपर स्थिर खडे रहने तथा चाँद को अजालोन की घाटी के ऊपर स्थिर खडे रहने के तथाकथित आदेश से अपने को प्रभावित नही होने दिया था। आधुनिक दर्शन ने उस कार्य को केवल जारी रक्खा है जिसे हिराक्लिटस तथा अरस्तू ने वहुत पहले शुरू कर दिया था। इसलिए, अपने इस हमले के द्वारा दरअसल आधुनिक दर्शन के वुद्धि-सगत सिद्धान्त के विरुद्ध नही आप अपने शव्द-वाण चला रहे है, वल्कि वुद्धि-सगत विवेक के सदा आधुनिक दर्शन पर प्रहार कर रहे है। जिस अज्ञान को **रेनीशे अथवा कोनिग्सवर्गर ज़ीटुंग**[२०] मे राज्य के सम्वन्ध में युगो पुराने विचारो का पता कल अथवा कदाचित् परसो ही चला है, उसके लिए स्वाभाविक है कि इतिहास के विचार उसे ऐसे विचार लगे जो रात भर मे यकायक ही किन्ही व्यक्तियो के दिमाग मे पैदा हो गये है। ये विचार उसे नये प्रतीत होते है और उनका ज्ञान उसे रातोरात ही हुआ है। वह यह भूल जाता है कि इस तरह उसने सोरवोन के उस डाक्टर की पुरानी भूमिका को अपना लिया है जो सार्वजनिक रूप से मांटेस्क्यू पर दोपारोपण करते रहना इसलिए अपना कर्त्तव्य समझा

था कि माटेस्क्यू ने यह कहने की नादानी दिखलाई थी कि राज्य का सर्वश्रेष्ठ गुण गिरजे का धर्म नही होता है, बल्कि उसकी राजनीतिक नीति होती है। वह यह भूल जाता है कि उसने उस जोकिम लागे की भूमिका अपना ली है जो वुल्फ की इसलिए निन्दा किया करता था कि उसे डर था कि नियतिवाद के उसके सिद्धान्त के परिणाम-स्वरूप सैनिक सेना का परित्याग करने लगेगे और उसके कारण सैनिक अनुशासन ढीला पड़ जायगा और अन्त मे राज्य का ही पतन हो जायगा। अन्त मे, वह यह भूल जाता है कि प्रशा के लान्ड्रेक्त (सामान्य कानून) का जन्म भी "उसी वुल्फ" के दार्शनिक मत से हुआ है और नेपोलियन की सहिता का भी जन्म पुरानी इजील *(old Testament)* से नही, बल्कि वाल्तेयर, रूसो, कोन्डोरसे, मिरावो तथा मान्टेस्क्यू के विचारो के मत तथा फ्रान्सीसी क्रान्ति के गर्भ से हुआ है। अज्ञान एक पिशाच है और हमे आशका है कि अव भी वह हमारे साथ एक से अधिक वार छल करके हमे दुख मे डालेगा। यूनान के महानतम कवि मारसेनी तथा थीब्ज के राजघरानो के भयकर नाटको मे उसका चित्रण जव दुख-दायी नियति के रूप मे करते थे तो वे सही थे।

राज्य सम्वन्धी कानूनो के पुराने शिक्षक राज्य-निर्माण का कारण महत्वाकाक्षा अथवा मिलनसारी को, अथवा वुद्धि को वताते थे, यद्यपि उनके अनुसार उनका निर्माण समाज की वुद्धि से नही, बल्कि व्यक्ति की वुद्धि से होता था ! परन्तु आधुनिक दर्शन के अधिक आदर्शवादी तथा गम्भीर विचारक उसका आधार सम्पूर्ण समाज के विचारो को मानते है। इस दृष्टिकोण के मतावलम्वी राज्य को एक ऐसा महान् सगठन मानते है जिसके अन्दर इन्साफ, नैतिकता तथा राजनीति की स्वतत्रता का समावेश करना है। उनके अनुसार, इस सगठन के अन्तर्गत, राज्य के कानूनो के रूप मे हर नागरिक स्वय अपने सद्विवेक के, मानवी विवेक के प्राकृतिक नियमो का ही पालन करता है। *Sapienti Sat.**

*. अक्लमन्द के लिए इतना ही इशारा काफी है।—स०

कोलनिशे ज़ीटुंग की दार्शनिक [illegible] से जरा और [illegible] [illegible] इस प्रकरण को हम समाप्त करेंगे। उसके लिए अपने को "[illegible] ज़माने का" एक उदारपंथी बनाना ठीक ही था। वहां मज़े से आदमी साथ-साथ उदारपंथी और प्रतिक्रियावादी दोनों हो सकता है—पर उसमें इतनी चतुराई हमेशा होनी चाहिए कि वह राइन के केवल उन उदारपंथियों की ही बात करे जिन्हें विरोध की इस समस्या के अलावा और किसी समस्या का ज्ञान नहीं है कि वे "कैदी बनें या [illegible]"! यह और भी अधिक ठीक था कि राइन के उदारपंथी ने थोड़े ही दिन पहले के उदारपंथियों से मोर्चा लिया। पार्टियों के बिना कोई विकास नहीं होता, अलग हुए बिना कोई प्रगति नहीं होती। हम आशा करते हैं कि १७९ के अंक के अपने अग्रलेख के साथ कोलनिशे ज़ीटुंग ने एक नये युग की शुरु-आत की है, चरित्र के युग की।

कार्ल मार्क्स

हीगेल के अधिकार सम्बन्धी दर्शन की आलोचना में योगदान

जर्मनी में धर्म की आलोचना मुख्यतया पूरी हो चुकी है, और धर्म की आलोचना ही समस्त आलोचना का पूर्व-आधार है।

धर्म सम्बन्धित दिव्य भाषण का (*oratio pro aris et focis** का) जब तिरस्कार कर दिया जाता है तो उसका अपवित्र लौकिक अस्तित्व भी बे-आबरू हो जाता है। मनुष्य स्वर्ग की काल्पनिक वास्तविकता में किसी महामानव की तलाश कर रहा था, लेकिन स्वयं अपने प्रतिबिम्ब के अतिरिक्त उसे वहाँ और कुछ नहीं मिला। इसके बाद जहाँ भी अपनी सच्ची असलियत की अब वह तलाश करता है और करेगा वहाँ उसे स्वयं अपने रूप के, अपनी अमानवी (*Unmensch*) सूरत के और कुछ नहीं मिलेगा।

अधार्मिक आलोचना का आधार यह है कि: मनुष्य धर्म बनाता है, धर्म मनुष्य को नहीं बनाता। दूसरे शब्दों में, धर्म ऐसे मानव की आत्म-चेतना तथा आत्मानुभूति है जिसने या तो अभी तक अपना अता-पता

---

* धर्मवेदी तथा अग्नि-कुण्ड के समक्ष दिये जाने वाला पवित्र भाषण।—स०

पाया नही है या जो उसे पाकर अपने को फिर खो वैठा है । परन्तु **मानव** ऐसा कोई हवाई प्राणी नही है जो दुनिया से वाहर कही पल्थीमारे वैठा हुआ है । मानव **मनुष्य को दुनिया** है, राज्य है, समाज है । यह राज्य, यह समाज धर्म को, **उल्टी विश्व-चेतना** को जन्म देता है, क्योकि वे स्वयं एक **उल्टी दुनिया** है । धर्म उसी दुनिया का आम सिद्धान्त है, उसका सक्षिप्त विश्व-कोश है, लोकप्रिय रूप मे उसका तर्क-शास्त्र है, उसके आत्मिक सम्मान का गौरव है, उसका श्रद्धोन्माद है, उसकी नैतिक शक्ति है, उसकी पवित्र परिपूर्णता है, सान्त्वना तथा समर्थन का उसका सार्व-भौमिक आधार है । वह मानव के मूलभूत सार का **काल्पनिक साकार रूप** है क्योकि **मानव के मूलभूत सार** की कोई सच्ची असलियत नही है । इसलिए, धर्म के विरुद्ध सघर्प अप्रत्यक्ष रूप से उस **दूसरी दुनिया** के विरुद्ध सघर्प है धर्म जिसका आत्मिक सौरभ है ।

धार्मिक पीडा साथ ही साथ वास्तविक पीड़ा की भी **अभिव्यक्ति** तथा वास्तविक पीडा के खिलाफ **विरोध-प्रदर्शन** है । धर्म उत्पीडित प्राणी की आह है, एक हृदय-हीन दुनिया का वह हृदय है, उसी तरह जिस तरह कि किसी आत्मा-विहीन स्थिति की वह आत्मा है । वह जनता की **अफ़ीम** है ।

जनता के **मिथ्या** सुख के रूप मे धर्म का उन्मूलन करना उसके **वास्तविक** सुख के लिए आवश्यक है । अपनी दशा के सम्वन्ध मे भ्रान्तियो को तिलाजलि दे देने की माँग जनता से **उस दशा को तिलां-जलि दे देने की मांग है जिसमें भ्रान्तियों की आवश्यकता होती है ।** इसलिए धर्म की आलोचना, **बीज रूप में, दुख की उस घाटी की आलो-चना** है धर्म जिसका **प्रभा-मण्डल** है ।

आलोचना ने वेडियो से उनके काल्पनिक फूलो को इसलिए नही तोड लिया है जिससे कि उन वेडियो को विना किसी कपोल-कल्पना अथवा सान्त्वना के मनुष्य पहन सके, वल्कि इसलिए तोड दिया है कि वह

उन वेड़ियो को ही उतार फेंके और सच्चे जीवित फूल को तोड सके। धर्म की आलोचना मनुष्य के भ्रमो को इसलिए तोड देती है जिससे कि एक ऐसे आदमी के रूप मे वह सोच और कार्य कर सके और अपनी परिस्थितियो का निर्माण कर सके जिसके भ्रम दूर हो चुके है और जिसने वोधत्व प्राप्त कर लिया है। धर्म की आलोचना ऐसा इसलिए करती है जिससे कि मनुष्य स्वय अपनी ओर, इस प्रकार, अपने ही सच्चे सूर्य की परिक्रमा करने लगे। धर्म केवल वह मिथ्या सूर्य है जो मनुष्य के चारो तरफ उस समय तक परिक्रमा करता रहता है जिस समय तक कि वह स्वय अपने चारो तरफ़ परिक्रमा नही करने लगता।

इसलिए, **उस संसार के** मिट जाने के वाद **जो सत्य से परे है,** इतिहास का **कार्य इस ससांर के सत्य की** स्थापना करना हो जाता है। मानवी आत्म-परकीयकरण (self-alienation) के **साधु स्वरूप** का निरावरण हो जाने के वाद, **दर्शन** का—जो इतिहास की सेवा के लिए सदा तत्पर रहता है—तात्कालिक **कार्य** आत्म-परकीयकरण के **अपवित्र स्वरूपों** का निरावरण करना हो जाता है। इस भाँति, स्वर्ग की आलोचना पृथ्वी की आलोचना वन जाती है, **धर्म की आलोचना अधिकार की आलोचना,** और **धर्म-शास्त्र की आलोचना राजनीति की आलोचना।**

नीचे की व्याख्या का—जो कि उक्त कार्य मे एक योगदान है—तात्कालिक सम्बन्ध मूल दर्शन से नही, वल्कि उसकी एक प्रति-लिपि से है, राजसत्ता और अधिकार के जर्मन **दर्शन** से है और इसका एकमात्र कारण यह है कि इसे **जर्मनी** मे लिखा गया है।

अगर कोई जर्मनी की यथास्थिति से ही आरम्भ करना चाहे, और वह भी उसके एकमात्र उचित ढग से, अर्थात्, नकारात्मक ढंग से, तव भी उसका नतीजा **असंगतपूर्ण** ही **निकलेगा। हमारे राजनीतिक** वर्तमान का निपेध तक आधुनिक राष्ट्रो के ऐतिहासिक कबाड़खाने के अन्दर धूल से ढँक गया है। अगर मै पाउडर लगे जूडे का निषेध कर दूं तव भी विना पाउडर का जूडा तो मेरे पास वच ही जायगा। अगर मैं जर्मनी की

१८४३ की हालतो का निषेध कर दूँ तब भी, समय की फ्रान्सीसी गणना के अनुसार, मै १७८९ तक भी नही पहुँचा माना जाऊँगा—वर्तमान के केन्द्र स्थान तक पहुँचने का तो सवाल ही नही उठता।

हाँ, जर्मन इतिहास यह कहकर खुश होता रहता है कि इतिहास के स्वर्ग मे जिस गति से वह गुज़रा है उससे न तो उससे पहले कोई कौम गुज़री थी और न उसके बाद ही गुज़रेगी। हमने आधुनिक राष्ट्रो की पुनर्स्थापनाओ मे तो हिस्सा बँटाया है, लेकिन उनकी क्रान्तियो मे हमने हिस्सा नही लिया। हमारी पुनर्स्थापना हो गयी थी, क्योकि एक तो दूसरे राष्ट्रो ने क्रान्ति करने का साहस दिखाया था और, दूसरे, क्योकि अन्य राष्ट्रो को प्रति-क्रान्ति के कष्टो को झेलना पडा था। पहली बार हमारी पुनर्स्थापना इसलिए हो गयी थी कि हमारे शासक डरते थे, और दूसरी बार इसलिए कि हमारे शासको को उसका डर नही था। अपने गडरियो के नेतृत्व मे रहने के कारण हम कभी आजादी के पास नही पहुँचे सिवा एक बार के—**उस दिन जिस दिन उसे दफ़नाया जा रहा था!**

एक सम्प्रदाय जो आज की नीचता को यह कहकर कानूनी ठहराता है कि कल भी नीचता मौजूद थी, एक सम्प्रदाय जो किसी हंटर के समय द्वारा प्रतिष्ठा-प्राप्त, प्राचीन, ऐतिहासिक होने पर उस हन्टर के प्रहारो के विरुद्ध उठने वाले अर्ध-दास के प्रत्येक क्रन्दन को ,विद्रोही करार दे देता है, एक सम्प्रदाय जिसे इतिहास केवल अपना पिछाडा ही दिखाता है उसी तरह जिस तरह कि इजरायल के ख़ुदा ने अपने सेवक मोज़ेज को दिखाया था—**अधिकार का यह ऐतिहासिक सम्प्रदाय**[२१] जर्मन इतिहास को ज़रूर ढूढ निकालता अगर उसे खुद जर्मन इतिहास ने न खोज निकाला होता! यह शाइलौक है, लेकिन सेवक शाइलौक। यह अपनी ग़ुलामी की, अपनी ऐतिहासिक गुलामी की, अपनी ईसाई-धर्मी जर्मन ग़ुलामी की कसमे खाता है कि जनता के हृदय-प्रदेश से वह मास का अपना एक-एक पौड कटवा लेगा।

इसके विपरीत, सरल-स्वभाव वाले उत्साही लोग, जन्म से जर्मन सौदाई और विचार से वेदीन लोग, आजादी के हमारे इतिहास की तलाश हमारे इतिहास से भी आगे—प्राचीन ट्यूटानी जगलो मे करते है। लेकिन इस इतिहास को अगर केवल जगलो मे ही पाया जा सकता है तो हमारी आजादी के इतिहास तथा सुअर की आजादी के इतिहास के बीच अन्तर क्या है ? इसके अलावा, यह बात सर्व-विदित है कि जंगल के अन्दर जो कुछ आप चिल्लाते है उसी को वह दोहरा देता है। इसलिए वेहतर होगा कि प्राचीन ट्यूटानी जगलो को शान्ति में ही पडा रहने के लिए छोड दिया जाय।

जर्मन हालात के विरुद्ध **युद्ध** ! अवश्य छेड़िए ! ये हालात **इतिहास के स्तर से नीचे** है, वे **किसी भी प्रकार की आलोचना के अयोग्य हैं।** परन्तु फिर भी, उस अपराधी की तरह वे भी आलोचना के पात्र है जो मानवता के स्तर से नीचा होता हुआ भी, **जल्लाद** के लिए एक पात्र होता है। उन हालतो के खिलाफ सघर्ष मे आलोचना करना मस्तिष्क का कोई आक्रोश नही है, वल्कि वह आक्रोश का मस्तिष्क है। वह नश्तर की छुरी नही है, वल्कि एक अस्त्र है। उसका लक्ष्य उसका **शत्रु** है, जिसका वह खण्डन नही करना चाहता, वल्कि जिसे वह **जड़-मूल से मिटा देना** चाहता है—क्योंकि उस हालत की भावना का खण्डन पहले ही हो चुका है। अपने आप मे ऐसी कोई चीज वह नही है **जिसके बारे में सोचा जाय,** वह ऐसी **स्थिति** है जो उतनी ही घृणित है जितनी उससे घृणा की जाती है। इस स्थिति के सम्बन्ध मे अपने तई और कोई स्पष्टीकरण करने की जरूरत आलोचना को नही है, क्योंकि इस काम को उसने पहले ही पूरा कर लिया है। वह अव **स्वयम्** कोई **लक्ष्य** नही रह गयी है, मात्र एक **साधन** रह गयी है। उसका मूल रस **क्रोध** है, उसका मूल **कार्य निन्दा करना।**

सवाल यहाँ पर तमाम सामाजिक क्षेत्रो के एक-दूसरे के ऊपर पड़ने वाले पारस्परिक नीरस दवाव का वर्णन करने का है, एक आम निष्क्रिय वद-

मिजाजी के, एक ऐसी सीमितावस्था के वर्णन करने का है जो, एक सरकारी व्यवस्था के ढाँचे के अन्तर्गत, अपनी असलियत को जितना जानती है उतना ही उसके वारे मे भ्रम भी रखती है। हर तरह की मनहूसियत के ऊपर जिन्दा रहनेवाली यह सरकारी व्यवस्था स्वयम् सरकार के रूप में बैठी हुई मनहूसियत के अलावा और कुछ नही है !

कैसा दृश्य है ! टुच्ची अदावतो, अशान्त अत करणो तथा पाशविक सामान्यावस्था के कारण एक-दूसरे की दुश्मन नाना जातियो मे समाज अनन्त रूप से वँटता चला जा रहा है, और, एक-दूसरे के प्रति उनके सन्दिग्ध तथा अविश्वासी दृष्टिकोण के कारण, इन तमाम जातियो के साथ, विना किसी अपवाद के—यद्यपि भिन्न-भिन्न औपचारिक विधियो से —उनके शासक रियायत में दी गयीं ज़िन्दगियों की तरह वर्ताव करते है और उनसे इस वात की आशा करते है कि अपनी इस स्थिति को स्वयं ईश्वर की कृपा मान कर उन्हे उसका धन्यवाद करना चाहिए कि उन्हे गुलाम बना लिया गया है, उन पर शासन किया जा रहा है, उन पर अधिकार रखा जाता है ! और, दूसरी तरफ, स्वयम् शासक लोग है जिनकी महानता उनकी संख्या के उल्टे अनुपात मे है !

इस तरह की आलोचना हाथा-पाई के रूप मे की जाने वाली आलोचना है। इस लड़ाई मे मतलब की चीज यह नही है कि विरोधी कुलीन, बराबरी का, दिलचस्प विरोधी है, मतलब की चीज सिर्फ यह है कि उस पर प्रहार किया जाय। मतलब की चीज़ यह है कि अपने को धोखा देते रहने तथा पस्त अवस्था मे पडे रहने के लिए जर्मनो को मिनट भर का भी समय न दिया जाय। उनके ऊपर जो वास्तविक दवाव डाला जाता है उसमे दवाव की चेतना को जोडकर उसे और भी भारी वना दिया जाय, उनकी शर्म को उसका प्रचार करके और भी अधिक शर्मनाक वंना दिया जाय। सावित कर दिया जाय कि जर्मन समाज का प्रत्येक अग जर्मन समाज का *partie honteuse* (शर्मनाक अग) है, इन पाषाणवत् निष्प्राण सम्वन्धियो को उन्ही का गीत सुनाकर नचाया जाय। जनता मे

साहस का सचार करने के लिए उसे स्वयम् अपने से डरना सिखलाया जाय। ऐसा करना जर्मन राष्ट्र की एक अत्यावश्यक जरूरत को पूरा करना होगा, और राष्ट्रो की ज़रूरते स्वयम् उनकी पूर्ति का परम औचित्य होती है।

जर्मन यथास्थिति की तुच्छ तृप्तावस्था के विरुद्ध यह संघर्ष आधुनिक राष्ट्रो के लिये भी महत्वहीन नही हो सकता, क्योकि जर्मनी की यथास्थिति प्राचीन शासन की अप्रच्छन्न पूर्ति है और प्राचीन शासन आधुनिक राज्य की प्रच्छन्न हीनता है। जर्मनी के राजनीतिक वर्तमान के विरुद्ध सघर्ष करना आधुनिक राष्ट्रो के अतीत के विरुद्ध संघर्ष करना है—और ये राष्ट्र अतीत की स्मृतियो के बोझ से अब भी बहुत दबे हुए है। प्राचीन शासन को, जो उनके साथ-साथ अपनी ट्रेजिडी से गुजर चुका है, अब एक जर्मन प्रेत की तरह अपनी कमेडी (स्वाग) दिखाते देखना उनके लिए शिक्षाप्रद है। प्राचीन शासन का इतिहास वास्तव मे तब तक दुखदायी (ट्रैजिक) था जब तक कि वह दुनिया की पहले से मौजूद सत्ता बना हुआ था, और, दूसरी ओर, स्वतन्त्रता उसके लिए मात्र एक व्यक्तिगत कल्पना थी। संक्षेप मे, जब तक अपने न्याय-सगत होने मे वह स्वय विश्वास करता था और ऐसा करने के लिए मजबूर था तब तक प्राचीन शासन का इतिहास दुःखपूर्ण ही था। एक मौजूद विश्व-व्यवस्था के रूप मे प्राचीन शासन उस विश्व के विरुद्ध जब तक सघर्ष कर रहा था जो अभी पैदा ही हो रहा था, तब तक उसकी भूल एक ऐतिहासिक भूल थी, वैयक्तिक भूल नही। यही कारण है कि उसका अधःपतन दुःखदायी था।

दूसरी तरफ़, वर्तमान जर्मन शासन है, जो कि एक काल-दूषण है, आमतौर से मानी हुई स्वयम्-सिद्ध बातो का नग्न विरोध है, दुनिया के सामने प्रदर्शित प्राचीन शासन की शून्यता है। उसका निरा ख़्याल है कि उसे स्वयम् अपने मे आस्था है, और वह माँग करता है कि दुनिया भी ऐसा ही ख्याल करे। उसे स्वयम् अपने मूलतत्व मे अगर आस्था होती, तो उस मूलतत्व को क्या वह एक बाहरी मूलतत्व के आवरण मे छिपाने की कोशिश करता और पाखण्ड तथा सोफीवाद की शरण लेता? आधुनिक

प्राचीन शासन उस विश्व-व्यवस्था का महज़ एक **भॉड़** है जिसके सच्चे **नायक** मर चुके है। इतिहास अपना काम पूरे तौर से करता है और किसी पुराने रूप (व्यवस्था) को उसकी क़ब्र की ओर ले जाते समय अनेक अवस्थाओ से गुज़रता है। किसी विश्व-ऐतिहासिक रूप (व्यवस्था) की अतिम अवस्था उसका **स्वांग** (कमेडी) होती है। यूनान के देवताओ को, जो एस्किलस के **बन्दी प्रोमीथियस** (प्रोमीथियस वाउण्ड) मे पहले ही दुखदायी ढग से घायल होकर मर चुके थे, लूशियन के कथोपकथन मे दुबारा हास्यास्पद ढग से मरना पडा था। इतिहास ऐसा रास्ता क्यो अपनाता है?—जिससे कि मानवता अपने अतीत से **खुशी-खुशी** विदा ले ले। जर्मनी के राजनीतिक अधिकारियो के लिए ऐसे ही **सुखमय** ऐतिहासिक भवितव्य की पैरवी हम करते है।

इस बीच, ज्योंही स्वय आधुनिक राजनीतिक-सामाजिक वास्तविकता की आलोचना होने लगती है, ज्योही आलोचना वास्तविक मानवी समस्याओ को पकडने की स्थिति मे पहुँच जाती है, त्योही वह देखती है कि वह जर्मनी की **यथास्थिति** से बाहर पहुँच गयी है। ऐसा न होता तो अपने लक्ष्य को वह अपने लक्ष्य के नीचे पकडने की कोशिश करती। एक उदाहरण लीजिए। आम सम्पदा के ससार के साथ, राजनीतिक संसार के साथ उद्योग-धंधे के सम्बन्ध की समस्या आधुनिक काल की प्रमुख समस्याओ मे से एक है। इस समस्या ने जर्मनो का ध्यान किस रूप मे अपनी ओर आकर्पित करना शुरू किया है? **राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था** के **संरक्षण शुल्कों** के रूप मे, प्रतिपेधात्मक **व्यवस्था** के रूप मे। जर्मनोन्माद मनुष्य से निकल कर भूत (द्रव्य) मे चला गया है। इसीलिए एक दिन सुवह सूती कपडे के हमारे शहन्शाहो और लोहे के नायको ने देखा कि वे अचानक देशभक्त बन गये हैं! इसीलिये जर्मनी के लोग इजारेदारी को बाहरी प्रभुसत्ता सौप कर उसकी प्रभुसत्ता को देश के अन्दर स्वीकार कर रहे है। इस तरह, जर्मनी मे लोग अब उस चीज को शुरू करने जा रहे है जिसे फ्रान्स और इंगलैण्ड मे लोग खत्म करने जा रहे है। जिन पुरानी भ्रष्ट

परिस्थितियों का ये देश सिद्धान्त रूप मे विरोध कर रहे है और जिन्हे वे उसी तरह से धारण किये हुए है जिस तरह आदमी वेड़ियाँ पहने रहता है, —उनका जर्मनी मे एक सुन्दर भविष्य के प्रभात के रूप मे अभिनन्दन किया जा रहा है। इस भविष्य की अभी तक इतनी हिम्मत नही हुई है कि वह मक्कारी-भरे सिद्धान्त के क्षेत्र से कठोर व्यवहार के क्षेत्र मे क़दम रक्खे। फ्रान्स और इगलैण्ड मे जहाँ समस्या : राजनीतिक अर्थशास्त्र अथवा सम्पदा के ऊपर समाज के शासन की स्थापना करने की है वही जर्मनी मे समस्या राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था अथवा राष्ट्रीयता के ऊपर निजी सम्पत्ति का आधिपत्य कायम करने की है। तव फिर, फ्रान्स और इग-लैण्ड मे समस्या उस इजारेदारी का उन्मूलन करने की है जो अपने चरम परिणामो तक पहुँच गयी है; और जर्मनी मे समस्या इजारेदारी को उसके चरम परिणामो तक ले जाने की है। वहाँ पर समस्या समा-धान की है, यहाँ अभी तक वह संघर्ष की है। आधुनिक समस्याओ के जर्मन-स्वरूप का यह उपयुक्त उदाहरण है, यह इस वात का उदाहरण है कि, एक फूहड रगरूट की तरह, हमारे इतिहास को अब भी किस प्रकार उन चीजो को सीखने के लिए अतिरिक्त कवायद करनी है जो इति-हास मे पुरानी और जीर्ण-शीर्ण हो चुकी है।

इसलिए, सम्पूर्ण जर्मन विकास यदि जर्मनी के राजनीतिक विकास से आगे नही गया, तो वर्तमान काल की समस्याओ मे किसी जर्मन निवासी का अधिक से अधिक उतना ही दखल हो सकता है जितना कि किसी रूसी निवासी का है। परन्तु, जब कोई अलग-थलग व्यक्ति राष्ट्र की सीमाओ से नही वँधा होता, तव उस एक व्यक्ति की मुक्ति से सम्पूर्ण राष्ट्र की और भी कम मुक्ति होती है। यूनान के दार्शनिको मे एक स्काइथिया निवासी[२२] भी था—इस वात से यूनानी संस्कृति की ओर एक कदम भी आगे वढने मे स्काइथिया के निवासियो को मदद नही मिली थी।

सौभाग्य से, हम जर्मन स्काइथिया-वासी नही है

प्राचीन कौमे अपने प्रागैतिहास-काल से जिस तरह कल्पना ही कल्पना मे, पौराणिक कथाओं के रूप मे गुज़री थी, उसी तरह हम जर्मनों ने अपने आगामी-इतिहास को चिन्तन की दुनिया मे, दर्शन के क्षेत्र में तय कर लिया है। उसके ऐतिहासिक समकालीन हुए विना ही वर्तमान काल के हम दार्शनिक समकालीन है। जर्मन दर्शन जर्मन इतिहास का भाव-वादी विस्तार है। इसलिए, अपने वास्तविक इतिहास के अधूरे कामों *(aeuvres incompletes)* के स्थान पर, अगर हम अपने भाववादी इतिहास के वाद के कामों *(aeuvres posthumes)* की आलोचना करते है, तो दर्शन, जो हमारी आलोचना है, जिन प्रश्नों से उलझा हुआ है वे भी वही है जिनके वारे मे वर्तमान काल कहता है: वही असली प्रश्न है। प्रगतिशील राष्ट्रो मे जिस चीज़ का अर्थ राज्य की आधुनिक परिस्थितियो के साथ व्यावहारिक रूप से सम्वन्ध-विच्छेद करना होता है, उसी का अर्थ जर्मनी मे——जहाँ वे परिस्थितियाँ अभी तक अस्तित्व मे ही नही आयी है—परिस्थितियो के दार्शनिक प्रतिविम्व के साथ सर्वप्रथम आलोचनात्मक सम्वन्ध-विच्छेद करना होता है।

अधिकार तथा राज्य का जर्मन दर्शन ही जर्मन इतिहास की एक-मात्र ऐसी चीज है जो सरकारी तौर से मान्यता-प्राप्त आधुनिक वर्त-मान के स्तर तक *(al pari)* पहुँचती है। इसलिए आवश्यक है कि जर्मन राष्ट्र अपने इस स्वप्निल इतिहास का अपनी वर्तमान परिस्थितियो के साथ सम्बन्ध स्थापित करे और न केवल इन मौजूदा परिस्थितियो की, वल्कि, साथ ही साथ, उनके हवाई विस्तार की भी आलोचना करे। उसके भविष्य को न तो राज्य तथा अधिकार की उसकी वास्तविक परिस्थितियों के तात्कालिक निषेध तक सीमित किया जा सकता है और न उसके राज्य तथा अधिकार की भाववादी परिस्थितियो को तुरन्त व्यावहारिक रूप देने के काम तक, क्योकि उसकी भाववादी परिस्थितियो मे उसकी वास्तविक परिस्थितियो का तात्कालिक निषेध निहित है, और पड़ोसी राष्ट्रों के चिन्तन मे वह अपनी भाववादी परिस्थितियों की

तात्कालिक अभिपूर्ति की अवस्था से एक तरह से आगे निकल गया है। इसलिए, जर्मनी की व्यावहारिक काम मे जुटी हुई राजनीतिक पार्टी अगर माँग करती है कि दर्शन का निषेध किया जाए तो ऐसा वह सकारण ही करती है। उसकी गलती इस बात मे नही है कि वह इस चीज की माँग करती है, बल्कि इस बात मे है कि वह इसी माँग पर रुक जाती है। इस माँग की न तो वह गम्भीरता से अभिपूर्ति करती है और न उसकी अभिपूर्ति कर ही सकती है। उसका विश्वास है कि दर्शन की ओर पीठ फेर कर और उसकी तरफ से मुँह मोड़ कर और उसके सम्बन्ध मे कुछ सडी-पुरानी तथा क्रोध-भरी बातें बुदबुदा कर उक्त निषेध के कार्य को वह पूरा कर रही है! अपने दृष्टिकोण की सीमितता के कारण जर्मन वास्तविकता की परिधि मे वह दर्शन को शामिल नहीं करती, अथवा वह सोचती है कि जर्मन अमल तथा उसके सहायक सिद्धान्तों के स्तर से दर्शन नीचा है। आप माँग तो इस बात की करते है कि शुरुआत वास्तविक जीवन के बीजों से की जाय, परन्तु आप भूल जाते हैं कि जर्मन राष्ट्र के वास्तविक जीवन का बीज अभी तक सिर्फ उसकी खोपड़ी के अन्दर ही बढता रहा है। एक शब्द मे — दर्शन को एक वास्तविकता बनाये बिना आप उसका उन्मूलन नहीं कर सकते!

यही गलती दर्शन से पैदा होनेवाली सैद्धान्तिक पार्टी ने की थी— उसमे केवल उसके कारको का क्रम उलटा हो गया था।

वर्तमान सघर्ष मे उसने जर्मन ससार के विरुद्ध दर्शन के केवल आलोचनात्मक संघर्ष को ही देखा था; उसने इस बात पर विचार नही किया था कि वर्तमान काल तक का दर्शन स्वयम् ससार का एक अश है और उसी की परिपूर्ति है—यद्यपि वह उसकी भाववादी प्रतिपूर्ति है। अपने जोडीदार (प्रतिरूप-अनु०) के प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण रखते हुए भी स्वयम् अपने प्रति उसका दृष्टिकोण आलोचनात्मक नही था। दर्शन के पूर्वावयवो (*premises*) से श्रीगणेश करके या तो दर्शन द्वारा प्रस्तुत किये गये परिणामो पर ही वह रुक

गयी, या फिर उसने कही और की मॉगो और निष्कर्षो को दर्शन की तात्कालिक माँगो तथा निष्कर्षो के रूप मे पेश कर दिया। वास्तव मे, इन माँगों तथा निष्कर्षो को, बशर्ते कि वे सही हो, **वर्तमान काल तक के दर्शन का,** स्वयम् दर्शन का ही, निषेध करके ही प्राप्त किया जा सकता है। इस विषय के सम्बन्ध मे और विस्तार से विचार करने के अपने अधिकार को हम सुरक्षित रखते है। उसकी बुनियादी कमजोरी को निम्न शब्दो मे व्यक्त किया जा सकता है : **उसने सोचा था कि दर्शन को एक वास्तविकता बनाये विना ही वह उसका उन्मूलन कर सकती है।**

राजसत्ता और अधिकार के जर्मन दर्शन की आलोचना का सब से सुसगत, सबसे समृद्धशाली तथा अन्तिम विकास हीगेल के हाथो मे हुआ था। इस आलोचना मे आधुनिक राज्य तथा उससे सम्बन्धित वास्तविकता का आलोचनात्मक विश्लेषण भी है, और जिस तरह से **राजनीति तथा अधिकार के क्षेत्र में जर्मन-चेतना** को अब तक कार्यान्वित किया गया है उस पूरे **ढंग का** दृढता के साथ किया गया निषेध भी। इस चेतना का सबसे प्रतिष्ठित, सबसे अधिक सार्वभौमिक रूप, जिसे **विज्ञान** के स्तर तक पहुँचा दिया गया है, **अधिकार का परिकल्पी** *(speculative)* **दर्शन** स्वयम् है। यदि यह सही है कि अधिकार का परिकल्पी दर्शन, अर्थात् आधुनिक राज्य के सम्बन्ध मे — जिसकी वास्तविकता दूसरे लोक की, चाहे वह लोक राइन के उस पार ही हो, वस्तु बनी रहती है—वह हवाई अतिशयोक्तिपूर्ण **चिन्तन** यदि केवल जर्मनी मे ही सम्भव था, तो इसका उलटा, यानी यह भी सही है कि आधुनिक राज्य का **जर्मन** चिन्तन-बिम्ब, **जो वास्तविक आदमी** को भी हवाई (अमूर्त—अनु०) बना देता है, केवल इसीलिए सम्भव हो सका है कि आधुनिक राज्य स्वयम् **वास्तविक आदमी** को हवाई बना देता है, अथवा पूरे मनुष्य को मात्र कल्पना-लोक मे ही सतोष प्रदान करता है। राजनीति मे जर्मन जिस चीज को **सोचते थे** दूसरे राष्ट्र उसे अमल मे **पूरा कर रहे थे।** जर्मनी उनका **सैद्धान्तिक अन्तःकरण** था। उसके

को ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। दरअसल प्रतियोगिता ने उसके व्यापार को वाजार से मार भगाया है – इसलिए उसकी साख को फिर से जमाने के लिए दुनिया के मामलो मे चतुर हमारा दार्शनिक एकमात्र जो काम कर सकता है वह यह है कि पुराने धर्म को खूव अच्छी तरह से कोस लेने के वाद वह एक नये धर्म का आविष्कार कर दे। परन्तु, इसके प्रथम भाग को देखने से लगता है कि इस नये धर्म मे भी केवल उन्हीं पुरानी कहावतो के सग्रह का सिलसिला है; इसमे भी केवल वशावलियो के रजिस्टरो से उडायी गयी पद्यात्मक पक्तियाँ तथा जर्मन निम्न-पूंजीवादी संस्कृति की स्मृति मे लिखी गयी कविताएँ है। इस नये कुरान[32] के अध्यायो मे वस केवल ऐसे मुहावरो का ढेर लगा हुआ है जो जर्मनी की मौजूदा परिस्थितियो पर नैतिक मुलम्मा चढाने की कोशिश करते है तथा उन्हे काव्यात्मक ढग से रग-चुनकर पेश करते है। इन मुहावरो मे से उनसे लिपटे धार्मिक रूप को यद्यपि निकाल दिया गया है, तव भी वास्तव मे वे पुराने धर्म के ही अर्क और जुज़ है।

"विश्व मे पूर्णतया नयी परिस्थितियो तथा नये विश्व-सम्वन्धो का जन्म केवल नये धर्मों के माध्यम से ही हो सकता है। धर्म क्या कर सकते है इसका उदाहरण तथा प्रमाण हमे ईसाई धर्म तथा इस्लामी मज़हव मे मिलता है। और, निरपेक्ष, निखालिस राजनीति कितनी नि.शक्त और वेकार है इसका अत्यन्त ज्वलन्त तथा वुद्धि-सगत प्रमाण हमे उन आन्दोलनो मे देखने को मिलता है जो वर्ष १८४८ मे शुरू किये गये थे।" (खण्ड १, पृष्ठ ३१३)

घोर ज्ञान से परिपूर्ण यह स्थापना जर्मन "विचारक" के ठसपन तथा अज्ञान को तुरन्त सामने लाकर रख देती है। जर्मनी की, और खासतौर से ववेरिया की "मार्च की" छोटी-मोटी "उपलब्धियो" को वह १८४८ और १८४६ का योरोपीय आन्दोलन मान वैठता है और माग करता है उस वृहत् क्रान्ति के, जो धीरे-धीरे विकसित हो रही है और पक रही है, इन प्रथम, अपने आप मे अत्यन्त सतही विस्फोटो को

"पूर्णतया नयी परिस्थितियो तथा विश्व सम्बन्धो" को फौरन पैदा कर देना चाहिए !

दुनियादारी मे अत्यन्त चतुर दोमेर इस सम्पूर्ण जटिल सामाजिक संघर्ष को, जिसकी प्रथम टक्करे पिछले दो वर्षों में पेरिस से डेब्रेसेन तक तथा बर्लिन से पालेर्मो तक देखने को मिली है, केवल यह कहकर डिसमिस कर देता है कि जनवरी १८४९ मे, "अरलागेन की विधान-सम्बन्धी सोसायटियों की आशाओ को असीमित काल तक के लिए स्थगित कर दिया गया था।" (खण्ड १, पृष्ठ ३१२) इसके साथ-साथ वह एक नये सघर्ष का भी हौवा दिखलाता हे — उस संघर्ष का जो हाफ़िज, मुहम्मद तथा वर्योल्ड आउरबाख के अध्ययन-अनुशीलन मे लगे हुए मिस्टर दोमेर के लिए फिर अत्यन्त अरुचिकर सिद्ध हो सकता है !

उसी लज्जाहीन छिछलेपन के सहारे मिस्टर दोमेर इस बात को एकदम भूल जाते हैं कि ईसाई धर्म के उदय से पहले उन प्राचीन "विश्व-परिस्थितियो" का पूर्णतया अवसान हो गया था जिनकी ईसाई धर्म मात्र एक अभिव्यक्ति था; वे इस बात को भूल जाते हैं कि "पूर्णतया नयी विश्व परिस्थितियो" का उदय ईसाई धर्म के अन्दर से नही हुआ था, वल्कि केवल तभी हो सका था जब हूणो और जर्मनो ने "रोमन साम्राज्य की लाश पर बाहर से हमला कर दिया था"; वे इस बात को भूल जाते है कि जर्मन आक्रमण के बाद नयी विश्व-परिस्थितियों ने अपने को ईसाई धर्म के अनुकूल नही ढाला था, बल्कि स्वयम् ईसाई धर्म इन विश्व-परिस्थितियो की प्रत्येक नयी अवस्था के साथ-साथ बदलता गया था। हम चाहेंगे कि मिस्टर दोमेर एक भी कोई ऐसा उदाहरण हमे बताये जिससे यह मालूम हो कि बिना किसी अत्यन्त ज़बर्दस्त "बाहरी तथा निरपेक्ष राजनीतिक" उथल-पुथल के ही पुरानी दुनिया की परिस्थितियाँ केवल किसी नये धर्म की वजह से बदल गयी है !

स्पष्ट है कि सामाजिक परिस्थितियों की प्रत्येक महान् ऐतिहासिक

उथल-पुथल के साथ-साथ मनुष्य के दृष्टिकोणो तथा विचारो मे भी, और इसलिए उनके धार्मिक विचारो मे भी, क्रान्तिकारी परिवर्तन पैदा हो जाता है। वर्तमान उथल-पुथल तथा पहले की तमाम उथल-पुथलों मे यही फर्क है कि इस ऐतिहासिक उथल-पुथल के रहस्य को मनुष्य अव जान गया है। इसीलिए, इस व्यावहारिक "वाहरी" प्रक्रिया को एक नये धर्म के आह्लादमय रूप मे पुन. प्रतिष्ठित कर देने के वजाय, अव वह अपने को तमाम धर्मों से ही मुक्त कर लेता है।

दुनिया के इस नये ज्ञान की सौम्य नैतिक सीखे नीग्गे की सीखों से भी अधिक श्रेष्ठ है, क्योकि इनमे न केवल वह सव बताया गया है जो मानवो के साथ साहचर्य के लिए आवश्यक होता है बल्कि वह सव भी वता दिया गया है जो पशुओं के साथ साहचर्य के लिए जरूरी होता है। सोलोमन की कहावतो के वाद नये सोलोमन का गीत आता है!

"मानवीयता तथा मानव के विपरीत, प्रकृति तथा स्त्री वास्तव मे दिव्य है .... प्रकृति के लिए मानवीयता का वलिदान, पुरुष का स्त्री के लिए वलिदान, — यही सच्ची, एकमात्र असली सेवा तथा आत्मवलि है; सर्वोच्च ही नही, अपितु यह एकमात्र गुण तथा धर्म है।" (खण्ड २, पृष्ठ २५७)

यहाँ हम देखते है कि धर्म के एक फर्जी सस्थापक का छिछलापन और अज्ञान किस प्रकार साफ-साफ कायरता का रूप ले लेता है। उनके ऊपर जो ऐतिहासिक विपत्ति मडरा रही है उससे भागकर मिस्टर दोमेर तथाकथित प्रकृति की, अर्थात् एक ग्रामीण लघु काव्य की गोद मे शरण ले लेते है और स्वयम् अपनी पौरुपहीन पराजय पर पर्दा डालने के लिए स्त्री-पूजा के धर्म का उपदेश देने लगते है।

यहाँ पर यह भी कह दिया जाय कि मिस्टर दोमेर की प्रकृति-पूजा की भावना भी खास ही प्रकार की है। वे ईसाई धर्म से भी अधिक प्रतिक्रियावादी वनने मे सफल हो गये है। ईसाई धर्म से पहले के पुराने प्राकृतिक धर्म की वह एक आधुनिक रूप मे स्थापना करने की चेष्टा करते

हैं। फलस्वरूप, उनके पल्ले प्रकृति के सम्बन्ध मे ईसाई धर्मी जर्मन-पितृसत्तात्मक वकवास के अलावा और कुछ नही पड़ता। इस वकवास का एक उदाहरण निम्न है :

प्रकृति पुनीत, ओ मधुर मा !
मुझे भी अपने चरण-चिन्हों की राह दिखा !
मेरे नन्हें-नन्हे हाथों को अपने हाथों में ले,
सहारा देकर मुझे भी वैतरणी पार करा !!

"इस तरह की चीज़ें अव फैशनेवुल नही रह गयी; लेकिन इससे संस्कृति, प्रगति अथवा मानवी आनन्द का फायदा नही हुआ।" (खण्ड २, पृष्ठ १५७)

हम देखते है कि प्रकृति की यह पूजा एक छोटे प्रान्तीय कस्वे के एक ऐसे निवासी के इतवार के दिन टहलने जाने की वात तक ही सीमित है जो यह जानकर वच्चो की तरह आश्चर्यचकित रह जाता है कि सेने के लिए अपने अण्डे कोयल एक दूसरी चिडिया के घोसले मे रख देती है (खण्ड २, पृष्ठ ४०), अथवा आँसुओ की रचना इसलिए की गयी है जिससे कि आँखो के तल को गीला बनाये रखा जा सके (खण्ड २, पृष्ठ ७३), आदि, और जो अपने वच्चो को जव क्लोपस्टॉक की रचना, बसंत का गीत सुनाता है तो पूजात्मक भाव से खुद काँपने लगता है (खण्ड २, पृष्ठ २३)। इस सवमे, उन आधुनिक विज्ञानो के लिए कोई जगह नही है जिन्होंने, आधुनिक उद्योग-धन्धो के साथ-साथ, पूरी प्रगति मे ही क्रान्ति पैदा कर दी है तथा प्रकृति के प्रति मनुष्य के वचकाने दृष्टिकोण का तथा उसके वचकानेपन के अन्य रूपो का अन्त कर दिया है। इसके वजाय हमे घूँटियाँ दी जाती है नोस्ट्राडेमस की रहस्यपूर्ण भविष्यवाणियो की, स्काटलैण्ड के निवासियो की द्वितीय दृष्टि तथा पशु-चुम्वक शक्ति की ! वाकी तो यही अच्छा होगा कि ववेरिया की निर्जीव किसान अर्थ-व्यवस्था को, यानी उस जमीन को आखिरकार आधुनिक खेती के साधनों

तथा आधुनिक मशीनो से जोत डाला जाय जो पादरियों तथा दोमेरो दोनों को पैदा करती है !

नारी की उपासना के सम्बन्ध मे भी वही स्थिति है जो प्रकृति की पूजा के सम्बन्ध मे है। मिस्टर दोमेर स्त्रियो की वर्तमान सामाजिक स्थिति के सम्बन्ध मे एक शब्द भी नही कहते। इसके विपरीत, वे केवल एक निरपेक्ष नारी की वात करते हैं। स्त्रियाँ जो सामाजिक कष्ट सहती है उसके सम्बन्ध मे सान्त्वना देने के लिए वे उन्हे शब्दो में पूजा का एक पात्र बना देने की चेष्टा करते है। यह पूजा जितनी रहस्यपूर्ण बनने की चेष्टा करती है उतनी ही खोखली है। शादी के वाद उनकी प्रतिभा खत्म हो जाती है क्योकि उन्हे बच्चो की देखभाल करनी पड़ती है (खण्ड २, पृष्ठ २३७) — इस सम्बन्ध मे यह कहकर वे उन्हे सान्त्वना देते है कि ६० वर्ष की अवस्था तक बच्चो को वे दूध पिलाती रह सकती है (खण्ड २, पृष्ठ २४४), आदि, आदि। इसे मिस्टर दोमेर "स्त्री के लिए पुरुष का त्याग" कहते है। स्वयम् अपने देश मे पुरुष का बलिदान कराने के लिए आवश्यक आदर्श स्त्री पात्रो की तलाश मे उन्हे मजबूरन पिछली शताब्दी की भिन्न-भिन्न कुलीन महिलाओ का दामन पकड़ना पड़ता है। इस तरह, उनकी स्त्री-पूजा अपनी सम्मानित आश्रयदात्रियो के प्रति एक विद्वान मनुष्य के विषादपूर्ण दृष्टिकोण की तरह की एक चीज़ बन जाती है। (देखिए, विल्हेल्म मेइस्टर)[३४]

मिस्टर दोमेर जिस "सस्कृति" के क्षय पर आसू बहा रहे है वह उस समय की सस्कृति है जिसमे नूरेम्बर्ग एक स्वतन्त्र साम्राज्य की एक स्वतन्त्र राजधानी के रूप मे फल-फूल रहा था। उसमे नूरेम्बर्ग के उद्योग की एक महत्वपूर्ण भूमिका थी —उस उद्योग की जिसका कला और दस्तकारी के सम्मिश्रण से निर्माण हुआ था। वास्तव मे, जिस सस्कृति का वे रोना रो रहे है वह जर्मन निम्न-पूंजीवादी सस्कृति थी जो निम्न-पूंजीपति वर्ग के साथ नष्ट होती जा रही है। पुराने सामन्ती, शूर-वीरों जैसे वर्गो के पतन ने कला की अत्यन्त शानदार दुखान्त कृतियों को जन्म दिया

था, लेकिन यह असंस्कृत पूंजीपति वर्ग हठधर्मी से भरा ईर्षापूर्ण निर्जीव अभिव्यञ्जनाओं तथा सैन्कोपान्ज़ा के किस्म की कहावतों और ज्ञान के नियमों के एक संग्रह के अलावा और कुछ नही पैदा कर सका है। मिस्टर दोमेर हान्सशाख का ही एक रुक्ष, सर्वथा हास्य-विहीन रूप है। जर्मन दर्शन अपने हाथ मल रहा है और अपने प्रतिपोषक पिता, जर्मनी के असस्कृत पूंजीपति वर्ग की मृत्यु-शय्या पर बैठा हुआ शोक से छाती पीट रहा है — नये युग के धर्म मे हमे यही करुण चित्र देखने को मिलता है।

फ्रेडरिक एंगेल्स

जर्मनी में किसान-युद्ध

(अध्याय २)

विकेन्द्रीकरण, स्थानीय तथा प्रान्तीय स्वाधीनता, औद्योगिक तथा व्यापारिक रूप से प्रान्तो की पारस्परिक पृथकता, तथा आवागमन के साधनो की न्यूनता की वजह से उस समय की बहुसंख्यक तथा बहुरंगी जागीरों को मिलाकर अपेक्षाकृत बडे राज्यो का रूप दे सकना प्रायः असम्भव हो गया था। मिलकर बडे राज्यो का रूप लेने की उनकी क्रिया का विकास धर्म-सुधार आन्दोलन के समय क्रान्तिकारी राजनीतिक—धार्मिक विचारो के आम प्रसार के साथ ही फिर हो सका था। कुछ जागीरो ने तो इन विचारों को स्वीकार कर लिया था और कुछ उनका विरोध कर रही थी; इनकी वजह से मोटे तौर से और काफी दुखदायी ढग से राष्ट्र तीन बडे शिविरो मे बँट गया था। एक प्रतिक्रियावादियों का अथवा कैथोलिक शिविर था, दूसरा लूथरवादी पूंजीवादी सुधारवादियो का शिविर, और तीसरा क्रान्तिकारियो का शिविर। और राष्ट्र के इस महान् विभाजन मे यदि हमे कोई तर्क न दिखलाई देता हो और लगता हो कि पहले दो शिविरों मे प्रायः एक ही जैसे तत्व है, तो इसका कारण यह था कि मध्य युगो से चली आने वाली अधिकाश सरकारी जागीरें

विघटित हो गयी थी तथा राष्ट्र का विकेन्द्रीकरण हो गया था। इस वजह से विकेन्द्रीकरण ने इस समय, उन जागीरो के अन्दर भिन्न-भिन्न इलाकों मे परस्पर-विरोधी प्रवृत्तियाँ पैदा कर दी थी। हाल के वर्षों में इसी तरह की चीज़े इतनी बार जर्मनी मे देखने को मिली है कि १६वी शताब्दी की कही अधिक जटिल परिस्थितियो मे दिखलायी देने वाले जागीरो और वर्गों के इस घोटाले से हमे कोई विशेष आश्चर्य नही होता।

हाल के तमाम अनुभवो के बावजूद, जर्मन विचार-दर्शन को उन संघर्षों के अन्दर, जिन्होने मध्य युगो की अन्त्येष्टि क्रिया कर दी थी, धर्म-दर्शन सम्बन्धी एक तीव्र कलह के अलावा अभी तक और कुछ नही दिखलाई देता। घर के गढे हमारे इतिहासकार तथा सन्तगण फरमाते है कि उस समय के लोगो ने यदि केवल स्वर्ग सम्बन्धी चीज़ों के विषय मे आपस में कोई समझदारी पैदा कर ली होती तो पृथ्वी से सम्बन्धित मामलों को लेकर लडने का कही कोई आधार ही न रह जाता। ये विचार-वेत्ता इतने भोले-भाले है कि एक युग अपने बारे मे जिन भ्रमो की सृष्टि करता है, अथवा उस युग के सिद्धान्तकार उसके विषय मे जो भ्रम फैलाते है उन सबको, बिना रत्ती भर भी शको-शुबहा किये, वे सही मान लेते है। उदाहरण के लिए, १७८९ की क्रान्ति मे इस तरह के लोगो को इस थोड़ी-बहुत गर्म बहस के अलावा और कुछ नही दिखलाई देता कि निरकुशशाही की अपेक्षा, वैधानिक राजतन्त्र मे क्या फायदे होते है; जुलाई क्रान्ति मे उस असली बहस के सिवा उन्हे और कुछ नही दिखलाई देता है कि "ईश्वर की कृपा से प्राप्त" अधिकार की बात अब नही चल सकती, और फ़रवरी की क्रान्ति मे उन्हे सिर्फ इस प्रश्न को तै करने का प्रयत्न दिखलाई देता है कि प्रजातन्त्र अच्छा है अथवा राजतन्त्र ?, इत्यादि। उन्हे आज दिन तक भी उन वर्ग-संघर्षो का कोई ज्ञान नही है जो उन उथल-पुथलो के माध्यम से लडे गये थे। और न वे यही समझते है कि यद्यपि इन विप्लवी परिवर्तनो की चेतावनी न केवल बाहर से आनेवाली आवाजो के जरिए अच्छी तरह सुनायी दे जाती है, बल्कि देश के हजारो सर्वहारा लोगो के

गर्जन-तर्जन मे भी स्पष्ट सुनाई देती है, किन्तु झण्डे के ऊपर उनका जो राजनीतिक नारा अकित होता है वह उनकी मात्र एक हल्की-सी ही अभिव्यजना कर पाता है।

सोलहवी शताब्दी के तथाकथित धार्मिक युद्धो की तह में भी मुख्यतया निश्चित भौतिक वर्ग स्वार्थ ही रहते थे। इगलैण्ड और फ्रान्स के बाद के आतरिक सघर्षों की ही तरह वे भी वर्ग-युद्ध थे। उस ज़माने के वर्ग-सघर्ष यद्यपि धार्मिक फरहरो के नीचे लडे जाते थे, और विभिन्न वर्गों के स्वार्थ, उनकी ज़रूरते तथा उनकी माँगे यद्यपि एक धार्मिक आवरण के ही अन्दर छिपी रहती थी, किन्तु इससे उनकी असली स्थिति मे कोई अन्तर नही पडता था। तत्कालीन परिस्थितियों के आधार पर इस चीज़ को आसानी से समझा जा सकता है।

मध्य युगो का विकास सर्वथा अपरिष्कृत स्थिति से हुआ था। हर चीज का नये सिरे मे श्रीगणेश करने के लिए पुरानी सभ्यता, पुराने दर्शन, पुरानी राजनीति तथा विधि-शास्त्र को उन्होंने बिलकुल साफ कर दिया था। पुरानी ध्वस्त दुनिया मे से जिस एकमात्र चीज को उन्होने बना रहने दिया था वह था ईसाई धर्म। इसके अलावा बस कुछ अर्द्ध-ध्वस्त ऐसे नगर बच गये थे जिनकी सारी सभ्यता नष्ट कर दी गयी थी। फलस्वरूप, जैसा कि विकास की प्रत्येक आदिम अवस्था मे होता आया है, पादरियो के वर्ग को बौद्धिक शिक्षा की इजारेदारी प्राप्त हो गयी, और शिक्षा स्वयम् मूलत· धार्मिक शिक्षा बन गयी। पादरियों के हाथ में, अन्य तमाम विज्ञानो की ही तरह, राजनीति तथा विधि-शास्त्र भी धर्म-दर्शन की ही मात्र शाखाएँ बने रहे। उन पर भी धर्म-दर्शन के प्रचलित सिद्धान्तो के आधार पर ही अमल किया जाता रहा। गिरजे [ईसाई धर्म-संघ] के अन्धमतों को राजनीति के भी स्वयम्-सिद्ध सत्यो के रूप मे माना जाता था, और अदालतों मे बाइबिल (इंजील) के उदाहरणो का वही मान था जो क़ानून का था। विधि-शास्त्रियो के एक विशेष वर्ग का विकास हो रहा था, किन्तु विधि-शास्त्र बहुत दिनों

तक धर्म-शास्त्र के ही मातहत बना रहा। बौद्धिक क्रिया-कलापों के सम्पूर्ण क्षेत्र में धर्म-शास्त्र का यह प्रभुत्व उस स्थान का अनिवार्य परिणाम था जो उस समय गिरजे (ईसाई धर्म-संघ) को प्राप्त था। तत्कालीन सामन्ती आधिपत्य का वह सबसे आम संक्षेपित रूप था तथा वही उसके शासन का अनुमोदक-समर्थक था।

स्पष्ट है कि ऐसी हालत में, सामन्तवाद के विरुद्ध आम तौर से जितने भी हमले किये जाते थे वे मुख्यतया गिरजे (ईसाई धर्म-संघ) पर ही हमले होते थे; तथा सामाजिक और राजनीतिक, जितने भी क्रान्तिकारी सिद्धान्त सामने आते थे वे अनिवार्य रूप से और मुख्यतया धर्म-विरोधी भी होते थे। इसलिए मौजूदा सामाजिक परिस्थितियों पर हमला करने से पहले आवश्यक था कि उनके ऊपर से पवित्रता के उनके आवरण को फाड़ कर फेंक दिया जाए।

सामन्तवाद के ख़िलाफ़ क्रान्तिकारी विरोध का क्रम मध्ययुगों के पूरे काल में चला था। समय की परिस्थितियों के अनुसार, कभी उसने रहस्यवाद का रूप ग्रहण किया था, कभी खुले धर्म-विरोध का, और कभी सशस्त्र विद्रोह का। जहाँ तक रहस्यवाद का सम्बन्ध है, यह सुविदित है कि १६वीं शताब्दी के सुधारकों ने उसका कितना अधिक सहारा लिया था। मुंज़र स्वयम् उसका अत्यधिक ऋणी था। धर्म-विरोधी ये बातें आंशिक रूप से आल्प्स के पितृसत्तात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत रहने वाले गड़रियों की उस सामन्तवाद-विरोधी प्रतिक्रिया को व्यक्त करती थीं जो सामन्ती धावे की वजह से उनके अन्दर हो रही थी (वाल्डेनसेज़)[३५]; आंशिक रूप में सामन्तवाद के प्रति उन कस्बों के विरोध को वे प्रकट करती थीं जो विकसित होकर उसकी सीमा से बाहर निकल गये थे (एलबीजेन्सेज़[३६], ब्रेस्किया के अर्नोल्ड, आदि); और आंशिक रूप में किसानों के प्रत्यक्ष विद्रोहों (जॉन बॉल, पिकार्डी का हंगेरियाई शिक्षक,[३७] आदि) का वे प्रतिनिधित्व करती थीं। वाल्डेनसेज़ की पितृसत्तात्मक व्यवस्था की धर्म-विरोधी बातों तथा

स्विट्जरलैण्ड के विद्रोह को यहाँ हम छोड़ दे सकते है, क्योकि रूप तथा तत्व दोनों मे उनके ज़रिए इतिहास के ज्वार को रोकने की प्रतिक्रियावादी, निरी स्थानीय कोशिश की जा रही थी। मध्य युग के धर्म-द्रोह के अन्य स्वरूपों में, वारहवी शताब्दी में ही हमे उन जवर्दस्त संघर्षो के अग्रिम रूपो के दर्शन हो जाते है जो शहरी नागरिको (वर्गरों) के तथा किसानो और साधारण प्रजा के वीच आगे चलकर हुए थे। वास्तव मे, किसान-युद्ध की असफलता का कारण भी यही वने थे। ये सघर्ष वाद को पूरे मध्य युग मे नज़र आते है।

इस शहरी धर्म-द्रोह की—और वास्तव मे मध्य युगो का यही सार्वजनिक धर्म-द्रोह था—लडाई मुख्यतया पादरी वर्ग से थी। पादरियो की धन-दौलत तथा उनके राजनीतिक महत्व पर वह प्रहार करता था। आज का पूँजीपति वर्ग जिस तरह एक सस्ती सरकार ("gouvernement a bon marche") की माँग करता है, उसी तरह मध्ययुगीन वर्गर (शहरी लोग) मुख्यतया एक सस्ते गिरजे (चर्च) की ("eglise a bon marche") मॉग करते थे। प्रत्येक उस धर्म-विरोधी आन्दोलन की तरह जिसे गिरजे (ईसाई धर्म-सघ) तथा उसके अन्धमतों के आगे विकास मे केवल पतन ही दिखलाई देता है, वर्गरो (शहरी नागरिको) के उस धर्म-द्रोह का भी रूप प्रतिक्रियावादी था; उसकी माँग थी कि आरम्भिक काल के सीधे-सादे ईसाई गिरजे के विधान की फिर से स्थापना कर दी जाय तथा पादरियो के अलग खास वर्ग का अन्त कर दिया जाय। इस सस्ती व्यवस्था से मठो, लाट पादरियों तथा रोम के दरवार के ठाट-वाट का, अर्थात्, गिरजे की उस हर चीज का अन्त हो जाता जो खर्चीली है। कस्वो ने, जो स्वयम् स्थानीय प्रजातन्त्र थे—यद्यपि वे राजाओ के संरक्षण मे रहने वाले प्रजातन्त्र थे—पोपवाद के विरुद्ध अपने इन हमलो के जरिए इस वात की सवसे पहले, आम शव्दो मे, घोपणा की थी कि प्रजातन्त्र ही पूँजीवादी शासन का सही स्वरूप है। अनेक अन्धमतो तथा गिरजे के नियमो के प्रति उनका जो विरोध भाव था उसे आशिक रूप से तो उन वातो से

समझा जा सकता है जिनका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है और आंशिक रूप से उसे उन परिस्थितियों के आधार पर समझा जा सकता है जिनमे वे रहते थे। उदाहरण के लिए, ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में उनका जो कटु विरोध था उसे बोक्कैशियो से अधिक अच्छी तरह कभी किसी ने नहीं व्यक्त किया है। इटली और जर्मनी मे इस प्रवृत्ति का मुख्य प्रतिनिधि था ब्रेस्किया का अर्नोल्ड, दक्षिण फ्रान्स में उसके प्रतिनिधि एल्बी-जेन्सेज़ थे, इंगलैण्ड में जॉन वाइक्लिफ, और बोहेमिया मे हुस तथा कैलिक्सटीनवादी[३८]। कस्बों की सत्ता को हर जगह स्वीकार कर लिया जा चुका था। उनमे लौकिक सामन्तवाद से लडने की पर्याप्त क्षमता आ गयी थी। अपने विशेष अधिकारों का उपयोग करते हुए उसके खिलाफ वे सशस्त्र शक्ति से भी लड़ सकते थे और स्थानीय असेम्बलियो मे भी उससे मोर्चा ले सकते थे। इससे यह बात बहुत आसानी से साफ हो जाती है कि सामन्तवाद का विरोध पादरियों के सामन्तवाद के विरोध के ही रूप मे क्यों सामने आया था।

दक्षिण फ्रान्स तथा इंगलैण्ड और बोहेमिया में हम देखते हैं कि पादरियो के विरुद्ध कस्बों के संघर्ष मे तथा उनकी धर्म-विरोधी कार्य-वाहियो मे अभिजात वर्ग के अधिकांश छोटे लोग (छोटे सामन्त—अनु०) भी शामिल हो गये थे। इस चीज का कारण यह था कि कुलीन वर्ग के ये छोटे-छोटे लोग (ये छोटे सामन्त) कस्बो पर निर्भर करने ल थे और वे देखते थे कि राजाओं तथा लाट पादरियों के विरुद्ध जो उनके हित थे वे शहरो के हितो के साथ जुड़े हुए थे। किसान-युद्ध मे भी हमे यही चीज़ देखने को मिलेगी।

धर्म का वह विरोध जो प्रत्यक्ष रूप मे किसानो और साधारण प्रजा की माँगो को व्यक्त करता था, और जो विद्रोह का लगभग हमेशा साथ देता था—बिलकुल दूसरे ही तरह का था। पादरी वर्ग, पोपवाद तथा ईसाई गिरजे के प्रारम्भिक विधान की पुनर्स्थापना करने से सम्बन्धित वर्गरों (शहर के व्यापारी नागरिको) की तमाम माँगे इस

धर्म-विरोधी आन्दोलन की भी माँगें थी, किन्तु वह इन सबसे बहुत आगे तक जाता था। वह माँग करता था कि ईसाई धर्म के आरम्भिक दिनों मे उसके मानने वालों के समाज के अन्दर जो समानता पायी जाती थी उसकी पुनर्स्थापना कर दी जाय और शहरी नागरिको की दुनिया मे भी अनिवार्य रूप से इसी समानता को लागू किया जाय। "ईश्वर की सन्ताने सब बराबर हैं" — इस सिद्धान्त के आधार पर वह यह नतीजा निकालता था कि नागरिको के बीच समानता होनी चाहिए और, यहाँ तक कि, एक हद तक सम्पत्ति के सम्बन्ध मे भी समानता होनी चाहिए। उसकी माँग थी कि कुलीन पुरुष तथा किसान के बीच, अभिजात वर्ग, विशेषाधिकार रखने वाले बर्गर नागरिको तथा साधारण जनता के बीच समानता स्थापित की जाय; बेगार, जमीन के लगानो, टैक्सो, विशेषाधिकारो तथा सम्पत्ति के कम से कम सर्वथा अनुचित भेदो का अन्त कर दिया जाय। आरम्भिक ईसाई धर्म के सिद्धान्तों के स्वाभाविक परिणामो के रूप मे इन्ही माँगों को कमो-वेश दृढता के साथ सामने रखा जाता था। जिस समय सामन्तवाद अपनी उन्नति के शिखर पर था उस समय, किसान तथा साधारण जनता वाली इस विधर्मी प्रवृत्ति के बीच — जैसे कि अल्बीजेन्सो की विधर्मी प्रवृत्ति के बीच — तथा बर्गरों (शहरी नागरिको) के धर्म विरोध के बीच कोई विशेष अन्तर नही था; परन्तु, १४वी और १५वी शताब्दियों मे किसानों तथा साधारण जनता की इस विधर्मी प्रवृत्ति ने स्पष्ट रूप से एक निश्चित पार्टी मत का रूप ग्रहण कर लिया था और तब, आम तौर से, बर्गरों (शहरी नागरिको) के विधर्मीपन के साथ-साथ, वह अपना एक स्वतन्त्र दृष्टिकोण भी रखती थी। इंगलैण्ड मे वॉट् टाइलर वाले विद्रोह के प्रचारक, जौन बॉल की यही स्थिति थी। वाइक्लिफ के आन्दोलन के साथ-साथ चलते हुए भी उसका अपना एक स्वतन्त्र दृष्टिकोण था। इसी तरह, टेबोराइटवादी भी बोहेमिया मे कैलिक्सटाइन-वादियों के साथ-साथ चलते हुए अपना अलग दृष्टिकोण रखते थे।

टैवोराइटवादियो ने तो ईश्वरीय शासन के नाम तक के आवरण मे एक प्रजातन्त्रवादी प्रवृत्ति का परिचय दिया था। फिर १५वी शताब्दी और १६वी शताब्दी के आरम्भिक काल में साधारण प्रजा के प्रतिनिधियों ने इस नजरिये को जर्मनी मे और आगे विकसित किया था।

रहस्यवादी भावना रखने वाले उन समुदायो के धर्मोन्माद ने फ्लैगेलान्तों, तथा लोलादी[39] जैसे उन लोगों के धर्मोन्माद ने, जिन्होने दमन के दिनों मे भी क्रान्तिकारी परम्परा को जारी रखा था, धर्म-विरोध के इसी स्वरूप को अपनाया था।

उस समय साधारण प्रजा का वर्ग ही एकमात्र वह वर्ग था जो तत्कालीन स्वीकृत समाज से बाहर था। ये साधारण लोग सामन्तो तथा बर्गरों—दोनों के संघों से बाहर थे। उनके पास न विशेपाधिकार थे, न सम्पत्ति; उनके पास तो उस तरह की भी सम्पत्ति नही थी जैसी कि किसान अथवा छोटे बर्गरो के पास होती थी— यद्यपि ये लोग टैक्सो के बोझ से दबे रहते थे। वे हर अर्थ मे सम्पत्ति-विहीन तथा अधिकार-विहीन थे; अपनी जीवन-परिस्थितियो की वजह से मौजूदा संस्थाओ के नज़दीक तक वे कभी नही फटकने पाते थे। ये संस्थाएँ पूर्ण रूप से उनकी उपेक्षा करती थी। सामन्ती तथा सघबद्ध-नागरिक समाज के क्षय के वे ज्वलन्त प्रतीक थे। साथ ही साथ, आधुनिक पूँजीवादी समाज के पहले हरकारे भी वे थे।

इससे पता चलता है कि आम प्रजा का विरोध उस समय भी केवल सामन्तवाद और विशेपाधिकार-सम्पन्न बर्गरो (चुनाव का अधिकार-रखने वाले शहरी नागरिको-अनु०) के खिलाफ लडने तक ही क्यो न सीमित रह सका था; कम से कम कल्पना मे, उस आधुनिक पूजीवादी समाज की जो उस समय उदय ही हो रहा था, सीमा से वह क्यो आगे निकल गया था; और वर्ग-विरोधों पर आधारित समस्त समाजो मे पायी जाने वाली सस्थाओं, विचारो तथा धारणाओ के एक सर्वथा सम्पत्ति-विहीन लोगो का दल होते हुए भी उसने क्यों चुनौती दी थी। इस दृष्टि

से, आरम्भिक कालीन ईसाई धर्म के सहस्रवादी* स्वप्न-दर्शनो से श्रीगणेश करना अत्यन्त सुविधाजनक था। दूसरी तरफ, वर्तमान तथा भविष्य तक से आगे की यह ऊँची उडान भरना अप्राकृतिक तथा एक मृगतृष्णा के अलावा और कुछ नही सिद्ध हो सकता था। लौटकर, अनिवार्य रूप से, समकालीन स्थिति द्वारा निर्धारित की गयी सँकरी सीमाओ की ही गोद मे वह उडान आ पडी। लाजिमी था कि निजी सम्पत्ति पर किये जाने वाले हमले के जवाव मे, सम्मिलित स्वामित्व की माँग के जवाव मे दान-पुण्य के एक आदिम कालीन संगठन की सृष्टि कर दी जाए; ईसाई धर्म की अस्पष्ट समानता की भावना की पूर्ति के लिए सवसे अच्छा हो कि "कानून के सामने" नागरिक "समानता" की घोषणा कर दी जाए; तमाम अधिकारियो के अन्त की माँग की पूर्ति के लिए अन्ततोगत्वा जनता द्वारा चुनी जाने वाली प्रजातान्त्रिक सरकारो की स्थापना कर दी जाए। कल्पना जगत् मे कम्युनिज़्म की पूर्वानुभूति करने का अर्थ वास्तविक जगत् मे परिस्थितियो की पूर्वानुभूति करना वन गया।

आने वाली ऐतिहासिक घटनाओं की इतनी उग्र रूप मे पहले से कल्पना करने की वात को साधारण प्रजा की रहन-सहन की परिस्थितियो के आधार पर आसानी से समझा जा सकता है। इस पूर्वानुभूति का परिचय सवसे पहले हमें **जर्मनी में**, टौमस मुजर तथा उनकी पार्टी मे मिलता है। टैवोराइटवादियो मे एक प्रकार का सहस्रवादी सामुदायिक स्वामित्व का विधान पाया जाता था, किन्तु वह शुद्ध रूप से एक सैनिक कार्यवाही थी। ये कम्युनिस्ट स्वर समाज के एक वास्तविक अग की इच्छा-आकाक्षाओ को केवल मुजर की शिक्षाओ के अन्दर व्यक्त करते थे। वही पहला व्यक्ति था जिसने इन इच्छा-आकाक्षाओ को एक निश्चित रूप मे प्रस्तुत किया था। उसके वाद से ये स्वर जनता की प्रत्येक वडी उथल-पुथल मे भी सुनाई पडे है। अन्त मे, धीरे-धीरे

---

* यह विश्वास करने वाले कि ईसा सशरीर एक हजार वर्ष तक विश्व पर प्रभुत्व करेंगे। —अनु०

करके, वे आधुनिक सर्वहारा आन्दोलन के साथ मिलकर एकाकार हो गये है, उसी तरह जिस तरह कि मध्य युगों में, उनको अधिकाधिक अपने शिकंजे मे कसते जाने वाले सामन्ती आधिपत्य के विरुद्ध, स्वतन्त्र किसानो के सघर्ष—सामन्ती व्यवस्था के पूर्ण उन्मूलन के लिये किये जाने वाले अर्द्ध-गुलामो तथा गुलामों के सघर्षो के साथ मिलकर एक हो गये थे।

तीन बड़े शिविरो मे से पहले शिविर के अन्दर, दकियानूसी कैथोलिक शिविर के अन्दर, वे तमाम तत्व थे जो तत्कालीन परिस्थितियो को बनाये रखना चाहते थे, अर्थात् उसमे शाही सत्ताधारी थे, धार्मिक राजकुमार थे, लौकिक राजकुमारो का एक भाग था, अभिजात वर्ग के रईस थे, लाट पादरी थे तथा शहर के कुलीन लोग थे। **बर्गरों (वोट का अधिकार रखने वाले व्यापारी नागरिको) की तहर के नरमदली लूथरवादी** सुधारो के पक्षपातियो के शिविर की ओर आकर्षित होने वालो मे थे विरोधी दल के तमाम सम्पत्तिशाली तत्व, कुलीन सामन्ती वर्ग के अधिकाश छोटे लोग, बर्गर लोग तथा साधारण राजकुमारों का भी वह अग जिसे यह आशा थी कि गिरजे की जागीरो की ज़ब्ती से वह स्वयम् सम्पत्तिशाली बन जाएगा और जो इस बात के अवसर की तलाश मे था कि साम्राज्य की जकड से अपने को मुक्त कर के कुछ और अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर ले। जहाँ तक किसानों तथा आम लोगों का सम्बन्ध था, वे एक क्रान्तिकारी पार्टी मे एकताबद्ध हो गये थे। इस पार्टी की माँगों तथा सिद्धान्तो को सबसे स्पष्ट वाणी मुंजर ने दी थी।

अपने-अपने सिद्धान्तो तथा अपने-अपने चरित्रो और कार्यो के द्वारा लूथर और मुंज़र अपनी पार्टियो का पूर्णतया प्रतिनिधित्व करते थे।

१५१७ से १५२५ तक लूथर मे भी ठीक वही परिवर्तन हो गये जो वर्तमान काल के जर्मन विधानवादियो मे १८४६ और १८४९ के दर्म्यान हुए थे। प्रत्येक ऐसी पूंजीवादी पार्टी मे इसी तरह के परिवर्तन होते है जो, थोड़े समय तक आन्दोलन का नेतृत्व करने के बाद, अपने

पीछे खडी साधारण जनता तथा सर्वहारा की पार्टी के आगे वढ जाने से एक किनारे छूट जाती है।

१५१७ मे पहले-पहल जव लूथर ने कैथोलिक गिरजे (कैथोलिक ईसाई धर्म-सघ) के अधमतो तथा कानूनो का विरोध किया था, तव उसके विरोध का कोई निश्चित रूप नही था। वर्गरो की पहले की धर्म-द्रोही मांगो से आगे उसका विरोध यद्यपि नही गया था, किन्तु ऐसी किसी प्रवृत्ति को भी उसने नहीं रोका था, और न वह रोक ही सकता था जो उन मांगो से आगे जाती थी। उस आरम्भिक अवस्था में आवश्यक था कि तमाम विरोधी तत्वो को एकतावद्ध किया जाय, आक्रामक क्रान्तिकारी शक्ति का अधिकतम जौहर दिखाया जाय, तथा एक ऐसे पक्षधर को ढूंढ निकाला जाय जो कैथोलिक रूढिवादिता के विरुद्ध जितनी भी वातें कही जाती थी उन सव को लेकर आगे वढ सके। वहुत-कुछ ठीक इसी तरह १८४७ का हमारा उदारपथी पूंजीपति वर्ग भी क्रान्तिकारी वना हुआ था, अपने को वह सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट वताता था, और जोर-शोर से कहता था कि मजदूर वर्ग का उद्धार किया जाय। उसकी क्रियाशीलता के उस प्रथम काल में लूथर का दवंग किसान स्वभाव वहुत ही प्रचण्ड रूप मे सामने आया था।

"अगर (रोमन पादरियो का) वेलगाम पागलपन इसी तरह जारी रहता है तो, मुझे लगता है कि, इसके खिलाफ इससे वेहतर कोई सलाह नही दी जा सकती ेर न इसका इलाज ही ढूंढा जा सकता है कि वादशाह और राजकुमार उसके विरुद्ध शक्ति का इस्तेमाल करें, अपने को हथियारवन्द करें, (और) उन पातकी लागो पर हमला कर दे जिन्होने सारी दुनिया को विषाक्त वना दिया है, और, इस खेल का, हथियारो से, शब्दो से नही, सदा के लिए एकवारगी अन्त कर दे। चोरो को हम फासी मे लटकाकर सजा देते है, हत्यारो को तलवार से ठीक करते है, और विधर्मियो को आग मे जिन्दा जला देते है, तव फिर अध.पतन के उन तमाम पापी

भिक्षितों, उन तमाम पोपो, कारडिनलो और विशपों पर और कुकर्मों के रोमन गढ के उस पूरे गिरोह पर क्यों नहीं हथियार हाथ में लेकर हम टूट पडते, और उनके ख़ून से हाथ धोकर चैन प्राप्त करते ?"

किन्तु यह क्रान्तिकारी जोश थोड़े ही दिन चला था। लूथर जो चिन्गारी लगायी थी वह फैल गयी थी। सम्पूर्ण जर्मन जनता आन्दोलित हो उठी थी। एक तरफ तो, पादरी वर्ग के विरुद्ध की जानेवाली उसकी अपीलो तथा ईसाई धर्म की स्वतन्त्रता से सम्बन्धित उसके उपदेशो से किसानों और साधारण जनो को लगता था कि उन्हें विद्रोह करने का संकेत किया जा रहा है; और, दूसरी तरफ़, नरमदली बर्गर तथा सामन्ती कुलीन वर्ग के अधिकाश छोटे लोग उसके साथ आ गये थे। यहाँ तक कि राजकुमार भी धार मे खिच आये थे। किसानों और साधारण जनों को लगता था कि अपने तमाम उत्पीड़कों से बदला लेने का समय आ गया है; और दूसरे लोगो की दिलचस्पी केवल इस चीज़ में थी कि पादरी वर्ग की सत्ता को ख़त्म कर दिया जाय, रोम तथा कैथोलिकों के आचार्याधिपत्य की दासता से मुक्त हो जाया जाय, और गिरजे की सम्पत्ति को ज़ब्त करके स्वयम् अपने को सम्पन्न बना लिया जाय। इन पार्टियो ने अपने-अपने लक्ष्य निश्चित कर लिये थे और उनमें से हर एक को उसका प्रवक्ता भी मिल गया था। लूथर को इन्ही के बीच चुनाव करना था। वह सैक्सनी के विशेष अधिकारी का पोष्य था, विट्टेनबर्ग का एक ऐसा सम्मानित प्रोफेसर था जो सहसा शक्तिशाली और प्रसिद्ध बन गया था। वह एक ऐसा बडा आदमी बन गया था जो हमेशा नौकरों-चाकरों तथा चापलूसों के अपने गिरोह से घिरा रहता था। इसलिए वह एक क्षण के लिए भी न हिचकिचाया। उसने आन्दोलन के जन-तत्वों को छोड़ दिया और, बर्गरों, सामन्ती कुलीनो तथा राजकुमारों के साथ हो गया। रोम का अन्त करने के लिए युद्ध करने की अपीलें फिर उसके मुँह से नहीं सुनायी दी। लूथर अब शान्तिपूर्ण प्रगति तथा सहिष्णुतापूर्ण प्रतिरोध

के उपदेश देने लगा (**जर्मन कुलीन वर्ग के नाम सम्बोधन**, १५२०, आदि को देखिए)। पादरी वर्ग तथा राजकुमारो के विरुद्ध कुलीनो के षड्यत्र का केन्द्र एवनवर्ग था; — हटेम ने स्वयम् अपने से तथा सिकिनजैन से मिलने के लिए लूथर को जब वहाँ आमंत्रित किया, तो लूथर ने उत्तर दिया था,

> "मै नही चाहता कि इजील की रक्षा बल-प्रयोग तथा खून-खरावी के द्वारा की जाय। ससार को शब्द से जीता गया था, गिरजा (ईसाई धर्म-सघ) शब्द के ही सहारे कायम है, शब्द से ही गिरजे का पुनरुद्धार भी होगा और जो ईशु-विरोधी हिंसा के विना सत्ताधारी वन बैठे है वे हिंसा के विना ही ख़त्म भी हो जाएँगे।"

इसके वाद से, अथवा, और भी ठीक-ठीक कहा जाय तो, लूथर की नीति की इस अधिक स्पष्ट परिभाषा के वाद से, सस्थाओ और अन्धमतो के सम्बन्ध मे वह हुज्जत और मोल-भाव शुरू हो गया था कि उनको ज्यो का त्यो वनाये रखा जाय या उनमे सुधार किये जायँ; इसी के वाद से कूटनीतिक, मेल-मिलाप की, षड़यत्रकारी तथा सुलह-सन्धि की वे घृणित कार्रवाइयाँ शुरू हो गयी थी जिनका परिणाम औग्स-बर्ग के आत्म-निवेदन[४१], तथा वर्गरों के सुधरे हुए चर्च के अन्त मे समझौते द्वारा तै किये गये नियमों के रूप मे निकला था। वह ठीक उसी प्रकार का टुच्चे स्तर का मोल-भाव था जैसा कि हाल मे जर्मनी की राष्ट्रीय असेम्बलियो, सुलह-साजी के सम्मेलनो, सशोधन के न्यायालयो, तथा अरफुर्ट की पार्लियामेन्टो[४२] मे राजनीतिक रूप मे वार-वार देखने को मिला है। सरकारी धर्म-सुधार का अधकचरा स्वरूप इन बातचीतो के दौरान बिलकुल साफ-साफ उभर कर आ गया।

लूथर अव वर्गरवादी सुधारो का जाना-माना हिमायती बन गया। क़ानून की सीमाओ के अन्दर ही प्रगति करने का उपदेश देने के लिए उसके पास समुचित कारण थे। शहरो का अधिकाश भाग साधारण नरम सुधारों का ही पक्षपाती था, अभिजात वर्ग का निम्न स्तर

भी इसी का अधिकाधिक समर्थक बनता गया था और सामन्ती राजकुमारो का एक भाग भी इन्ही लोगो के साथ था। इन राजकुमारो का एक अन्य भाग दुविधा मे पडा था। ऐसी हालत मे विजयश्री तो जैसे प्राप्त ही हो गयी थी — कम से कम जर्मनी के एक भारी भाग मे। शान्तिमय विकास के होते रहने पर शेप क्षेत्र भी बहुत दिनो तक इस नरम विरोध के दबाव के सामने टिक नही सकते थे। किन्तु, इसी दर्म्यान, अगर कोई हिंसापूर्ण उथल-पुथल होती तो उसका अनिवार्य परिणाम यह होता कि नरम विचारवालो की पार्टी का साधारण जनो तथा किसानो की अतिवादी पार्टी के साथ सघर्ष छिड़ जाता और सामन्ती राजकुमार, अभिजात वर्ग के लोग तथा कुछ शहर भी इस आन्दोलन से अलग हो जाते। इसके बाद दो ही रास्ते रह जाते—या तो किसान और साधारण जन बर्गरो की पार्टी को पीछे छोडकर आगे बढ जाते, या फिर सम्पूर्ण आन्दोलन कैथोलिक पुनर्स्थापनावादियों के हाथो कुचल दिया जाता। और हाल मे इस बात के काफी उदाहरण भी देखने को मिल चुके हैं कि थोडी सी भी विजय प्राप्त कर लेने के बाद पूंजीवादी पार्टियाँ, कानून की सीमाओ के अन्दर रहते हुए, किस तरह क्रान्ति की खाई और पुनर्स्थापना के कुएँ के बीच से अपनी प्रगति का रास्ता निकालने की कोशिशे करती है!

उस समय जो आम सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियाँ मौजूद थी उनके अन्तर्गत प्रत्येक परिवर्तन का परिणाम अनिवार्य रूप से सामन्ती राजकुमारो के हित में होता था और उससे उनकी सत्ता में लाजमी तौर से और भी इजाफा हो जाता था। इस प्रकार, बर्गरो का सुधार आन्दोलन आम जनो तथा किसानों से जितना ही अधिक दूर होता जाता था उतना ही अधिक अनिवार्य रूप से वह सुधरे हुए राजकुमारो के नियंत्रण मे पहुँचता जाता था। लूथर स्वयम् अधिकाधिक मात्रा मे उनका दास बनता गया था। इसलिए लोगो ने जब उस पर यह अभियोग लगाया कि दूसरो की तरह वह भी राजकुमारो का वर्दी-

धारी चाकर बन गया है और ओरलामुंड मे पत्थरो से जब उसकी उन्होने पूजा की तो जिन लोगो ने ऐसा किया था वे इस बात को अच्छी तरह समझते थे कि वे क्या कर रहे है।

किसान युद्ध जब छिड गया तो उन क्षेत्रो मे, जिनमे हर जाति-वर्ग के लोग तथा राजे-महराजे अधिकाशतया कैथोलिक थे, लूथर ने मध्यस्थता का रुख अपनाने की कोशिश की थी। सरकारो पर उसने जोरों से हमले किये। उसने कहा कि विद्रोह का दोष उन्ही के सिर पर था; उन्ही के उत्पीड़न ने उसे जन्म दिया था। उसने कहा कि उनके विरुद्ध किसान ने नही, बल्कि स्वयम् ईश्वर ने विद्रोह किया था। फिर भी, इसी के साथ-साथ, उसने कहा कि विद्रोह धर्म-विरोधी है, और इंजील के खिलाफ़ है। अन्त मे, दोनो पार्टियो से उसने अपील की कि वे दोनों ही थोड़ा-थोड़ा झुकें और एक मैत्रीपूर्ण समझौता कर लें।

परन्तु, मध्यस्थता के इन शुभकामी प्रस्तावों के बावजूद, विद्रोह तेज़ी से बढ़ता गया। उसकी परिधि में लूथरवादी राजे-रजवाड़ों, सामन्तों तथा शहरो के असर वाले प्रोटेस्टेण्ट क्षेत्र भी खिच आये। बर्गरों के "सीमित" सुधारों की सीमा को तोड़कर विद्रोह तेज़ी से आगे निकल गया। विद्रोहियों का जो सबसे पक्का दल था उसने मुंज़र के नेतृत्व मे थुरिंगिया में अपना सदर दफ़्तर स्थापित कर लिया। यह स्थान लूथर के निवास-स्थान के एकदम समीप था। स्पष्ट था कि चन्द और सफलताएँ हासिल होते ही विद्रोह की लपटें सारे के सारे जर्मनी में फैल जाती, लूथर को घेर लिया जाता और, सम्भवतः, एक ग़द्दार की तरह बर्छियों से छेद डाला जाता; तथा बर्गरो के सारे सुधार किसानों व साधारण जनो की क्रान्ति के ज्वार मे बह जाते। सोचने-विचारने का अब और समय नहीं रह गया था। क्रान्ति को सामने देखकर पुरानी तमाम शत्रुताओ को भुला दिया गया। किसानों के समूहों की तुलना में; अप्राकृतिक व्यभिचार के घृणित रोमन गृहों के उपासक उन्हे निर्दोष मेमनों के समान लगने लगे, वे ईसा मसीह के मधुर स्वभाव वाले शिशु

बन गये ! "किसानो के हत्यारे और लुटेरे गिरोहों के विरुद्ध"[43] बर्गर तथा राजे-रजवाडे, अभिजात वर्ग के लोग तथा पादरी, लूथर और पोप, सब मिलकर एक हो गये थे ।।

लूथर चिल्लाया,

"उन सब के, छिपकर और खुले तौर से, हर समर्थ व्यक्ति द्वारा उसी प्रकार काटकर टुकड़े-टुकड़े कर दिये जाने चाहिए, उनके गले घोंट दिये जाने चाहिए और उनके उसी तरह छुरे भोंक दिये जाने चाहिए, जिस तरह कि किसी पागल कुत्ते को मारने के लिए आदमी करता है ! इसलिए, प्रिय महानुभावो ! यहाँ मदद करो, वहाँ बचाओ, और आप में से जो भी समर्थ है उसे चाहिए कि उनके छुरा भोंके, उन्हे मारे, उनका गला घोंटे, और, अगर इस प्रयत्न मे आप अपना जीवन भी खो बैठें तो, ईसा मसीह आपका भला करें ! इससे अच्छी मृत्यु आप कभी प्राप्त नही कर सकेंगे !!"

हाँ, किसानो के साथ किसी प्रकार की झूठी दया-ममता नहीं दर्शायी जानी चाहिए । जिन लोगो पर ईश्वर दया नही करता, जिन्हे वह चाहता है कि सजा दी जाय और नष्ट कर दिया जाय, उन पर जो दया करता है वह स्वयम् विद्रोही है, विद्रोहियो का साथी है । बाद में, किसान स्वयम् इस बात को समझेंगे कि अपनी एक गाय का शान्तिमय ढंग से उपभोग करने के लिए उन्हें जो दूसरी गाय दे देनी पड़ी थी उससे उनका नुकसान नही हुआ और तब वे भगवान को धन्यवाद देंगे । और क्रान्ति के द्वारा राजे-रजवाड़े भी उस भीड़-भक्कड़ की भावना को अच्छी तरह समझ जायेंगे जिस पर केवल शक्ति के ज़रिए ही शासन किया जाना चाहिए । "बुद्धिमान आदमी कहता है : Cibum, onus et virgam asino.* किसानो को भूसी के अलावा और कुछ नही मिलना चाहिए । वे ईश्वरीय सन्देश को नही सुनते, और मूर्ख हैं, इसीलिए उन्हे डण्डे और बन्दूक की बात को सुनना पड़ेगा, और उनके लिए यही ठीक है !

*लैटिन में इसका अर्थ है "गदहे के लिए खाना, बोझ और चाबुक चाहिए ।"—स०

उनके फ़ायदे के लिए हमे प्रार्थना करनी चाहिए कि वे आज्ञा का पालन करें। जहाँ वे ऐसा नही करते वहाँ उनके प्रति कोई अधिक दया दिखलाने की ज़रूरत नही है। उनके बीच तो तोपों को ही गड़गड़ाने दो, वर्ना वे हालत को हज़ार गुना और खराब कर देगे !"

मार्च की घटनाओं के बाद, विजय-फल मे से सर्वहारा वर्ग ने अपने हिस्से की जब मांग की थी तब हमारे स्वर्गीय सोशलिस्ट तथा दानी पूजीपति वर्ग ने भी ठीक यही बात कही थी।

इंजील (बाइबिल) का अनुवाद करके साधारण जनों के आन्दोलन के हाथ में लूथर ने एक शक्तिशाली अस्त्र रख दिया था। इंजील के माध्यम से अपने ज़माने के सामन्ती ईसाई धर्म की तुलना उसने पहली शताब्दी के सीधे-सादे निष्कपट ईसाई धर्म से की थी, और पतनोन्मुख सामन्ती समाज के मुकाबले मे उसने एक ऐसे समाज का चित्र पेश किया था जिसमें जटिल तथा बनावटी सामन्ती वर्गीकरण का नामोनिशान तक न था। राजे-रजवाडों, अभिजात वर्ग तथा पादरी वर्ग के विरुद्ध इस अस्त्र का किसानों ने व्यापक रूप से इस्तेमाल किया था। अब लूथर ने उसी अस्त्र को उनके खिलाफ़ इस्तेमाल करना शुरू कर दिया था। ईश्वर द्वारा निर्धारित सत्ताधारियो की प्रसशा मे इजील (बाइबिल) से उसने एक ऐसा स्तुति-गीत ढूँढ निकाला था जैसा कि निरकुश राजतंत्र के बूट चाटने वालों मे से भी कोई इससे पहले कभी न निकाल सका था। इजील (बाइबिल) की मदद से राजों-रजवाडों के राज को, बेज़ुबान आज्ञा पालन को और, यहाँ तक कि, अर्द्ध-दासता को भी न्यायपूर्ण ठहरा दिया गया ! इस तरह, न केवल किसानो के विद्रोह को, बल्कि धार्मिक तथा लौकिक सत्ताधारियो के विरुद्ध स्वयम् लूथर की बगावत को भी अनुचित घोषित कर दिया गया था; और, राजे-रजवाडों के फायदे के लिए, न केवल जनता के आन्दोलन की, बल्कि विशेषाधिकार रखने वाले नागरिकों (बर्गरों) के आन्दोलन की भी पीठ में पीछे से छुरा भोंक दया गया था।

क्या इस बात की आवश्यकता है कि उस पूंजीपति का हम नाम बताये जिसने स्वयम् अपने अतीत को अस्वीकार करने के इसी तरह के उदाहरण हमारे सामने हाल मे रखे थे ?

अब हम वर्गर (विशेपाधिकार सम्पन्न नागरिक) सुधारक लूथर की तुलना जन-क्रान्तिकारी मुंज़र से करेगे।

टौमस मुंज़र का जन्म हार्ज के **स्टौलबर्ग** नामक स्थान मे १४९८ मे हुआ था। कहा जाता है कि उसके पिता को स्टौलबर्ग के अत्याचारी काउण्ट ने फासी देकर मरवा दिया था। १५ वर्ष की ही आयु मे हाले के एक स्कूल में मुजर ने माग्देवर्ग के आर्कविशप (बड़े लाट पादरी) तथा आम रोमन चर्च के विरुद्ध एक गुप्त संगठन स्थापित किया था। अपने समय के धर्म-दर्शन का उसे इतना ज्ञान था कि जल्दी ही उसे डाक्टर की उपाधि प्राप्त हो गयी थी तथा हाले की ईसाई वैरागिनियो के मठ का वह चैपलेन (पादरी) बन गया था। यहाँ गिरजे (ईसाई धर्म-सघ) के अन्ध-मतों तथा विधि-विधानों की अत्यन्त तिरस्कार के साथ वह खिल्ली उड़ाता था। प्रार्थना के समय, मदिरा-रोटी को ईसा का रक्त-माँस समझने के शब्दो का उल्लेख करना वह छोड देता था और, जैसा कि लूथर कहता था, सर्वशक्तिशाली देवताओ को बिना "पवित्र बनाये हुए" ही वह हड़प जाता था! मध्य-युग के रहस्यवादियों, और ख़ासतौर से कालाब्रीज़ के जोख़िम के सहस्रवादी ग्रन्थ उसके अध्ययन के मुख्य विषय थे। धर्म-सुधार का आन्दोलन उन दिनो चल रहा था और चारो तरफ अशान्ति फैली हुई थी; ऐसे समय पतित चर्च तथा भ्रष्ट ससार के तारणहार के रूप मे ईसा के फिर से पृथ्वी पर अवतार लेने तथा न्याय के दिन के आगमन की जो व्याख्या उस रहस्यवादी ने की थी तथा उनके सम्बन्ध मे जो स्थापनाएँ की थी वे मुजर को बहुत अच्छी लगी थी। वह समझता था कि उनके चरितार्थ होने का दिन एकदम नजदीक आ गया था। पास-पड़ोस मे उसके उपदेशो को ज़बर्दस्त सफलता मिली। १५२० मे ईसा के प्रथम धर्मोपदेशक के रूप मे वह ज़्वीकाओ गया।

वहाँ उसने उस कट्टर सहस्रवादी* (चिलियासवादी) सम्प्रदाय की स्थापना की थी जो फिर अनेक स्थानो मे कायम हो गया था और चुपचाप काम करता था। इस सम्प्रदाय की क्षणिक निराशा तथा खामोशी के नीचे तत्कालीन परिस्थितियो के विरुद्ध समाज के निम्नतम वर्गों के निरन्तर बढते हुए विरोध की आग छिपी हुई थी। अशान्ति के बढ़ जाने के बाद अब यह सम्प्रदाय साहस और दृढता के साथ खुले मैदान में आ गया था। यह अनाबैप्टिस्टो** (पुनर्दीक्षा में विश्वास करने वालो) का सम्प्रदाय था। उनका नेता निकलास स्टौर्च था। वे इस बात का प्रचार करते थे कि न्याय का दिन तथा ईसा मसीह के पृथ्वी पर पुनः अवतरित होने का समय नजदीक आ गया था। उन्हे "स्वप्न मे ईसा के दर्शन होते थे, वे तन्मयता के आनन्द मे खो जाते थे और ऐसा अनुभव करते थे कि भविष्य को देख रहे है।" जल्दी ही ज़्वीकाओ की काउन्सिल के साथ उनका सघर्ष उठ खड़ा हुआ। यद्यपि मुंज़र उनके साथ पूरे तौर से कभी शामिल नही हुआ था और वह उन्हें स्वयम् अपने प्रभाव में लाना अधिक पसन्द करता था, फिर भी उसने उनकी हिमायत की। काउन्सिल ने उनके खिलाफ बहुत सख़्त कार्रवाई की। उन्हें शहर छोड़ना पड़ा। उनके साथ मुजर को भी जाना पड़ा। यह १५२१ के अन्त के दिनों की बात है।

वह प्राग चला गया। हुसवादी*** आन्दोलन के बचे-खुचे लोगो के साथ मिलकर वहाँ उसने अपना संगठन खड़ा करने की कोशिश की।

---

* यह विश्वास करनेवाले कि ईसा सशरीर एक हजार वर्ष तक विश्व का शासन करेंगे। —अनु०

** वे लोग जो यह मानते थे कि बपतिस्मा केवल वयस्क लोगों का ही होना चाहिए; इसलिए जिनका बपतिस्मा बाल्यावस्था में हो गया था, बालिग होने पर उनका फिर बपतिस्मा किया जाना चाहिए। यह नाम इन लोगों को उनके विरोधियों ने दिया था। — अनु०

*** बोहेमिया के सुधारक जौन हुस के अनुयायी। हुस को १४१३ में शहीद बना दिया गया गया था। — अनु०

परन्तु उसकी घोपणा का असर यह हुआ कि उसे वोहेमिया से भी भागने के लिए मजवूर कर दिया गया। १५२२ मे वह थुरिंगिया के ऑल्सटेड नामक स्थान मे उपदेशक वन गया। यहाँ उसने अपने सम्प्रदाय मे सुधार करने शुरू किये। लूथर के इस हद तक आगे जाने से पहले ही, लैटिन भापा का उसने पूर्ण वहिष्कार कर दिया। उसने आदेश जारी किया कि जनता के सामने केवल इतवार को दिये जाने वाले इन्जील के निर्धारित सन्देश तथा गिरजे के पत्रों को ही नही, वल्कि पूरी वाइविल (इन्जील) को पढा जाय। साथ ही साथ, अपनी नगरी मे भी उसने प्रचार-कार्य सगठित किया। तमाम दिशाओ से लोगो के समूह उसके पास आने लगे। जल्दी ही ऑल्सटेड पादरी-विरोधी जन-आन्दोलन का केन्द्र वन गया। वह पूरे थुरिंगिया के पादरी-विरोधी आन्दोलन का केन्द्र वन गया।

अभी तक, और सव चीजो से अधिक, मुजर एक धार्मिक व्यक्ति ही था। अभी तक लगभग केवल पादरियों के ख़िलाफ ही वह आन्दोलन करता था। किन्तु, शान्तिपूर्ण वाद-विवाद तथा शान्तिमय प्रगति के उस तरह के उपदेश वह नही देता था, जैसे कि लूथर ने इससे पहले ही शुरू कर दिये थे। वह अव भी लूथर के पहले के हिंसापूर्ण उपदेशों का ही प्रचार करता था। सैक्सनी के राजे-रजवाडों तथा वहाँ की जनता मे वह यही कहता था कि रोमन पादरियों के विरुद्ध हथियार लेकर उठ खड़े हो !

"क्या ईसा मसीह ने यह नही कहा है कि, 'मैं शान्ति स्थापित करने नही आया, वल्कि तलवार लेकर आया हूँ ?' इस तलवार से (सैक्सनी के राजे-रजवाड़ो !) आपको क्या करना चाहिए ? अगर आप ईश्वर के सेवक वनना चाहते है तो केवल एक ही चीज़ है जो आपको करनी चाहिए और वह यह है कि इंजील के रास्ते मे जो भी पातकी खडे हैं उन्हें आप वहाँ से हटाकर निकाल वाहर कर दें और एकदम नष्ट कर दें। ईशु मसीह ने वड़ी गम्भीरता से आदेश दिया था (ल्यूब, १६, २७) :

'मेरे दुश्मनों को यहाँ लाओ और मेरे सामने उनका वध कर दो।' हमे यह खोखला शब्द-जाल न सुनाओ कि तुम्हारी तलवार की सहायता के बिना ही ईश्वर की शक्ति अपना सब काम कर लेगी, क्योंकि तब तुम्हारी तलवार म्यान मे ही पड़ी जग खाती रहेगी। .... ईश्वर की वाणी के मार्ग मे जो लोग भी बाधा डालते है उन्हे निर्दयता के साथ नष्ट कर दिया जाना चाहिए, उसी तरह जिस तरह कि हेज़ेकिया, साइरस, जोशिया, डेनियल तथा इलियास ने बॉल के पादरियो को नष्ट कर दिया था। अगर ऐसा न किया गया तो ईसाई गिरजा (धर्म-सघ) कभी अपनी पुरानी स्थिति मे न आ सकेगा। फ़सल काटने के समय आवश्यक है कि भगवान की बगिया के तमाम झाड-झखाड़ो को उखाड़ कर फेक दिया जाय...... मोज़ेज़ की पाँचवी पुस्तक के अंश ७ मे ईशु मसीह ने कहा था : 'मूर्तिपूजकों के साथ तुम्हे कोई दया नही करनी होगी, उल्टे पूजा की उनकी वेदियो को तुम्हे नष्ट कर देना होगा, उनकी मूर्तियो को तोड देना होगा और उन्हे आग मे जला देना होगा। तभी मै तुम्हारे ऊपर गुस्सा नही हूँगा'।"

किन्तु राजे-रजवाड़ो के नाम की गयी इन अपीलो से कोई फ़ायदा नही हुआ। पर जनता की क्रान्तिकारी भावना दिनो-दिन बढती गयी है। मुञ्ज़र के विचार अधिकाधिक उग्ररूप से स्पष्ट तथा साहसपूर्ण बनते गये। बर्गरो (विशेषाधिकार सम्पन्न नागरिको) के धर्म-सुधार आन्दोलन से दृढतापूर्वक अब उसने अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया। इसके बाद वह एक सीधा-सीधा राजनीतिक आन्दोलन-कर्त्ता बन गया।

उसके दार्शनिक-धार्मिक सिद्धान्तो मे न केवल कैथोलिकवाद की, बल्कि आमतौर से ईसाई धर्म की ही तमाम प्रमुख बातों पर हमला बोल दिया गया था। ईसाई धर्म के रूपों के आवरण मे वह एक प्रकार के सर्वेश्वरवाद का प्रचार करता था। यह सर्वेश्वरवाद आधुनिक परिकल्पी चिन्तन से विचित्र रूप से सादृश्य रखता था और कभी-कभी अनीश्वर-वाद की सीमा तक पहुँच जाता था। बाइबिल (इजील) ईश्वर की

एकमात्र तथा सर्वथा अभ्रान्त वाणी है — इन दोनों ही चीजो का उसने खण्डन किया। उसने कहा कि ईश्वर की वास्तविक तथा जीवित वाणी बुद्धि है। यह ईश्वर की ऐसी वाणी है जो तमाम कौमो के अन्दर तमाम कालो मे हमेशा मौजूद रही है। बाइविल (इंजील) को बुद्धि के विरुद्ध खडा करने का अर्थ यह है कि शब्द से उसकी असली आत्मा को खत्म कर दिया जाय, क्योकि वह पवित्र आत्मा—जिसकी बाइविल घात करती है—कोई ऐसी चीज नही है कि जो हम से बाहर निवास करती है। हमारी बुद्धि ही पवित्र आत्मा है। मनुष्य के अन्दर बुद्धि के उत्पन्न हो जाने का ही नाम श्रद्धा है, इसके अतिरिक्त वह और कुछ नही है और, इसलिए, व्रात्य लोगो (मूर्तिपूजको) के अन्दर भी धार्मिक श्रद्धा मौजूद हो सकती है। इस धार्मिक श्रद्धा के माध्यम से, बुद्धि के जन्म ले लेने से मनुष्य ईश्वर-जैसा तथा पवित्र बन गया है। इसलिए, स्वर्ग दूसरी दुनिया की कोई चीज नही है। उसे इसी जीवन मे ढूँढ़ना होगा। और धर्म मे विश्वास करने वालो का कर्तव्य है कि इस स्वर्ग की, ईश्वर के राज्य की यही, इसी पृथ्वी पर स्थापना करे। जिस प्रकार स्वर्ग इस पृथ्वी के बाहर कही नही है, उसी प्रकार कोई नरक तथा नरक की यातना भी अन्य कहीं नही है। इसी प्रकार, मनुष्य की पातकी अभिलाषाओं तथा लोलुपता से बाहर किसी शैतान का भी कहीं कोई अस्तित्व नही है। ईशु उसी तरह का एक इसान था जिस तरह के इंसान हम है। वह एक पैगम्बर तथा शिक्षक था, और उसके अन्तिम भोज का स्मरणोत्सव केवल उसके श्राद्ध का भोज है जिसमे, बिना किसी रहस्यात्मक बनावट-सजावट के, रोटी और मदिरा का उपभोग किया जाता है।

अधिकांशतया इन सिद्धान्तों का प्रचार मुंजर ईसाई धर्म की उसी शब्दावली में करता था जिसके आवरण मे छिप कर कुछ समय तक नये दर्शन को रहना आवश्यक था। परन्तु उसके मूल घोर विधर्मी विचार को उसकी समस्त रचनाओं मे आसानी से देखा जा सकता है। स्पष्ट था कि बाइबिल के आवरण को उतनी भी गम्भीरता से वह नही लेता

था जितनी गम्भीरता से आधुनिक काल मे भी हीगेल के अनेक शिष्य उसे लेते है ! और यह तव है जवकि आधुनिक दर्शन और मुजर के वीच ३०० वर्षों का व्यवधान है !

मुजर का राजनीतिक दर्शन उसकी क्रान्तिकारी धार्मिक धारणाओं से घनिष्ट रूप से जुड़ा हुआ था। जिस प्रकार उसका धर्म-दर्शन उस समय की पतित धारणाओ से वहुत आगे था, उसी प्रकार उसका राजनीतिक दर्शन भी तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों से वहुत आगे था। जिस प्रकार मुजर का धार्मिक दर्शन अनीश्वरवाद तक पहुँच जाता था, उसी प्रकार उसका राजनीतिक कार्यक्रम कम्युनिज़्म तक पहुँचता था। फरवरी क्रान्ति की पूर्व-वेला तक भी ऐसे आधुनिक कम्युनिस्ट सम्प्रदायों की कमी नही थी जिनके पास सिद्धान्तों का उतना भी भरा-पूरा शस्त्रागार नही था जितना कि सोलहवी शताब्दी मे "मुजर के पास" था। इस कार्यक्रम मे उस समय के साधारण जनो की माँगो का सग्रह कम था, उन सर्वहारा तत्वो के उद्धार की परिस्थितियो की हवाई कल्पना अधिक थी जो आम जनो के वीच पैदा होने लगे थे। इस कार्यक्रम मे माँग की गयी थी कि ईश्वर के राज्य की तुरन्त स्थापना की जाय, उस समय को जल्द से जल्द लाया जाय जिसमे ईसा पृथ्वी पर पुनः अवतार लेने वाले थे। और इसके लिए आवश्यक था कि गिरजे को फिर उसकी प्रारम्भिक अवस्था मे पहुंचा दिया जाय और उन तमाम सस्थाओ का अन्त कर दिया जाय जो इस तथाकथित आरम्भिक ईसाई गिरजे की, किन्तु, वास्तव मे, एकदम नये गिरजे की मान्यताओ के विरुद्ध थी। ईश्वर के राज्य से मुजर का मतलव एक ऐसे समाज से था जिसमें न कोई वर्गभेद होगे और न कोई निजी सम्पत्ति, और न समाज के सदस्यो से स्वतत्र अथवा उनसे वाहर की कोई राजकीय सत्ता ही होगी। मौजूदा तमाम अधिकारी क्रान्ति के मातहत काम करने से और उसमे सम्मिलित होने से चूंकि इन्कार करते है, इसलिए आवश्यक था कि उन्हे खतम कर दिया जाय; और ऐसी व्यवस्था कायम कर दी जा

जिसमे तमाम काम सब लोग मिल-जुलकर करे तथा समस्त सम्पत्ति का सम्मिलित रूप से उपभोग करे। लोगो के बीच पूर्ण समानता कायम कर दो जाय। इस तमाम कार्य को पूरा करने के लिए न केवल पूरे जर्मनी के अन्दर, बल्कि समस्त ईसाई जगत् के अन्दर एक सघ की स्थापना की जाय। राजाओ और सामन्तो को इस सघ मे सम्मिलित होने के लिए आमत्रित किया जाय और उसमे सम्मिलित होने से अगर वे इन्कार करें तो संघ हथियार उठाये और मौका पाते ही उनकी सत्ता को खत्म कर दे या उनका काम तमाम कर दे।

मुजर ने इस संघ को सगठित करने के कार्य को तुरन्त ही शुरू कर दिया। उसके उपदेश और भी अधिक उग्र तथा क्रान्तिकारी हो गये। राजे-रजवाडो, अभिजात वर्ग तथा कुलीनो के विरुद्ध वह उसी उग्रता के साथ वाते कहता था जिस उग्रता से पादरी वर्ग के ऊपर वह हमले करता था। प्रचलित उत्पीड़न का वह वडे सख्त शब्दो मे वर्णन करता था और फिर, उसके मुकावले मे, सामाजिक प्रजातात्रिक समानता की अपनी उस कल्पित दुनिया को सामने रखता था जिसमे ईसा फिर पृथ्वी पर अवतरित हो जायेगे। एक के वाद एक अनेक क्रान्तिकारी पुस्तिकाएँ उसने प्रकाशित की और तमाम दिशाओं मे अपने दूतो को रवाना किया। ऑलसटेड और उसके आसपास के क्षेत्र में उसने स्वयम् अपने हाथो से सघ का सगठन किया।

इस प्रचार का पहला परिणाम यह हुआ कि, वाइबिल (७, ६) के निम्न आदेश के अनुसार, ऑल्सटेड के समीप मिलेरवाख के मैरियेन्कापेले (पादरी) को नष्ट कर दिया गया : "तुम उनकी पूजा की वेदियो को नष्ट कर देना, उनकी मूर्तियो को तोड़ देना और उनकी नक़्क़ाशी की हुई वुतो को आग मे जला देना।" अशान्ति को शान्त करने के लिये सैक्सनी के राजे स्वयम् ऑलसटेड आये। मुज़र को उन्होने अपने महल मे तलब किया। वहाँ जाकर उसने एक ऐसा उपदेश दिया जैसा कि लूथर, यानी "विट्टेनवर्ग के आराम की ज़िन्दगी विताने वाले उस

लोथडे" की ज़वानी भी उन्होने कभी नही सुना था। मुज़र लूथर को इसी नाम से पुकारता था ! मुज़र का कहना था कि अधार्मिक शासको को, खासतौर से उन पादरियो और मठवासियो को जो ईश्वर के सन्देश को धर्म विरोधी चीज कहते थे, मार दिया जाना चाहिए। अपनी इस वात की पुष्टि के लिये मुजर ने नयी इजील का हवाला दिया। वह कहता था कि ईश्वर के चुने हुये लोगो की दया अगर उन्हे न मिले तो धार्मिक लोगो को जीवित रहने का कोई अधिकार नही है। अधार्मिक लोगो का राजे-रजवाड़े अगर विनाश नही करेंगे, तो ईश्वर उनकी तलवार को उनसे छीन लेगा, क्योंकि तलवार की शक्ति पर पूरे समाज का अधिकार है। राजे-रजवाड़े तथा सामती सरदार ही सूदखोरी, चोरी-चमारी तथा डाकेज़नी का मुख्य कारण है। पानी की मछलियो को, हवा के परिन्दो को, और ज़मीन के पौदो को—सभी चीज़ो को वे अपने निजी अधिकार मे कर लेते है — और इसके वाद भी गरीवो को उपदेश देते है कि, "तुम चोरी नही करोगे !" उस हर चीज को जिस पर उनकी नज़र पड़ती है वे स्वयम् हथिया लेते है, किसानो और कारीगरों को वे लूटते और सताते है; किन्तु इनमे से कोई कभी जरा सी भी अगर इस प्रकार की ग़ल्ती कर देता है तो उसे वे फासी पर लटका देते हैं, और इस सव को देखकर डा० लुगनर कहते हैं : ओ३म्, शान्तिः, शान्ति. !

> "ग़रीव आदमी उनका दुश्मन वन जाता है तो इसका दोष स्वयम् मालिको पर है। उथल-पुथल के कारणो को अगर वे दूर नही करते, तो चीजे अच्छी तरह कैसे चलती रह सकती है ? ओ, प्रिय महानुभावो, इन तमाम पुराने पोगापथियो को ईश्वर लोहे के डन्डो से ठीक करेगा ! किन्तु अगर मै ऐसा कहता हूँ, तो मै जनता को आन्दोलित कर दूगा ! तो फिर ऐसा ही हो !" (देखिए, ज़िमरमैन लिखित, महान किसान युद्ध का सामान्य इतिहास, खण्ड २, पृष्ठ ७५ [४५])।

मुजर ने इस उपदेश को छपवा लिया। सैक्सनी के ड्यूक जोहान

ने ऑलसटेड के उसके मुद्रक को सजा देकर देश से निकाल दिया। यह भी आदेश हुआ कि इसके बाद से मुज़र की रचनाओ का वाइमार स्थित ड्यूको की सरकार द्वारा सेन्सर किया जायगा। परन्तु मुज़र ने इस आदेश की रत्तीभर भी परवाह न की। तुरन्त ही उसने मुल्हहॉसन के शाही नगर मे एक अत्यन्त विद्रोह-पूर्ण पत्र प्रकाशित किया। इसमें उसने जनता का आवाहन किया कि वह "छेद बको और डा कर दे जिससे कि सारी दुनिया देख और समझ ले कि हमारी वे महान् विभूतिया कौन है जिन्होने धर्म-विरोधी ढंग से हमारे प्रभु को एक लिपी-पुती हुई बौनी मूर्ति का रूप दे दिया है!" इस सन्देश का अन्त निम्न शब्दो से किया गया था :

> "पूरी दुनिया को जबर्दस्त धक्का लगना अनिवार्य है। एक ऐसा भूचाल आयेगा जिससे तमाम अधार्मिक लोग अपने सिंहासनों से लुढ़क जायेगे और दबे-कुचले लोग उठ खडे होंगे।"

"हथौडे वाले आदमी," टॉमस मुजर ने पत्र के मुख पृष्ठ पर निम्न नीति-वाक्य लिखा था :

> "लो, देखो, अपने शब्दो को मैंने तुम्हारे मुँह में रख दिया है। आज मैंने तुम्हे राष्ट्रों तथा राज्यों से ऊपर खड़ा कर दिया है जिससे कि तुम चीजो को उखाड़ दो, उन्हें गिरा दो, और उन्हें नष्ट कर दो, और फेंक दो, ताकि पुनः निर्माण कर सको और फिर से जमा सको। बादशाहों, राजाओ और पादरियों के विरुद्ध और देश की जनता के विरुद्ध लोहे की एक दीवाल खड़ी कर दी गयी है। उन्हे लड़ने दो, क्योकि विजय के फलस्वरूप शक्तिशाली तथा ईश्वर-विरोधी अत्याचारियो का विलक्षण ढग से सत्यानाश हो जायगा।"*

---

* अपने निबन्ध के आरम्भ में मुंजर ने पैगम्बर जेरेमिया के ग्रन्थ के एक अवतरण के भाव को दे दिया है। ऐसा करते समय उसे उसने एक क्रान्तिकारी अर्थ दे दिया है।

लूथर और उसकी पार्टी के साथ मुज़र का सम्बन्ध-विच्छेद बहुत पहले ही हो चुका था। मुज़र ने उससे बिना पूछे ही चर्च (गिरजे) मे जो सुधार कर दिये थे उनमे से कुछ को लूथर को मानना पड़ा। मुजर के क्रिया-कलापो को वह उसी तरह से देखता था जिस तरह कि एक मामूली सुधारक किसी अधिक तेज़ी से काम करने वाली और आगे तक का लक्ष्य रखनेवाली पार्टी की ओर शत्रुतापूर्ण अविश्वास के साथ देखता है। बहुत पहले, १५२४ की वसन्त ऋतु मे ही, मुज़र ने मेलन्कथन के नाम, घर पर पडे रहने वाले अधकचरे क्षय रोगी के उस मॉडल (नमूने) के नाम, एक पत्र मे लिखा था कि आन्दोलन को न तो तुम ज़रा भी समझते हो और न लूथर। उसने लिखा था कि बाइबिल के शब्दों का सहारा लेकर वे लोग उस आन्दोलन का गला घोट देना चाहते थे। उसने उससे कहा था कि, तुम लोगो का सिद्धान्त सड चुका है!

उसने लिखा था, "प्रिय भाइयो, अपनी टाल-मटोल तथा ढुलमुल-यकीनी का अन्त करो। समय आ गया है, ग्रीष्म-ऋतु दरवाज़े पर दस्तक दे रही है। उन धर्म-विरोधियो के साथ मत मित्रता रक्खो जो ईश्वर के सन्देश को पूरे तौर पर पूरा नही होने देते। अपने राजे-रजवाडों की चाटुकारी मत करो, वर्ना खतरा है कि उनके साथ तुम्हारा भी अन्त हो जायगा। ऐ, कोमल किताबी विद्वानो! क्रुद्ध मत हो, क्योकि इसके अलावा मैं और कुछ कर ही नही सकता।"

लूथर ने मुज़र को कई बार चुनौती दी कि उसके साथ खुलकर वह वाद-विवाद करे। मुजर जनता के सामने बहस करने के लिए हमेशा तैयार रहता था, परन्तु विट्टेनबर्ग विश्वविद्यालय की पक्षपाती पब्लिक के सामने किसी धर्म-शास्त्रीय झॉय-झॉय मे पडने की उसके अन्दर जरा भी इच्छा नही थी। "शिक्षा के केवल उच्च स्कूल के सम्मुख आत्मा की साक्षी प्रस्तुत करने" की उसके अन्दर इच्छा नही थी। वह कहता था कि लूथर अगर वास्तव मे सच्चा है तो उसे चाहिये कि वह उसके, यानी मुजर के, मुद्रक के विरुद्ध किये जाने वाले जुल्मो को रोकने के लिये

अपने प्रभाव का इस्तेमाल करे और सेन्सरशिप को ख़त्म करवा दे जिससे कि अखवारों मे खुलकर उनके झगड़े के सम्बन्ध मे वाद-विवाद किया जा सके।

परन्तु अव, जब मुज़र की ऊपर वतायी गयी क्रान्तिकारी पुस्तिका निकल आयी तो लूथर ने खुले तौर से उसकी भर्त्सना करना शुरू कर दी। विद्रोही व्यक्ति के विरुद्ध सैक्सनी के राजाओं के नाम अपने पत्र मे, लूथर ने कहा कि मुजर शैतान का औजार है। उन राजकुमारो से उसने माँग की कि वे हस्तक्षेप करे और विद्रोह की आग लगाने वालों को देश से वाहर निकाल दें, क्योकि ये लोग अपने काम को अपने अशुभ सिद्धान्तो का प्रचार करने तक ही नही सीमित रखते थे, वल्कि सत्ताधारियो के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए, हिसक कार्यवाही करने के लिए भी लोगो को भड़का रहे थे।

पहली अगस्त को मुज़र को वाइमार के महल मे राजाओ के सामने हाज़िर होने के लिए मजवूर कर दिया गया। उसके खिलाफ अभियोग था कि उसने लोगो को विद्रोह के लिए भड़काया था। उसके विरुद्ध वहुत से प्रमाण पेश किये गये। उनका सम्वन्ध उसके गुप्त संघ के कामो से था। वतलाया गया कि खान-मज़दूरों और किसानो की सोसायटियों के पीछे भी उसी का हाथ था। उसे देश निकाले की धमकी दी गयी। वह ऑल्सटेड लौटा ही था कि उसे पता चला कि सैक्सनी के ड्यूक जौर्ज ने यह माग की है कि उसे उसके हाथ मे सौंप दिया जाय! संघ की ओर से लिखे गये उसके हाथ के पत्र पकड़े गये थे; इन पत्रों मे जौर्ज की प्रजा का उसने आवाहन किया था कि ईश्वरीय सन्देश के शत्रुओ के विरुद्ध वह सशस्त्र विद्रोह कर दे। अगर उसने स्वयम् शहर न छोड दिया होता तो उसे पकड़ कर काउन्सिल सैक्सनी के ड्यूक के हाथो मे सौंप देती।

इसी दर्म्यान, किसानो और साधारण जनो के वीच अशान्ति की भावना और भी अधिक गहरी हो गयी थी। उसने मुंज़र के प्रचार-कार्य

को अतुलनीय रूप से अधिक सहल बना दिया था। अनावैप्टिस्टों* मे उसे इस काम के लिए बहुत अच्छे सहायक मिल गये। इस सम्प्रदाय के अपने कोई निश्चित सिद्धान्त नही थे। उसकी एकता का एकमात्र आधार उसके सदस्यों के अन्दर तमाम शासक वर्गों के प्रति विरोध की सामान्य भावना थी तथा वे सब द्वितीय बपतिस्मा के समर्थक थे। उनके रहने-सहने का ढंग सन्यासियो जैसा था और प्रचार-कार्य के सम्बन्ध मे वे अनथक रूप से, खूब जुटकर और साहस के साथ, काम करते थे। वे मुजर के आस-पास जमा हो गये थे। दमन ने उन्हे बे घर-बार बना दिया था, इसलिए सम्प्रदाय के सदस्य सारे जर्मनी मे घूमते-फिरते थे और नयी शिक्षा के सन्देश को सब जगह पहुँचाते थे। इस नयी शिक्षा मे मुज़र ने स्वयम् उनकी मागों और इच्छाओ को भी उनके सामने स्पष्ट कर दिया था। अनगिनत अनावैप्टिस्टो को शिकन्जो मे जकड़ दिया गया था, ज़िन्दा जला दिया गया था, अथवा अन्य किसी प्रकार से मार डाला गया था, किन्तु इन सन्देश-वाहको का साहस तथा उनकी सहन-शक्ति अडिग थी! जनता की तेज़ी से बढ़ती हुई बेदारी की वजह से उनके काम को ज़बर्दस्त सफलता मिली। इसलिए, थुरिंगिया से भागते समय जहाँ भी मुज़र गया वही उसे ज़मीन तैयार मिली।

मुज़र सबसे पहले नूरेम्बर्ग गया[४७]। वहाँ एक ही महीने पहले किसानो के एक विद्रोह को उसके उठने के पहले ही कुचल दिया गया था। मुजर अपना प्रचार छिपकर करता था। जल्दी ही ऐसे लोग पैदा हो गये जो उसकी साहसिक से साहसिक धर्म सम्बन्धी स्थापनाओं की हिमायत करते थे। मुज़र की इन स्थापनाओ का वे समर्थन करते थे कि बाइबिल (इजील) की सब बातें मानना ज़रूरी नही है, कि ईसा

---

* जर्मनी का एक प्रोटेस्टेन्ट सम्प्रदाय जो बाल्यावस्था में किये गये बपतिस्मा को नहीं मानता था और कहता था कि केवल वयस्क लोगों का बपतिस्मा किया जाना चाहिए। जिनका बपतिस्मा बचपन में हो चुका है उनका फिर बपतिस्मा किया जाना चाहिए। यह सम्प्रदाय ईसाईवादी कम्युनिज्म की स्थापना चाहता था।—स०

की मरण-तिथि का स्मरणोत्सव मनाना बेकार था, कि ईसा महज़ एक इन्सान थे, और लौकिक सत्ताधारियों की सत्ता धर्म-विरोधी है। लूथर चिल्लाया,

"देखो, एक शैतान छुट्टा घूम रहा है, वह ऑल्सटेड का प्रेत है !" नूरेम्बर्ग में मुंज़र ने लूथर के नाम अपना जवाब प्रकाशित किया।[४८] उसने उस पर अभियोग लगाया कि वह राजाओं और सामन्तों की चाटुकारी करता था तथा अपनी अरोचक संजीदगी के माध्यम से प्रतिक्रियावादी दल का समर्थन करता था। लेकिन, उसने लिखा, इसके बावजूद, जनता अपने को मुक्त कर लेगी और डाक्टर लूथर के साथ वह उसी तरह जायगी जिस तरह लोग किसी पकड़ी हुई लोमड़ी के पिंजड़े के साथ-साथ जाते हैं ! काउन्सिल ने इस पत्र को जब्त कर लिया और मुंज़र को नूरेम्बर्ग छोड़ना पडा।

अब स्वाबिया होता हुआ वह अल्साक गया, फिर स्विट्ज़रलैण्ड, और फिर वापिस ऊपर के "ब्लैक फारेस्ट" (काले जंगल) की तरफ़। वहाँ कई महीने पहले से ही एक विद्रोह शुरू हो गया था। विद्रोह के पीछे मुख्यतया उसके अनाबैप्टिस्ट सन्देशवाहकों का हाथ था। मुंज़र के इस प्रचारात्मक दौरे की वजह से जनता की पार्टी की स्थापना में निर्विवाद रूप से अत्यधिक मदद मिली थी; उसी की वजह से उसकी माँगों को स्पष्ट रूप से निर्धारित किया जा सका था; और, अन्त में, अप्रैल १५२५ में, उसी की वजह से आम-विद्रोह हो गया था। मुज़र के कामों के दोनों नतीजो को इस दौरे ने साफ़-साफ़ सामने ला दिया। एक तरफ़ तो उसके कार्यों ने जनता को जगा दिया था। जनता से वह उसी एकमात्र भाषा में बातें करता था जिसे वह समझती थी— एक धार्मिक, सिद्ध पुरुष की भाषा मे ! और, दूसरी तरफ़, उसके कार्यों का असर उन लोगों पर पड़ा था जो पहले ही दीक्षित हो चुके थे। इन लोगो के सामने अपने अन्तिम उद्देश्यो को वह साफ़-साफ़ रूप में रख सकता था। अपनी यात्रा शुरू करने से पहले ही थुरिंगिया मे जनता तथा पादरियों

के निम्न वर्ग के अन्दर से दृढ-सकल्पी लोगो का एक दल उसने इकट्ठा कर लिया था। अपनी गुप्त सोसायटी का नेतृत्व उसने इसी दल के हाथ मे दिया था। अब वह दक्षिण-पश्चिमी जर्मनी के सम्पूर्ण क्रान्तिकारी आन्दोलन की जान वन गया। फ्रैन्कोनिया तथा स्वाविया के जरिए अल्साक तथा स्विस सीमा तक उसने सैक्सनी और थुरिंगिया के वीच अपने सगठन का जाल विछा दिया। दक्षिण जर्मनी के वाल्डशट के हुवमेयर, ज़्यूरिच के कौनरैड ग्रिविल, ग्रिसेन के फ्रान्ज़ रवमान, मेमिंगेन के शैपलर, लाइपहेम के जैकव वेटे तथा स्टुटगार्ट के डाक्टर मेन्टिल जैसे आन्दोलनकर्त्ताओ को भी वह अपने शिष्यों तथा संघ के नेताओं मे गिनता था। अधिकांशतया ये लोग क्रान्तिकारी पादरी थे। वह स्वयम् अधिकतर शाफहॉसेन की सीमा पर ग्रिसेन मे रहता था। वहाँ से हीगाओ, क्लेट्टगाउ, आदि के ज़रिए वह बाहर यात्राओं पर जाता था। राजे-रजवाड़े तथा सामन्ती प्रभु भयभीत हो उठे थे। हर जगह आम जनो के इस नये विधर्मी-पन को दबाने के लिए वे ख़ूनी ज़ोरो-ज़ुल्म का सहारा ले रहे थे। विद्रोह की आग को फैलाने तथा सोसायटी की सफो को सुदृढ़ बनाने मे इस ज़ोरो-ज़ुल्म का कुछ कम हाथ नही था। इस प्रकार, जर्मनी के ऊपरी भाग में लगभग पाँच महीने तक मुज़र अपना आन्दोलन चलाता रहा। जब पडयन्त्र को कार्यान्वित करने का समय आ गया तव वह थुरिंगिया वापिस लौट आया, क्योंकि आन्दोलन का वह स्वयम् नेतृत्व करना चाहता था। वहाँ हम उससे वाद मे मिलेंगे।........

हम देखेंगे कि दोनो पार्टियो के नेताओ के स्वभाव तथा व्यवहार मे उनकी अलग-अलग पार्टियो का दृष्टिकोण कितनी सच्चाई से व्यक्त हुआ था। हम देखेंगे कि लूथर की फैसला करने की कठिनाई तथा उस आन्दोलन के सम्बन्ध मे, जो अधिकाधिक विशाल रूप लेता जा रहा था, उसका भय तथा राजे-रजवाड़ों के प्रति कायरो जैसी उसकी खुशामदी भावना किस प्रकार बर्गरो (विशेषाधिकार सम्पन्न नागरिकों) की

हिचकिचाहट-भरी तथा अस्पष्ट नीति के सर्वथा अनुरूप थी। इसी तरह हम यह भी देखेंगे कि मुज़र की क्रान्तिकारी शक्ति तथा उसके सकल्प ने साधारण प्रजा तथा किसानों के सबसे आगे बढ़े हुए अंग के अन्दर किस प्रकार क्रान्तिकारी शक्ति तथा संकल्प की भावना फूक दी थी। एकमात्र अन्तर लूथर और मुज़र के बीच यह था कि लूथर ने अपने को अपने वर्ग के बहुमत की धारणाओ तथा इच्छाओं को व्यक्त करने तक ही सीमित रखा था और इस प्रकार एक अत्यन्त सस्ती किस्म की लोक-प्रियता उसके बीच प्राप्त कर ली थी; इसके विपरीत, मुज़र साधारण जनो तथा किसानों के विचारो तथा माँगों के तात्कालिक दायरे से बहुत आगे चला गया था। उस समय के क्रान्तिकारी तत्वों के चुने हुए लोगों की सबसे पहले उसने एक पार्टी कायम कर दी थी। यह पार्टी उसके विचारो से सहमत थी तथा उसी की तरह जोरो से काम करती थी; किन्तु इसीलिए विद्रोही जनता के एक छोटे-से अल्प-मत से अधिक लोग उसमे कभी नही आ सके थे।

मार्क्स के नाम एंगेल्स का पत्र

[मैनचेस्टर, लगभग २४ मई, १८५३]

·····कल मैंने अरब के शिलालेखो से सम्बन्धित वह पुस्तक पढी जिसके बारे में मैंने तुमसे बात की थी। यद्यपि शुरू से आखिर तक सब जगह उसमे पादरी तथा बाइबिल (इजील) के हिमायती घिनौने ढग मे भरे हुए है, फिर भी वह ऐसी नही है कि दिलचस्पी की कोई चीज़ उसमे न मिले। उसकी सबसे बडी सफलता इस बात मे निहित है कि उसने प्रमाणित कर दिया है कि गिबन ने प्राचीन भूगोल के सम्बन्ध मे कुछ भारी गलतियाँ की थी। इससे यह नतीजा निकाला जा सकता है कि गिबन का धर्म-दर्शन भी भ्रान्तिपूर्ण है। पुस्तक का नाम है: अरब का ऐतिहासिक भूगोल। इसके लेखक है रेवरेण्ड चार्ल्स फैन्स्टर। इसमे से अधिक से अधिक जो निकल सकता है वह निम्न प्रकार है:

(१) बाइबिल (इंजील) की प्रथम पुस्तक मे नोआ, अब्राहम, आदि की बतायी जाने वाली जो वश-परम्परा दी गयी है उसमे उस समय के बेदूई कबीलो का बोली सम्बन्धी—उनके बडे या छोटे रिश्तों के अनुसार—काफी ठीक-ठीक और यथाक्रम वर्णन मिलता है। जैसा कि हम जानते है, बेदूई कबीले आज तक भी हमेशा अपने को बेनीसालदे, बेनीयूसुफ आदि-आदि, अर्थात्, अमुक-अमुक के बेटे के नाम से पुकारते आये है। इस नामकरण का आधार जीवन का प्राचीन पितृसत्तात्मक तरीका है।

इसके फलस्वरूप, आगे चलकर इसी प्रकार की वंशावली कायम हो जाती है। बाइबिल की पहली पुस्तक मे मिलने वाले यथाक्रम वर्णन की सचाई की पुष्टि प्राचीन भूगोलवेत्ताओ ने भी कमोवेश मात्रा मे कर दी है। हाल मे जिन लोगों ने वहाँ की यात्रा की है वे भी बताते हैं कि बोली सम्बन्धी परिवर्तनो के साथ, पुराने नाम अब भी अधिकांशतया उसी रूप मे मौजूद हैं। लेकिन इससे ज़ाहिर होता है कि, यहूदी स्वयम् भी, बाकी लोगो की ही तरह, एक छोटे बेदूई कबीले के सदस्य थे, स्थानीय परिस्थितियो, कृषि, आदि ने उनके क़बीले को अन्य बेदूइयो का विरोधी बना दिया था।

(२) जहाँ तक उन महान् अरब आक्रमणो का सम्बन्ध है जिनके बारे मे हमने पहले बात की थी तो : बेदूईं लोगो ने भी, मगोलो की ही तरह, समय-समय पर आक्रमण किये थे। असीरिया और बेबीलोन के दोनो साम्राज्यो की स्थापना बेदूईं कबीलो ने ही की थी। उनकी स्थापना उन्होने उसी स्थान पर की थी जहाँ बाद मे खलीफाओं की हुकूमत कायम हुई थी। बेबीलोन साम्राज्य के सस्थापक, काल्डियन लोग अब भी इसी नाम से, बेनीसालदे के नाम से, उस जगह मौजूद हैं। निनीवेह तथा बेबीलोन की तरह के बडे-बडे शहरो का उदय तेज़ी से ठीक उसी तरह हुआ था जिस तरह कि केवल तीन सौ वर्ष पहले आगरा, दिल्ली, लाहौर तथा मुल्तान जैसे विशाल नगरो का पूर्वी भारत मे अफगानो अथवा तातारो के आक्रमण के फलस्वरूप उदय हुआ था। इस प्रकार, मुसलमानों के आक्रमण की विशिष्टता बहुत कुछ ख़त्म हो जाती है।

(३) मालूम होता है कि अरब लोग, दक्षिण-पश्चिम मे, जहाँ वे बस गये थे, उतने ही सभ्य थे जितने कि मिस्रवासी, असीरियावासी, आदि। यह चीज़ उन इमारतो से भी साबित होती है जो उन्होने बनायी थी। मुसलमानो के हमले के बारे मे भी इससे बहुत रोशनी मिलती है। जहाँ तक उस प्रवचना का, यानी धर्म का सम्बन्ध है, दक्षिण के प्राचीन

शिलालेखो से यह निष्कर्ष निकलता मालूम होता है कि प्रत्येक धार्मिक आन्दोलन की तरह, मुहम्मद की धार्मिक क्रान्ति भी विधिवत एक प्रतिक्रिया थी, पुराने, सरल धर्म की ओर तथाकथित वापिसी थी। दक्षिण के प्राचीन शिलालेखो मे एकेश्वरवाद की पुरानी राष्ट्रीय अरब परम्परा अब भी प्रबल है (उसी तरह जिस तरह अमरीकी इन्डियनो के बीच वह प्रबल है)। हिब्रू (इबरानी भाषा) तो इस परम्परा का केवल एक छोटा अश है।

यहूदियो की तथाकथित पवित्र धार्मिक पुस्तक पुरानी अरबों की धार्मिक तथा कबीलाई परम्परा का ही क्रमागत वृत्तान्त है। इससे अधिक वह कुछ नही है। यह बात अब मुझे पूर्णतया स्पष्ट हो गयी है। अपने सगोत्रीय, परन्तु खाना-बदोश पड़ोसियो से आरम्भ मे ही यहूदियो के अलग हो जाने की वजह से इस परम्परा मे तब्दीली आ गयी थी। उनका अलग विवरण इसलिए मिलता है कि अरब की दिशा मे फिलिस्तीन केवल रेगिस्तानों से, बेदूई लोगों की जमीनो से, घिरा हुआ है। परन्तु, अरब के पुराने शिलालेखो, उसकी परम्पराओ तथा कुरान से, तथा जिस आसानी के साथ तमाम वशावलियो, आदि को अब पढा जा सकता है उससे भी, यह बात साबित हो जाती है कि उसकी मुख्य विषय-वस्तु अरबी, अथवा आम सेमेटिक थी, —उसी तरह जिस तरह कि हमारे एड्डा (Edda) तथा जर्मनो के वीरतापूर्ण आख्यानो की भी वही विषय-वस्तु है।

तुम्हारा,

फ्रे० ए०

एंगेल्स के नाम मार्क्स का पत्र

लन्दन, २ जून, १८५३

···· यहूदियो और अरबो के सम्बन्ध मे तुम्हारे पत्र को पढकर मुझे बहुत आनन्द मिला। सुनो तो . (१) यह बात साबित की जा सकती है कि, जब से इतिहास का श्रीगणेश हुआ, तब से तमाम प्राच्य कबीलो के बीच, कबीलो के एक भाग की बस्ती तथा उनके दूसरे भागों के बदस्तूर खानाबदोश जीवन के बीच, एक आम सम्बन्ध रहा है। (२) मुहम्मद के समय मे योरप से एशिया को जाने वाले व्यापारिक मार्ग मे काफी परिवर्तन हो गया था और अरब के वे नगर, जिन्होने भारत, आदि के साथ व्यापार मे बहुत बडा भाग लिया था, व्यापारिक रूप से पतनावस्था मे पहुँच गये थे। जो भी हो, इससे भी उक्त क्रिया को बल मिला था। (३) जहाँ तक धर्म का सम्बन्ध है, यह प्रश्न एक आम प्रश्न बन जाता है और इसलिए इसका जवाब भी आसानी से दिया जा सकता है। यह आम प्रश्न है : पूर्व का इतिहास धर्मो के इतिहास के रूप मे क्यो सामने आता है ?

प्राच्य नगरों के निर्माण के सम्बन्ध मे एफ० बर्नियर की पुस्तक से अधिक बढिया, सजीव तथा स्पष्ट पुस्तक दूसरी नही है (बर्नियर ९ साल तक औरंगज़ेब का चिकित्सक था)। उसकी पुस्तक का नाम है : **यात्राएँ जिनमें महान् मुगल के राज्यों, आदि का विवरण दिया गया है।**

बर्नियर ने फौजी व्यवस्था का भी बहुत अच्छा वर्णन दिया है, उसने बताया है कि इन विशाल फौजों को खिलाया-पिलाया, आदि कैसे जाता था। अन्य चीज़ो के साथ-साथ, इन दो बातो के सम्बन्ध मे वह कहता है :

"घुडसवार ही मुख्य भाग होते है। पैदल सेना इतनी बड़ी नही होती जितनी कि आमतौर पर कही जाती है। अलबत्ता अगर उन तमाम नौकरो-चाकरो और उन लोगो को भी वास्तविक लड़ने वाली सेना के साथ जोड़ लिया जाए जो बाजारो से सेना के पीछे-पीछे चलते है तो वह जरूर बड़ी हो जायगी; क्योंकि, वैसी हालत मे, मैं इस बात को मान सकता हूँ कि उनका यह कहना ठीक होगा कि बादशाह के साथ चलने वाली केवल पैदल सेना की सख्या २,००,००० या ३,००,००० तक, और कभी-कभी इससे भी अधिक, हो सकती है। परन्तु, ऐसा तभी हो सकता है जब कि यह निश्चित हो कि बादशाह राजधानी से बहुत दिनों तक दूर रहेगा। यह चीज़ उस आदमी को इतनी अचम्भे की न लगेगी जो यह जानता है कि इन सेनाओं के साथ-साथ तम्बुओ, बावर्चीखानो, कपड़ो, फर्नीचरो तथा, बहुत अक्सर, औरतो का भी कितना भारी लश्कर चलता है और फिर, इनकी वजह से, हाथियों, ऊँटो, बैलो, घोडों, कुलियो, रातिब जमा करने वालो, भंडारियो, तरह-तरह के व्यापारियों तथा नौकरो-चाकरों की भी एक भीड चलती है। यह चीज़ उस आदमी को भी विचित्र नही लगेगी जो देश की विशिष्ट परिस्थिति तथा सरकार की वास्तविकता को समझता है, अर्थात् जो इस बात को समझता है कि राज्य की **सारी जमीन का अकेला और एकमात्र स्वामी बादशाह ही होता है**। इसके एक आवश्यक परिणाम के रूप मे यह स्पष्ट है कि दिल्ली अथवा आगरा की तरह का **राजधानी** का एक पूरा शहर लगभग पूर्णतया सेना के सहारे ज़िन्दा रहता है और इसलिए अगर बादशाह किसी भी लम्बे अर्से के लिए लड़ाई के मैदान की तरफ जाता है तो वह शहर भी उसके पीछे जाने के लिए मजबूर हो जाता है। ये शहर **लगभग एक प्रकार के फौजी** शिविर ही है; फ़र्क केवल यह है कि खुले मैदान के

बजाय ये कुछ बेहतर और अधिक सुविधाजनक स्थान मे क़ायम होते हैं। इसलिए ये शहर पेरिस की तरह के नही है और न उसकी तरह के किसी भी प्रकार से हो ही सकते है।"

महान् मुगल ने जब ४,००,००० पैदल सैनिको, आदि के साथ कश्मीर पर धावा किया था, तब बर्नियर ने लिखा था :

"कठिनाई इस बात के समझने मे है कि इतनी बड़ी सेना, सिपाहियों तथा जानवरो की इतनी विशाल सख्या कहाँ से और किस प्रकार मैदान मे ज़िन्दा बनी रह सकती है। इसके लिए केवल उस चीज़ को मान लेना आवश्यक है जो बिल्कुल सही है : भारतीय बहुत परहेज़ी और खाने-पीने के मामले में बहुत सीधे-सादे होते हैं। घुड़सवारो की तमाम बड़ी संख्या के अन्दर १०वाँ या उनका २०वाँ भाग तक ऐसे लोगो का नही होता जो कूच के दिनो में गोश्त खाते हों। जब तक उन्हें उनकी खिचड़ी, अर्थात् चावल और दूसरी सब्ज़ियों का मिला-जुला भोजन जिसके ऊपर बन जाने के बाद वे पिघला हुआ मक्खन डाल लेते है, मिलती रहे तब तक वे सन्तुष्ट रहते हैं। इसके अलावा, यह भी जानना ज़रूरी है कि ऊँटो मे काम करने की ग़ज़ब की शक्ति होती है, वे बहुत दिनों तक बिना खाए-पिये ज़िन्दा रह सकते हैं, वे बहुत कम खाकर चलते रह सकते है और वे कोई भी चीज खा लेते हैं। फिर ज्यो ही सेना किसी स्थान पर पहुँच जाती है त्यो ही ऊँटो के सरवान (ड्राइवर) उन्हे चरने के लिए खुले मैदान मे ले जाकर छोड़ देते है। वहाँ उन्हे जो कुछ भी मिल जाता है उसे वे खा लेते है। इसके अतिरिक्त, जो व्यापारी दिल्ली में बाज़ार लगाते हैं उन्ही को इन अभियानो के दिनों में भी बाज़ार लगाने के लिए मजबूर किया जाता है। यही बात छोटे व्यापारियों, आदि के बारे में होती है......और, अन्त मे, जहाँ तक घास-चारे-रातिब का सवाल है, उसे खरीदने के लिए ये तमाम ग़रीब लोग तमाम देहातों के चक्कर लगाते हैं और उसे सप्लाई करके ख़ुद भी कुछ कमा लेते हैं। आमतौर से उनका सबसे बड़ा सहारा कन्द-मूल होते

हैं। इनके लिए वे छोटी कुदालो से पूरे-पूरे खेतो को खोद डालते हैं, उनमे जो छोटे-छोटे कन्द-मूल मिलते है उन्हें वे झाड़कर या धोकर साफ कर लेते है और फिर फौज के पास बेचने के लिए ले आते है......"

बर्नियर का यह विचार या खयाल सही था कि पूर्व की तमाम चीजो का आधार—वह तुर्की, फारस, हिन्दुस्तान की बात करता है—यह है कि जमीन किसी की निजी सम्पत्ति नहीं है। यही असली कुन्जी है, यहाँ तक कि पूर्व के लोगों के स्वर्ग की भी यही कुन्जी है। ......

मार्क्स के नाम एंगेल्स का पत्र

मैनचेस्टर, ६ जून, १८५३

.......भूमि का किसी की निजी सम्पत्ति न होना ही दरअसल पूरे पूर्व को समझने की कुन्जी है। उसका राजनीतिक तथा धार्मिक इतिहास इसी मे निहित है। परन्तु यह हुआ कैसे कि पूर्व के लोगों का भूमि पर सामन्ती रूप में भी कभी स्वामित्व नही कायम हुआ ? मेरा खयाल है कि इसका मुख्य कारण वहाँ की जलवायु है। इसके साथ-साथ वहाँ की जमीन की विशेपता जुड़ी हुई है, विशेष तौर से रेगिस्तान के उन लम्बे-चौड़े इलाको की विशेपता जो सहारा से लेकर सीधे-सीधे अरब, फ़ारस, भारत तथा तातारी होते हुए एशिया के उच्चतम पठारों तक फैले हुए है। कृत्रिम सिचाई की व्यवस्था यहाँ खेती-वारी की पहली आवश्यकता है। और यह ऐसी चीज है जिसकी व्यवस्था या तो कम्यून या प्रान्त कर सकते है अथवा फिर केन्द्रीय सरकार कर सकती है।

पूर्वी देशों की किसी भी सरकार के निम्न तीन विभागो से अधिक विभाग कभी नही होते थे : वित्त विभाग (देश के अन्दर की लूट-पाट), युद्ध विभाग (देश के अन्दर और वाहर के दूसरे देशों की लूट-पाट), तथा सार्वजनिक निर्माण विभाग (पुनरुत्पादन के प्रवन्ध के लिए)। ब्रिटिश सरकार ने भारत मे पहले और दूसरे विभागों का कार्य अत्यन्त सकुचित-दिमागी के साथ किया है और तीसरे विभाग के काम को विल्कुल ही छोड दिया है। इसके फलस्वरूप, भारतीय कृपि नष्ट हुई

जा रही है। मुक्त प्रतियोगिता की व्यवस्था वहाँ अपने को पूर्णतया लांछित कर लेती है। सिंचाई की व्यवस्था के नष्ट होते ही भूमि को कृत्रिम रूप से खाद आदि डाल कर उपजाऊ बनाने की व्यवस्था का भी फौरन अन्त हो गया। अनोखी लगने वाली इस बात की सफाई भी इसी चीज़ से होती है कि वे पूरे इलाके के इलाके [पामीरा, पेट्रा, यमन के ध्वसावशेषो, मिस्र के क्षेत्रों, फ़ारस तथा हिन्दुस्तान के इलाके] जिनमे किसी जमाने मे हरी-भरी खेती लहराती थी अब क्यों एकदम बजर और वीरान हो गये है। इसी से इस बात का स्पष्टीकरण हो जाता है कि एक ही विनाशकारी युद्ध से एक पूरा देश शताब्दियो के लिये कैसे निर्जन बन गया है और कैसे उसकी सम्पूर्ण सभ्यता नष्ट-भ्रष्ट हो गयी है।

मेरा खयाल है कि इस मे भी दक्षिण अरब के उस व्यापार के विनाश का काफी हाथ है जो मुहम्मद से पहले वहाँ होता था और जिसे तुमने बिल्कुल ठीक ही मुसलमानों की क्रान्ति का एक मुख्य कारण बताया है। ईसा के बाद की पहली ६ शताब्दियो के व्यापारिक इतिहास को मैं इतनी अच्छी तरह नही जानता कि इस बात का निर्णय कर सकूं कि फ़ारस के अन्दर से काले सागर तक जानेवाले और फारस की खाड़ी मे से होते हुए सीरिया तथा एशिया माइनर तक जानेवाले व्यापारिक मार्ग की अपेक्षा लाल सागर वाले मार्ग को जो ज़्यादा पसन्द किया गया था तो उसके पीछे दुनिया की आम भौतिक परिस्थितियो का कितना हाथ था।

परन्तु, जो भी हो, ससानिदों के अन्तर्गत फारस के साम्राज्य मे जो अमनो-अमान था और उसकी वजह से व्यापारियो के कारवो को अपेक्षाकृत जो अधिक सुरक्षा वहाँ प्राप्त थी उसका भी कुछ कम असर नही पडा होगा। इसके विपरीत, २०० और ६०० वर्षो के बीच यमन को अबीसीनियाइयो ने लगभग लगातार अपने कब्जे मे रखा था, उस पर उन्होने हमले किये थे और उसे लूटा था। दक्षिण अरब के शहर, जो

रोमनों के काल तक खूब गुलज़ार थे, सातवी शताव्दी मे पहुँचकर बिल्कुल उजड़ गये थे और खण्डहर वन गये थे। ५०० वर्षों के अन्दर ही पडोसी वेदूइंयों ने अपने जन्म के सम्वन्ध मे सर्वथा काल्पनिक, कृत्रिम परम्पराओं को अपना लिया था (देखिए, कुरान तथा अरव के इतिहास-कार, नोवायरी की रचनाएँ)। उन भागो मे जिस वर्णमाला मे लिखे हुए शिलालेख मिले है वह भी लगभम एकदम अज्ञात हो चुकी थी—यद्यपि दूसरी कोई और वर्णमाला भी वहाँ नहीं थी। इसका मतलव हुआ कि लिखाई भी विस्मृति के गर्भ मे खो गयी थी।

व्यापार की आम परिस्थितियो द्वारा उन्हे उनके स्थान से "हटा दिये जाने" की वात के अलावा, इस तरह की चीज़ों का अर्थ यह होता है कि उनकी इस स्थिति की ज़िम्मेदारी किसी एकदम सीधी-सीधी हिंसापूर्ण विनाशकारी घटना पर भी होगी। इस चीज़ को सिर्फ़ अवीसी-नियाइयो के हमले के आधार पर ही समझा जा सकता है। मुहम्मद से लगभग ४० वर्ष पहले ही अवीसीनियाइयो को वहाँ से निकाला जा सका था। स्पष्ट है कि उठती हुई अरव राष्ट्रीय चेतना का यही पहला काम था। इस काम में उत्तर से होने वाले फारस के उन हमलो से भी अवश्य मदद मिली होगी जो लगभग मक्का तक वढते चले गये थे। अगले कुछ दिनों मे स्वयम् मुहम्मद के इतिहास का मैं अध्ययन करूँगा; परन्तु, अभी तक मुझे यही लगता है कि यह चेतना वहाँ के शहरो मे वसे हुए परन्तु पतन की ओर वढते हुए किसानों के खिलाफ़ वेदूईं लोगो की प्रतिक्रिया की तरह की ही एक चीज़ थी। ये किसान भी अपने धर्म के मामले मे उस समय वहुत पतित हो गये थे ; अपनी भ्रष्ट प्रकृति-पूजा के साथ भ्रष्ट यहूदी धर्म तथा ईसाई धर्म को भी उन्होने मिला लिया था।

वूढ़े वर्नियर की रचनाएँ वास्तव में वहुत वढ़िया हैं। उस गम्भीर, सुलझे हुए दिमाग वाले वूढे फ्रान्सीसी की किसी चीज़ को फिर से पढ़ने में वास्तविक आनन्द मिलता है; ऐसा लगता है कि विना इस वात को स्वयम् जाने हुए कि वह किस तरह सचाई का उद्घाटन कर रहा है, वह वरावर बिल्कुल ठीक वात को वताता चला जाता है......

कार्ल मार्क्स

चर्च-विरोधी आन्दोलन—हाइड पार्क में प्रदर्शन

लन्दन, २५ जून, १८५५

यह एक पुरानी और ऐतिहासिक रूप से प्रमाणित चीज है कि जीर्ण-शीर्ण सामाजिक शक्तियां — जिनमे सत्ता के सारे लक्षण ऊपरी तौर से अब भी मौजूद होते है और जो उनके अस्तित्व के आधार के सड कर नष्ट हो जाने के बहुत दिनो बाद तक उसी तरह जमी रहती है — अपनी मृत्यु-पीडा से पहले एक बार फिर अपनी सारी शक्ति बटोर कर, रक्षात्मक की जगह आक्रमणात्मक कार्रवाई करने की कोशिश करती हैं, रास्ते से हट जाने के बजाय चुनौती देने की कोशिश करती है, और उन पुरानी मान्यताओ के आधार पर, जिनके बारे मे न केवल सशय पैदा हो गया है बल्कि जिनका तिरस्कार किया जा चुका है, अत्यन्त अति-वादी निष्कर्ष निकालने की चेष्टा करती है। उनकी हालत कुछ उन वारिसो जैसी होती है जो मृत्यु की सूचना के छपने तथा वसीयतनामे के पढे जाने से पहले ही विरासत को लेकर आपस मे झगडने लगते हैं! अग्रेजो के अल्प-तत्र की आज यही हालत है। यही हालत गिरजे (ईसाई

धर्म-संघ) की— उसकी जुडुआ बहिन की है। स्थापित गिरजे (ईसाई धर्म-सघ) के उच्च और निम्न दोनों भागों के अन्दर पुनर्संगठन करने की अनगिनत कोशिशें की जा चुकी है। इन कोशिशो का उद्देश्य यह था कि विरोधियो के साथ समझौता कर लिया जाय और फिर राष्ट्र के अधार्मिक जन-समुदाय का विरोध करने के लिए एक मजबूत शक्ति खडी कर दी जाय। धार्मिक जोर-जबर्दस्ती के कई कानून जल्दी-जल्दी पास कर दिये गये है। पुण्यात्मा शैफ्ट्सबरी के अर्ल ने, जिन्हे पहले लॉर्ड ऐशले कहा जाता था, लार्ड्स सभा मे इस बात का भारी दुखड़ा रोया है कि अकेले इगलैण्ड मे ५० लाख आदमी ऐसे है जो न केवल गिरजे से पूर्णतया विमुख हो गये है, बल्कि ईसाई धर्म से ही एकदम दूर चले गये है। इसके जवाब मे स्थापित गिरजा (ईसाई धर्म-सघ) कहता है— "*Compelle intrare* !"* बाकी अपना काम पूरा करने का भार वह लार्ड ऐशले तथा उन्ही के तरह के भिन्न मतावलम्बी, धर्मान्ध तथा बकवासी धर्मात्माओ के ऊपर डाल देता है।

धार्मिक जोर-जबर्दस्ती का पहला कदम बियर बिल के रूप मे सामने आया था। इस बिल ने सार्वजनिक मनोरजन के तमाम स्थानो को इतवार के दिन बन्द करवा दिया। वे केवल ६ से १० बजे रात तक खुले रह सकते थे। इस बिल को सभा से उसकी एक ऐसी बैठक के बाद चोरी से पास करवा लिया गया था जिसमे बहुत कम सदस्य मौजूद थे। यह भी तब हो सका था जब कि धर्मात्माओ ने लन्दन के बड़े-बडे सार्वजनिक मनोरजन के स्थानो के स्वामियो के समर्थन को इस बात का आश्वासन देकर ख़रीद लिया था कि लाइसेन्स की व्यवस्था बदस्तूर जारी रहेगी, अर्थात् बडे पूजीपतियो की इजारेदारी जैसी की तैसी ही बनी रहेगी। इसके बाद, इतवार को व्यापार का बिल आया। कामन्स मे इस बिल का तीसरा पाठ पूरा हो चुका है, दोनो सदनो के कमीशनो ने भी उसकी

* जोर— जबदस्ती से काम लो!

अलग-अलग धाराओ पर विचार कर लिया है। इस नये दमनकारी क़ानून को भी बड़े पूजीपतियो का मत इसीलिए प्राप्त हो सका है कि इतवार के दिन केवल छोटे दूकानदार ही अपनी दूकाने खुली रखते है और बड़ी दूकानो के स्वामी छुटभइयो की इतवार की इस प्रतियोगिता को पार्लियामेन्टरी तरीको से ख़त्म करवा देने के लिये एकदम राज़ी है! दोनो ही बिलो के सम्बन्ध मे गिरजे ने इजारेदार पूंजीपतियो के साथ मिलकर षड्यन्त्र किया है; परन्तु, विशेषाधिकारी वर्गों के अन्त.करणो को शान्ति प्रदान करने के लिए, निम्न वर्गों को दण्ड देने के लिए दोनो के सम्बन्ध में धार्मिक कानूनो की भी व्यवस्था कर दी गयी है। बियर बिल ने अभिजात वर्गीय क्लबो को कोई नुकसान नही पहुँचाया है, उसी तरह जिस तरह कि इतवार के व्यापारिक बिल से सभ्य समाज की इतवार वाली हरकतो पर कोई आँच नही आयी है। मज़दूरो को शनिवार को काफी देर मे मजदूरी मिलती है; इतवार को केवल उन्ही के लिए दूकानें खुलती हैं। ख़रीद-फरोख्त का अपना काम, चाहे वह कितना ही छोटा हो, इतवार को केवल उन्ही लोगो को करना पड़ता है। इसलिये यह बिल अकेले उन्ही के खिलाफ है। अट्ठारहवी शताब्दी मे फ्रान्स का अभिजात वर्ग कहा करता था: हमारे लिए वाल्टेयर हैं; जनता के लिए पूजा-नमाज़ तथा करो का दशांश! १९वी शताब्दी मे अंग्रेज़ी अभिजात वर्ग कहता है: हमारे लिए धार्मिक शब्द हैं; जनता के लिए ईसाई धर्म का अमल! ईसाई धर्म के महान् सन्त ने आम जनता की आत्माओ के उद्धार के लिए स्वयं अपने शरीर को यातना दी थी; आधुनिक, शिक्षित सन्त स्वयम् अपनी आत्मा के उद्धार के लिए आम जनता के शरीरों को यातनाएँ देते है।

ऐय्याश, पतनशील तथा आनन्दभोगी अभिजात वर्ग के शराब के बडे-बड़े कारखानेदारो तथा इजारेदार थोक व्यापारियो के घृणित मुनाफो के सहारे टिके हुए गिरजे के इस गठबन्धन के विरुद्ध हाइड पार्क मे कल एक जन-प्रदर्शन हुआ था। "योरप के प्रथम सज्जन पुरुष" यानी जौर्ज

चतुर्थ की मृत्यु के वाद से इस तरह का प्रदर्शन लन्दन में कभी नही हुआ था। प्रदर्शन को हमने शुरू से आखिर तक देखा था और हमारा ख़याल है कि हमारे इस कथन में अतिशयोक्ति नही है कि हाइड पार्क में कल से अंग्रेज़ी क्रान्ति का शुभारम्भ हो गया। इस "ग़ैर-पार्लियामेन्टरी," "पार्लियामेन्ट के वाहर के" और "पार्लियामेन्टरी प्रथा के विरोधी" प्रदर्शन को क्राइमिया से आने वाली नवीनतम खवरो से और भी अधिक शक्ति प्राप्त हो गयी थी।

इतवार के व्यापार विल के पिता लार्ड रौवर्ट ग्रासवेनर हैं। उनसे जब इस विल के सम्वन्ध मे यह कहा गया कि यह विल केवल गरीवो के विरुद्ध है, धनी वर्गों के विरुद्ध नहीं, तो उन्होने फर्माया कि "अभिजात वर्ग के लोग अधिकाशतया इतवारो के दिन अपने नौकरो और घोड़ो का इस्तेमाल नही करते।" पिछले कुछ दिनो से वडे-वड़े अक्षरों में लन्दन की तमाम दीवालो पर निम्न घोषणा का एक पोस्टर चिपका हुआ है। इस पोस्टर को चार्टिस्टों ने निकाला है :

> "नये इतवार के विल ने अख़बारों को पढ़ने, दाढी वनवाने, सिगरेट पीने, खाने-पीने तथा हर प्रकार का मनोरंजन और आहार प्राप्त करने की, अर्थात् उस हर भौतिक तथा आत्मिक चीज को प्राप्त करने पर वन्दिश लगा दी है जिसका ग़रीव लोग वर्तमान काल मे अभी तक उपभोग करते रहे है। यह देखने के लिए कि अभिजात वर्ग कितनी धार्मिकता के साथ विश्राम का दिन मनाता है और उस दिन अपने नौकरों और घोड़ो से काम न कराने के लिए—जैसा कि लार्ड रौवर्ट ग्रॉसवेनर ने अपने भाषण में कहा था—वह कितना विकल रहता है, इतवार के तीसरे पहर, हाइड पार्क मे, राजधानी के कारीगरों, मज़दूरों तथा आमतौर से 'निम्न वर्गो के लोगो' की एक खुली सभा होगी। सभा 'सर्पेन्टाइन' (हाइड पार्क की एक छोटी नदी) के दाहिने तट पर, कैन्सिंगटन गार्डेन की तरफ, तीन वजे होगी। सभा में आइये और अपनी

बीवियों और बच्चो को लाइये जिससे कि अपने से 'बड़े लोगों' के उदाहरण से वे भी लाभ उठा सकें !"

ध्यान में रखना चाहिए कि पेरिसवासियों के लिए लौंगशाँ* का जो महत्व है, वही महत्व हाइड पार्क के अन्दर सर्पेन्टाइन के किनारे-किनारे जाने वाली सड़क का अंग्रेजो के उच्च समाज के लिए है। वह एक ऐसा स्थान है, जहाँ तीसरे पहर, खासतौर से इतवार के दिन, वे अपने शानदार सजे-सजाये घोड़ो और बग्घियों का प्रदर्शन करते हैं। बग्घियों के पीछे उनके सेवकों की सेना चलती है। ऊपर के इश्तहार से यह बात समझ में आ जायगी कि पादरीवाद के विरुद्ध चलने वाले संघर्ष ने भी इंगलैण्ड मे वही रूप अख़्तियार कर लिया है जो वहाँ का हर अन्य गम्भीर सघर्ष अख़्तियार कर लेता है — धनी लोगों के विरुद्ध गरीबों के, अभिजात वर्ग के विरुद्ध जनता के, अपने "बड़े लोगों" के विरुद्ध "निम्न वर्गों" के वर्ग-संघर्ष का रूप।

तीन बजे हाइड पार्क के विशाल हरे-भरे मैदान में सर्पेन्टाइन के दाहिने तट पर, जहाँ सभा की घोषणा की गयी थी वहाँ लगभग ५० हज़ार आदमी इकट्ठा हो गये थे। धीरे-धीरे वह भीड बढ़कर कम से कम दो लाख हो गयी, क्योंकि दूसरे तट से भी काफी लोग आ गये थे। घनी भीड के अन्दर से धक्के खाते हुए इधर से उधर जाते चारो तरफ लोगो के रेले नज़र आते थे। पुलिस काफी तादाद मे मौजूद थी। स्पष्ट रूप से वह इस बात की कोशिश कर रही थी कि सभा के संगठनकर्त्ताओ को उस वस्तु से वचित कर दे जिसकी पृथ्वी को हिला देने के लिए आर्कमडीज़ ने माँग की थी : अर्थात्, वह कोशिश कर रही थी कि खड़े होने की उन्हे कही जगह न मिल सके। अन्त मे, एक काफी बड़ी भीड़ दृढतापूर्वक एक जगह खड़ी हो गयी और चार्टिस्ट ब्लाई ने अपने को उसका अध्यक्ष बना लिया और भीड़ के बीचो-बीच एक ऊँची जगह

---

* पेरिस के बाहर का चक्कर जहाँ रईस लोग घोड़ों या गाड़ियों पर सैर करने जाते हैं।

पर खड़ा हो गया। ज्यों ही उसने अपना भाषण शुरु किया त्यो ही अपने ४० डन्डाधारी सिपाहियो के साथ पुलिस इन्सपेक्टर बैंक्स वहाँ जा पहुँचा। उसने ब्लाई को बताया कि पार्क परम महारानी की निजी सम्पत्ति है; उस पर किसी मीटिंग की इजाजत नही दी जा सकती। थोड़ी देर तक उनके बीच बातचीत होती रही जिसके दौरान ब्लाई ने उसे यह समझाने की कोशिश की कि पार्क सार्वजनिक सम्पत्ति है और बैंक्स ने उसे यह बताया कि अगर मीटिंग करने के अपने इरादे को वह पूरा करने की कोशिश करेगा तो वह उसे गिरफ़्तार कर लेगा, क्योंकि इस सम्बन्ध मे उसे सख्त आदेश थे। इसके बाद, आस-पास के विशाल जन समुदाय के शोर-गुल के बीच, खूब जोर से चिल्लाते हुए ब्लाई ने एलान किया :

"महारानी की पुलिस कहती है कि हाइड पार्क सम्राज्ञी की निजी सम्पत्ति है और परम महारानी इस बात के लिए नही तैयार हैं कि उनकी ज़मीन का जनता अपनी सभाओ के लिए इस्तेमाल करे। इस लिए अब हम सब लोग ऑक्सफोर्ड मार्केट चलें।"

"महारानी की ईश्वर रक्षा करे!" के ताने-भरे नारे लगाती हुई भीड़ वहाँ से ऑक्सफोर्ड मार्केट की तरफ चल दी। किन्तु इसी बीच चार्टिस्टो की कार्य-कारिणी का एक सदस्य फिनलैण्ड, कुछ दूर पर खड़े एक पेड की तरफ दौड गया। पलक मारते ही उसके इर्द-गिर्द इतनी घनी भीड़ जमा हो गयी कि पुलिस ने उसे पकड़ने की कोशिश छोड दी।

फिनलैण्ड ने कहा, "हफ्ते मे ६ दिन हमारे साथ गुलामो जैसा व्यवहार किया जाता है और सातवें दिन हमे जो थोड़ी सी आजादी मिलती है उसे भी पार्लियामेन्ट अब हमसे छीन लेना चाहती है। पाखण्डी पादरियो से मिले हुए ये अल्पतंत्रवादी तथा पूंजीपति क्राइमिया मे हमारे बेटों की अक्षम्य ढंग से हत्या करवा रहे हैं और उस पातक के प्रायश्चित्त के लिए अपने को कष्ट देने की जगह उल्टे हमें ही और यातनाएं देना चाहते है!"

हमने इस दल को यही छोड़ा और एक दूसरे दल की तरफ जा पहुँचे। वहाँ एक वक्ता जमीन पर लेटा हुआ था और इसी क्षैतिज स्थिति से अपने श्रोताओ के सामने भाषण कर रहा था। अचानक चारों तरफ से आवाजें सुनाई देने लगीं : "सड़क की तरफ चलो, बग्घियो की तरफ चलो!" इसी दर्म्यान लोगो ने घोडो और बग्घियो पर चलने वाले सज्जनों का अपमान करना शुरू कर दिया। सिपाहियो की सेना बराबर बढती जा रही थी — शहर से उनकी अधिकाधिक सख्या आती जा रही थी। पैदल चलने वाले लोगो को बग्घी की सड़क से वे बराबर इधर-उधर भगा रहे थे। इस प्रकार, पुलिस की हरकतो की वजह से सर्पेन्टाइन के किनारे-किनारे, एप्सले हाउस और रौटेन-रो से कैन्सिगटन गार्डेन तक — यानी पाव घटे से अधिक के रास्ते तक — दोनो तरफ लोगो की भारी भीड खडी हो गयी थी। दर्शको मे लगभग दो तिहाई मज़दूर थे और एक-तिहाई मध्यम वर्ग के लोग। उनके साथ उनकी औरतें और बच्चे भी थे। कोमलागी महिलाओ और भद्र पुरुषो का जुलूस, "कामन्स सभा तथा लार्ड्स सभा के सदस्यो" का जुलूस इस समय शान से लोगो का निरीक्षण करता हुआ नही निकल गया, बल्कि उस रगमच पर उसे अनिच्छापूर्वक नाटक के दुष्ट पात्रो जैसी भूमिका अदा करना पडी। वे चार घोडो वाली अपनी ऊँची-ऊँची बग्घियो मे जा रहे थे; उनकी बग्घियो के आगे और पीछे उनके वर्दीधारी सेवक खडे थे और, निरपवाद रूप से, उनके साथ-साथ घोडो पर सवार कुछ बुज़ुर्गवार थे जो शराब के नशे की वजह से ढीले दिखलाई पडते थे। उनके ऊपर सडक के दोनो तरफ से मज़ाकिया, ताने भरी, तरह-तरह की फब्तियाँ कसी जा रही थी। इस काम के लिए अग्रेजी से अधिक सम्पन्न दूसरी भाषा नही है। क्योंकि यह "संगीत गोष्ठी" बिना किसी तैयारी के ही शुरू हो गयी थी, इसलिए उसमे बाजो की कमी थी। अस्तु, सहगान गाने वालो के पास केवल उनके मुँह थे और उन्हे अपने को केवल कण्ठ-सगीत तक ही सीमित रखना पडा था। और वह पूरे शैतानो की सगीत-मण्डली थी . चारो दिशाओ से घुडघुड़ाने, छी-छी करने,

दूसरी तरफ़ से किसी ने जवाबी जुमला कसा, "वह भजनानन्दी महात्मा है, महात्मा!". इसी बीच, राजधानी के बिजली के तारो ने तमाम पुलिस स्टेशनों को सूचित कर दिया था कि हाइड पार्क मे दगा होने वाला है। पुलिस के नाम आदेश जारी हो गया कि फ़ौजी कार्रवाइयो के लिए वह फौरन मैदान मे जमा हो जाय। थोड़ी ही देर मे दिखलायी दिया कि एप्सले हाऊस से कैन्सिगटन गार्डेन्स तक सडक के दोनो तरफ खडी जनता की भीड के बीच से पुलिस के दस्ते पर दस्ते थोडी-थोडी देर पर चले आ रहे थे। ये दस्ते सामने से निकलते तो भीड़ की तरफ से निम्न लोकप्रिय तराने से उनका स्वागत किया जाता :

कहाँ गयीं मुर्गियाँ ?

बोलो पुलिस की वर्दियाँ ?

हाल मे क्लर्कनवैल में एक सिपाही ने कुछ मुर्गियो की चोरी की थी। इस तराने मे उसी चोरी का, जिसकी काफ़ी शोहरत हो चुकी है, इशारा था।

तीन घटे तक यही नजारा रहा। यह काम केवल अग्रेजो के ही फेफडे कर सकते थे। इस पूरे काड के दौरान, भिन्न-भिन्न दल भिन्न-भिन्न प्रकार की सम्मतियाँ व्यक्त कर रहे थे। कोई कह रहा था, "अभी तो बिस्मिल्ला है !", "यह तो हमारा पहला कदम है !" तो कोई दूसरा एलान कर रहा था, "हम इन सबसे नफरत करते है !" आदि। मज़दूरो के चेहरे तो क्रोध से तमतमा रहे थे, किन्तु मध्यम-वर्ग के बाबुओ की सूरतो पर आत्म-सन्तोष की ऐसी स्निग्ध मुस्कराहटे खिल रही थी जैसी कि इससे पहले कभी हमे देखने को नही मिली थी। ख़त्म होने से थोड़ी देर पहले प्रदर्शन के अन्दर हिंसा की प्रवृत्ति ने ज़ोर पकड़ा। बग्घियों को डरवाते हुए बेंत हिलाये जाने लगे और भिन्न-भिन्न प्रकार की आवाज़ों के बीच से "तुम बदमाश हो !", "लुच्चे हो !" की आवाज़े सुनाई देने लगी। तीन घटे की इस पूरी अवधि में उत्साही चार्टिस्ट लोग, मर्द और स्त्रियाँ, भीड के अन्दर

घुसकर अपने पर्चे बाँटते रहे थे। इन पर्चों पर बड़े-बड़े अक्षरों मे लिखा था :

"चार्टिस्ट आन्दोलन का पुनर्संगठन !"

"अगले मंगल, यानी २६ जून को फ्रायर स्ट्रीट, डाक्टर्स कामन्स में स्थित साहित्य तथा विज्ञान के संस्थान में एक विशाल सार्वजनिक सभा होगी। चार्टिस्ट आन्दोलन का पुनर्संगठन करने के लिए राजधानी में होने वाले सम्मेलन के लिए यह सभा प्रतिनिधि चुनेगी। सभा मे प्रवेश निःशुल्क होगा।"

आज के लदन के अधिकाश अखबारो मे हाइड पार्क की घटनाओं का केवल ज़रा-सा विवरण है, लार्ड पॉमर्स्टन के पत्र "मौर्निंग पोस्ट" के अलावा, किसी और अख़बार ने सम्पादकीय लेख भी अभी तक उनके विषय मे नही लिखे हैं।

"मौर्निंग पोस्ट" का कहना है कि "हाइड पार्क में एक ऐसी चीज़ हुई है जो अत्यन्त शर्मनाक तथा खतरनाक दोनो है; कानून तथा मर्यादा दोनो का खुले आम उल्लंघन किया गया है—विधानाग के मुक्त कार्य मे शारीरिक बल के द्वारा अवैध रूप से हस्तक्षेप किया गया है।" उसने माग की है कि, "इस दृश्य के अगले इतवार को फिर दोहराय जाने की, जैसी कि धमकी दी गयी है, हरगिज, हरगिज़ इजाज़त नही दी जानी चाहिए।"

परन्तु, साथ ही साथ, वह यह भी कहता है कि इस शैतानी के लिए केवल "हठी" लॉर्ड ग्रॉसवेनर "जिम्मेदार" है। "जनता के न्यायपूर्ण रोप को" उन्होने भडका दिया है। यह पत्र इस बात को ऐसे कह रहा है जैसे कि स्वयम् पार्लियामेन्ट ने लार्ड ग्रासवेनर के बिल को पूरे तीन बार पढ़कर पास न किया हो ! अथवा, क्या उन्होने भी "विधानांग के मुख्य कार्य को शारीरिक बल के द्वारा" हस्तक्षेप करके प्रभावित किया था ?

कार्ल मार्क्स

पूँजी

पुस्तक १

(अवतरण)[४९]

........धार्मिक जगत् वास्तविक जगत् का मात्र प्रतिबिम्ब है। और एक ऐसे समाज के लिए, जो मालो के उत्पादन की व्यवस्था पर आधारित है, जिसमें आम उत्पादक अपनी पैदावारो को माल तथा मूल्य मान कर एक दूसरे के साथ सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करते है और, इस प्रकार, अपने व्यक्तिगत निजी श्रम को सजातीय मानव श्रम का सर्वमान्य (आदर्श) रूप देते हैं, निराकार मानव की उपासना करने वाला ईसाई धर्म, विशेष रूप से अपने पूंजीवादी — प्रोटेस्टेन्टवादी, ईश्वरवादी रूपो मे--धर्म का सबसे उपयुक्त रूप है। प्राचीन एशियाई तथा अन्य प्राचीन उत्पादन पद्धतियो मे हम देखते है कि पैदावारो को मालो में परिवर्तित करने की क्रिया का गौण स्थान होता है। और इसीलिए, मालो के उत्पादको मे मनुष्यों के परिवर्तन की क्रिया का भी गौण स्थान होता है। परन्तु, आदिम समाज-व्यवस्थाएँ अपने विघटन के ज्यो-ज्यो अधिकाधिक समीप पहुँचती जाती है त्यो-त्यो, पैदावारो के मालों मे परिवर्तन की, और, इसलिए, मनुष्यो के मालो के उत्पादको मे परिवर्तन की क्रिया अधिकाधिक महत्व धारण करती जाती है। जिन्हे सही मानो

में व्यापार करने वाले राष्ट्र कहा जा सकता है वे प्राचीन दुनिया में, इधर-उधर केवल रिक्त स्थानो (दरारों, आदि) मे ही पाये जा सकते थे। उसी तरह जिस तरह कि एपीक्यूरस के देवता केवल दोनों लोकों के बीच, अधर मे मिलते हैं, अथवा जिस तरह कि यहूदी केवल पोलिश समाज के रन्ध्रों मे पाये जाते है ! पूँजीवादी समाज की तुलना में, उत्पादन के वे प्राचीन सामाजिक संगठन अत्यन्त सरल तथा निर्मल थे। परन्तु उनका आधार या तो उस मानव का अपरिपक्व व्यक्तिगत विकास होता था जो अभी तक अपनी उस नाल को नही तोड़ पाया था जिससे कि उस आदिम क़बीलाई समाज के अन्दर अपने अन्य सहचरों से वह एक सूत्र मे बँधा रहता था, या फिर वे प्राचीन सामाजिक संगठन सीधे-सीधे अधीनता के सम्बन्धों पर आधारित होते थे। इस तरह के सामाजिक सगठन केवल तभी पैदा हो सकते हैं और क़ायम रह सकते हैं जब कि श्रम की उत्पादक-शक्ति का एक निम्न अवस्था से आगे विकास न हुआ हो, और, जब कि, इसी वजह से, भौतिक जीवन के क्षेत्र में मानव-मानव तथा मानव और प्रकृति के बीच के सामाजिक सम्बन्ध भी इसी निम्न अवस्था के अनुरूप अत्यन्त संकुचित हो। प्रकृति-पूजा की प्राचीन परम्परा तथा जनता के धर्मो के अन्य तत्वों के अन्दर यही संकीर्णता प्रतिबिम्बित दिखलायी देती है। जो भी हो, किन्तु वास्तविक जगत् का धार्मिक प्रतिबिम्ब अन्तिम रूप से तभी नष्ट हो सकता है, जब कि नित-दिन के जीवन में अपने अन्य साथियों तथा प्रकृति के साथ मानव का जो व्यावहारिक सम्बन्ध होता है वह पूर्णतया स्पष्ट तथा बुद्धिसंगत हो जाय।

समाज की जीवन-क्रिया भौतिक उत्पादन की क्रिया पर आधारित होती है। समाज की यह जीवन क्रिया अपने रहस्यात्मक अवगुण्ठन को उतार कर तब तक नहीं फेक पाती जब तक कि उत्पादन की यह क्रिया मुक्त रूप से संघबद्ध मानवों की क्रिया नही बन जाती और जब तक कि, एक निश्चित योजना के अनुसार, सचेत रूप से वे उसका संचालन नहीं करने लगते। किन्तु, इसके लिए आवश्यक होता है कि समाज का

एक निश्चित भौतिक आधार कायम हो गया हो, अथवा उसके अस्तित्व की कुछ विशिष्ट परिस्थितियाँ स्थापित हो गयी हों, और ये चीजें विकास की एक लम्बी तथा कष्टदायिनी क्रिया की स्वयम्-स्फूर्त उपज होती हैं।

राजनीतिक अर्थशास्त्र ने असदिग्ध रूप से मूल्य तथा उसके परिमाण का विश्लेषण किया है — यह विश्लेपण चाहे कितना ही अपूर्ण हो। — उसने ढूँढ निकाला है कि इन रूपो के नीचे क्या छिपा हुआ है। परन्तु यह प्रश्न राज़नीतिक अर्थशास्त्र ने एक वार भी कभी नही पूछा है कि श्रम को उसकी पैदावार के मूल्य के रूप मे तथा श्रम काल को उस मूल्य के परिमाण के रूप मे क्यो पेश किया जाता है ! इन सूत्रो पर इस चीज की स्पष्ट छाप लगी हुई है कि उनका सम्वन्ध समाज की एक ऐसी अवस्था से है जिसमे इसके वजाय कि मनुष्य उत्पादन की क्रिया का नियत्रण करे, उत्पादन की क्रिया स्वयम् उस पर शासन करती है। पूँजीवादी वुद्धि को लगता है कि ये सूत्र स्वयं प्रकृति की ही देन है - वे वैसी ही स्वयम्-स्पष्ट अनिवार्यता है जैसा कि उत्पादक श्रम स्वय एक अनिवार्यता है। इसलिए सामाजिक उत्पादन के उन स्वरूपो की तरफ जो पूँजीवादी स्वरूप के उदय से पहले हुए थे, पूँजीपति वर्ग का दृष्टिकोण वहुत कुछ उसी प्रकार का होता है जिस प्रकार का गिरजे के पादरियो का ईसाई धर्म से पहले के धर्मो की तरफ होता है......

*　　*　　*　　*

......प्राविधिकी का एक आलोचनात्मक इतिहास तैयार किया जाय तो उससे स्पष्ट हो जायगा कि १८वी शताव्दी के आविष्कार किसी एक आदमी के कार्य नही है। अभी तक ऐसी कोई किताव नही तैयार की गयी है। डारविन ने हमारा ध्यान प्रकृति की प्राविधिकी के इतिहास की तरफ, अर्थात्, पौदो तथा पशुओ के अगो के निर्माण के इतिहास की तरफ दिलाया था। उनके जीवन को कायम रखने के लिए उनके यही

अंग उत्पादन के औज़ारों का काम करते है। पर क्या मानव के उत्पादक अंगों के इतिहास की तरफ, उन अंगों के इतिहास की तरफ़ जो तमाम सामाजिक संगठन के भौतिक आधार है, उतना ही ध्यान देना जरूरी नही है ? और क्या ऐसे इतिहास का तैयार करना अपेक्षाकृत आसान न होगा— क्योंकि, जैसा कि वीको कहता है, मानव इतिहास और प्राकृतिक इतिहास मे यह अन्तर है कि मानव इतिहास की रचना तो हमने की है, किन्तु प्राकृतिक इतिहास की रचना हमने नही की है ? प्राविधिकी इस बात को बतला देती है कि मनुष्य प्रकृति से किस तरह काम लेता है, उत्पादन की वह कौन सी क्रिया है जिसके माध्यम से वह अपने जीवन को कायम रखता है। और फिर इसी से वह उसके सामाजिक सम्बन्धो के निर्माण की पद्धति को तथा इन सामाजिक सम्बन्धों से उत्पन्न होने वाली मानसिक धारणाओं के निर्माण की पद्धति को भी स्पष्ट कर देती है। धर्म का भी वह प्रत्येक इतिहास, जो इस भौतिक आधार को ध्यान मे नही रखता, अन्धा होता है। वास्तव में, विश्लेषण के द्वारा धर्म की धुँधली सृष्टियों के पार्थिव आधार को ढूँढ़ निकालना अपेक्षाकृत कही अधिक सहल है। इसके विपरीत, जीवन के वास्तविक सम्बन्धों के आधार पर इन सम्बन्धों के आसमानी स्वरूपों का अनुसन्धान कर लेना इतना सहल कार्य नही है। दूसरा तरीक़ा ही एकमात्र भौतिकवादी, और इसलिए, एकमात्र वैज्ञानिक तरीका है। प्रकृति विज्ञान के अभौतिक (भाववादी) भौतिकवाद की कमजोरियाँ, यानी उस भौतिकवाद की कमज़ोरियाँ, जो इतिहास तथा उसकी क्रिया को अलग करके वस्तुओं पर विचार करता है, स्वयं उसके वक्ताओं की हवाई तथा वैचारिक धारणाओ से त्यों ही स्पष्ट हो जाती हैं ज्यों ही वे अपने विशेष क्षेत्र की सीमाओ से जरा भी आगे जाने का साहस करते हैं !

* * * *

........पाठक यदि मुझे माल्थस की याद दिलायेगा — जिसका जनसंख्या के सम्बन्ध में निबन्ध १७६८ में प्रकाशित हुआ था, तो मैं उससे कहूँगा कि माल्थस की यह रचना, जिस रूप मे वह पहले-पहल प्रकाशित हुई थी, असलियत मे, डे फो, सर जेम्स स्टुअर्ट, टाऊनसेण्ड, फ्रैन्कलिन, वैलेस, आदि की रचनाओ की एक स्कूली लडके के स्तर की, सतही चोरी है। उसका खुद का सोचा एक भी वाक्य उसमे नही है ! इस पुस्तिका को लेकर जो जबर्दस्त सनसनी फैल गयी थी उसकी एकमात्र वजह दलगत स्वार्थ थे। इंगलैंड मे फ्रान्सीसी क्रान्ति के उत्कट हिमायती पैदा हो गये थे। "जनसख्या के सिद्धान्त" की रचना धीरे-धीरे १८वी शताब्दी मे हुई थी; और फिर, एक ज़बर्दस्त सामाजिक संकट के दर्म्यान, बहुत ढिंढोरा पीट कर एलान कर दिया गया था कि यह सिद्धान्त वह सजीवनी घूटी है जिससे कन्डोरसेट, आदि की शिक्षाओ के ज़हर को तुरन्त खत्म कर दिया जा सकता है। इसलिए इंगलैण्ड के धनिकतत्र ने दोनो हाथ फैलाकर अत्यन्त आह्लाद से उसका स्वागत किया था। उसका खयाल था कि मानव विकास की तमाम अभिलाषाओ को नष्ट करने का वह एक अचूक साधन था। अपनी इस अप्रत्याशित सफलता से मॉल्थस स्वयम् चकित हो गया। फिर उसने अपनी पुस्तक को छिछले ढग से इधर-उधर से इकट्ठा की गयी सामग्री से पाटना शुरू कर दिया। उसने उसमे नया मसाला जोड़ दिया—ऐसा मसाला जिसका खुद उसने अनुसधान नही किया था, बल्कि जिसे इधर-उधर से उसने हथिया लिया था। इस बात को भी नोट कीजिए : यद्यपि माल्थस इगलैंड के राजकीय गिरजे का एक पादरी था, किन्तु मठवासियो की तरह उसने ब्रह्मचर्य का व्रत ले रखा था। प्रोटेस्टेण्ट मतवादी कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय का फैलो (स्नातक) बनने के लिए यह एक आवश्यक शर्त थी जो हर व्यक्ति को पूरी करनी पड़ती थी। "Socios collegiorum maritos esse non permittimus, sed statim postquam quis uxorem duxerit,

socius collegii desinat esse." ("कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय कमीशन की रिपोर्ट", पृष्ठ १७२)। इस दृष्टि से दूसरे प्रोटेस्टेन्ट पादरियो की अपेक्षा माल्थस की स्थिति ज़्यादा अच्छी है। दूसरे प्रोटेस्टेन्ट पादरियो ने ब्रह्मचर्य वाले आदेश को ठुकरा दिया है और उसके स्थान पर, अपने विशेष इजीली व्रत के रूप मे, "फलो और सख्या की वृद्धि करो" के सिद्धान्त को अपना लिया है! इस सिद्धान्त को उन्होने इस मात्रा तक अपना लिया है कि आमतौर से जनसख्या की वृद्धि करने मे वे दरअसल एक अशोभनीय सीमा तक योग देते है। किन्तु, साथ ही साथ, मज़दूरो को वे "जनसख्या के सिद्धान्त" के सम्वध मे उपदेश देते है! यह खास वात है कि मनुष्य के आर्थिक पतन से सम्वधित प्रश्न को, आदि पुरुष द्वारा वर्जित फल के खा लेने से सम्वधित प्रश्न की, आवश्यक भूख से सम्वधित प्रश्न की, अथवा जैसा कि पादरी टाऊनसेण्ड ने परिहास-पूर्वक कहा है, "कामदेव की तीरो को कुन्द वनाने वाले प्रतिवन्धो" की समस्या से सम्वधित नाजुक प्रश्न की असली व्याख्या करने के काम पर प्रोटेस्टेन्ट धर्म-दर्शन के पादरियो ने, अथवा कहना चाहिए कि प्रोटेस्टेन्ट गिरजे के पादरियो ने अपना एकाधिकार कायम कर रखा था और अव भी क़ायम किये हुए है। वेनिस के वैरागी, ओरटिस को छोड़कर, जो एक मौलिक तथा चतुर लेखक था, जनसंख्या सम्वंधी सिद्धान्त के अधिकांशतर शिक्षक प्रोटेस्टेन्ट पादरी ही हैं। उदाहरण के लिए, ब्रुकनर की रचना *Theorie du Systeme animal* (पशुओ की जीवन-प्रणाली का सिद्धान्त), लीड, १७६७ को लीजिए। इसमें जनसंख्या के आधुनिक सिद्धान्त के सम्पूर्ण विषय पर पूर्ण रूप से विचार किया गया है। क्वैसने तथा उसके शिष्य ज्येष्ठ मिरावो के वीच जो क्षणिक लड़ाई हो गयी थी उससे भी इस सम्वन्ध मे नये विचार प्राप्त हुए थे। फिर पादरी वैलेस, पादरी टाऊनसेण्ड, पादरी माल्थस और उसके शिष्य, महापादरी टौमस चामर्स, आदि सव भी, जिन्होने इस विषय पर प्रकाश डाला था, प्रोटेस्टेन्ट मतवादी ही थे। इस विषय पर लिखने वाले दूसरे जो छुट-

भइये पादरी थे वे सब भी प्रोटेस्टेन्ट थे। राजनीतिक अर्थशास्त्र का अध्ययन पहले हौब्स, लौक, जैसे दार्शनिक किया करते थे, उसका अध्ययन टामस मूर, टेम्पुल, सुली, डेविट, नौर्थ, ला, वांडरलिंट, कैटीली, फ्रैन्कलिन जैसे व्यापारी तथा राजनीतिज्ञ किया करते थे, और, सबसे अधिक सफलता के साथ, उसका अध्ययन, विशेष रूप से पैटी, बॉरबन, मेन्डेविल्ल, क्वैसने जैसे चिकित्सा-शास्त्र से सम्बन्धित लोगो ने किया था। १८वी शताब्दी के मध्यकाल तक मे पादरी श्री टक्कर ने, जो अपने समय के एक प्रसिद्ध अर्थशास्त्री थे, धन-दौलत से सम्बन्धित इस विषय का अध्ययन करने के लिए लोगो से माफी माँग ली थी। किन्तु, बाद मे, और वास्तव मे तो "जनसख्या के" इसी "सिद्धान्त' के आविर्भाव के कारण, प्रोटेस्टेन्ट पादरियो की बन आयी थी। पैटी जनसख्या को ही धन-सम्पदा का आधार मानता था। वह, एडम स्मिथ की ही तरह पादरियो का खुला दुश्मन था। उसे पादरियो के इस हस्तक्षेप का जैसे पहले से ही आभास मिल गया था, इसलिए उसने कहा था कि "धर्म तभी सबसे अच्छी तरह फलता-फूलता है जब कि पादरियो को सबसे अधिक कष्ट दिया जाता है, ठीक उसी तरह जिस तरह कि कानून के बारे मे कहा जाता है कि वह तभी सबसे अच्छी तरह फलता-फूलता है जब कि उससे वकीलो का सबसे कम सम्बन्ध होता है।" इसलिए प्रोटेस्टेन्ट पादरियो को वह सलाह देता है कि वे सोचे कि उनके लिए क्या यही अच्छा न होगा कि हमेशा के लिए वे ईश-दूत पॉल का अनुसरण करे और ब्रह्मचर्य के द्वारा अपने तन को "कष्ट दे' और तै कर ले कि "ईसा मसीह के नाम पर अर्पण होने वाले निर्माल्य मे जितने चर्चमैनो का पेट भरने की गुजाइश है उससे अधिक चर्चमैनो की नस्ल वे न पैदा करेगे। जो कुछ चर्च (गिरजे) के नाम अर्पित है वह बट चुका है, और, इसलिए, इंगलैण्ड और वेल्स मे अगर लगभग केवल बारह हज़ार पादरियो के लिए स्थान है तो चौबीस हज़ार पादरियो की नस्ल खडी कर देना निरापद न होगा, क्योकि फिर जिन १२ हज़ार

लोगो के लिए कोई व्यवस्था न होगी वे अपने लिए जीविका प्राप्त करने के तरीके ढूँढेगे, और इस काम का सबसे आसान तरीका उनके लिए यह होगा कि लोगो को वे यह समझा दें कि जो बारह हज़ार पादरी गद्दियो पर जमे बैठे है वही उनकी आत्माओ में जहर घोल रहे है, अथवा वही उन्हे भूखो मार रहे है, तथा गलत रास्ता बताकर उनकी स्वर्ग-यात्रा के मार्ग मे बाधा डाल रहे है।" [पैटी, टैक्सों और चन्दो के सम्बन्ध मे एक ग्रंथ, लन्दन, १६६७, पृष्ठ ५७] अपने समय के प्रोटेस्टेन्ट पादरियो के सम्बन्ध मे एडम स्मिथ की क्या धारणा थी यह चीज़ निम्न घटना से स्पष्ट हो जायगी। "उनके मित्र, डेविड ह्यूम के जीवन, मृत्यु और दर्शन के सम्बन्ध में एडम स्थिम एल० एल० डी० के नाम एक पत्र", लेखक · "ईसाई कहे जाने वाले लोगो मे से एक" नामकी अपनी रचना के चतुर्थ सस्करण, ऑक्सफोर्ड, १७८४, मे नौविच के बिशप (बड़े लाट पादरी), डा० हौर्न ने एडम स्मिथ की भर्त्सना की थी क्योकि, मिस्टर स्ट्राहन के नाम प्रकाशित किये गये अपने एक पत्र मे, उन्होंने "अपने मित्र डेविड (अर्थात् ह्यूम) की याद को स्थायी बना दिया है; क्योंकि दुनिया को उन्होने बतलाया है कि "अपनी मृत्यु-शैय्या पर" भी किस प्रकार "ह्यम लूशियन को पढकर तथा ह्विष्ट (गंजफे का एक खेल) खेलकर अपना मनोरजन करते थे", और क्योकि ह्यूम के बारे मे उन्होने यहाँ तक लिखने की धृष्टता की है कि : "उनके जीवन-काल मे और उनकी मृत्यु के बाद से भी, उन्हे हमेशा एक ऐसा बुद्धिमान तथा सदाचारी पुरुष मैंने माना है जैसा कि दुर्बल मानवता, सम्भवतः, पैदा कर सकती है।" बिशप (बडा लाट पादरी) भयंकर आक्रोश से भरकर पूछता है . "महाशय, क्या आपके लिए यह उचित है कि एक ऐसे आदमी के चरित्र तथा आचरण को आप हमारे सामने 'एक पूर्णतया बुद्धिमान तथा सदाचारी व्यक्ति' के रूप में प्रस्तुत करें जो कि, लगता है कि, असाध्य रूप से उस सबके विरुद्ध था जिसे धर्म कहा जाता है, और जिसने आदमियो के अन्दर उसकी भावना को खतम करने,

कुचलने, तथा मिटा देने के प्रयत्न मे कोई चीज उठा नही रखी थी और जो कि, अगर उसका वश चलता, उसके नाम तक को इस तरह मिटा देता कि फिर उसकी कोई याद भी न करता"। (उपर्युक्त रचना, पृष्ठ ८) "किन्तु सत्य के प्रेमियो को निराश होने की आवश्यकता नही है। अनीश्वरवाद बहुत दिन नही चल सकता" (पृष्ठ १७)। एडम स्मिथ "मे भयानक दुष्टता भरी हुई थी। उसने पूरे देश मे अनीश्वरवाद का प्रचार किया था (अपनी रचना, "नैतिक भावनाओ के सिद्धान्त" के माध्यम से)। पूरे तौर पर देखने से, डाक्टर, तुम्हारा मतलब अच्छा है, किन्तु मेरा खयाल है कि इस वार तुम्हे सफलता नही मिलेगी। श्रीमान डेविड ह्यूम के उदाहरण मे तुम हमे यह समझाने की कोशिश करोगे कि पंस्त आत्माओ मे फिर से जोश भरने के लिए एक-मात्र धातु-पोषक औषधि के रूप मे अनीश्वरवाद ही काम दे सकता है, और मृत्यु के भय से बचाने का भी वही सबसे बढिया उपाय है वेबीलोन के विध्वसो को देखकर तुम हँस-मुस्कुरा सकते हो और उसके लाल सागर मे फेक दिये जाने पर पक्के फैरो (मिस्र के बादशाह) को बधाई दे सकते हो।" (पृष्ठ २१, २२) एडम स्मिथ के कालेज के दोस्तो मे मे एक व्यक्ति ने जो धर्म-परायण था, उनकी मृत्यु के बाद लिखा था "ह्यूम के लिए स्मिथ के हृदय मे जो गहरा स्नेह था.... उसकी वजह से वह ईसाई न बन सके.. .उनकी जब ऐसे ईमानदार आदमियो से मुलाकात हो जाती थी जिन्हे वे पसन्द करते थे ... तब फिर वे लोग जो कुछ भी कहते थे उस पर वे विश्वास कर लेते थे। अगर गुण सम्पन्न और चतुर होरौक्स से उनकी मित्रता हो गयी होती तो वे इस बात को भी मानने के लिए तैयार हो जाते कि खुले आकाश मे, कभी-कभी बिना बादलो के बीच मे आये भी, चॉद दृष्टि से ओझल हो जाता है ... अपने राजनीतिक सिद्धान्तो मे वे प्रजातत्रवाद के बहुत समीप थे।" (मधु-मक्खी, लेखक जेम्स एण्डरसन, १८ खण्ड, खण्ड ३, पृष्ठ १६६, १६५, एडिनबर्ग, १७९१-९३) पादरी टौमस चामर्स को

सन्देह है कि "अनुत्पादक मजदूरों" की श्रेणी का आविष्कार सभवत: केवल प्रोटेस्टेन्ट पादरियो को ही दृष्टि मे रखकर, तथा प्रभु ईसा की बगिया मे वे जो पुण्य-कार्य करते है उस सबको भुलाकर, एडम स्थिम ने किया था ....

फ्रेडरिक एंगेल्स

परावासी साहित्य

(उनके दूसरे लेख का एक अंश)

....बाकुनिनवादियो की इच्छा सबसे तेज, सबसे उग्र विचारो को प्रस्तुत करने की होती है — हमारे ब्लाकीवादी भी उनकी इसी इच्छा के शिकार है। प्रसंगवश, इससे यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि बहुधा ये लोग भी उन्ही उपायो का क्यो सहारा लेते है जिनका बाकुनिनवादी लेते है, यद्यपि इनका लक्ष्य बिल्कुल उल्टा होता है। इसलिए, मुख्य बात यह है कि जहाँ तक अनीश्वरवाद (नास्तिकता) का सम्बन्ध है दूसरे सबो की अपेक्षा वे अधिक उग्रवादी होना चाहते है। सौभाग्य से अनीश्वरवादी होना आज काफी आसान है। योरप की मज़दूर पार्टियो की दृष्टि मे आजकल अनीश्वरवाद लगभग एक बिल्कुल स्वयम्-स्पष्ट चीज़ बन गया है — यद्यपि कुछ देशो मे काफी अक्सर स्पेन के उस बाकुनिनवादी की तरह बात करने वाले लोग भी मिल जाते है जो कहता था कि ईश्वर मे विश्वास करना हर प्रकार के समाजवाद के सर्वथा विरुद्ध है, किन्तु, जहाँ तक देवी मैरी की बात है वह एक बिल्कुल अलग चीज है, उनमे हर भले सोशलिस्ट को स्वाभाविक आस्था रखनी चाहिए! जर्मनी के सोशल—डेमोक्रेटिक मज़दूरो के बारे

मे यह कहा जा सकता है कि अनीश्वरवाद उनके लिए अब एक पुरानी चीज़ बन गया है : जहाँ तक उनका सम्बन्ध है इस केवल नकारात्मक शब्द का अब कोई महत्व नही रह गया, क्योंकि ईश्वर-विश्वास के प्रति उनका जो विरोध है वह सैद्धान्तिक नही, बल्कि अब एक व्यावहारिक वस्तु बन गया है। शुद्ध रूप से और सीधे-सीधे ईश्वर का उन्होने अन्त कर दिया है, वे वास्तविकता की दुनिया मे रहते और सोचते है और इसीलिए भौतिकवादी है। फ्रान्स मे भी ऐसी ही हालत मालूम होती है। अगर ऐसा नही है, तो इससे अधिक आसान काम दूसरा न होगा कि पिछली शताब्दी के शानदार फ्रान्सीसी भौतिकवादी साहित्य को लेकर मजदूरों के बीच एक बडे पैमाने पर बँटवा दिया जाय। क्योंकि, उस साहित्य के अन्दर, रूप तथा विषय-वस्तु दोनो की दृष्टि से, फ्रान्सीसी चिन्तन अपने उच्चतम शिखर पर पहुँचा था, और, अगर उस समय के विज्ञान के स्तर की दृष्टि से उसे परखे तो, जहाँ तक उसकी विषय-वस्तु का सम्बन्ध है, वह अब भी अत्यधिक ऊँचे शिखर पर है और उसके रूप का तो कही कोई मुकाबला ही नही कर सका। किन्तु हमारे ब्लान्कीपथियो को यह चीज पसन्द नही हो सकती। इसलिए यह सिद्ध करने के लिए कि वे सबसे अधिक उग्रवादी है वे एक फरमान के द्वारा ईश्वर का अन्त कर देते है। १७९२ मे यही किया गया था :

"कम्यून* को चाहिए कि पिछली दुर्गति के प्रेत" (ईश्वर) "से मानव-जाति को हमेशा के लिए वह मुक्त कर दे, उसकी वर्तमान विपत्ति के कारणो से" (अस्तित्व-विहीन ईश्वर कारण है !) "उसे मुक्त कर दे। कम्यून मे पादरियो के लिए कोई स्थान नही है, हर प्रकार की धार्मिक अभिव्यक्ति पर, हर प्रकार के धार्मिक सगठन पर रोक लगा दी जानी चाहिए।"

और इस आज्ञा पर कि मुफ्ती के हुक्म से (par ordre du

---

* फ्रान्स की सबसे छोटी प्रशासकीय इकाई को कम्यून कहते थे। — अनु०

mufti) आदमियो को नास्तिको मे बदल दिया जाय कम्यून के दो सदस्यो के दस्तखत है। जिन लोगो ने दस्तखत किये है उन्हे इस बात को जानने का वास्तव मे काफी अवसर मिल चुका है कि एक ही कागज पर ऐसी बहुत-सी चीजो के आदेश जारी किये जा सकते है जिन पर कोई अमल नही होता, और, दूसरे, यह कि अवाछनीय विश्वासो को बढावा देने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि उन पर दमन किया जाय! यह बात निश्चित है : ईश्वर की मदद करने का एकमात्र तरीका आज यह है कि अनीश्वरवाद को एक अनिवार्य धर्म घोपित कर दिया जाय और धर्म पर आम पाबन्दी लगाकर बिस्मार्क के कैथोलिक-विरोधी दमनकारी (kirchenkulturkampf) [५०] कानूनो के भी कान काट दिये जायँ

कार्ल मार्क्स

गोथा कार्यक्रम की आलोचना

(एक अश)

. .. "अन्त करण की स्वतंत्रता !"—कुल्तूरकाम्फ (Kultur-kampf—कैथोलिक-विरोधी दमन) के समय उदारतावाद को अगर कोई उसके इस पुराने तकिया कलाम की याद दिलाना चाहता, तो ऐसा केवल निम्न रूप मे ही किया जा सकता था . प्रत्येक आदमी को इस बात की स्वतत्रता होनी चाहिये कि, पुलिस की किसी भी प्रकार की दखलदाजी के बिना, अपनी धार्मिक तथा शारीरिक आवश्यकताओ की वह पूर्ति कर सके। किन्तु, इस सम्बन्ध मे, कम से कम मजदूरो की पार्टी को अपनी इस समझदारी को स्पष्ट रूप से सामने रख देना चाहिए था कि पूँजीवादी "अन्त:करण की स्वतत्रता" का मतलब केवल यह होता है कि उसके अन्तर्गत अन्त.करण की हर सम्भव प्रकार की धार्मिक स्वतत्रता को छूट दे दी जाती है; लेकिन जहाँ तक स्वयम् उसकी (मजदूर पार्टी) की बात है तो वह तो इस बात की कोशिश करती है कि अन्त.करण को ही धर्म के जादू-टोनो से मुक्त करा दिया जाय। परन्तु लोग इसी को ठीक समझते है कि "पूँजीवादी" सीमा से आगे न बढा जाय .. ..

फ्रेडरिक एंगेल्स

ड्यूरिंग मत-खण्डन

(कुछ अंश)[७६]

……ईसाई धर्म केवल एक ही ऐसी चीज जानता था जिसमे सब मनुष्य बराबर थे : समान रूप से वे सब आद्य पातक मे पैदा हुये थे। यह चीज दासो और उत्पीडितो के धर्म के उसके स्वरूप के सर्वथा अनुरूप थी। इसके अतिरिक्त, अधिक से अधिक, वह ऊपर के कुछ चुनिन्दा लोगो की बराबरी को मानता था। परन्तु इस बात पर भी केवल एकदम आरम्भिक काल मे ही जोर दिया जाता था। नये धर्म की प्रारम्भिक अवस्थाओ में सम्मिलित स्वामित्व के भी जो चिह्न पाये जाते हैं उनकी वजह वास्तविक समानतावादी विचार इतने नही थे जितनी कि एकता की वह भावना जो निष्कासित-निर्वासित और न्याय-वञ्चित लोगों मे होती है। बहुत ही थोडे समय के अन्दर पादरियो और साधारण लोगो के बीच फिर फर्क उत्पन्न हो जाने के बाद ईसाई धर्म को इस आरम्भकालीन समानता का भी अन्त हो गया।

पश्चिमी योरप पर हमला करके जर्मनो ने अपना अधिकार कायम कर लिया और धीरे-धीरे वहाँ पर एक ऐसी अपूर्व जटिल, दर्जे-दर-दर्जे वाली सीढ़ीदार सामाजिक तथा राजनीतिक व्यवस्था उन्होने कायम कर दी

कि समानता के तमाम विचारों का फिर शताब्दियों के लिए अन्त हो गया। किन्तु, साथ ही साथ, इस हमले की वजह से पश्चिमी और मध्य योरप ऐतिहासिक विकास के प्रवाह मे खिंच आये, पहली वार एक गठे हुए ठोस सास्कृतिक क्षेत्र की स्थापना हो गयी, और इस क्षेत्र के अन्दर भी पहली वार मुख्यतया राष्ट्रीय राज्यों की व्यवस्था कायम हो गयी—ऐसे राष्ट्रीय राज्यो की जो आपस मे एक दूसरे को प्रभावित करते थे और आपस मे एक दूसरे की रोक-थाम भी किये रहते थे। इस प्रकार, उसने (जर्मनों के हमले ने) वह ज़मीन तैयार कर दी जिस पर वाद में मनुष्य की वरावर स्थिति के, मनुष्य के अधिकारो के, प्रश्न को उठाया जा सकता था।

* * * *

......अब व्यक्ति की परम सत्ता मूलतः इस वात मे निहित होती है कि "व्यक्ति के ऊपर राजसत्ता का एकछत्र अधिकार होता है;" किन्तु, जोर-ज़बर्दस्ती से भरे इस अधिकार को उसी हद तक न्यायपूर्ण ठहराया जा सकता है जिस हद तक कि वह "वास्तव मे स्वाभाविक न्याय मे मदद देता है।" इस लक्ष्य को सामने रखकर "प्राविकार के विधानांग तथा न्यायाग" वनाये जायगे, किन्तु, इनका "पूरे समाज के नियंत्रण में रहना ज़रूरी है।" और सुरक्षा के लिए भी एक समझौता होगा जो "आन्तरिक सुरक्षा को वनाये रखने के लिए सेना अथवा कार्यांग के एक भाग की संयुक्त कार्रवाई" के रूप मे व्यक्त होगा।—इसका अर्थ हुआ कि सेना होगी, पुलिस होगी, हथियारवन्द सिपाहियों के भी दस्ते कायम किये जायंगे। मिस्टर ड्यूरिंग कई वार साबित कर चुके हैं कि वे एक अच्छे प्रशियाई हैं; यहाँ पर उन्होने अपने को वेजोड़ एक ऐसा आदर्श प्रशियाई प्रमाणित कर दिया है जो कि, जैसा कि स्वर्गीय मिनिस्टर फ़ान रोखोव ने कहा था, "हथियारवन्द सिपाहियों के अपने दस्ते को (जँडार्म को) अपनी छाती के अन्दर छिपाये हुए चलता है।" परन्तु,

भविष्य की हथियारबन्द पुलिस की यह टुकड़ी (जँडार्म) उतनी खतरनाक नही होगी जितने कि आजकल के लुटेरे पुलिसमैन होते हैं। सर्वसत्ताशाली व्यक्ति को उसके हाथ चाहे जो कुछ भोगना पड़े, एक बात का उसे हमेशा सन्तोष रहेगा : "मुक्त समाज, परिस्थितियो के अनुसार, उसके साथ चाहे सही व्यवहार करे चाहे ग़लत, किन्तु उस व्यवहार से वह कभी अधिक बुरा नही होगा जो प्राकृतिक अवस्था में उसे मिलता ।" और फिर, लेखको के उन अधिकारो के चक्कर मे एक वार फिर हमें फसा कर, जो हमेशा आडे आ जाते है, मिस्टर ड्यूरिंग हमे विश्वास दिलाते हैं कि भविष्य की उनकी दुनिया मे "बिना किसी शको-शुबहे के, वकीलो का एक समुदाय होगा जिसकी सहायता एकदम नि.शुल्क रूप से सबको प्राप्त हो सकेगी ।" उनका "मुक्त समाज, जैसी कि आज उसकी कल्पना की जाती है" अधिकाधिक दिलचस्प रूप धारण करता जा रहा है । वास्तुकार, पल्लेदार, पेशेवर लेखक, हथियारबन्द सिपाही, और अब उसमे बैरिस्टर भी आ गये ! "गम्भीर तथा आलोचनात्मक चिन्तन की" यह "दुनिया" तथा भिन्न-भिन्न धर्मों की वे विभिन्न स्वर्गीय दुनियाएँ, जिनमे उपासक को रूपान्तरित रूप मे वे वस्तुएँ सदा प्राप्त हो जाती है जिन्होने उसके पार्थिव जीवन को मधुर बनाये रखा है, मटर के दो दानो के समान बिल्कुल एक ही जैसी हैं। और मिस्टर ड्यूरिंग एक ऐसे राज्य के नागरिक हैं जिसमे "प्रत्येक व्यक्ति स्वयम् अपने ढग से सुखी रह सकता है ।" इससे अधिक हमे क्या चाहिए ?

किन्तु हम क्या चाहते है इसका कोई महत्व नही । जिस चीज़ का महत्व है वह यह है कि मिस्टर ड्यूरिंग क्या चाहते है। और इस सम्बन्ध में फ्रेडरिक द्वितीय से मिस्टर ड्यूरिंग का मत भिन्न है । उनके भविष्य के राज्य मे प्रत्येक व्यक्ति स्वयम् अपने ढग से कदापि सुखी नही रह सकेगा । भविष्य के उनके इस राज्य के विधान मे लिखा हुआ है कि : "मुक्त समाज मे धार्मिक उपासना के लिए कोई स्थान नही हो सकता; क्योकि उसका प्रत्येक सदस्य इस आदिम-कालीन बचकाने

अन्धविश्वास से मुक्त हो चुका है कि प्रकृति के पीछे अथवा उसमे ऊपर कोई ऐसे प्राणी है जिन्हे बलि चढाकर अथवा प्रार्थनाओ के द्वारा खुश किया जा सकता है।" "इसलिए, सही-सही ढग से बनाई गयी समाजवादी व्यवस्था के लिए आवश्यक है कि वह धार्मिक जादू-टोने के तमाम ताम-झाम का, और उसके साथ-साथ, धार्मिक उपासना के समस्त आवश्यक तत्वो का, अन्त कर दे।" धर्म की यहाँ मनाही होगी !

किन्तु, हर प्रकार का धर्म मनुष्यों के मस्तिष्कों मे उन बाह्य शक्तियो के काल्पनिक प्रतिबिम्ब के सिवा और कुछ नही होता जो उनके दैनिक जीवन को नियन्त्रित करती है, ऐसा प्रतिबिम्ब जिसमे लौकिक शक्तियाँ अलौकिक शक्तियो का रूप धारण कर लेती है। इतिहास के आरम्भिक दिनो मे प्रकृति की शक्तियाँ ही सर्वप्रथम इस प्रकार प्रतिबिम्बित होती थी। आगे के विकास-क्रम मे भिन्न-भिन्न कौमो के लोगो के बीच इन शक्तियो ने मनुष्यो के विविध तथा नानावर्णी रूप ग्रहण कर लिये। पौराणिक कथाओ के तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा इस आरम्भिक क्रिया का पता लगा लिया गया है, इस अध्ययन से पता चला है कि, कम से कम, जहाँ तक इन्डो-योरोपीय कौमों का सम्बन्ध है, इस क्रिया का स्रोत भारतीय वेदो मे है। आगे इस क्रिया के विकास का भारतीयो, ईरानियों, यूनानियो, रोमनो, जर्मनो, आदि मे, और जहाँ तक अभी तक सामग्री प्राप्त हो सकी है, केल्टों, लिथुआनियनो तथा स्लावों के दर्म्यान भी पूरे व्यौरे के साथ निरूपण किया जा चुका है। परन्तु, बहुत दिन बीतने के पहले ही, प्रकृति की शक्तियो के साथ-साथ, सामाजिक शक्तियाँ भी सक्रिय हो उठती है — ये शक्तियाँ भी मनुष्य के सामने प्राकृतिक शक्तियो की ही तरह बाहरी तथा आरम्भ में उतनी ही अगम्य मालूम पड़ने वाली शक्तियों के रूप मे आती हैं, ऊपरी तौर से उसके ऊपर बिल्कुल उसी प्रकार की प्राकृतिक आवश्यकता के रूप में वे हावी रहती है जिस प्रकार कि स्वयं प्रकृति की शक्तियाँ उस पर हावी रहती है। उन काल्पनिक प्राणियो में, जो आरम्भ मे केवल प्रकृति

की रहस्यपूर्ण शक्तियों को प्रतिबिम्बित करते थे, इस बिन्दु पर पहुँचकर सामाजिक गुण पैदा हो जाते हैं, वे इतिहास की शक्तियों के प्रतिनिधि बन जाते हैं।* विकास की और भी आगे की एक अवस्था में पहुँचकर नाना देवताओं के समस्त प्राकृतिक तथा सामाजिक गुण एक सर्वशक्ति-शाली ईश्वर में स्थानान्तरित हो जाते हैं। यह ईश्वर निराकार मानव का ही एक प्रतिबिम्ब होता है। एकेश्वरवाद का जन्म ऐसे ही हुआ था। ऐतिहासिक रूप से यह उत्तरकालीन यूनानियों के भ्रष्ट दर्शन की अन्तिम उपज था। फिर उसने यहूदियों के विशिष्ट जातीय देवता जेहोवा** के रूप में अवतार ग्रहण किया था। इस सुविधाजनक, सुघड़ तथा सार्वभौमिक रूप से संयोजनीय स्वरूप में, उन बाहरी प्राकृतिक तथा सामाजिक शक्तियों के साथ जो उनके ऊपर शासन करती हैं मनुष्यों के तात्कालिक, अर्थात्, भावनात्मक सम्बन्ध के रूप में धर्म तब तक बराबर बना रह सकता है जब तक कि मनुष्य इन शक्तियों के नियंत्रण में बँधे हैं। परन्तु, इस चीज को हम बारम्बार देख चुके हैं कि वर्तमान पूंजीवादी समाज में एक बाहरी शक्ति के रूप में मनुष्यों पर उन आर्थिक परि-स्थितियों का शासन होता है जिनकी उन्होंने स्वयम् सृष्टि की है, उनके ऊपर उत्पादन के उन साधनों का शासन होता है जिनका स्वयम् उन्होंने निर्माण

---

*देवताओं ने बाद में जो यह दोहरा स्वरूप धारण कर लिया था इसकी वजह से आगे चलकर पौराणिक कथाओं के क्षेत्र में व्यापक भ्रान्ति फैल गयी थी। तुलनात्मक पौराणिक कथा-शास्त्र (पुराणविद्या) ने इस कारण को अनदेखा कर दिया है, क्योंकि उसने उन्हें केवल प्रकृति की शक्तियों के प्रतिबिम्बों के रूप में देखा है। उदाहरण के लिये, कुछ जर्मन कबीलों में युद्ध के देवता को टिर (Tyr—पुरानी नौर्डिक भाषा) अथवा जिओ (Zeo—उत्तरी जर्मनी की पुरानी भाषा) कहा जाता है। यह यूनानी जियस (Zeus) लैटिन जुपिटर—द्यूपिटर के स्थान में—के अनुरूप है। इसलिये अन्य जर्मन कबीलों में एर (Er), एयोर (Eor), यूनानी आरिस (Ares), और लैटिन मार्स (Mars) से मिलता-जुलता है [एंगेल्स की टिप्पणी]।

** आगे, "ब्रूनो बेयर तथा आरम्भिक ईसाई धर्म" के अन्तर्गत दी गयी टिप्पणी को देखिए।

किया है। इसलिए, उस प्रतिविम्वक (परावर्तक) क्रिया का वास्तविक आधार वना रहता है जो धर्म को जन्म देता है, और उसके साथ-साथ स्वयम् धार्मिक प्रतिविम्व भी क़ायम रहता है। और यद्यपि पूंजीवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र ने इस वाहरी शासन के पीछे जो कार्य-कारण सम्वन्ध है उस पर कुछ प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है, किन्तु वास्तव मे उससे कोई खास अन्तर नही पड़ता। पूंजीवादी अर्थशास्त्र आम तौर से न तो सकटो को रोक सकता है, न व्यक्तिगत पूंजीपतियों को घाटों, वसूल न हो सकने वाले कर्जो तथा दीवालियेपन की मार से वचा सकता है, न व्यक्तिगत मज़दूरो को ही वेकारी और विपन्नता के विरुद्ध कोई सुरक्षा प्रदान कर सकता है। यह अव भी सही है कि मनुष्य प्रस्ताव रखता है और ईश्वर (अर्थात्, उत्पादन के पूजीवादी तरीक़े का वाहरी शासन) उसका फैसला करता है। सामाजिक शक्तियों के ऊपर समाज का शासन स्थापित करने के लिये केवल ज्ञान काफ़ी नही है — चाहे वह पूजीवादी आर्थिक विज्ञान से भी अधिक तथा गहरी जानकारी प्रदान करने वाला ज्ञान हो। इसके लिये सवसे वड़ी आवश्यकता सामाजिक कार्य की होती है। और जव यह कार्य पूरा हो जायगा, जव, उत्पादन के तमाम साधनो को अपने अधिकार मे लेकर और एक नियोजित ढग से उनका इस्तेमाल करके, समाज अपने को तथा अपने तमाम सदस्यो को उस ग़ुलामी से मुक्त कर लेगा जिसमे उन्हे इस समय उत्पादन के इन साधनो ने जकड रखा है जिन्हे उन्होने स्वयम् पैदा किया था किन्तु जो आज उनके सामने एक दुर्निवार वाह्य शक्ति के रूप मे खड़े हुये हैं; अर्थात्, जव मनुष्य केवल प्रस्ताव ही नही करेगा, वल्कि फैसला भी करने लगेगा — केवल तभी वह अन्तिम वाहरी शक्ति भी मिट जायगी जो धर्म मे प्रतिविम्वित है; और, उसके साथ-साथ, फिर वह धार्मिक प्रतिविम्व स्वयम् भी मिट जायगा क्योकि प्रतिविम्वित करने के लिये फिर कोई चीज शेष ही नही रह जायगी।

परन्तु, धर्म के इस प्रकार, अपनी स्वाभाविक मौत से मरने तक

के समय का इन्तज़ार मिस्टर ड्यूरिंग नही कर सकते। वे और भी गहरे ढग से आगे बढ़ते है। वे बिस्मार्क को भी मात कर देते है; वे मई के कानूनो[५२] से भी अधिक सख़्त कानूनो के फरमान जारी कर देते है—केवल कैथोलिकवाद के विरुद्ध नही, बल्कि सब प्रकार के धर्मो के विरुद्ध। भविष्य के अपने हथियारबन्द सिपाहियों को वे धर्म के खिलाफ भड़काते है, और इस प्रकार धर्म को शहादत का जामा पहना देते है तथा उसकी जीवन-अवधि को बढ़ाने मे सहायता देते हैं। जिधर भी हम देखते है, उधर ही हमे खास प्रशियाई समाजवाद के ही दर्शन होते है ....

समानता—न्याय।—यह विचार कि समानता न्याय की, अर्थात् पूर्ण राजनीतिक तथा सामाजिक नियमन के सिद्धान्त की ही अभिव्यक्ति है एकदम ऐतिहासिक रूप से उदय हुआ था। आदिम समाजों में उसका कोई अस्तित्व नही था, अथवा था तो बहुत सीमित रूप मे था, इक्के-दुक्के समाजो के पूर्ण सदस्यो भर के लिए था, और उसके साथ-साथ गुलामी जुड़ी हुई थी। प्राचीन काल मे ठीक यही स्थिति जनवाद की थी। यूनानियों, रोमनो तथा बर्बरों, स्वतत्र मनुष्यो तथा दासों, प्रजागणो तथा विदेशियों, नागरिको तथा परदेशी यात्रियो, आदि सबकी समानता की बात प्राचीन काल के लोगो की दृष्टि मे न केवल पागलपन से भरी हुई थी, बल्कि एक अपराध थी। और ईसाई धर्म के अन्दर जब शुरू-शुरू मे इस विचार ने सिर उठाया था तो उस पर सख़्त दमन किया गया था।

कैथोलिकवाद के अन्तर्गत सबसे पहले ईश्वर के सामने पापियों के रूप में तमाम मानवों के बीच एक नकारात्मक समानता थी। इसे और भी अधिक संकुचित रूप में देखा जाय तो कैथोलिकवाद के अन्तर्गत ईश्वर के तमाम बच्चे इसलिए बराबर थे कि ईसा की कृपा तथा उनके ख़ून की वजह से ही उन सबका उद्धार हुआ था। इन दोनों ही बातो का आधार यह चीज़ है कि ईसाई धर्म दासों, जलावतनों, स्वत्वहीनो, प्रताडितो, उत्पीड़ितो के धर्म की भूमिका अदा करता था।

ईसाई धर्म की विजय के बाद यह स्थिति बदल गयी थी, उसकी यह भूमिका पीछे पड गयी थी और मुख्य महत्व ईसाई धर्म को मानने वालों और ब्रात्यो (मूर्तिपूजकों) के विरोध को, धर्मपरायणो तथा विधर्मियो के बीच के विरोध को दिया जाने लगा था।

नगरो और, उनके साथ साथ. पूंजीपति वर्ग के न्यूनाधिक विकसित तत्वों, तथा सर्वहारा वर्ग के उदय के साथ-साथ, यह अनिवार्य था कि पूंजीवादी अस्तित्व की एक शर्त के रूप मे समानता की माग भी धीरे-धीरे उठे। इसी के साथ-साथ यह भी अनिवार्य था कि सर्वहारा वर्ग इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि राजनीतिक समानता से उसे सामाजिक समानता की ओर बढना चाहिए। स्वाभाविक था कि यह सघर्ष एक धार्मिक रूप ग्रहण कर ले। सर्वप्रथम यह सघर्ष किसान युद्ध की शक्ल मे तीव्र रूप से फूटा था।

पूजीवादी पक्ष को व्यवस्थित रूप से सबसे पहले रूसो ने प्रस्तुत किया था। पर इसे अत्यत चुटीली भाषा मे उसने सम्पूर्ण मानव जाति की ही तरफ से प्रस्तुत किया था। जो चीज़ पूजीपति वर्ग की तमाम मांगो के साथ जुडी हुई थी वह यहाँ भी मौजूद थी : सर्वहारा वर्ग की प्राणहर छाया भी उसके साथ-साथ चलती थी। और सर्वहारा वर्ग स्वयम् अपने निष्कर्ष भी निकालता चलता था (बाबूफ)। पूजीवादी समानता तथा सर्वहारा वर्ग द्वारा निष्कर्ष निकालते चलने की बात के बीच जो सम्बन्ध है उस पर और भी ब्यौरे मे विचार किया जाना चाहिए......

* * * *

प्रकृति तक के शुद्ध प्रतिबिम्ब का पता लगाना अत्यन्त कठिन होता है, अनुभव के एक लम्बे इतिहास के बाद ही उसका पता चलता है। आदिम मनुष्य को प्रकृति की शक्तियाँ एक बाहरी, रहस्यपूर्ण, श्रेष्ठतर चीज़ मालूम पड़ती थी। एक अवस्था मे मानव उन्हे मनुष्य का साकार रूप देकर ही हृदयंगम करता है। इस अवस्था से सभी सभ्य कौमें गुज़री

है। मनुष्यत्वारोपण (personify) करने की इस प्रेरणा ने ही हर जगह देवताओं की सृष्टि कर दी थी, और जहाँ तक ईश्वर के अस्तित्व के प्रमाण का सम्बन्ध है, आम जनता की धारणा (consensus gentium) केवल यही तो सिद्ध करती है कि मनुष्यत्वारोपण की यह प्रेरणा सार्वभौमिक है—सक्रमण की वह एक आवश्यक अवस्था है। और इसीलिए आम जनता की उक्त [ईश्वर के अस्तित्व के प्रमाण के सम्बध मे] धारणा इस बात को सिद्ध कर देती है कि धर्म भी सार्वभौमिक है। देवताओ अथवा ईश्वर को उनकी एक के बाद दूसरी जगह से प्रकृति की शक्तियों का केवल वास्तविक ज्ञान ही भगाता है (सेक्की तथा उसका सौर परिवार)। यह प्रक्रिया अब इतनी आगे बढ गयी है कि सैद्धान्तिक रूप मे यह मान लिया जा सकता है कि वह पूरी हो गयी है।

समाज के क्षेत्र मे प्रतिबिम्बन की क्रिया और भी कठिन होती है। समाज का रूप-निर्धारण आर्थिक सम्बन्धो, उत्पादन तथा विनिमय, तथा, इनके अलावा, ऐतिहासिक रूप से पूर्वापेक्षित परिस्थितियो से होता है ....

फ्रेडरिक एंगेल्स

प्रकृति में द्वन्द्ववाद

(कुछ अंश)

भूमिका

प्राचीन काल के प्राकृतिक—दार्शनिक सहज-वोध पर आधारित ओजस्वी विचारों तथा अरवो की अत्यन्त महत्वपूर्ण, किन्तु छिट-पुट खोजों से तुलना करने पर हम देखते है कि प्रकृति सम्वन्धी शोधकार्य ने केवल आधुनिक काल मे ही एक वैज्ञानिक, व्यवस्थित, तथा सर्वतोमुखी रूप में विकास किया है। अरवो की खोजे तो अधिकाशतया बिना कोई फल दिये ही विलुप्त हो गयी थी। हाल के समस्त इतिहास की तरह, प्रकृति-सम्वन्धी इस आधुनिक शोधकार्य का श्रीगणेश भी उस महान युग मे हुआ था जिसे हम जर्मन लोग धर्म-सुधार का युग कहते हैं, उसका श्रीगणेश उस राष्ट्रीय विपत्ति से हुआ था जिसने हमारे ऊपर उस समय प्रहार किया था। फ्रान्सीसी उसे पुनर्जागरण के नाम से पुकारते हैं और इटालवी लोग उसे चिगक्वे चेटो (Cinque cento) कहते हैं। परन्तु उसका पूरा अर्थ इनमे से किसी भी नाम से स्पष्ट नही होता। यह वह युग है जिसका उदय १५वी शताब्दी के उत्तरार्ध मे

हुआ था। राजा ने शहरों के वर्गरो (विशेषाधिकार सम्पन्न नागरिकों) की सहायता से सामन्ती अभिजात वर्ग की सत्ता को चकनाचूर कर दिया था और, मूलतः राष्ट्रीयता पर आधारित, महान् राजतंत्रों की स्थापना कर दी थी। आधुनिक योरोपीय राष्ट्रों तथा आधुनिक पूजीवादी समाज का इन्ही राजतत्रो के अन्तर्गत विकास हुआ है। और जिस समय वर्गर तथा कुलीन-वर्ग के लोग आपस मे जूझ ही रहे थे, उसी समय जर्मन किसान-युद्ध ने भविष्य की ओर सकेत करते हुए आने वाले वर्ग-संघर्षो की पूर्व-सूचना दे दी। केवल विद्रोही किसानों को रंगमच पर लाकर ही उसने ऐसा नही किया—यह तो अब कोई नयी चीज नही रह गयी थी। विद्रोही किसानो के पीछे-पीछे आधुनिक सर्वहारा वर्ग के हरकारो को लाकर उसने ऐसा किया था। इन हरकारो के हाथ मे लाल झण्डा था और उनके होठो पर यह माँग थी कि वस्तुओं पर सम्मिलित स्वामित्व की व्यवस्था कायम कर दी जाय। वाइज़ेन्टाइन (यूनानी) साम्राज्य के पतन-काल के समय जो पाण्डुलिपियाँ बच गयी थी, रोम के खण्डहरों की खुदाई से जो प्राचीन मूर्तियाँ मिल गयी थी, उनसे एक नयी दुनिया के, प्राचीन यूनान की दुनिया के दर्शन हुए थे। इस दुनिया को देखकर पाश्चात्य जगत् चकित रह गया था। उसके ज्वाज्वल्यमान रूप के सामने मध्ययुगो के प्रेत अन्तर्धान हो गये। इटली मे कला की एक अकल्पनीय बहार आ गयी। उसकी यह कला श्रेष्ठ प्राचीन काल का प्रतिबिम्ब जैसी प्रतीत होती थी। दुबारा फिर वह उस शिखर पर कभी न पहुँच सकी। इटली, फ्रान्स तथा जर्मनी मे एक नये साहित्य का आविर्भाव हुआ। यही प्रथम आधुनिक साहित्य था। थोड़े समय बाद अग्रेजी और स्पेनी साहित्य के क्लासीकल (सर्वश्रेष्ठ) काल आये। पुरानी दुनिया की सीमाओ की सीमाएँ खत्म कर दी गयी। वास्तव में, दुनिया का पहली बार ठीक-ठीक अभी ही पता लगा तथा आगे के विश्व-व्यापार और उत्पादन के क्षेत्र मे दस्तकारी से कारखानों की ओर सक्रमण के लिए आधार कायम हो गया। फिर इससे आधुनिक बडे पैमाने के उद्योग-धन्धो

का सूत्रपात हुआ। मनुष्यों के मस्तिष्कों पर से गिरजे (ईसाई धर्म-संघ) की तानाशाही नष्ट हो गयी। अधिकांश जर्मन लोगों ने उसे सीधे-सीधे तिलांजलि दे दी और वे प्रोटेस्टेन्ट बन गये। इसी समय लैटिन भाषा-भाषियों के अन्दर मुक्त चिन्तन की एक उल्लासमयी भावना फैल गयी। इस भावना को उन्होंने अरबों से ग्रहण किया था। नये-नये अन्वेषित यूनानी दर्शन ने उसको हवा दी और परवान पर चढ़ाया। मुक्त-चिन्तन की इस भावना की जड़े अधिकाधिक गहरी होती गयी। फिर उन्होंने १८वीं शताब्दी के भौतिकवाद का मार्ग तैयार किया।

मानव जाति ने अब तक जितनी प्रगतिशील क्रान्तियां देखी थी यह उनमे सबसे महान थी। यह ऐसा समय था जिसके लिए महामानवों की जरूरत थी और महामानवो को ही उसने पैदा भी किया था—विचार शक्ति के महामानवों को, तीव्रोत्साह और चरित्र के महामानवो को, सार्वभौमिकता तथा विद्वता के महामानवों को। जिन लोगों ने पूंजीपति वर्ग के आधुनिक शासन की स्थापना की थी उनमे और चाहे जो दोष रहा हो किन्तु वे पूंजीवादी सीमाओ से नही बँधे हुए थे। इसके विपरीत, समय के साहसी वातावरण से वे भी कमोवेश मात्रा मे अनुप्राणित थे। उस समय ऐसा शायद ही कोई महत्वपूर्ण मनुष्य रहा होगा जिसने खूब यात्रा न की हो, जो चार-पांच भाषाएँ न बोलता रहा हो, जिसने कई-कई क्षेत्रों मे नाम न कमाया हो। लियोनार्डो ड' विन्सी केवल एक महान् चित्रकार ही नही था, वह एक महान् गणितज्ञ, यांत्रिकी-विज्ञ, तथा इंजीनियर भी था। भौतिकी की अत्यन्त भिन्न-भिन्न शाखाएँ अनेक महत्वपूर्ण अन्वेषणो के लिए उसकी ऋणी है। अलब्रे़ख्त ड्यूरेर चित्रकार, कलाकार, मूर्तिकार तथा वास्तुकार था। इसके अतिरिक्त, उसने किलेबन्दी की एक ऐसी व्यवस्था का आविष्कार किया था जिसमे अनेक वे विचार मौजूद थे जिन्हे, बहुत बाद में, मौन्टलएम्बर्ट तथा क़िलेबन्दी के आधुनिक जर्मन-विज्ञान ने फिर से जीवित किया है। मेक्यावेली राजनेता, इतिहासकार और कवि था, और, साथ ही साथ,

सैनिक विषयो का आधुनिक काल का वह प्रथम महत्वपूर्ण लेखक भी था। लूथर ने न केवल गिरजे (ईसाई धर्म-संघ) की ज़माने से चली आने वाली गन्दगी को दूर कर दिया था, बल्कि जर्मन भाषा की गन्दगी को भी दूर कर दिया था। आधुनिक जर्मन गद्य का उसने निर्माण किया था और उस विजयी गीत के शब्दों और स्वरो की रचना भी उसी ने की थी जो सोलहवी शताब्दी का मारसेलाज़ (Marseillaise) बन गया था। उस समय के नायक अभी तक श्रम-विभाजन के बन्धनों में नही बधे थे। श्रम-विभाजन के दृष्टिकोण के सीमित करने वाले प्रभावों को हम उनके उत्तराधिकारियो मे बहुत अक्सर देखते हैं। इसकी वजह से उनके दृष्टिकोण मे एकतरफापन आ जाता है। किन्तु उन सबके बारे में जो खास चीज़ थी वह यह थी कि वे लगभग सबके सब अपने समकालीन आन्दोलनो के दर्म्यान, व्यावहारिक संघर्षो के दर्म्यान अपना कामकाज करते थे; वे मजबूती से पक्ष लेते थे और लड़ाई में सक्रिय रूप से भाग लेते थे—कोई यह काम बोल कर और लिखकर करता था, कोई तलवार से, और अनेक तो दोनो ही तरह से। इसीलिए उनका चरित्र इतना भरा-पूरा और शक्ति-सम्पन्न था जो उ पूर्ण मानव बना देता था। अध्ययन-शालाओ के अन्दर घुसे रहनेवाले लोग अपवाद-स्वरूप ही मिलते हैं—वे या तो दूसरे या तीसरे दर्जे के आदमी होते थे, या अति सावधान अधकचरे ऐसे लोग जो यह नही चाहते थे कि उन पर किसी प्रकार से आँच आ जाय।

प्रकृति-विज्ञान का विकास भी उस समय आम क्रान्ति के ही दर्म्यान हुआ था और वह स्वयम् भी पूर्णतया क्रान्तिकारी था। दरअसल, ज़िन्दा रहने का अधिकार भी उसे सघर्ष करके और उसमे जीत हासिल करके ही प्राप्त करना पड़ा था। उन महान् इटालियनो को पैदा करने के साथ साथ, जिनसे आधुनिक दर्शन की शुरुआत हुई है, इस प्रकृति-विज्ञान ने ईसाई धर्म की जल्लाद अदालतो (Inquisition) की काल-कोठरियों के लिए तथा उसके फाँसी के तख़्तो के लिए शहीद भी पैदा

किये थे। और यह वात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि प्रकृति के उन्मुक्त अनुसंधान-कार्य का दमन करने में प्रोटेस्टेन्ट लोग कैथोलिकों से भी चार हाथ आगे थे। रुधिर-परिवहन की प्रणाली का पता लगाने के कार्य को सरविटस जव लगभग पूरा करने जा रहा था तभी कैलविन ने उसे टिकटी पर वँधवा कर जलवा दिया था। वह उसे दो घटे तक आग में ज़िन्दा भूनता रहा था। इससे तो कैथोलिकों की धार्मिक अदालत ही वेहतर थी, क्योकि उसके लिए गियोर्डानो ब्रूनों को सीधे-सीधे ज़िन्दा जलवा देना ही काफ़ी हुआ था।

वह क्रान्तिकारी कार्य जिसके माध्यम से प्रकृति-विज्ञान ने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी थी और, एक प्रकार से, लूथर द्वारा पोप के फ़रमान (Papal Bull) के जलाये जाने की क्रिया की पुनरावृत्ति कर दी थी—कौपरनिकस के अमर ग्रन्थ का प्रकाशन था। इस ग्रन्थ के द्वारा, यद्यपि डरते-डरते और, एक प्रकार से, तभी जव वह अपनी मृत्यु-शैय्या पर पहुँच गया था, कौपरनिकस ने प्रकृति-सम्वन्धी मामलो में धार्मिक पादरियो की सत्ता को चुनौती दे दी थी। यद्यपि विशिष्ट पारस्परिक दावो को तय करने की लड़ाई आज तक भी चलती आ रही है और अनेक मस्तिष्को मे अव भी वह पूरी नही हुई है, किन्तु धर्म-दर्शन से प्रकृति विज्ञान की मुक्ति, वास्तव मे, उसी दिन हो गयी थी। उसके वाद से विज्ञानो का विकास विराट गति से हुआ है। कहा जा सकता है कि उस समय के वाद से उसकी शक्ति मे (समय के) फासले के वर्ग के अनुपात में वृद्धि होती गयी है। ऐसा लगता है जैसे कि दुनिया को यह जतला देना था कि, इसके वाद से, सजीव भूत की सर्वोच्च उपज, अर्थात् मानवी मस्तिष्क के सम्वन्ध में गति का जो नियम लागू होगा वह उस नियम का विल्कुल उल्टा है जो निर्जीव भूत के सम्बन्ध में लागू होता है।

प्रकृति विज्ञान के इस प्रथम काल में, जिसका सूत्रपात हो चुका था, मुख्य कार्य उस सामग्री पर आधिपत्य स्थापित करना था जो एकदम

सामने मौजूद थी। अधिकांश क्षेत्रों में इस कार्य का श्रीगणेश एकदम आरम्भ से करना था। प्राचीन काल हमे यूकलिड[५४] तथा टौलमी का सौर्यपरिवार[५५] दे गया था। अरब लोग अपने पीछे दशमलव की अंक पद्धति, प्रारम्भिक वीजगणित, आधुनिक अंक तथा कीमियागीरी छोड़ गये थे; ईसाईधर्मी मध्य युगो ने कुछ भी नही छोड़ा था। इस स्थिति में अनिवार्य रूप से प्रथम स्थान सबसे मौलिक प्रकृति-विज्ञान, यानी पार्थिव तथा आकाशीय पिण्डों की यान्त्रिकी को प्राप्त था। इसके साथ-साथ, उसी की चेरी के रूप मे, दूसरा महत्वपूर्ण स्थान गणितीय पद्धतियों के अन्वेषण तथा उन्हे पूर्ण बनाने के कार्य को प्राप्त था। इस क्षेत्र में महान् सफलताएँ प्राप्त की गयी। हम देखते हैं कि उस काल के अन्त में, जिसके प्रतिनिधि न्यूटन तथा लिनायस थे, विज्ञान की ये शाखाएँ पूर्णता की एक निश्चित अवस्था तक पहुँच गयी थी। बुनियादी गणितीय पद्धतियों की मूलभूत विशेषताएँ स्थापित कर दी गयी थीं; विशेष रूप से देकार्ते की वैश्लेषिक ज्यामिति (analytical geometry) की; नेपियर के लघु गणको (logarithms) की, तथा लाइबनिज़ और सम्भवतः न्यूटन की अवकलन तथा समाकलन गणित (differential and integral calculus) की स्थापना हो चुकी थी। यही बात दृढ पिण्डों की यांत्रिकी के सम्बन्ध मे भी सही है। उसके भी मुख्य नियम हमेशा के लिए स्पष्ट रूप से निर्धारित कर दिये गये थे। अन्त मे, सौर्य परिवार की खगोल-विद्या के क्षेत्र मे भी कैंपलर ने ग्रहो के सचलन के नियमों को खोज निकाला और न्यूटन ने भूत की गति के सामान्य नियमो की दृष्टि से उन्हें सूत्रवद्ध कर दिया। प्रकृति-विज्ञान की अन्य शाखाएँ प्रारम्भिक पूर्णता की इस अवस्था से भी अभी बहुत पीछे थी। इस काल के अन्त के समीप पहुँच कर ही तरल तथा गैसीय पिण्डो की यान्त्रिकी के विकास की ओर अधिक ध्यान दिया जा सकता था*। असली भौतिकी अभी तक भी अपनी

---

* पाण्डुलिपि के हाशिए पर एंगेल्स ने लिखा था : "आल्पीय नदियों के नियंत्रण के सम्बन्ध में—टोरीसेली।"—स०

प्रारम्भिक अवस्था से आगे नही बढ सकी थी। इसमे केवल प्रकाशिकी (optics) का अपवाद था। उसकी असाधारण प्रगति का कारण खगोल विद्या की व्यावहारिक आवश्यकताएँ थी। फ्लोजिस्टिक* सिद्धान्त[५,६] की सहायता से रसायनशास्त्र ने भी पहली बार कीमियागीरी के चक्कर से अपने को मुक्त कर लिया। भूगर्भ-शास्त्र अभी तक खनिज विज्ञान की भ्रौणिक अवस्था से आगे नही गया था; इसलिए पुराभूगर्भ-शास्त्र के अस्तित्व का तो अभी कोई सवाल ही नही था। और, अन्त मे, जीवशास्त्र के क्षेत्र मे मूल काम अब भी उससे सम्बन्धित विशाल सामग्री को इकट्ठा करना और उसकी पहली काट-छांट करना था। इस सामग्री मे केवल वनस्पतीय तथा प्राणिशास्त्रीय सामग्री ही नही, बल्कि शारीरिकी सम्बन्धी (anatomical) तथा असली दैहिकी सम्बन्धी (physiological) सामग्री भी शामिल थी। जीवन के विभिन्न स्वरूपों की तुलना करने, अथवा उनके भौगोलिक वितरण और उनके अस्तित्व की जलवायु, आदि सम्बन्धी परिस्थितियो का अन्वेषण करने की बात का तो अभी तक कही सवाल ही नही था। इस क्षेत्र मे, लिनायस के कारण, केवल वनस्पति-शास्त्र तथा प्राणिशास्त्र ने करीब-करीब पूर्णता प्राप्त कर ली थी।

किन्तु इस काल की विशेष रूप से महत्वपूर्ण चीज यह है कि एक विशिष्ट सामान्य दृष्टिकोण पैदा हो गया था — इस दृष्टिकोण की आधारशिला यह थी कि प्रकृति सर्वथा अपरिवर्तनशील है। प्रकृति स्वयम् चाहे जैसे अस्तित्व मे आयी हो, किन्तु एक बार अस्तित्व मे आ जाने के बाद यह निश्चित था कि जब तक वह रहेगी तब तक इसी रूप में बनी रहेगी। किसी रहस्यपूर्ण "प्रथम आवेग" के धक्के से एक बार संचलित हो उठने के बाद ग्रह तथा उनके उपग्रह अपने पूर्व निर्धारित दीर्घ वृत्तो में अनन्त काल तक, अथवा कम से कम तब तक जब तक कि सब चीजो का अन्त नही हो जाता, चक्कर काटते जायंगे। तारे अपने स्थानों मे हमेशा स्थिर तथा अचल रहते है; "सार्वलौकिक गुरुत्वाकर्षण

* प्रदाह – सिद्धान्त सम्बन्धी। – अनु०

शक्ति" के द्वारा वे एक दूसरे को स्थिर बनाये रखते है। अनन्त काल से अथवा, यो कहिए कि, अपनी सृष्टि के प्रथम दिवस से, पृथ्वी बिना किसी परिवर्तन के जैसी की तैसी बनी रही है। वर्तमान काल के "पांचों महाद्वीप" हमेशा से अस्तित्व मे रहे है और उनमे सदैव वही पर्वत, वही घाटियाँ तथा नदियाँ, वही जलवायु, और वही प्राणि तथा पादप जात बने रहे है। उनके प्राणि तथा पादप जात मे अगर कोई परिवर्तन आया है तो वह मनुष्य की वजह से अथवा उसके स्थान परिवर्तन के कारण आया है। पौदो तथा पशुओ की जातियाँ जिस समय वे पैदा हुए उसी समय सदा के लिए निर्धारित कर दी गयी थी। एक चीज़ बराबर उसी तरह की चीज पैदा करती थी। लिनायस के लिए इस बात को मान लेना भी काफी बडी बात थी कि, सम्भव है कि, संकरण-क्रिया के द्वारा कही-कही नयी जातियाँ भी पैदा हो जा सकती है। कहा जाता था कि मानव जाति के इतिहास के विपरीत, जो समय के साथ आगे बढता है, प्रकृति का इतिहास केवल अवकाश मे ही फैलता है। हर प्रकार के परिर्वतन से, प्रकृति के अन्दर होने वाले हर प्रकार के विकास से, इन्कार कर दिया गया था। प्रकृति-विज्ञान ने, जो अपने आरम्भिक काल मे इतना क्रान्तिकारी था, अब अचानक देखा कि उसके सामने जो प्रकृति खडी थी वह सर्वथा अपरिवर्तनशील थी—उसमे आज भी प्रत्येक वस्तु ठीक वैसी ही थी जैसी कि वह शुरू मे थी; और, ससार के अन्त-काल तक, अथवा शाश्वत काल तक—प्रत्येक वस्तु वैसी ही बनी रहेगी जैसी कि वह आरम्भ से चली आयी है।

ज्ञान और अपनी सामग्री की छान-बीन करने की दृष्टि से भी अट्ठारहवी शताब्दी के पूर्वार्ध का प्रकृति विज्ञान यूनान के प्राचीन काल की तुलना में काफी उच्च स्तर पर पहुँच गया था, किन्तु सैद्धान्तिक तौर से इस सामग्री पर अधिकार कायम करने की दृष्टि से, प्रकृति-सम्बन्धी सामान्य दृष्टिकोण की दृष्टि से वह यूनान के प्राचीन काल की तुलना मे उतने ही नीचे स्तर पर था। यूनानी दार्शनिको की दृष्टि मे

दुनिया मूलतः एक ऐसी चीज थी जो अरूप शून्य के अन्दर से निकली थी, वह एक ऐसी चीज़ थी जो विकसित हुई थी, जो अस्तित्व में आयी थी। किन्तु जिस काल की बात हम कर रहे हैं उसके प्रकृति वैज्ञानिकों के लिए दुनिया अस्थिवत कठोर और विकास-विहीन थी, अपरिवर्तनशील चीज़ थी; और उनमे से अधिकांश के लिए वह एक ऐसी चीज़ थी जिसकी एक ही बार मे सृष्टि कर दी गयी थी। विज्ञान अब भी धर्म-दर्शन के जाल में बुरी तरह फँसा हुआ था। हर जगह अन्तिम कारण के रूप मे वह एक बाहरी आवेग (impulse) की तलाश करता था और उसे पा भी जाता था। इस आवेग की व्याख्या स्वयम् प्रकृति के आधार पर नही की जा सकती थी। आकर्षण-शक्ति को—जिसे न्यूटन ने बड़े धूम-धाम से "सार्वत्रिक गुरुत्वाकर्षण" की संज्ञा प्रदान कर दी थी, भूत के एक विशिष्ट गुण के रूप मे देखे जाने पर भी यह सवाल तो बना ही हुआ था कि वह स्पर्श-रेखीय शक्ति कहाँ से आयी थी जिसने सबसे पहले ग्रहों की कक्षाओं को जन्म दिया था? पशुओं तथा पौदों की असंख्य किस्में कैसे पैदा हुई थी? और, इन सबसे भी अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न तो यह है कि, मानव कैसे पैदा हुआ था, क्योंकि आख़िर यह तो तय ही है कि वह अनन्त काल से मौजूद नही था? इस तरह के प्रश्नो का उत्तर देने के लिए प्रकृति विज्ञान प्रायः हर चीज का उत्तरदायी सृष्टा को बना देता था। इस काल के आरम्भ मे कोपरनिकस धर्म-दर्शन को दरवाजे का रास्ता दिखला देता है; इस काल का अन्त न्यूटन दैवी प्रथम आवेग के परम सिद्धान्त को प्रतिष्ठित करके करता है। यह प्रकृति विज्ञान जिस उच्चतम सामान्य विचार तक पहुँच सका था वह यह था कि प्रकृति की व्यवस्था के अन्तर्गत एक सोद्देश्यता है। वास्तव मे यह वोल्फ़ के छिछले प्रयोजनवाद का विचार था, वह विचार जिसके अनुसार बिल्लियो की सृष्टि इसलिए होती है कि वे चूहो को खा लें, चूहो की सृष्टि इसलिए होती है जिससे कि बिल्लियो के खाने की व्यवस्था हो जाय, तथा सम्पूर्ण प्रकृति की सृष्टि इसलिए होती है जिसमे कि सृष्टा

की बुद्धिमानी का प्रमाण सबको प्राप्त हो जाय ! इस समय के दर्शन के लिए यह अत्यधिक श्रेय की वात है कि प्रकृति-सम्बन्धी अपने समकालीन ज्ञान की सीमित अवस्था से उसने अपने को गुमराह नही हो जाने दिया था, और—स्पिनोजा से लेकर महान् फ्रान्सीसी भौतिकवादियों तक — वरावर वह इस वात पर जोर देता रहा था कि दुनिया की व्याख्या स्वयम् दुनिया के आधार पर की जाय। इस वात को ब्यौरेवार प्रमाणित करने के कार्य को उसने भविष्य के प्रकृति विज्ञान के लिए छोड़ दिया था।

अट्ठारवी शताब्दी के भौतिकवादियों को मैं इसी काल में शामिल करता हूँ क्योंकि ऊपर जिसका ब्यौरा दिया गया है उसके अलावा प्रकृति विज्ञान सम्वन्धी और कोई सामग्री उन्हें प्राप्त नही थी। कान्ट का युगान्तरकारी कार्य उनके लिए एक अनुद्घाटित रहस्य ही वना रहा था, और लाप्लास उनके वहुत वाद आया था। हमे यह नही भूलना चाहिए कि, यद्यपि वाद मे विज्ञान की प्रगति ने उसको खण्ड-खण्ड कर दिया था, किन्तु १९वी शताब्दी के सम्पूर्ण पूर्वार्ध मे प्रकृति-सम्बन्धी यह अविकसित दृष्टिकोण ही चारों तरफ छाया रहा था। और, मूलत: तो, तमाम स्कूलो में आज भी यही सिखलाया जाता है। *

* एक व्यक्ति, जिसके स्वयं अपने वैज्ञानिक कार्यों ने इस दृष्टिकोण का उन्मूलन करने के पक्ष में अत्यन्त महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत की थी, १८६१ तक भी कितनी दृढता से उससे चिपका हुआ था यह वात निम्न क्लासिक शब्दों से स्पष्ट हो जायगी:

"हमारे सौर परिवार की सारी व्यवस्था का लक्ष्य, जहाँ तक हम उसे समझ सकते हैं, जो चीज मौजूद है उसे कायम रखना तथा विना किसी प्रकार परिवर्तन के उसे जारी रखना है। जिस प्रकार कि प्राचीनतम काल से आज तक पृथ्वी का कोई भी पशु और पौदा किसी भी रूप मे पूर्णतर अथवा भिन्न नहीं हुआ है, जिस प्रकार कि तमाम जीवों में हम एक दूसरे के वाद आनेवाली नहीं, वल्कि एक दूसरे के साथ साथ चलने वाली अवस्थाएँ देखते हैं, और जिस प्रकार कि स्वयम् हमारी नस्ल समस्त भौतिक रूपों में हमेशा पहले ही जैसी वनी रही है — ठीक उसी प्रकार साथ-साथ पाये जाने वाले आकाशीय पिण्डों की अधिकतम विभिन्नता के आधार पर भी हमारे

प्रकृति-सम्वन्धी इस निर्जीव दृष्टिकोण मे पहली दरार किसी प्रकृति वैज्ञानिक ने नही, वल्कि एक दार्शनिक ने पैदा की थी। १७५५ में कान्ट की रचना, प्रकृति का आम इतिहास तथा स्वर्ग के सिद्धान्त(Allgemeine Naturges chichte und Theorie des Himmels) प्रकाशित हुई। प्रथम आवेग के प्रश्न को इसमें खत्म कर दिया गया था। पृथ्वी तथा सम्पूर्ण सौर्य परिवार एक ऐसी वस्तु के रूप में सामने आया जो काल-क्रम मे उत्पन्न हुई थी। न्यूटन ने चेतावनी दी थी : "भौतिकी तुम अधिभौतिकी से सावधान रहना!" प्रकृति वैज्ञानिको के विशाल वहुमत को न्यूटन द्वारा दी गयी इस चेतावनी की ओर ध्यान देने मे यदि थोड़ी भी कम वितृष्णा हुई होती तो कान्ट की अकेली उस ओजस्वी खोज के ही आधार पर वे ऐसे निष्कर्ष निकालने के लिये. वाध्य हो जाते जिनसे कि फिर वे न जाने कितनी भूलो में पड़ने से वच जाते, तथा ग़लत दिशाओं मे लगाया गया उनका न जाने कितना समय और श्रम भी व्यर्थ की वर्वादी से वच जाता क्योकि कान्ट की खोज मे आगे की समस्त प्रगति का आधार मौजूद था। पृथ्वी अगर एक ऐसी चीज़ है जो पैदा

लिए यह परिणाम निकालना सही नहीं होगा कि उनके ये स्वरूप विकास की महज भिन्न-भिन्न अवस्थाएं हैं। वास्तव में सही वात यह है कि हर जिस चीज की सृष्टि की गयी है वह स्वयम् अपने में एकदम पूर्ण है।" (मैडलर, Der Wunder bau des Weltalls order populare Astronomie, पाँचवाँ संस्करण, वर्लिन १८६१, पृष्ठ ३१६।)

[एंगेल्स की टिप्पणी]

पाण्डुलिपि के हाशिये पर एक टिप्पणी है : 'प्रकृति के सम्बन्ध मे पुराने दृष्टिकोण की जो अनम्यता थी उसी से यह आम समझदारी पैदा हुई थी कि समस्त प्रकृति विज्ञान एक पूर्ण इकाई है। फ्रान्सीसी विश्वकोषवादी—अब भी एकदम यांत्रिक रूप से—उसके रूपों को एक दूसरे के साथ-साथ चलनेवाली अवस्थाएं मानते हैं : और फिर इसी के साथ सेंट साइमन, तथा प्रकृति का वह दर्शन आ जाता है जिसे हीगेल ने पूर्णता पर पहुँचाया था।" — स०

हुई है, तब फिर उसकी वर्तमान भूगर्भशास्त्रीय, भौगोलिक तथा जलवायु सम्वन्धी दशाओ को, तथा, इसी प्रकार, उसके पौदो और पशुओं को भी ऐसी ही चीज होना चाहिए जो पैदा हुई है । उसका एक इतिहास होना चाहिए—न केवल अवकाश मे उसके सह-अस्तित्व का इतिहास, बल्कि काल मे उसके अनुक्रम का भी इतिहास । आगे की जाँच-पडताल का कार्य दृढता के साथ फौरन यदि इसी दिशा मे किया गया होता, तो प्रकृति विज्ञान आज कितना उन्नत है उससे कही अधिक उन्नत होता । किन्तु दर्शन से क्या फायदा हो सकता था ? अनेक वर्षो तक बिना किसी तात्कालिक फल के कान्ट का कार्य तब तक यो ही पडा रहा जब तक कि लाप्लास तथा हर्शेल ने उसकी विषय-वस्तु का कार्य प्रतिपादन करके उसको और गहरा आधार नही प्रदान कर दिया । ऐसा करके "नीहारिका-सिद्धान्त" ५७ को धीरे-धीरे उन्होने लोकप्रिय बना दिया । आगे की खोजो ने अन्त मे उसके मस्तक पर विजयश्री का टीका लगा दिया । इनमे से सबसे महत्वपूर्ण खोजें निम्न थी : पता लगा लिया गया था कि स्थिर तारो की सही-सही गति क्या है ; साबित कर दिया गया था कि सार्वत्रिक अवकाश के अन्दर एक ऐसा उपकरण मौजूद है जो प्रतिरोधक है; वर्णक्रम के विश्लेषण के द्वारा सिद्ध कर दिया गया था कि विश्व में मौजूद समस्त भूत के अन्दर रासायनिक एकरूपता (अनन्यता) है तथा जिन दीप्तमान नीहारिका-संहतियों (Nebular masses) की कान्ट ने पूर्व कल्पना की थी वे वास्तव में मौजूद हैं ।*

किन्तु, इस चीज के बारे मे सन्देह किया जा सकता है कि, उठती हुई इस धारणा को कि प्रकृति केवल मौजूद ही नही है, बल्कि वह जन्मती और मरती रहती है यदि एक दूसरे क्षेत्र से समर्थन न मिल गया होता, तो प्रकृति विज्ञान के वैज्ञानिको का अधिकांश भाग परिवर्तनशील

---

* पाण्डुलिपि के हाशिए पर बाद में एंगेल्स ने जोड दिया था : "कान्ट ने यह भी कहा था कि ज्वारों की वजह से पृथ्वी का परिक्रमण (घूर्णन) मन्द हो जाता है— किन्तु इस बात को समझा केवल अब गया है ।"—स०

पृथ्वी के अन्दर अपरिवर्तनशील जीवों के होने की असंगतिपूर्ण बात के प्रति इतनी जल्दी सजग हो जाता। भूगर्भशास्त्र का जन्म हो गया। इसने न सिर्फ इस चीज़ को स्पष्ट कर दिया कि भौमिक स्तर एक के बाद एक बने थे और एक के ऊपर एक जमा होते गये थे, बल्कि उसने यह भी दिखला दिया कि इन स्तरो के अन्दर लुप्त हो गये पशुओ के खोल तथा कंकाल और अब न मिलने वाले पौदों के तने, पत्तियाँ तथा फल भी मौजूद थे। इस बात को मानना अनिवार्य हो गया कि न केवल पूरी पृथ्वी का, बल्कि उसके वर्तमान तल तथा उस पर पाये जाने वाले पौदो और पशुओ का भी समय मे एक इतिहास था। शुरू-शुरू मे यह बात काफ़ी बेदिली से स्वीकार की गयी। पृथ्वी की परिक्रमा के सम्बन्ध में कूविर का सिद्धान्त शब्दो मे तो क्रान्तिकारी था किन्तु अपने असली सार मे वह प्रतिक्रियावादी था। इस बात के स्थान में कि ईश्वर ने एक ही बार मे पूरी सृष्टि कर दी थी उसने कहा कि सृष्टि बार-बार की गयी है। इस प्रकार, चमत्कारी कार्यो को प्रकृति का उसने एक आवश्यक कारक बना दिया। सृष्टा के मनोभावो के कारण पैदा होने वाली अचानक क्रान्तियों की बात के स्थान पर लियेल ने कहा कि ये क्रान्तियाँ पृथ्वी के अन्दर धीरे-धीरे होने वाले रूपान्तरण के प्रभावो के कारण होती है। इस सिद्धान्त को पेश करके लियेल (Lyell) ने भूगर्भशास्त्र के अन्दर एक तारतम्य पैदा कर दिया।*

जीवो की स्थायी जातियो की धारणा के साथ लियेल का सिद्धान्त तो उससे पहले के सिद्धान्तो से भी कम मेल खाता था। पृथ्वी के तल

---

* लियेल के दृष्टिकोण का दोष—कम से कम जिस ढग से वह पहले प्रस्तुत किया गया था उसमे—यह था कि पृथ्वी पर कार्य करने वाली शक्तियों को, गुण तथा परिणाम दोनों मे, वह स्थिर मानता था। पृथ्वी के ठंडे होते जाने की बात जैसे उसके लिए कोई अस्तित्व ही नहीं रखती थी; पृथ्वी—उसके अनुसार—एक निश्चित दिशा में नहीं विकसित होती, बल्कि एक सर्वथा महत्वहीन अकस्मात ढग से यों ही बदलती रहती है। (एगेल्स की टिप्पणी)

(बाहरी हिस्से) तथा जीवन की समस्त परिस्थितियों मे क्रमश: होने वाले परिवर्तन के फलस्वरूप जीवो का भी क्रमश: रूपान्तरण होता गया और वे परिवर्तनशील परिवेश के अनुकूल वनते गये, जातियों का उत्परिवर्तन (Mutability) होता गया। परन्तु परम्परा केवल कैथोलिक चर्च (गिरजे) के अन्दर ही नही, वल्कि प्रकृति विज्ञान के अन्दर भी एक नयी शक्ति की तरह काम करती है। वर्षो तक, लियेल स्वयं इस असगति को न देख सका। उसके शिष्य तो उसे और भी कम देख सके। इसका कारण केवल यही हो सकता है कि इस दर्म्यान प्रकृति विज्ञान के क्षेत्र मे श्रम-विभाजन का दौर-दौरा कायम हो गया था जिसकी वजह से प्रत्येक व्यक्ति का कार्य कमोवेश मात्रा मे अपने विशिष्ट क्षेत्र तक ही सीमित हो गया था। ऐसे इने-गिने लोग थे जिनका व्यापक दृष्टिकोण इस चीज़ की वजह से प्रभावित हुआ था।

इसी दौरान भौतिकी ने भारी प्रगति कर ली थी। १८४२ मे उसके परिणामो को तीन भिन्न-भिन्न व्यक्तियो ने लगभग एक ही साथ सार-रूप मे प्रस्तुत किया था। प्राकृतिक अनुसन्धान-कार्य की शाखा के लिए १८४२ का वर्ष एक युगान्तरकारी वर्ष था। मेयर (Mayer) ने हेलब्रोन मे और जूल (Joule) ने मैनचेस्टर में साबित कर दिया था कि ऊष्मा को यान्त्रिक शक्ति मे वदला जा सकता है तथा यान्त्रिक शक्ति को ऊष्मा मे। ऊष्मा के यान्त्रिक तुल्याक (Mechanical equivalent) के निर्धारण ने इस निष्कर्ष को सन्देह से परे वना दिया था। इसके साथ-साथ, भौतिकी के क्षेत्र मे अलग-अलग जो निष्कर्ष निकलते थे उनको सीधे-सीधे जोड़कर, ग्रोव (Grove) ने—जो पेशे से प्रकृति का वैज्ञानिक नही, वल्कि एक अग्रेज़ वकील था — यह सिद्ध कर दिया था कि तमाम तथाकथित भौतिक शक्तियाँ — यान्त्रिक शक्ति, ऊष्मा, प्रकाश, विद्युत शक्ति, चुम्बकत्व, वास्तव मे जिसे रसायन शक्ति कहा जाता है वह तक भी—निश्चित परिस्थितियो के अन्तर्गत, एक दूसरे मे रूपान्तरित हो जाती है। इससे शक्ति की मात्रा मे कोई कमी नही आती।

इस प्रकार, भौतिक प्रमाणो के आधार पर, ग्रोव ने देकार्ते के इस सिद्धान्त को सही सिद्ध कर दिया था कि संसार में मौजूद गति की मात्रा स्थिर (अपरिवर्तनीय) है। इसके बाद, यह स्पष्ट हो गया कि विशिष्ट भौतिक शक्तियाँ, भौतिक शक्ति की तथाकथित अपरिवर्तनशील "जातियाँ," भूत (द्रव्य) की गति के नाना प्रकार से भिन्नित स्वरूपों मे बँटी हुई है। निश्चित नियमों के अनुसार ये एक रूप से दूसरे रूप मे बदलती रहती है। समस्त भौतिक शक्तियाँ एक दूसरे से सम्बन्धित है तथा एक दूसरे में रूपान्तरित होती रहती हैं, इस बात के प्रमाणित हो जाने के बाद वैज्ञानिक क्षेत्र के अन्दर यह धारणा खत्म हो गयी कि अमुक-अमुक सख्या मे जो भौतिक शक्तियाँ दुनिया मे मौजूद हैं उनका अस्तित्व आकस्मिक है। जिस प्रकार खगोल विद्या पहले इस नतीजे पर पहुँच गयी थी, उसी प्रकार भौतिकशास्त्र भी अब जिस अन्तिम नतीजे पर पहुँचा वह अनिवार्य रूप से जाहिर करता था कि गतिशील भूत (द्रव्य) का एक अनन्त चक्र है, वह इसी चक्र मे घूमता रहता है।

लेवोयसियर के बाद से, तथा विशेष रूप से डाल्टन के बाद से रसायनशास्त्र के क्षेत्र मे आश्चर्यजनक रूप से जो तीव्र प्रगति हुई थी उसने प्रकृति सम्बन्धी पुराने विचारो पर एक दूसरे पक्ष से प्रहार किया। निर्जीव (inorganic) साधनो के माध्यम से ऐसे यौगिकों के तैयार कर लिये जाने से, जो अब तक केवल जीवित शरीर के अन्दर ही पैदा होते आये थे, यह सिद्ध हो गया कि रसायन शास्त्र के नियम सजीव प्राणियो पर भी उसी प्रकार लागू होते हैं जिस प्रकार वे निर्जीव वस्तुओं पर लागू होते है। इसकी वजह से निर्जीव और सजीव प्रकृति के बीच की खाई एक बड़ी हद तक भर गयी– यह वह खाई थी जिसे कान्ट तक अलंघनीय मानता था।

अन्त में, जीवशास्त्रीय शोधकार्य के क्षेत्र में भी पिछली (अर्थात्, १८वी) शताब्दी के मध्यकाल के बाद से जो वैज्ञानिक यात्राएं तथा अभियान

व्यवस्थित रूप से संगठित किये गये थे, दुनिया के तमाम भागों में स्थित योरोपीय उपनिवेशों में वहाँ के रहने वाले विशेषज्ञों ने जाँच-पड़ताल तथा अन्वेषण का जो खूब कार्य किया था, तथा पुराभूगर्भशास्त्र, शारीरिकी और दैहिकी के क्षेत्र में विशेषतया सूक्ष्मदर्शी यन्त्र के विविवत् इस्तेमाल होने लगने की वजह से तथा कोशिका की खोज हो जाने की वजह से जो आम प्रगति हुई थी — इन सब चीजों की वजह से इतनी अधिक सामग्री इकट्ठा हो गयी थी कि अब यह सम्भव तथा एक प्रकार से अनिवार्य हो गया था कि इनके अध्ययन के सिलसिले मे तुलनात्मक पद्धति का इस्तेमाल किया जाय ।* एक तरफ तो तुलनात्मक प्राकृतिक भूगोल की सहायता से विविध पौदो और प्राणियों के जीवन की परिस्थितियाँ निर्धारित कर दी गयी थी, दूसरी तरफ, उनके सजातीय अंगों के अनुसार, विविध जीवोका एक दूसरे के साथ तुलनात्मक अध्ययन कर लिया गया था—न केवल उक्त जीवो की वयस्क स्थिति का वलिक उनके विकास की समस्त अवस्थाओ का। जितनी ही अधिक गहराई तथा सच्चाई से यह शोधकार्य किया गया उतनी ही अधिक मात्रा मे, जैसे उसके स्पर्श से, यह धारणा मिटती गयी कि सजीव प्रकृति की व्यवस्था एक जड तथा अपरिवर्तनीय रूप से निर्धारित व्यवस्था है। न केवल पौदों तथा पशुओ की अलग-अलग जातियाँ अधिकाधिक मात्रा में एक दूसरे से अभिन्न रूप से मिलती गयी, वलिक एम्फीऑक्सस (उभयतस्तीक्ष्ण प्रजाति) तथा लैपीडोसिरेन[५८] (अनुदर छिद्र प्रजाति) की तरह के ऐसे प्राणी सामने आ गये जिन्होने पिछले समस्त वर्गीकरण ** को उपहासास्पद बना दिया। अन्त में, ऐसे जीव भी मिले जिनके बारे मे यह कहना सम्भव न था कि उनका संबंध

---

* पाण्डुलिपि के हाशिए पर एंगेल्स ने "भ्रूणतत्व विज्ञान" जोड दिया था। —स०

** पाण्डुलिपि के हाशिए पर एंगेल्स ने "सेराटोडस" और आरकेय्योपटरिक्स, आदि" [५९] जोड़ दिया था। —स०

पादप जगत् से था अथवा पशु जगत् से। पुराभूगर्भशास्त्र के वृत्तान्तों (रिकार्ड) मे जो रिक्त स्थान थे वे अधिकाधिक मात्रा में भरते गये। इसकी वजह से उन लोगों को भी जो इस चीज़ को किसी भी तरह मानने को तैयार नही थे यह मानने के लिए बाध्य हो जाना पड़ा कि सम्पूर्ण जीव जगत् के विकास के इतिहास तथा प्रत्येक प्राणी के अलग-अलग विकास के इतिहास मे एक ज़बर्दस्त समानता है। वनस्पति-शास्त्र तथा प्राणि-शास्त्र जिस भूल-भुलैयां मे अधिकाधिक मात्रा में खोते चले गये थे उसमे से बाहर निकलने मे इस चीज ने "अरिआडने" के सूत्र की तरह मदद दी। यह चीज उल्लेखनीय है कि जिस समय कान्ट ने सौर परिवार की अनन्तता पर प्रहार किया था, लगभग ठीक उसी समय, १७५९ मे, के० एफ० वोल्फ ने इस धारणा पर पहला हमला किया कि जातियां (Species) स्थिर होती हैं। इसके साथ ही साथ उसने आनुवंशिकता के सिद्धान्त की घोषणा कर दी। किन्तु वोल्फ के लिए जो चीज केवल एक ओजस्वी पूर्व-कल्पना थी—ओकेन, लामार्क, बेयर के हाथों मे पहुँच कर वही एक पक्की चीज बन गयी। और फिर, ठीक सौ वर्ष बाद, १८५९ मे, डार्विन ने इस सिद्धान्त को पूर्णतया विजयी बना दिया। लगभग इसी समय यह सिद्ध कर दिया गया कि प्रोटोप्लाज्म (जीव-द्रव्य) तथा कोशिका, जिनके बारे मे पहले ही प्रमाणित किया जा चुका था कि समस्त जीवों के आकृति-तत्व सम्बन्धी अन्तिम घटक वही हैं, जीवन के निम्नतम स्वरूपों की हैसियत से स्वतंत्र अस्तित्व भी रखते हैं। इस चीज़ ने न केवल निर्जीव तथा सजीव प्रकृति के बीच की खाई को बहुत कम कर दिया, बल्कि जीवों की आनुवंशिकता के सिद्धान्त के मार्ग मे जो एक बुनियादी कठिनाई आड़े आती थी उसे भी दूर कर दिया। प्रकृति सम्बन्धी नये दृष्टिकोण की मुख्य-मुख्य सारी विशेषताएँ स्पष्ट हो गयी। सारी जडता समाप्त हो गयी। नित्यता (अपरिवर्तनशील स्थिरता) की सारी बात खत्म हो गयी। वह समस्त विशिष्टता जिसे शाश्वत माना जाता

था क्षण-भंगुर सिद्ध हो गयी। सिद्ध हो गया कि सम्पूर्ण प्रकृति सतत गतिशीलता की दशा मे रहती है तथा एक चक्र मे घूमती रहती है।

इस प्रकार हम फिर यूनानी दर्शन के महान्, संस्थापकों के इस पुराने दृष्टिकोण पर लौट आये हैं कि छोटी से छोटी चीज़ से लेकर बड़ी तक, बालू के कणों से लेकर सूर्यो तक, प्रोटिस्टा (मूल जीवन-कोशिका—अनु०) से लेकर मनुष्य तक—सम्पूर्ण प्रकृति जन्म तथा निर्वाण की निरन्तर दशा मे है, वह एक चिरन्तन गतिशीलता की, गति और परिवर्तन की अविराम दशा मे है। अन्तर केवल इस मूल बात का है कि यूनानियो के लिए जो बात एक ओजस्वी अन्तर्ज्ञान की चीज़ थी वही हमने अनुभव के आधार पर शुद्ध रूप से वैज्ञानिक शोध-कार्य के द्वारा निर्धारित कर दी है। इसीलिए इसका रूप भी कही अधिक निश्चित तथा स्पष्ट है। यह सही है कि इस चक्रीय क्रम का अनुभवसिद्ध प्रमाण त्रुटियो से सम्पूर्णतया मुक्त नही है, परन्तु जो चीज सुदृढ रूप से प्रमाणित की जा चुकी है उसकी तुलना मे उसकी ये कमियाँ महत्व-हीन हैं। हर बीतते वर्ष के साथ ये कमियाँ दूर होती जा रही है, और इस चक्रीय क्रम से स व धित हमारी जानकारी मे जो रिक्त स्थान थे वे भरते जा रहे है। और जब आदमी इस बात का विचार करे कि विज्ञान की सर्वाधिक महत्वपूर्ण शाखाओं—अन्तर्ग्रहीय खगोलविद्या, रसायन शास्त्र, भूगर्भशास्त्र—को अस्तित्व मे आये अभी मुश्किल-से एक शताब्दी बीती है तथा दैहिकी के क्षेत्र मे तुलनात्मक पद्धति के उपयोग का श्रीगणेश हुए मुश्किल मे ५० वर्ष बीते है, और, कोशिका की, जो लगभग सम्पूर्ण जैविक विकास का बुनियादी रूप है, खोज हुए अभी ४० वर्ष भी नही बीते है, तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यह प्रमाण इससे अधिक पूर्ण नही हो सकता था, उसके ब्योरों में रिक्त स्थानो का होना अस्वाभाविक नही है।

होती जाती है जो उसे केन्द्रीय पिण्ड से मिलती है। उसका वायुमंडल मौसम-सम्बन्धी घटना-प्रवाहों की रंगभूमि बन जाता है; उसका तल भू-गर्भीय परिवर्तनों की रंगभूमि बन जाता है। इन परिवर्तनों के दौरान वायुमंडलीय अवक्षेपण (precipitation) के कारण जो निक्षेप (deposits) पैदा होते हैं उनका महत्व धीरे-धीरे कम होते जाने वाले उन बाह्य प्रभावों की तुलना में निरन्तर बढता जाता है जो अन्दर के गर्म द्रव से उत्पन्न होते है।

अन्त में, ताप यदि इतना एक-जैसा हो जाता है कि कम से कम तल के एक काफी बड़े भाग पर वह उन सीमाओं से बाहर नही जाता जिनके अन्दर प्रोटीन जीवित रह सकती है, तो, यदि अन्य रासायनिक पूर्व-परिस्थितियाँ भी अनुकूल हुई, जीवित प्रोटोप्लाज़्म (जीवद्रव्य) का जन्म हो जाता है। ये आवश्यक पूर्व-परिस्थितियाँ क्या है इस बात को हम अभी तक नही जानते। इसमे आश्चर्य की भी कोई बात नहीं है, क्योंकि अभी तक प्रोटीन के रासायनिक सूत्र का भी निर्धारण नही किया जा सका है। हम यह तक नही जानते कि रासायनिक रूप से भिन्न कितने प्रकार के प्रोटीन पिण्ड है। आश्चर्य की इस वजह से भी इसमे कोई जगह नहीं है कि इस बात का पता चले अभी केवल दस ही वर्ष बीते है कि जीवन के समस्त मूल कार्यों को : पाचन, उत्सर्जन (excretion), संचलन, आकुचन (contraction), उद्दीपनों के प्रति सम्वेदन, तथा प्रजनन के तमाम कार्यों को सर्वथा आकारहीन प्रोटीन ही पूरा करती है।[६०]

प्रगति के सोपान पर अगला कदम उठाये जाने के लिए आवश्यक परिस्थितियों के पैदा होने मे हो सकता है हजारों वर्ष बीत गये हो। उनके बाद ही, नाभिक तथा कोशिका की झिल्ली के निर्माण के आधार पर, यह रूपहीन प्रोटीन प्रथम कोशिका को जन्म दे सकी होगी। किन्तु इसी प्रथम कोशिका ने सम्पूर्ण सजीव ससार के आकृति-तत्व सम्बन्धी विकास की भी नीव डाल दी थी। पुरा-भूगर्भशास्त्रीय अभिलेखो के पूरे दृष्टान्त के आधार पर हम मान ले सकते है कि सबसे पहले अकोशीय तथा

कोशीय प्रोटेस्टा (जीव संघ) की असख्य जातियो का ही जन्म हुआ रहा होगा। इसमे से केवल इयोजून कैनाडेन्से (*Eozoon Canadense*)[६१] ही बच गयी है। इन्ही मे से कुछ के भिन्नीकरण की क्रिया के परिणाम-स्वरूप धीरे-धीरे प्रथम पौदो तथा प्रथम पशुओ का जन्म हुआ था। और प्रथम पशुओ से फिर, मूलतया और अधिक भिन्नीकरण के माध्यम से, पशुओं के अन्य अनेक वर्गों, श्रेणियो, परिवारो, जातियों तथा जातो का विकास हुआ था। और अन्त मे वे स्तनधारी प्राणी पैदा हो गये थे जिनमे तन्त्रिकातत्र अपने विकास की पूर्णतम अवस्था मे पहुँच जाता है। फिर, इन्ही के अन्दर से, अन्त मे, उस स्तनधारी का—यानी मानव का उदय हुआ था जिसमे प्रकृति स्वयम् अपनी चेतना प्राप्त कर लेती है।

मानव का उदय भी भिन्नीकरण की क्रिया के माध्यम से हुआ था। ऐसा केवल वैयक्तिक रूप से ही—यानी एक इकहरी अण्ड-कोशिका से विकसित होकर प्रकृति द्वारा उत्पन्न किये जाने वाले सबसे जटिल सजीव प्राणी का रूप धारण करके ही—नही होता, बल्कि ऐतिहासिक रूप से भी ऐसा ही होता है। हजारो वर्षो के सघर्षो के उपरान्त अन्ततोगत्वा पैर से जब हाथ का भिन्नीकरण पूरा हो गया और वह सीधा खड़ा होकर चलने लगा, तब मनुष्य वानर से पृथक हो गया और स्पष्ट वाणी तथा मस्तिष्क के उस जबर्दस्त विकास का आधार तैयार हो गया जिसने मानव और वानर के बीच की खाई को अलघ्य बना दिया है। हाथ का विशेषीकरण हुआ था—हाथ के विशेषीकरण मे औजार का इस्तेमाल आ जाता है। औजार के इस्तेमाल का मतलब होता है विशिष्ट मानवी क्रियाशीलता, प्रकृति के ऊपर मनुष्य की ऐसी क्रियाशीलता जो उसे बदल देती हैं, यानी उसका मतलब होता है उत्पादन। अधिक सकुचित अर्थो मे देखा जाय तो पशुओ के पास भी औज़ार होते है—परन्तु ये उनके शरीरो के अंगों के ही रूप मे होते है। उदाहरण के लिए, चीटी, मधुमक्खी, ऊदबिलाव को देखिए। पशु भी पैदा करते है, किन्तु आस-पास की प्रकृति के ऊपर उनके उत्पादन का जरा भी असर नही पडता। प्रकृति के ऊपर अपनी छाप लगाने

में अकेला मनुष्य ही सफल हुआ है। ऐसा उसने पौदों और पशुओं की जातियो को एक जगह से दूसरी जगह ले जाकर ही नही किया है, बल्कि ऐसा उसने अपने निवास-स्थान की शक्ल-सूरत तथा जलवायु को तथा स्वयम् पौदों और पशुओं तक को बदल कर इस तरह किया है कि उसके कामो का असर पृथ्वी के आम विनाश के साथ ही मिट सकता है। और इस कार्य को मुख्यतया और मूलतया उसने हाथ के द्वारा ही सम्पन्न किया है। यहाँ तक कि भाप से चलने वाला इंजिन भी—जो कि अभी तक प्रकृति को बदलने का उसका सबसे शक्तिशाली औज़ार है—अन्ततोगत्वा हाथ पर ही निर्भर करता है, क्योंकि वह भी एक औज़ार है। किन्तु क़दम-ब-क़दम, हाथ के विकास के साथ-साथ, मस्तिष्क का भी विकास होता गया। सबसे पहले व्यावहारिक रूप से उपयोगी अलग-अलग कार्यों के लिए आवश्यक परिस्थितियो की चेतना उसे प्राप्त हुई; और, बाद मे, अधिक अनुकूल परिस्थितियों में स्थित लोगो के बीच, इसी चेतना से उत्पन्न होकर उसे उन प्राकृतिक नियमों की समझदारी प्राप्त हो गयी जो उनके जीवनों को संचालित करते है। और फिर, प्रकृति के नियमों के तेज़ी से बढ़ते जाने वाले ज्ञान के साथ-साथ, प्रकृति को इच्छानुसार बदलने के साधन भी बढते गये। हाथ के साथ-साथ और उसके समानान्तर ही, तथा एक अंश में उसी के कारण, अगर मनुष्य के मस्तिष्क का भी उसी प्रकार विकास न हो गया होता तो भाप के इंजिन का निर्माण करने मे अकेला हाथ कभी सफल न होता।

मनुष्य के उदय के साथ हम इतिहास में प्रवेश करते हैं। एक इतिहास पशुओं का भी है—उनके जन्म तथा धीरे-धीरे वर्तमान अवस्था तक उनके विकास का इतिहास। परन्तु, यह इतिहास उनके लिए बना-बनाया होता है। और जहाँ तक उसमें स्वयम् उनके भाग लेने का सवाल है तो ऐसा बिना उनकी जानकारी तथा इच्छा के होता है। दूसरी ओर, शब्द के अपेक्षाकृत संकुचित अर्थ में, पशुओं से मानव प्राणी जितने ही अधिक दूर होते जाते है, उतना ही अधिक अपने इतिहास का वे स्वयम्

सचेत रूप से; निर्माण करने लगते है; इस इतिहास पर अनपेक्षित कारणों तथा अनियंत्रित शक्तियों का प्रभाव उतना ही कम होता जाता है, और जो ऐतिहासिक परिणाम निकलता है वह पहले से निर्धारित किये गये लक्ष्य के उतना ही अधिक अनुकूल होता है। किन्तु, इस पैमाने को अगर हम मानव इतिहास पर लागू करें, इसे आज की सवसे विकसित क़ौमो के इतिहास पर भी अगर हम लागू करे, तो हम देखते हैं कि प्रस्तावित उद्देश्यो तथा प्राप्त परिणामों के वीच अव भी एक विराट् अन्तर है, अनपेक्षित कारण अव भी अत्यधिक प्रवल है, तथा उन शक्तियो की अपेक्षा, जिन्हे योजनानुसार काम में लगाया जाता है, अनियत्रित शक्तियों का अव भी कही अधिक जोर है। और, जव तक कि मानवो की सवसे मूलभूत ऐतिहासिक क्रियाशीलता, वह क्रियाशीलता जिसने उन्हे पशुओ से मानवो मे वदल दिया है और जो उनके ही अन्य तमाम कामो का भौतिक आधार है—अर्थात् जीवन की आवश्यकताओं का उत्पादन, यानी हमारे युग का सामाजिक उत्पादन अनियत्रित शक्तियो के अनेच्छित कारणों के घात-प्रतिघात का शिकार है तथा अपने इच्छित लक्ष्य को वह, अपवाद स्वरूप, कभी-कवार ही प्राप्त कर लेता है, किन्तु अधिकतर जो वह चाहता है उसका उल्टा ही होता है—तव तक इसके अलावा और कुछ हो भी नही सकता।

सवसे उन्नत औद्योगिक देशो मे प्रकृति की शक्तियो को हमने वश मे कर लिया है और मानव जाति की सेवा मे लगा दिया है। इस प्रकार उत्पादन को हमने वेहिसाव वढा लिया है। फलस्वरूप, पहले जितना सौ आदमी पैदा करते थे आज एक वच्चा भी उससे अधिक पैदा कर लेता है। और इस सवका नतीजा क्या है ? आम जनता के ऊपर काम का वोझ वढ़ता गया है, उसके कष्टो मे निरन्तर वृद्धि होती गयी है, और हर दस वर्ष पर एक भयकर सकट उठ खड़ा होता है। डारविन ने जव यह वतलाया था कि वह मुक्त प्रतियोगिता, अस्तित्व के लिए वह संघर्ष जिसे अपनी सबसे वडी ऐतिहासिक उपलब्धि वता कर अर्थ-शास्त्री फूले

नही समाते — पशु जगत् का एक सामान्य नियम है, तव वे यह नहीं जानते थे कि मानव-जाति के ऊपर, और विशेष तौर से ख़ुद अपने देश-वासियों के ऊपर, वे कितना तीक्ष्ण व्यंग्य कर रहे थे ! जिस तरह आम उत्पादन ने विशिष्टतया जीव-शास्त्रीय दृष्टि से मानव जाति को पशु जगत् से ऊपर उठाया है, उसी तरह सामाजिक उत्पादन का केवल सचेत संगठन, ऐसा संगठन ही सामाजिक दृष्टि से मानव जाति को पशु जगत् से ऊपर उठा सकता है जिसमे उत्पादन और वितरण नियोजित ढंग से किये जाते हो। ऐतिहासिक विकास इस तरह के सगठन कार्य को हर दिन अधिकाधिक आवश्यक वनाता जा रहा है, परन्तु हर दिन वीतने के साथ-साथ वह उसको सम्भव भी अधिक वनाता जा रहा है। जिस दिन ऐसा हो जायगा उस दिन से इतिहास के एक नए युग का श्रीगणेश होगा। इस युग में स्वय मानव जाति, तथा मानव-जाति के साथ-साथ उसके कार्य-कलापो की तमाम शाखाएँ, और विशेषरूप से प्रकृति विज्ञान की शाखा, इतनी तेज़ी से आगे वढ़ जायगी कि इस युग के पहले जो कुछ भी हुआ था वह उसके सामने एकदम अकिंचन लगने लगेगा।

इसके वावजूद, "हर चीज़ जो जन्मती है उसका विनाश भी होना चाहिए।"[६२] सम्भवतः करोड़ो वर्ष वीत जायेंगे, लाखों पीढियाँ आयेंगी और चली जायेंगी, किन्तु, अन्त मे, अनिवार्य रूप से वह समय भी आयेगा जव सूर्य की घटती हुई गर्मी ध्रुवो से नीचे की तरफ वढती हुई वर्फ को गलाने के लिए काफी नही होगी; जव, भूमध्य रेखा के अधिकाधिक समीप पहुँच जाने पर भी मानव जाति देखेगी कि वहाँ भी इतनी ऊष्मा नही है कि जीवन चल सके; जव, धीरे-धीरे करके सजीव जीवन का अन्तिम चिन्ह भी नष्ट हो जायगा; और पृथ्वी, चन्द्रमा जैसे एक वुझे, शीत से जमे गोले की ही तरह, सघनतम अन्धकार मे वैसे ही वुझे हुए सूर्य के चारो तरफ चक्कर लगाने लगेगी, उसकी कक्षा (orbit) अधिकाधिक घटती जायगी और, अन्त में, वह सूर्य पर ही गिर जायगी। दूसरे ग्रह इससे पहले उस पर गिर चुके होंगे, अन्य इसके वाद उस पर

गिरेंगे। इसके बाद; एक देदीप्यमान, गर्म ऐसे सौर परिवार के स्थान पर, जिसके सदस्य आनन्द-पूर्वक मिलजुल कर रहते थे, अन्तरिक्ष के अनन्त अवकाश में केवल एक ठडा, मृत गोला ही अपने एकाकी पथ पर चलता हुआ निश्शेष रह जायगा ! और जो चीज हमारे सौर परिवार के साथ घटित होगी, देर-सवेर से वही हमारे द्वीप-विश्व के अन्य समस्त परिवारो के साथ भी घटेगी। यही हाल अन्य तमाम असंख्य द्वीप-विश्वो का होगा, उनका भी जिनका प्रकाश जब तक उसे देखने के लिए एक भी जीवित प्राणी यहाँ मौजूद है तब तक भी कभी पृथ्वी पर नही पहुँच सकेगा।

और जब इस तरह का सौर परिवार अपने जीवन-इतिहास को पूरा कर लेगा और उस गति को पहुँच जायगा जो उस हर चीज की होती है जो ससीम है, यानी वह मर जायगा, तब क्या होगा ? सूर्य का शव अनन्त आकाश में क्या समस्त अनन्त काल तक यों ही घूमता रहेगा, और वे समस्त प्राकृतिक शक्तियाँ जो अनन्त प्रकार के भिन्नित स्वरूपो मे कभी अलग-अलग बँट गयी थी अब फिर सदा के लिए गति के एक ही रूप मे, आकर्षण शक्ति के रूप मे, परिवर्तित हो जायँगी ? "अथवा" —जैसा कि सेक्की पूछता है (पृष्ठ ८१०) — "क्या प्रकृति मे ऐसी शक्तियाँ है, जो मृत परिवार को फिर उसकी मूल दीप्तमान नीहारिका की अवस्था मे रूपान्तरित कर दे सकती है और उसके अन्दर पुन· नव जीवन का सचार कर दे सकर्त है ? हम नही जानते।"[६३]

हाँ, ठीक है, इसे हम उस तरह नही जानते जिस तरह कि यह जानते हैं कि २×२=४, अर्थात् उस तरह नही जानते जिस तरह कि यह जानते है कि द्रव्य (भूत) का आकर्षण दूरी के वर्ग के अनुसार वढता-घटता जाता है। जहाँ तक सम्भव होता है प्रकृति के सम्वन्ध मे प्रकृति विज्ञान एक पूरे सामञ्जस्यपूर्ण दृष्टिकोण की स्थापना करता है। इस दृष्टिकोण के विना तो अब निर्बुद्धि से निर्बुद्धि अनुभववादी भी कही नही पहुँच सकता। किन्तु, प्रकृति विज्ञान के सैद्धातिक क्षेत्र में वहुधा

हमें अपूर्ण रूप से ज्ञात परिमाणों की सहायता से गणना करनी पड़ती है। ऐसी हालत मे, अपर्याप्त ज्ञान से पैदा होने वाली कठिनाई पर काबू करने मे विचारों की सुसंगतता सदा सहायक होती है। दर्शन से आधुनिक प्रकृति विज्ञान को गति की अविनाशिता के सिद्धांत को ग्रहण करना पड़ा है। इस सिद्धान्त के विना अव वह बिलकुल चल नही सकता। परन्तु भूत (द्रव्य) की गति मात्र एक उजड्ड यांत्रिक गति, मात्र एक स्थान परिवर्तन ही नही है; वह ऊष्मा तथा प्रकाश है, विद्युत तथा चुम्बकीय तनाव है, रासायनिक सम्मिलन तथा विघटन है, जीवन है, और, अन्त मे, चेतना भी है। अपने अस्तित्व के सम्पूर्ण निस्सीम काल मे, केवल एक ही बार, और वह भी अपनी चिरन्तनता की तुलना में केवल एक अत्यन्त ही लघु काल के लिए, भूत अपनी गति का भिन्नीकरण करने, तथा उसके माध्यम से, इस गति के सम्पूर्ण वैभव को उजागर करने मे सफल हुआ है, और इसके पहले और इसके बाद भी अनन्त काल तक वह केवल स्थानान्तरण तक ही सीमित रहा है और रहेगा—यह कहना इस बात को कहने के समान है कि भूत (द्रव्य) मर्त्य है तथा गति क्षण भंगुर है!

गति की अविनाशिता के सम्बन्ध में केवल परिमाणात्मक ढग से नहीं विचार किया जा सकता, उस पर गुणात्मक ढग से भी विचार किया जाना चाहिए। भूत (द्रव्य), जिसके निरे यांत्रिक स्थानान्तरण की क्रिया के अन्तर्गत इस बात की सम्भावना तो छिपी हुई है कि, अनुकूल परिस्थितियों मे, वह ऊष्मा, विद्युत-शक्ति, रासायनिक क्रिया, जीवन मे रूपान्तरित हो जाय, किन्तु जिसमे इन परिस्थितियों को स्वय अपने अन्दर से पैदा करने की क्षमता नही है—वह भूत ऐसा भूत है जिसकी गति उससे छिन गयी है! जिस भूत (द्रव्य) ने अपने उपयुक्त विभिन्न रूपो मे रूपान्तरित हो सकने की क्षमता खो दी है उसमें यह तो सम्भव है कि शक्ति *(dynamis)* अब भी मौजूद हो, किन्तु उसमें क्रियाशीलता *(energeia)* शेष नही रह गयी, और, इसलिए,

आंशिक रूप से, वह नष्ट हो गया है। परन्तु, ये दोनों ही स्थितियाँ कल्पनातीत हैं।

इतना निश्चित है : एक ऐसा समय था जब कि हमारे द्वीप-विश्व के भूत (द्रव्य) ने गति की—किस प्रकार की गति की, इसे हम अभी तक नहीं जानते— इतनी मात्रा को ऊष्मा में रूपान्तरित कर दिया था कि उससे, कम से कम, (मैडलर के अनुसार) दो करोड़ तारों से सुसज्जित सौर-परिवारों की रचना हो गयी थी। इन तारों का क्रमशः बुझता जाना भी निश्चित है। यह रूपान्तरण कैसे हुआ था ? इस चीज़ को हम उतना ही कम जानते हैं जितना कम पादरी सेक्की इस बात को जानते हैं कि आया हमारे सौर-परिवार का भावी निस्सार तत्व *(caput mortuum)* फिर नये सौर-परिवारों के द्रव्यों (उपादानों) मे बदल जायेगा या नही। परन्तु यहाँ या तो हमें अब किसी सृष्टा का सहारा लेना पड़ेगा, अथवा इस परिणाम पर पहुँचना पड़ेगा कि हमारे विश्व के सौर परिवारों के ताप-दीप्त मौलिक द्रव्य (उपादान) की रचना प्राकृतिक ढंग से, गति के रूपान्तरणों के द्वारा, उन रूपान्तरणों के द्वारा हुई थी जो गतिशील भूत के अन्दर प्राकृतिक रूप से मौजूद हैं। अगर ऐसा है तो लाज़िमी है कि भूत फिर ऐसी आवश्यक अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा कर देगा जिनमे इसी क्रिया की पुनरावृत्ति हो सके। हो सकता है कि ऐसा वह करोड़ों वर्षो के ही बाद, और कमोवेश मात्रा मे केवल संयोग से ही, कर सके, परन्तु उसका ऐसा करना अनिवार्य है। उसकी यह अनिवार्यता भी सयोग मे अन्तर्निहित है।

इस तरह के रूपान्तरण की सम्भावना को अब अधिकाधिक मात्रा में स्वीकार किया जा रहा है। लोग इस नतीजे पर पहुँच रहे है कि एक दूसरे के ऊपर गिर कर अन्ततोगत्वा खपिण्डों का मिल जाना अनिवार्य है। इस तरह की टक्करो से ऊष्मा की कितनी मात्रा पैदा होगी इस तक के हिसाब लगाये जा रहे हैं। अचानक जो नये तारे प्रज्वलित हो उठते हैं, तथा इसी प्रकार परिचित तारो की चमक मे जो अचानक वृद्धि

हो जाती है—जिसकी सूचना खगोल-विद्या से हमें मिल जाती है—उसे भी इन टक्करों के आधार पर आसानी से समझा जा सकता है। इसके अलावा, न केवल हमारे ग्रहो का परिवार सूर्य के चारों तरफ घूमता है और हमारा सूर्य हमारे द्वीप-विश्व के अन्दर चक्कर काटता है, बल्कि सम्पूर्ण द्वीप-विश्व भी, अन्य द्वीप-विश्वों के साथ एक अस्थायी सापेक्ष-सन्तुलन की दशा मे टिका हुआ, अन्तरिक्ष मे गतिशील रहता है। इसका कारण यह है कि मुक्त रूप से तैरते हुए पिण्डो के बीच भी सापेक्ष सन्तुलन केवल तभी कायम रह सकता है जब कि उनकी गति का निर्धारण पारस्परिक (अन्योन्य) रूप से होता हो। और बहुत से लोग तो यह मानते है कि शून्य आकाश (अन्तरिक्ष) मे हर जगह एक ही सा ताप (temperature) नही है। अन्त मे, हम जानते है कि हमारे द्वीप-विश्व के अनगिनत सूर्यो की ऊष्मा उसके एक अति अल्प भाग को छोडकर, शून्य आकाश में विलीन हो जाती है और शून्य आकाश के ताप मे उसकी वजह से एक सेन्टीग्रेड के लाखवे, करोड़वे हिस्से की भी वृद्धि नहीं होती। ऊष्मा की यह विशाल राशि कहाँ चली जाती है? विश्व के शून्य आकाश को गर्म करने के प्रयत्न मे क्या वह सदा के लिए बर्बाद हो गयी है, व्यावहारिक रूप मे क्या उसका अस्तित्व समाप्त हो गया है, और अब क्या केवल सैद्धान्तिक रूप से ही उसका अस्तित्व इस माने मे शेष है कि विश्व का शून्य आकाश एक डिग्री के करोड़वे अथवा अरबवें भाग के बराबर अधिक गर्म हो गया है? इस तरह की धारणा इस बात से इन्कार करती है कि गति का विनाश नही हो सकता, वह इस सम्भावना को स्वीकार कर लेती है कि ख-पिण्डो के क्रमश: एक दूसरे मे मिलते जाने से तमाम मौजूदा यांत्रिक गति ऊष्मा मे परिवर्तित हो जायगी और इस ऊष्मा का शून्य आकाश में विकिरण हो जायगा जिससे कि, "शक्ति की अविनाशिता" की तमाम बातो के बावजूद, आमतौर से समस्त गति समाप्त हो जायगी। (यहाँ पर यह भी स्पष्ट हो जाता है कि "गति की अविनाशिता" के स्थान पर "शक्ति की अविनाशिता" शब्दों का इस्तेमाल करना कितना गलत है!)

इसलिए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि किसी न किसी प्रकार आकाश मे विकिरण होने वाली ऊष्मा के लिए गति का किसी अन्य ऐसे रूप में रूपान्तरण होना सम्भव होना चाहिए जिससे कि उसे एक बार फिर संचित किया जा सके और वह फिर एक बार सक्रिय हो सके। यह कैसे सम्भव होगा इसका पता लगाने का भार आगे के वैज्ञानिक शोध-कार्य पर होगा। इस तरह, बुझे हुए सूर्यो के ताप-द्वीप्त वाष्प मे पुनः परिवर्तित होने के मार्ग की मुख्य कठिनाई दूर हो जाती है।

वाकी, जहाँ तक कि काल के अनन्त विस्तार मे ब्रह्माण्डों के शाश्वत क्रमिक अनुगमन (अर्थात् लगातार पैदा होते रहने) की वात है तो ऐसा होना तो इस चीज का लाज़िमी नतीजा ही होगा कि अनन्त आकाश मे असख्य ब्रह्माण्ड सह-अस्तित्व की अवस्था मे एक दूसरे के साथ कायम हैं। वास्तव मे यह ऐसा सिद्धान्त है जिसकी आवश्यकता ने ड्रेपर* के सिद्धान्त-विरोधी यान्की (अमरीकी) मस्तिष्क तक को उसे स्वीकार करने के लिए वाध्य कर दिया है।

भूत (द्रव्य) जिस चक्र में चलता है वह एक शाश्वत चक्र है, ऐसा चक्र है जो अपनी कक्षा को केवल ऐसे कालो मे पूरा करता है जिन्हे नापने के लिए हमारा भौमिक वर्ष सर्वथा अपर्याप्त है; वह ऐसा चक्र है जिसमे सर्वोच्च विकास का समय, सजीव जीवन तथा—इससे भी अधिक—ऐसे प्राणियो के जीवन का समय जो प्रकृति के विषय में तथा खुद अपने विपय मे सचेत है, उतना ही छोटा और सीमित होता है जितना छोटा और सीमित वह अवकाश है जिसमे जीवन तथा आत्म-चेतना प्रकट होते है; वह ऐसा चक्र है जिसके अन्दर भूत के अस्तित्व की प्रत्येक ससीम विधा (every finite mode of existence)—वह चाहे सूर्य हो चाहे

* "अनन्त आकाश में ब्रह्माण्डों की वहुलता से यह धारणा उत्पन्न होती है कि काल के अन्तहीन विस्तार में ब्रह्माण्डों का क्रम सदा चलता रहेगा।" (जे० डब्ल्यू० ड्रेपर, **योरप के बौद्धिक विकास का इतिहास,** खण्ड २, लन्दन, १८४६, पृष्ठ ३२५।) **[एगेल्स की टिप्पणी]**

नीहारिका-वाष्प, चाहे अकेला पशु हो, चाहे पशुओं की पूरी जात हो चाहे रासायनिक संयोजन हो चाहे विघटन हो,—समान रूप से क्षण-भंगुर है; इस चक्र के अन्दर शाश्वत रूप से परिवर्तित होते, शाश्वत रूप से गति करते भूत के अतिरिक्त तथा उन नियमो के अतिरिक्त, जिनके अनुसार वह गति करता तथा बदलता है, अन्य कोई वस्तु शाश्वत नही है।

किन्तु काल और अवकाश के विस्तार में यह चक्र चाहे जितनी बार और चाहे जितनी निर्दयता के साथ पूरा हो; चाहे जितने करोड़ सूर्यो तथा पृथ्वियो का उदय और निर्वाण हो जाय और किसी एक सौर परिवार और एक ही ग्रह में सजीव जीवन के लिए आवश्यक परिस्थितियों के उत्पन्न होने से पहले वह चाहे जितने लम्बे समय तक यो ही बना रहा हो; और चिन्तन की क्षमता रखने वाले ऐसे प्राणियो के उनके अन्दर से उत्पन्न होने से पहले—जो थोड़े समय के लिए अपने जीने लायक परिस्थितियाँ पा जाते है और बाद मे बिना किसी दया-ममता के नष्ट कर दिये जाते है—सजीव प्राणियों की चाहे कितनी ही अगणित संख्या को जीवन और मरण की शृखला के बीच से गुज़रना पड़े — एक चीज़ निश्चित है कि भूत (द्रव्य) अपने समस्त रूपों में शाश्वत रूप से एक ही जैसा बना रहता है, उसका कोई भी गुण कभी लुप्त नहीं हो सकता, और, इसलिए, जिस लौह अनिवार्यता से यह निश्चित है कि पृथ्वी पर अपनी सर्वोच्च सृष्टि को, यानी चिन्तनशील मस्तिष्क को वह नष्ट कर देगा, उसी तरह यह भी निश्चित है कि किसी अन्य स्थान पर और किसी अन्य समय वह फिर उसे जन्म देगा।

फ्रेडरिक एंगेल्स

भूतात्माओं की दुनिया में प्रकृति विज्ञान का स्थान

जन समुदाय की चेतना मे द्वन्द्ववाद का जो चित्र बना है उसे इस पुरानी कहावत के माध्यम से व्यक्त किया जाता है कि चरम सीमाएँ (extremes) मिल जाती है। इस धारणा के अनुसार मनोरथ-सृष्टि, भोलेपन, तथा अन्ध विश्वास की भावना के अति रूपों की खोज प्रकृति विज्ञान की उस धारा मे न करके जो, प्रकृति सम्बन्धी जर्मन दर्शन की तरह, वस्तुगत जगत् को उसकी मनोगतवादी धारणा के साँचे मे जबर्दस्ती ढालने का प्रयत्न करती है, यदि हम इसकी विरोधी उस धारा मे करे जो, मात्र अनुभव को उच्चासन पर प्रतिष्ठित करती हुई, चिन्तन को एकदम तिरस्कार-भाव से देखती है और जो, चिन्तन की शून्यता की दृष्टि से, वास्तव मे पराकाष्ठा पर पहुँच गयी है—तो हम कोई विशेष ग़ल्ती नही करेगे। इगलैण्ड मे इसी सम्प्रदाय (school) का दौर-दौरा है। इसके पिता बहु-प्रशंसित फ्रान्सिस बेकन है। उन्होने माँग रखी है कि उनकी नयी अनुभव-सिद्ध (empirical), आगमनात्मक पद्धति (inductive method) का उपयोग किया जाना चाहिए और, उसकी सहायता से, सबमे पहले . दीर्घ जीवन तथा पुनर्यौवन को प्राप्त

करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए; एक हद तक, उसकी सहायता से, कद तथा रंग-रूप को बदलने का, एक काया को दूसरे मे रूपान्तरित करने का, नयी मानव जातियों [species] को उत्पन्न करने का, हवा तथा तूफ़ानो की सृष्टि करने की शक्ति पर अधिकार कायम करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। बेकन इस बात की शिकायत करता है कि अनुसन्धान के इस तरह के कार्यों को तिलांजलि दे दी गयी है। प्रकृति के अपने इतिहास मे वह सोना बनाने तथा नाना प्रकार के चमत्कारिक कार्य करने के लटके बतलाता है। इसी प्रकार अपनी वृद्धावस्था मे आइजक न्यूटन ने भी सेन्ट जॉन के दिव्य संदेश की व्याख्या करने मे अपना बहुत-सा समय लगाया था। इसलिए, अगर ऐसा लगता है कि, हाल के वर्षो मे, अंग्रेजी अनुभववाद के कुछ प्रतिनिधि—और निश्चय ही ये उसके सबसे खराब प्रतिनिधि नही है—मेज पर खट-खट करके मृतात्माओ से बात करने तथा उन्हे देखने की अमरीका से आयी बीमारी मे बुरी तरह फँस गये है, तो इसमे कोई आश्चर्य की बात नही है।

इस चक्कर में प्रकृति का जो सबसे प्रथम विज्ञान वेत्ता फँसा है वह अत्यन्त प्रसिद्ध प्राणिशास्त्री तथा वनस्पतिशास्त्री, एल्फ्रेड रसेल वैलेस है। यह वही व्यक्ति है जिसने प्राकृतिक वरण की क्रिया के द्वारा जातियो के परिवर्तन के सिद्धान्त को ठीक उसी समय पेश किया था जिस समय डारविन ने उसे पेश किया था। अपने छोटे-से ग्रन्थ, चमत्कार तथा आधुनिक अध्यात्मवाद, लदन, बर्न्स, १८७५, मे वह प्रकृति सम्बन्धी ज्ञान की इस शाखा से सम्बन्धित अपने प्रथम अनुभवों का वर्णन करता है। वह कहता है कि ये अनुभव १८४४ से शुरू होते हैं। उस समय मेस्मेरिज़्म* के सम्बन्ध मे उसने मिस्टर स्पेन्सर हाल के भाषणों को सुना था और फिर उनसे अनुप्राणित होकर उसी प्रकार के प्रयोग

* एक अमल जिससे आदमी पर एक स्वप्न-सा छा जाता है और उसके अन्दर का भेद खुल जाता है।—अनु०

अपने शिष्यों पर किये थे। "मुझे इस विषय मे गहरी दिलचस्पी थी और मैंने उस पर जोरो से अमल शुरू किया।" (पृष्ठ ११६) जाड़ों के कड़ेपन तथा स्थानीय सम्वेदन-शून्यता के साथ-साथ न सिर्फ उसने चुम्बकीय निद्रा पैदाकर दी, बल्कि कपाल सम्बन्धी गॉल के मानचित्र को भी उसने सही प्रमाणित कर दिया, क्योंकि गॉल द्वारा बतायी गई किसी भी इन्द्रिय को ज्योंही छुआ जाता था त्योंही चौम्बिक प्रभाव से बंधे हुए रोगी के अन्दर उसके अनुकूल क्रियाशीलता उत्पन्न हो जाती थी और इसे वह उपयुक्त तथा सशक्त सकेतों के द्वारा व्यक्त करने लगता था। इसके अलावा, उसने यह भी दिखला दिया कि केवल उसके स्पर्श करने से ही उसका रोगी परिचालक की समस्त सम्वेदनाओं की स्वयम् भी अनुभूति करने लगता है। यह कहकर कि यह ब्रान्डी है उसने उसे एक गिलास पानी से नशे में ला दिया था। किसी नौजवान को, उसकी जागृतावस्था मे भी वह ऐसा बुद्धू बना दे सकता है कि फिर उसे अपने नाम का भी पता नही रह जाता। किन्तु, यह एक ऐसा कार्य है जिसे स्कूलो के दूसरे मास्टर बिना किसी मेसमेरिज़्म के ही सम्पन्न कर लेते है। आदि-आदि।

सयोग की बात है कि १८४३-४४ के जाड़ो मे इन मिस्टर स्पैन्सर हॉल के मैन्चेस्टर मे मुझे भी दर्शन हो गये थे। वह एक बहुत ही मामूली किस्म का धूर्त आदमी है। कुछ पादरियो के सरक्षण मे वह देश का दौरा कर रहा था। एक युवा स्त्री की सहायता से वह चौम्बिक-कपाल विद्या सम्बन्धी प्रदर्शन दिखलाता था और उनके द्वारा ईश्वर के अस्तित्व, आत्मा की अमरता, तथा उस भौतिकवाद की निस्सारता को प्रमाणित करने की चेष्टा करता था जिसका ओवेनवादी लोग उस समय तमाम बड़े-बड़े शहरो मे प्रचार कर रहे थे। युवती को चौम्बिक निद्रा मे सुला दिया जाता था और फिर परिचालक ज्यों ही गॉल द्वारा निर्धारित की गयी किसी इन्द्रिय से सम्बन्धित कपाल के किसी भाग का स्पर्श करता था त्यो ही उस इन्द्रिय की क्रियाशीलता का परिचय देने के

लिए नाटकीय प्रदर्शनात्मक सकेतो तथा हाव-भावो का वह एकदम मुक्त और आडम्बरपूर्ण निदर्शन करने लगती थी। उदाहरण के लिए, प्रजनन-शीलता की इन्द्रिय का स्पर्श होते ही वह एक काल्पनिक शिशु को गोदी मे खिलाने तथा चूमने-चाटने लगती थी, आदि। इसके अतिरिक्त, नेक मिस्टर हॉल ने कपाल सम्वन्धी गॉल के भूगोल को वाराटेरिया [६४] नामक एक नया द्वीप जोडकर और भी सम्पन्न वना दिया था: कपाल के ठीक ऊपर उसने भक्ति-भाव की एक इन्द्रिय ढूंढ निकाली थी! इसे स्पर्श करते ही सम्मोहनावस्था मे पडी उसकी कुमारी युवती घुटनों के वल वैठ जाती थी, अपने हाथो को जोडकर प्रार्थना करने लगती थी, और उस आश्चर्य-चकित अर्द्ध-शिक्षित श्रोता-मडली के सामने पूजा में लीन एक दिव्य देवी के रूप मे प्रस्तुत हो जाती थी। प्रदर्शन का यही चरमोत्कर्ष तथा अन्त था। ईश्वर का अस्तित्व प्रमाणित कर दिया गया था!

मुझ पर तथा मेरे एक परिचित पर इसका वैसा ही प्रभाव पडा जैसा कि मिस्टर वैलेस पर पडा था। प्रदर्शन ने हमारे अन्दर दिलचस्पी पैदा कर दी और हमने यह देखने की कोशिश की कि हम किस हद तक उसकी पुनरावृत्ति कर सकते है। वारह वर्ष का एक तेज-सा लड़का हमारा परीक्षण पात्र वनने के लिए तैयार हो गया। उसकी आँख मे धीरे से देखने, अथवा उसको थपथपाने से, विना किसी कठिनाई के, वह सम्मोहनावस्था मे पहुँच जाता था। किन्तु हम लोग चूंकि मिस्टर वैलेस की अपेक्षा कुछ कम विश्वासशील थे तथा काम भी चूँकि हमने अपेक्षाकृत कुछ कम जोश के साथ शुरू किया था इसलिए जिन नतीजो पर हम पहुँचे वे विल्कुल भिन्न थे। मास-पेशियो की जडता तथा सम्वेदन-शून्यता को पैदा करना आसान था; किन्तु, इनके अलावा, हमने देखा कि उसमे इच्छा शक्ति की पूर्ण निश्चेष्टता की भी दशा पैदा हो गई थी तथा उसकी इस दशा के साथ अनुभूति की एक विचित्र अति सम्वेदिता भी जुड़ी हुई थी। किसी वाहरी उद्दीपन के द्वारा रोगी को जब उसकी तन्द्रा से जगा

दिया जाता था, तव वह जागृतावस्था मे भी कही अधिक तेज़ी प्रदर्शित करता था। परिचालक के साथ किसी भी प्रकार के रहस्यपूर्ण सम्वन्ध का कोई चिन्ह यहाँ नही दिखलाई देता था : कोई दूसरा व्यक्ति भी सोने वाले को उतनी ही आसानी से सक्रिय बना दे सकता था। गाल की कापालिक इन्द्रियो को क्रियाशील कर देना तो हमे जैसे वायें हाथ का खेल लगा। हम इससे और भी आगे गये। न केवल उक्त इन्द्रियों को हम मनचाहे ढग से एक दूसरे से वदलने मे, अथवा उनकी जगह को पूरे शरीर मे किसी भी स्थान पर निर्धारित करने मे हम सफल हुए, वल्कि हमने और भी न जाने कितनी इन्द्रियाँ ईजाद कर ली। गाने, सीटी वजाने, वशी वजाने, नाचने, मुक्कावाज़ी करने, सीने, जूता गाँठने, तम्वाकू पीने, आदि-आदि की तमाम नयी इन्द्रियो का हमने आविष्कार कर लिया! इन इन्द्रियो का स्थान जहाँ भी हम चाहते वही निर्धारित कर सकते थे। वैलेस अपने रोगियो को पानी पिला कर नशे मे कर देता था, लेकिन हमने पैर के अगूठे मे नशे की एक इन्द्रिय ढूढ निकाली! वस उसे छूने की देर थी कि एक पक्के शरावी का मनोरजक नाटक सामने होने लगता था!

परन्तु, इस चीज़ को अच्छी तरह समझ लिया जाना चाहिए कि जव तक पात्र को यह नही वतला दिया जाता था कि किस इन्द्रिय के छूने पर उसे क्या करना है तव तक कोई भी इन्द्रिय ज़रा भी सक्रियता नही दिखलाती थी। जल्दी ही अभ्यास के द्वारा लड़के ने अपने को इतना माहिर वना लिया कि हल्का-सा इशारा भी उसके लिए काफी हो जाता था। इस तरह जो इन्द्रियाँ पैदा की गयी थी वे फिर सुलाने की अपनी शक्ति को वाद मे भी तव तक वनाये रखती थी—जव तक कि उन्हे, उसी पुरानी रीति से, फिर वदल नही दिया जाता था। दर-असल, पात्र मे दोहरी स्मरण-शक्ति पैदा हो जाती थी, एक वह जिसने वह जागृतावस्था मे काम लेता था और दूसरी वह जो उससे बिलकुल जुदा होती थी, उसकी सम्मोहनावस्था मे काम करती थी। जहाँ तक कि उसकी इच्छा-शक्ति की निश्चेष्टता तथा एक तीसरे व्यक्ति की इच्छा-

शक्ति के नीचे उसकी पूर्ण अधीनता की बात है, तो उसका सारा चमत्कारिक रूप तो उसी समय समाप्त हो जाता है जिस समय हम इस बात को समझ लेते है कि पात्र की यह पूरी हालत तभी पैदा होती है जब कि उसकी इच्छा-शक्ति को परिचालक की इच्छा के अधीन बना दिया जाता है और ऐसा किये बिना उस स्थिति को नही पैदा किया जा सकता। चुम्बकित करने वाला दुनिया का बडे से बडा जादूगर भी उस समय बिलकुल बेकार हो जायेगा जिस समय कि उसका पात्र उसकी बाते सुनकर उसके मुँह पर हँस देगा!

इस प्रकार, जहाँ सन्देहवाद के अपने तिरस्कारपूर्ण दृष्टिकोण की मदद से हम इस बात को समझ गये कि चौम्बिक कपाल विद्या सम्बन्धी इस वंचकता का आधार महज ऐसे कुछ घटना-प्रवाह ही होते है जो, अधिकाशतया, जागृतावस्था के उसी तरह के घटना-प्रवाहो से केवल मात्रा में ही भिन्न होते है तथा इन घटना-प्रवाहो की व्याख्या करने के लिए किसी रहस्यात्मक कारण की जरूरत नही है, वही मिस्टर वैलेस का "जोशो-खरोश" उन्हे आत्म-प्रवचनाओ के एक गहरे गड्ढे मे खीच ले गया था। इसके फलस्वरूप, गॉल के कपाल सम्बन्धी मानचित्र की छोटी-से-छोटी बातों तक को उन्होने कह दिया कि वे सही है। साथ ही उन्होंने यह भी कह दिया कि परिचालक तथा उसके पात्र के बीच एक रहस्यपूर्ण सम्बन्ध होता है*। मिस्टर वैलेस के विवरण मे, जो भोलेपन की हद तक निष्कपट है, यह बात हर जगह स्पष्ट है कि जितनी दिलचस्पी उनकी उन तमाम व्यापारो को किसी भी कीमत पर स्वय फिर से कर

---

* जैसा कि पहले कहा जा चुका है, पात्र गण (रोगी) अभ्याम के द्वारा अपने को माहिर बना लेते हैं। इसलिए यह भी बिल्कुल सम्भव है कि परिचालक की इच्छा-शक्ति के अधीन रहने की आदत पड जाने पर उसके और पात्र के बीच का सम्बन्ध अधिक घनिष्ट हो जाता है, कुछ खास चीजे अधिक तेज हो जाती हैं और वे जटिलावस्था में भी हल्के-फुल्के ढग से दिखलाई पडने लगती है। (एंगेल्स की टिप्पणी)

दिखाने मे थी उतनी इस धूर्तता की वास्तविक पृष्ठभूमि की खोजबीन करने मे नही थी। एक ऐसे व्यक्ति के लिए जो प्रारम्भ मे वैज्ञानिक था बस इसी प्रकार की दिमागी कैफियत की आवश्यकता थी — इसके बाद सरल तथा सीधी-सादी आत्म-प्रवचना के ज़रिए इस काम मे तुरन्त निपुण होने मे उसे कोई कठिनाई नही होती। मिस्टर वैलेस का भी अन्त ऐसा ही हुआ, उनके अन्दर चौम्बिक-कपाल विद्या सम्बन्धी चमत्कारो मे श्रद्धा पैदा हो गयी। इस प्रकार उनका एक पैर तो पहले ही प्रेतात्माओ की दुनिया मे पहुँच गया था।

अपने दूसरे पैर को उसके अन्दर उन्होने १८६५ मे पहुँचा दिया। १२ वर्ष तक उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशो मे वे यात्रा करते रहे थे। वहाँ से लौटने के बाद उन्होने मेज पर दस्तक देकर मृतात्माओ को बुलाने के प्रयत्न किये। इन प्रयोगो ने उन्हे नाना प्रकार के "माध्यमो" के समाज मे पहुँचा दिया। इस कार्य मे उन्होने कितनी तेजी से प्रगति कर ली थी और इस विषय मे उन्होने किस हद तक पूर्ण सिद्धहस्तता हासिल कर ली थी, इस चीज का प्रमाण उपर्युक्त पुस्तिका से मिलता है। न सिर्फ वे हमसे यह आशा करते है कि होम, डेवेन पोर्ट बन्धुओ, तथा अन्य उन तमाम "माध्यमो" के तथाकथित चमत्कारिक कार्यो पर हम पूर्णतया विश्वास कर ले जो न्यूनाधिक रुपये के लिए ऐसे करतब दिखलाते है तथा जो, अधिकांशतया, ठगो और प्रवचको के रूप मे सबके सामने बार-बार नंगे हो चुके है, बल्कि हमसे वे यह भी आशा करते है कि मृतात्माओ के तथाकथित प्रामाणिक इतिहासो से सम्बन्धित तरह-तरह की उन तमाम कहानियो को भी हम सही मान ले जो उन्होने पेश की है। यूनानी देवासन की डाइने, मध्य युगो की डकिनियाँ—सब "माध्यम" थी। अपनी रचना आकाशवाणी (De divinatione) मे आइयमब्लिकस ने पहले से ही "आधुनिक मृतात्मावाद के अत्यन्त हैरतअंगेज व्यापारो" का बहुत विस्तृत वर्णन कर दिया था। (पृष्ठ २२६)

इन चमत्कारो की वैज्ञानिक प्रामाणिकता तथा विश्वसनीयता को

मिस्टर वैलेस किस ढग से सही सिद्ध करते है इसे बतलाने के लिए एक ही उदाहरण काफी होगा। निश्चय ही किसी के लिए यह सोच लेना बडी अजीब चीज होगी कि हम वास्तव मे विश्वास कर लेगे कि उपर्युक्त प्रेतात्माएँ अपनी तस्वीरे खीच लेने देती है। निश्चय ही हमे इस बात की माँग करने का अधिकार है कि इसके पहले कि हम उन्हे सच्ची माने प्रेतात्माओं की उक्त तस्वीरो की प्रामाणिकता एकदम असदिग्ध रूप से सिद्ध कर दी जानी चाहिए। पृष्ठ १८७ पर मिस्टर वैलेस एक कहानी बताते हुए कहते है कि मार्च, १८७२ मे एक प्रमुख माध्यम, श्रीमती गप्पी ने, जो निकल्स की बेटी थी, नौटिंगहिल मे स्थित श्री हडसन के घर पर अपने पति तथा छोटे लड़के के साथ अपनी तस्वीर खिचवायी थी। उनकी दो अलग-अलग तस्वीरो मे सफेद जालीदार कपड़ो मे अच्छी तरह लिपटी हुई एक लम्बी-सी महिला की आकृति इस तरह पीछे खडी दिखलाई देती है जैसे कि वह उन्हे आशीर्वाद दे रही हो। इस आकृति का चेहरा-मोहरा कुछ-कुछ प्राच्य प्रतीत होता है।

"फिर, दो मे से एक चीज बिलकुल पक्की है।* या तो कोई जीवित, कुशाग्र-बुद्धि, किन्तु अदृश्य प्राणी वहाँ उपस्थित था, या फिर श्री और श्रीमती गप्पी, फोटोग्राफर तथा किसी चौथे व्यक्ति ने मिलकर एक दुष्टतापूर्ण धूर्तता का जाल रचा था और तब से बराबर इस रहस्य को वे छिपाये हुए है। श्री और श्रीमती गप्पी को मैं इतनी अच्छी तरह जानता हूँ कि मुझे पूरा विश्वास है कि इस प्रकार की धूर्तता वे नही कर सकते — उसी तरह जिस तरह कि प्रकृति विज्ञान के क्षेत्र मे सत्य का कोई भी सच्चा अन्वेषक ऐसा काम नही कर सकता"। (पृष्ठ १८८)

* भूतात्माओं की दुनिया व्याकरण की पहुँच से परे है। एक बार एक जोकर ने व्याकरणाचार्य लिण्डले मरे की मृतात्मा को गवाही देने के लिए बुलाया था। लिण्डले मरे से जब पूछा गया कि क्या वे वहाँ पर है तो उन्होंने जवाब दिया: "मैं है।" "I are'। यह माध्यम अमरीका का था। (एंगेल्स की टिप्पणी)

अस्तु, या तो यह धोखा है या मृतात्मा की फोटो। बिलकुल ठीक। और, अगर वह धोखेबाज़ी थी तो या तो मृतात्मा पहले से ही फोटो की प्लेटो पर मौजूद थी, या फिर इस छल से सम्बन्धित चारो व्यक्तियों का —अथवा यदि कमजोर दिमाग वाले अथवा ठगे गये वृद्ध श्री गप्पी को हम छोड दे जो ८४ वर्ष की अवस्था मे, जनवरी १८७५ मे, काल के गाल मे चले गये थे —तो तीन व्यक्तियो का उसमे हाथ रहा होगा। (इस काम के लिए श्री गप्पी को ठगने के लिए बस इतना ही काफी था कि उन्हे पृष्ठभूमि के स्पेनी पर्दे के पीछे भेज दिया जाय) । इस सम्बन्ध मे भी कोई बहुत तर्क-वितर्क करने की जरूरत नही है कि मृतात्मा का "माडल" (प्रतिरूप) फोटोग्राफर बिना किसी कठिनाई के प्राप्त कर सकता था। किन्तु थोडे ही समय बाद, फोटोग्राफर हडसन पर इस जुर्म मे सार्वजनिक रूप से मुकदमा चलाया गया था कि वह मृतात्माओ की झूठी तस्वीरे बना-बना कर पेश किया करता था। इसलिए इस चीज पर पर्दा डालने के लिए मिस्टर वैलेस कहते है : "एक चीज़ साफ है : अगर कही धोखा-धडी हुई है तो मृतात्मावादियो ने स्वयम् उसे फौरन पकड लिया है।" (पृष्ठ १८९)

इसलिए फोटोग्राफर की बात पर अधिक भरोसा नही किया जा सकता। फिर रह गयी श्रीमती गप्पी, और जहाँ तक उनका सम्बन्ध है उनकी सच्चाई के समर्थन मे हमारे पास हमारे मित्र वैलेस का बस केवल "परम विश्वास" है —इसके अलावा कुछ नही ! इसके अलावा कुछ नही ? नही, कुछ भी नही। श्रीमती गप्पी की परम विश्वस्नीयता की जहाँ तक बात है तो उसका प्रमाण हमे उनके इस कथन से ही मिल जाता है, कि जून, १८७१ के आरम्भिक दिनो की एक शाम को हाईबरी हिल पार्क मे स्थित उनके मकान से अचेतावस्था में उन्हे ६९, लैम्ब्स कोण्ड्यूट स्ट्रीट में —यानी कौवे की सीधी उडान के हिसाब से तीन अंग्रेजी मीलो के फासले पर—हवा मे उडती हुई अवस्था मे ले जाया गया था और ६९ नम्बर के उक्त मकान के अन्दर एक प्रेतवादी विचार-मडल

के दर्म्यान एक मेज पर रख दिया गया था। कमरे के दरवाजे वन्द थे, और यद्यपि श्रीमती गप्पी लन्दन की एक सबसे मोटी महिला थी—इसका मतलब वाकई बहुत होता है,—फिर भी उस कमरे के अन्दर उनके अचानक धावे की वजह से न तो दरवाज़ो मे, और न छत मे ही कही जरा-सी भी दरार पैदा हुई थी ! (इस घटना की रिपोर्ट लन्दन के ईको (प्रतिध्वनि) नामक पत्र के ८ जून, १८७१ के अक मे निकली थी) और इसके वाद भी अगर किसी को मृतात्माओ की फोटोग्राफी की सत्यता मे विश्वास नही होता, तो फिर उस आदमी का कोई इलाज नही किया जा सकता !!

इगलैण्ड के प्रकृति वैज्ञानिको मे दूसरे प्रसिद्ध व्यक्ति, जो इस चीज मे निपुण है, रासायनिक तत्व थेलियम तथा रेडियो-मीटर[६५] (जिसे जर्मनी मे *Lichtmuhla* भी कहा जाता है) के अनुसन्धानकर्ता, श्री विलियम क्रुक्स है। प्रेतवादी वस्तुओ की जॉच-पडताल का कार्य श्री क्रुक्स ने १८७१ के आस-पास आरम्भ किया था। इस काम के लिए उन्होने कई भौतिक तथा यात्रिक साधनो का, कमानी तुलाओ, बिजली की वैट्रियो, आदि का उपयोग किया था। अपने इस कार्य मे सबसे जरूरी मुख्य उपकरण का, यानी सशयवादी आलोचनात्मक मस्तिष्क का भी उन्होने उपयोग किया था या नही, अथवा अन्त तक उसे काम की विलकुल फिट हालत मे वे बनाये रख सके थे या नही—इसे हम आगे देखेगे। चाहे जो भी हो, किन्तु, वहुत समय वीतने से पहले ही, श्री क्रुक्स भी उसके प्रेतपाश मे उसी तरह पूर्णतया जकड़ गये थे जिस तरह कि उनके पहले श्री वैलेस जकड गये थे।

वे वतलाते है, "कुछ वर्षो से एक युवती, कुमारी फ्लोरेन्स कुक ने माध्यम के रूप मे अद्भुत क्षमता का परिचय दिया है। हाल में, इसके फल-स्वरूप, एक प्रेतात्मा स्त्री की पूरी आकृति की ही सृष्टि हो गयी है। जिस समय पूर्ण अभिभूतावस्था में काले कपडे पहने हुए एक बक्से के अन्दर अच्छी तरह वन्द हालत मे अथवा बगल के एक कमरे मे

वे पड़ी रहती थी उसी समय वह आकृति नगे पैर और लहराते श्वेत वस्त्रो मे सामने आकर आविर्भूत हो जाती थी।"

इस मृतात्मा को, जो अपने को केटी बताती थी, और जो कुमारी कुक से आश्चर्यजनक रूप से सादृश्यता रखती थी, एक शाम श्री वोल्कमैन ने — अर्थात् श्रीमती गप्पी के वर्तमान पति ने — अचानक कमर से पकड लिया। और यह देखने के लिए वह कही कुमारी कुक का ही दूसरा सस्करण तो नही है, वे उसे मजबूती से जकडे रहे। उस वक़्त पता चला कि मृतात्मा काफी तगडी थी, अपने को छुडाने की उसने ज़ोरो से कोशिश की। दर्शको को हस्तक्षेप करना पडा। रोशनी बुझा दी गयी। और, थोडे धक्कम-धक्के के वाद जब पुन. शान्ति स्थापित हुई और कमरे मे फिर रोशनी की गयी तो देखने मे आया कि मृतात्मा अन्तर्धान हो गयी थी और कुमारी कुक बधी हुई और अचेतावस्था मे अपने उसी कोने मे पडी हुई थी। इसके बावजूद, कहा जाता है कि, श्री वोल्कमैन आज दिन तक भी यही दावा करते है कि उन्होने कुमारी कुक को ही पकड़ा था, और किसी को नही। इस चीज को वैज्ञानिक ढग से प्रमाणित करने के लिए एक प्रसिद्ध विद्युद्वेत्ता, श्री वार्ली ने एक नये प्रयोग के समय यह व्यवस्था की कि वैटरी की धारा माध्यम, यानी कुमारी कुक के अन्दर से जाय जिससे कि धारा को भग किये बिना वे मृतात्मा की भूमिका न कर सकें। पर, मृतात्मा फिर भी सामने प्रकट हुई। इसलिए, साफ हो गया कि वह वास्तव मे कुमारी कुक से भिन्न कोई महिला थी। इस चीज को और भी पक्की तरह प्रमाणित करने का भार श्री क्रुक्स पर था। इस सम्बन्ध मे उनका पहला कदम था प्रेतवादी महिला के विश्वास को प्राप्त करना। जैसा कि ५ जून, १९७४ की **प्रेतात्मावादी** नामक पत्रिका मे वे स्वयम् कहते हैं, उक्त महिला का भरोसा मुझ पर "धीरे-धीरे इस हद तक बढ गया कि जब तक मै व्यवस्था न करता तब तक वह प्रदर्शन करने से इन्कार कर देती। वह कहती थी कि वह हमेशा यह चाहती थी कि मै उसके और बक्से के नजदीक रहूँ। मैंने देखा

कि — जब उसे पूरा विश्वास हो गया और इस बात का भरोसा हो गया कि उससे किये गये अपने किसी भी वादे को मैं नहीं तोड़ूँगा — तब इस चमत्कार का माहात्म्य काफी बढ गया और मुक्त रूप से ऐसी साक्षी मिलने लगी जो और किसी प्रकार से प्राप्त नहीं हो सकती थी। इस विषय मे बहुधा वह मुझसे सलाह लिया करती थी कि प्रदर्शनों के समय कौन लोग मौजूद है और उन्हे किन स्थानो पर बैठाया जाय। इसका कारण यह था कि हाल मे, किन्ही सर्वथा अनुचित इस तरह के सुझावों वजह से वे बहुत भयातुर हो उठी थी कि, अनुसधान के लिए अधिक वैज्ञानिक उपायों के अतिरिक्त बल का भी इस्तेमाल किया जाना चाहिए।"

युवती प्रेतात्मा ने इस विश्वास का—जो उतना ही उदार था जितना वैज्ञानिक था—प्रतिदान भी पूरी मात्रा मे किया था। यहाँ तक कि स्वयम् श्री क्रुक्स के घर में वह प्रगट हुई, उनके बच्चो के साथ खेली और उन्हे "भारत की अपनी यात्रा के समय के दिलचस्प किस्से सुनाती रही।" श्री क्रुक्स को "अपने अतीत जीवन के कुछ कटु अनुभव" उसने बताये, अपनी बाँह मे बाँह डालने की भी अनुमति उसने उन्हे दे दी जिससे कि उसकी स्पष्ट भौतिकता का उन्हे अच्छी तरह विश्वास हो जाय। उसने उन्हे अपनी नाडी देखने की भी अनुमति दे दी तथा हर मिनट मे वह कितनी बार सास लेती है इसे गिन लेने दिया। अन्त मे, श्री क्रुक्स के साथ अपनी फोटो भी उसने खिचवा ली। अब इन चीजों से हमे कोई आश्चर्य नही होता। श्री वैलेस कहते है कि देखे जाने, टटोले जाने, बात किये जाने और तस्वीर लिये जाने के बाद यह आकृति एकदम ग़ायब हो गयी। वह एक ऐसे छोटे-से कमरे के अन्दर से ग़ायब हो गयी जिनसे बाहर जाने का बग़ल के एक कमरे के अलावा और कोई रास्ता नही था और वह कमरा दर्शको से ठसाठस भरा हुआ था" (पृष्ठ १८३)। यह भी कोई बहुत बडी बात नही थी। इसके लिए आवश्यकता सिर्फ इस चीज़ की थी कि श्री क्रुक्स ने, जिनके घर पर यह सब हुआ था, दर्शकगण भी

विनम्र भाव से उतना ही विश्वास दिखलाये जितना कि श्री क्रुक्स ने उस प्रेतात्मा मे दिखलाया था !

दुर्भाग्य से इन "पूर्णरूप से प्रमाणित चमत्कारो" पर प्रेतात्मावादी लोग भी तुरन्त विश्वास नही करते। ऊपर हम देख चुके है कि श्री वोल्कमैन ने, जो कि स्वयम् भयकर प्रेतात्मावादी है, किस प्रकार प्रेतात्मा को भौतिक रूप से पकड लिया था। और अव, एक पादरी ने जो "प्रेतात्मावादियो के ब्रिटिश राष्ट्रीय सघ" की समिति का सदस्य है और जिसने कुमारी कुक के प्रदर्शन को देखा है, विना किसी कठिनाई के यह सिद्ध कर दिया है कि जिस कमरे से प्रेतात्मा आती और ग़ायब हो जाती थी उसका एक दूसरे दरवाजे के जरिए वाहरी दुनिया से सम्वन्ध था। श्री क्रुक्स के व्यवहार ने, जो वहाँ मौजूद थे, "मेरे इस विश्वास को अन्तिम रूप से खत्म कर दिया" था "कि ऊपर से जो दिखलाई देता था उसमे 'कोई असलियत' हो सकती है।" [रहस्यवादी लदन, लेखक पादरी सी० मौरिस डेवीज, लन्दन, टिन्सले ब्रदर्स, ३१६] और फिर, इससे भी आगे, इस वात पर अमरीका मे प्रकाश पड गया है कि "केटियो" को "भौतिक रूप" कैसे दिया जाता है। फिलाडेल्फिया मे होम्स नामक एक दम्पति प्रदर्शन सगठित किया करती थी। उनमे भी एक "केटी" प्रकट हुई थी। श्रद्धालुओ की वहुत-सी भेंट उसने स्वीकार की थी किन्तु, उसके दर्शको मे एक सदेहवादी भी था। उसने तय किया कि जव तक उक्त केटी का पता न लगा लेगा तव तक वह चैन से न वैठेगा। तव मालूम हुआ कि केटी एक वार तनखा की कमी की वजह से हडताल भी कर चुकी थी। उसने पता लगाया कि वह एक वोर्डिंग हाऊस मे रहने वाली एक युवा लड़की थी। इसके वाद उसकी शारीरिकता के सम्वन्ध में सन्देह की कोई गुन्जायश नही रह गयी थी। वाद मे देखा गया कि उसके पास वे सव भेटे भी सशरीर मौजूद थी जो प्रेतात्मा को दी गयी थी !

इसी दर्म्यान योरोपीय महाद्वीप मे भी प्रेतात्माओं के दर्शन करने वाले वैज्ञानिक प्रकट हो गये हैं। सेन्ट पीटर्सवर्ग के एक वैज्ञानिक सघ

ने — मुझे ठीक-ठीक नही मालूम कि वह विश्वविद्यालय से सम्बन्धित था अथवा स्वयम् अकादमी से — राज्य काउन्सिलर अक्साकोव तथा रसायनशास्त्री वटलेरोव को यह काम सौंपा था कि वे प्रेतात्मावादी चमत्कारो के आधार की जाँच-पड़ताल करे। इसका कोई बड़ा परिणाम निकला हो ऐसा नही लगता।[६६] दूसरी तरफ — अगर प्रेतात्मावादियो की शोर-गुल-भरी घोषणाओ का विश्वास किया जाय — जर्मनी में भी प्रोफेसर जौलनर के रूप मे ऐसे ही एक आदमी को अब लाइपजिगने पैदा कर दिया है।

जैसा कि सर्वविदित है, श्री जौलनर अवकाश के "चौथे आयाम" का पता लगाने के सम्बन्ध मे वर्षो मे कठिन परिश्रम करते आये हैं। उन्होने पता लगाया है कि अनेक चीजे जो तीन आयामो के अवकाश मे असम्भव होती हैं चार आयामो के अवकाश मे अत्यन्त आसानी के साथ की जा सकती है। उदाहरण के लिए, चार आयामो के अवकाश मे, धातु के एक वन्द गोले के अन्दरूनी भाग को एक दस्ताने की तरह उलट कर वाहर कर दिया जा सकता है। और ऐसा करने के लिए उसमे कोई सूराख करने की भी जरूरत नही होगी। इसी प्रकार, एक अन्तहीन लम्बी डोरी अथवा एक ऐसी डोरी मे जिसके दोनो छोर वधे हुए है, गाँठ लगायी जा सकती है, तथा दो अलग-अलग वन्द अगूँठियो को उनमे से किसी को भी खोले बिना एक दूसरे के अन्दर फँसा दिया जा सकता है। इसी तरह की और भी अनेक चीजे की जा सकती है। मृतात्माओ की दुनियाँ से आने वाली हाल की विजयोल्लासपूर्ण रिपोर्टो से पता चलता है कि प्रो० जौलनर ने चौथे आयाम के स्थान के अधिक व्योरो का पता लगाने के लिए एक या इससे भी अधिक माध्यमो की सहायता ली हैं। कहा जाता है कि इस कार्य मे उन्हे अद्भुत सफलता प्राप्त हुई है। प्रदर्शन के वाद देखने में आया कि जिस कुर्सी के ऊपर वे अपना हाथ रखे हुए थे उसकी भुजा उनकी भुजा के साथ वंध गयी थी यद्यपि उनका हाथ मेज़ से कभी नही हटा था! उसी तरह एक डोरी

मे, जिसके दोनों छोर मेज़ से बधे हुए थे, चार गाँठे पड़ गयी थी, इत्यादि। सक्षेप मे, कहा जाता है कि चौथे आयाम के चमत्कारो को प्रेतात्माएँ अत्यन्त सहज भाव से दिखला सकती है। इस चीज को ध्यान मे रखना चाहिए कि : relata refero। मै प्रेतात्माओ की सूचना पत्रिका की सच्चाई की गारन्टी नही करता, और अगर उसमे कोई ग़लती हो तो श्री जौलनर को मेरा कृतज्ञ होना चाहिए कि मैं उन्हे उसे सुधारने का अवसर दे रहा हूँ। किन्तु, यदि उसमे श्री ज़ौलनर के अनुभवो को विना किसी झूठ-फरेब के प्रस्तुत किया गया है, तो, स्पष्ट है कि, प्रेतात्मावाद तथा गणित दोनो विज्ञानो मे एक नये युग का श्रीगणेश हो गया है। प्रेतात्माएँ चौथे आयाम के अस्तित्व को प्रमाणित करती है, और, उसी तरह चौथा आयाम प्रेतात्माओ के अस्तित्व की साक्षी देता है। और इस चीज के एक बार सिद्ध हो जाने पर विज्ञान के सामने एक पूर्णतया नये तथा असीम क्षेत्र का द्वार उन्मुक्त हो जाता है। फिर पहले का तमाम गणित शास्त्र तथा प्रकृति विज्ञान चौथे तथा और भी उच्चतर आयामो के गणित शास्त्र तथा इन उच्चतर आयामो मे निवास करने वाली प्रेतात्माओ की यान्त्रिकी, भौतिकी, रसायनशास्त्र तथा दैहिकी के सामने उनकी एक प्रारम्भिक पाठशाला की तरह हो जायगा। श्री क्रुक्स ने वैज्ञानिक रूप से हमे क्या यह वतला नही दिया है कि चौथे आयाम मे—जैसा कि अब हम उसे सम्भवत. कह सकते है—पहुँच जाने पर मेजो तथा फर्नीचर की अन्य वस्तुओ का वज़न कितना कम हो जाता है और श्री वैलेस ने क्या यह भी नही घोपित कर दिया है कि यह बात सिद्ध हो गयी है कि चौथे आयाम के अन्दर आग लगाने से मानव शरीर को कोई क्षति नही पहुँचती है? और अव तो प्रेतात्माओ के शरीरो की दैहिकी का भी हमे ज्ञान प्राप्त हो गया है! वे साँस लेती है, उनके नाडी होती है, और इसलिए उनके फेफडे, हृदय तथा रक्त-प्रसार की वाहिनियाँ भी होती है। इस भाँति, अन्य शारीरिक अगो की दृष्टि से भी कम से कम वे उतनी ही अच्छी तरह लैस होती

हैं जितने कि हमारे शरीर लैस होते है। साँस लेने के लिए कार्वोहाइ-ड्रेटों की जरूरत होती है जो फेफड़ो में जल जाते है और चूँकि ये कार्वो-हाइड्रेट वाहर से ही उनके पास पहुँच सकते है, इसलिए उनके पेट, आँतें तथा इनके उपसाधन भी होते है। — और एक वार इतना सिद्ध हो गया तो वाक़ी सब तो विना किसी कठिनाई के अपने आप ही सिद्ध हो जाता है। परन्तु, इस तरह के अगो के होने का मतलव होता है कि वीमारी-आज़ारी के भी वे शिकार हो सकते हैं; अस्तु, यह भी सम्भव है कि श्री विरचाओ को जल्दी ही प्रेतात्माओं की दुनिया के कोशीय रोग-निदान शास्त्र पर भी एक पुस्तक तैयार करनी पड़े। और चूँकि इन प्रेतात्माओं मे से अधिकांश अत्यन्त सुन्दरी युवतियाँ होती है जो, सिवा इस वात के कि उनका सौन्दर्य सर्वथा अलौकिक होता है, और किसी वात मे लौकिक कुमारियों से भिन्न नहीं होती, इसलिए यह भी सम्भव है कि देर-सवेर से वे ऐसे "पुरुषों" के सम्पर्क मे आ जाँय "जो प्रेमोन्माद अनुभव करते है।" ६७ और, चूँकि, जैसा कि नाड़ी देखकर श्री क्रुक्स ने सिद्ध कर दिया है, उनमे "स्त्री हृदय अनुपस्थित नही है," इसलिए प्राकृतिक वरण की क्रिया के सामने भी एक चौथे आयाम की सम्भावना पैदा हो गयी है, ऐसे आयाम की जिसमे इस वात का भी अव डर नही है कि उसे दुष्ट सोशल-डेमोक्रेसी के साथ नत्थी कर दिया जायगा! ६८

* * * *

काफी हुआ। यह चीज़ प्रत्यक्षत. स्पष्ट हो गयी कि प्राकृतिक विज्ञान से रहस्यवाद की ओर जाने का सवसे पक्का रास्ता कौन सा है! उस ओर प्रकृति के दर्शन के सम्वन्ध मे की जाने वाली मुक्त सैद्धान्तिक वहस नही ले जाती, वल्कि उस ओर ले जाता है एकदम छिछले क़िस्म का वह अनुभववाद जो तमाम सिद्धान्तो से दूर भागता है और तमाम चिन्तन को अविश्वास की दृष्टि से देखता है! प्रेतात्माओ के अस्तित्व को कोई स्वत सिद्ध अनिवार्यता नही प्रमाणित करती, उसे सिद्ध करते हैं सर्वश्री

वैलेस, क्रुक्स एण्ड कम्पनी के अनुभववादी प्रेक्षण ! क्रुक्स के वर्णक्रम सम्बन्धी उन प्रेक्षणों को यदि हम मानते है, जिनकी वजह से थेलियम धातु का पता लगाने मे मदद मिली थी, अथवा यदि हम उन बहुमूल्य प्राणि-शास्त्रीय खोजो को स्वीकार करते है, जो मलय द्वीपपुञ्ज मे वैलेस ने की थी, तो हमसे कहा जाता है कि इन दोनो वैज्ञानिको के प्रेतात्मवादी अनुभवो तथा आविष्कारों पर भी हमे उतनी ही मात्रा मे विश्वास करना चाहिए ! और यदि उनसे हम यह कहते है कि, कुछ भी हो, आखिर तो इन दोनों मे थोडा-सा अन्तर है, अर्थात् इन वैज्ञानिको की पहले की खोजो की सत्यता की हम परीक्षा कर सकते है परन्तु उनकी इन नयी चीजो की सत्यता की परीक्षा नही की जा सकती, तो प्रेतात्माओं को देखने बुलाने वाले लोग उलटकर हमे जवाब देते है कि नही, ऐसी बात कदापि नही है ! वे कहते है कि प्रेतात्माओ वाली बात की सत्यता की भी परीक्षा करने का अवसर हमे प्रदान करने के लिए वे तैयार है !

इसमे कोई शक नही कि द्वन्द्ववाद की अवज्ञा विना उसका समुचित फल भोगे नही की जा सकती। सैद्धान्तिक चिन्तन के लिए किसी के हृदय मे चाहे कितना ही उग्र तिरस्कार भाव हो, किन्तु विना सैद्धान्तिक चिन्तन के किन्ही भी दो प्राकृतिक व्यापारो का न तो एक दूसरे के साथ कोई सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है, और न उनके बीच जो सम्बन्ध है उसे ही समझा जा सकता है। एकमात्र प्रश्न यह है कि आदमी का चिन्तन सही है या नही। यदि आदमी प्रकृति-पूजावादी ढंग से, और इसलिए, गलत ढग से सोचना चाहता है तो इसका सबसे पक्का तरीका यह है कि सिद्धान्त को वह धता वता दे — उसके प्रति तिरस्कार का भाव रखे। किन्तु, एक पुराने तथा प्रसिद्ध द्वन्द्वात्मक नियम के अनुसार, अशुद्ध चिन्तन को जब उसके तार्किक परिणाम तक ले जाया जाता है तो अनिवार्य रूप से वह जहाँ से चला था उसके बिल्कुल विरोधी विन्दु पर पहुँच जाता है। इसीलिए, द्वन्द्ववाद के प्रति अनुभववादी तिरस्कार भावना रखने की सजा यह मिलती है कि कुछ अत्यन्त गम्भीर अनुभव-

वादी लोग भी अन्ध-विश्वासो के सबसे गहरे दलदल मे, अर्थात् आधुनिक प्रेतात्मवाद के दलदल मे जा गिरते है !

यही बात गणितशास्त्र के सम्बन्ध मे लागू होती है। साधारण, अधिभूतवादी गणितज्ञ प्रचण्ड घमण्ड के साथ दावा करते हैं कि उनके विज्ञान के निष्कर्ष सर्वथा अकाट्य हैं। किन्तु उनके इन निष्कर्षों में काल्पनिक परिमाण (magnitudes) भी शामिल होते हैं। इन परिमाणों को इस विज्ञान से एक वास्तविकता प्राप्त हो जाती है। जब $\sqrt{-1}$ को, अथवा चौथे आयाम को आदमी हमारे मस्तिष्कों से बाहर की किसी वास्तविकता से जोड़ने का अभ्यस्त हो जाता है, तब फिर इसमे कोई दिक्कत नही होती कि एक क़दम और आगे बढ़ कर वह माध्यमो की प्रेतात्मवादी दुनिया मे पहुँच जाय और उसे भी अंगीकार कर ले। बात कुछ उसी तरह की है जैसी कि कैटेलर ने डौलिजर के सम्बन्ध मे कही थी :

> "उस आदमी ने अपने जीवन मे इतनी बकवास को सही बताया है कि दरअसल बडे मजे में वह यह भी दावा कर सकता था कि वह कभी गल्ती नही कर सकता !"[६१]

वास्तव मे, प्रेतात्मावादियो का खण्डन केवल अनुभववाद नही कर सकता। एक तो, "उच्चतर" चमत्कार "अनुसंधानकर्ता को" हमेशा तभी दिखलाई देते है जब कि उनके चक्कर मे वह इतना अधिक फंस गया होता है कि केवल उसी चीज़ को देख पाता है जो उसे देखनी चाहिए, अथवा जिसे वह ख़ुद देखना चाहता है। इस चीज को क्रुक्स ने स्वयम् इतने अनुपम भोलेपन के साथ स्पष्ट कर दिया है ! दूसरे, प्रेतात्मा-वादी इस बात की कोई परवाह नही करते कि उनके सैकड़ो तथाकथित तथ्यो का धूर्तता के रूप मे पर्दाफ़ाश कर दिया गया है तथा उनकी दर्जनों तथाकथित माध्यमो को साधारण ठगनियाँ प्रमाणित कर दिया गया है। जब तक कि प्रत्येक तथाकथित चमत्कार की असलियत खोल कर नही दी जाती तब तक अपने व्यापार को चालू रखने का मौक़ा उनके सामने

खुला हुआ है ! वैलेस ने स्वयम् इस बात को प्रेतात्माओं की जाली तस्वीरों के सम्बन्ध मे स्पष्ट रूप से कह दिया है। वे कहते है कि : जालसाजियों का होना इस बात को प्रमाणित करता है कि सच्ची चीजें भी है ! !

और, इस तरह, अनुभववाद देखता है कि झक्की प्रेतात्मावादियों का खण्डन वह अनुभववादी अनुभवों के आधार पर नही कर सकता; उसका खण्डन करने के लिए फिर उसे सैद्धान्तिक चीजों का सहारा लेने के लिए, और हक्सले के साथ-साथ, यह कहने के लिए बाध्य होना पड़ता है कि :

" 'प्रेतात्मावाद' की सचाई के प्रदर्शन मे एकमात्र अच्छाई जो मुझे दिखलाई देती है वह यह है कि उससे आत्मघात करने के विरुद्ध एक और तर्क हमे मिल जाता है ! चौराहे पर झाड़ू लगाने वाली भंगिन की हैसियत से जिन्दा रहना भी इससे बेहतर है कि आदमी मर जाय और हर प्रदर्शन के लिए एक गिनी पर किराये पर रखा जाकर 'माध्यम' के रूप मे मूर्खतापूर्ण बकवास करे ! ७०

वानर से मानव बनने के सम्बन्ध में श्रम की भूमिका

(एक अंश)

......और, वास्तव मे, हर दिन के गुज़रने के साथ-साथ, इन नियमों को हम अधिकाधिक सही तौर से समझना सीख रहे है। और प्रकृति के परम्परागत क्रम मे हम जो हस्तक्षेप करते है उसके अपेक्षाकृत तात्का-लिक तथा दीर्घकालीन दोनो प्रकार के परिणामो की हमारी जानकारी बढ़ती जाती है। विशेष रूप से वर्तमान शताब्दी मे प्रकृति विज्ञान ने जो प्रचण्ड प्रगति की है उसके वाद हम अव अधिकाधिक इस स्थिति मे पहुँचते जा रहे है जिसमें कि कम से कम अपनी एकदम साधारण उत्पादन-सम्वन्धी कार्यवाहियों के अधिक दूर तक के प्राकृतिक परिणामों को भी हम जान लेते है और, इसलिए, उनका नियन्त्रण भी कर सकते हैं। किन्तु यह चीज़ जितनी ही अधिक होती जायगी, उतनी ही अधिक मात्रा मे मनुष्य न केवल एक वार फिर इस वात को महसूस करेंगे, वल्कि इसे जान भी जायेगे, कि प्रकृति से वे अभिन्न है। और, इस प्रकार मस्तिष्क और भूत (द्रव्य), मनुष्य और प्रकृति, आत्मा और शरीर के वीच विरोध होने की वह निरर्थक तथा प्रकृति-विरोधी भावना भी अधिका-धिक असम्भव होती जायगी जो, प्रतिष्ठित प्राचीन युग के ढलने के वाद, योरोप मे पैदा हुई थी और जिसका सर्वोच्च परिष्कृत रूप ईसाई धर्म मे प्रतिष्ठित हुआ था......

फ्रेडरिक एंगेल्स

टिप्पणियाँ तथा अपूर्ण अंश

ऐतिहासिक

आधुनिक प्रकृति विज्ञान का श्रीगणेश उस सबल युग से होता है जिसमे पूजीवादी व्यापारियो ने (बर्गरों ने) सामन्तवाद का विध्वस कर दिया था। इससे पहले यूनानियो के तेजस्वी सहज-बोध के उदाहरण तथा अरबो की छिट-पुट, एक-दूसरे से असम्बद्ध अन्वेपणाएँ ही देखने को मिलती थी। — किन्तु विज्ञान के रूप में केवल आधुनिक प्रकृति विज्ञान पर ही विचार किया जा सकता है। इस युग मे, शहरी नागरिको (पूजीवादी व्यापारियो) तथा सामन्ती अभिजातवर्ग के सघर्ष की पृष्ठभूमि मे, हमे किसान विद्रोह करता दिखलाई देता है, और किसान के पीछे-पीछे आधुनिक सर्वहारा वर्ग के क्रान्तिकारी आरम्भिक तत्व उठते दृष्टिगोचर होते है। इन तत्वो के हाथ मे लाल झण्डा है और उनके ओठो पर कम्युनिज़्म की बात।

यह वह युग था जिसने योरोप के महान् एकराजतत्रो को जन्म दिया था, पोपकी आध्यात्मिक तानाशाही के टुकडे-टुकड़े कर दिये थे, यूनानी प्राचीन युग के पुनरुत्थान को प्रोत्साहित करते हुए, नये युग के उच्चतम कलात्मक विकास को उत्प्रेरणा दी थी, पुरानी दुनिया की सीमाओं को

छिन्न-भिन्न कर दिया था और, वास्तव में, पहली बार पूरी दुनिया का अनुसंधान किया था।

यह सबसे बड़ी क्रान्ति थी जिसका दुनिया को अब तक अनुभव हुआ था। इस क्रान्ति के अन्तराल में प्रकृति-विज्ञान भी ख़ूब फला-फूला था। यह प्रकृति-विज्ञान एकदम क्रान्तिकारी था। वह महान् इटालवियों के आधुनिक दर्शन के जागरण की बाँह मे बाँह डालकर आगे बढ़ रहा था, और सूली पर लटकाये जाने तथा जेलों में डाले जाने के लिए शहीद पैदा कर रहा था। यह ख़ास बात है कि उस पर दमन करने के लिए प्रोटेस्टेन्टों और कैथोलिकों में होड़ लगी रहती थी। प्रोटेस्टेन्टो ने सरवितस को ज़िन्दा जला दिया था, कैथोलिकों ने गियारदानो ब्रूनो को। यह ऐसा समय था जिसमें महान् आत्माओं की ज़रूरत थी और महान् आत्माएँ ही उसने पैदा की थी — विद्वता, बुद्धि तथा चरित्र सब में वे महान् थी। यह वह समय था जिसे फ्रान्सीसियो ने सही-सही नवजागरण (रिनेसाँ) के युग की संज्ञा दी थी और प्रोटेस्टेन्टवादी योरप ने एकतरफ़ा विद्वेष के कारण उसे धर्म सुधार (रिफॉर्मेशन) का युग कहा था।

प्रकृति विज्ञान ने भी उसी समय अपनी आज़ादी की घोषणा कर दी थी। यह सही है कि ऐसा उसने एकदम शुरू में ही नही किया था। जिस तरह कि लूथर ही पहला प्रोटेस्टेन्ट नही था, उसी तरह यह घोषणा भी एकदम शुरू में नहीं हुई थी। धर्म के क्षेत्र में पोप के फ़तवे को जलाकर लूथर ने जो कुछ किया था, प्रकृति विज्ञान के क्षेत्र में वही चीज़ कोपरनिकस[७२]की महान् कृति ने की थी। अपनी इस कृति के द्वारा बहुत सहमते-सहमते, ३६ वर्ष की हिचकिचाहट के बाद और एक तरह से अपनी मृत्यु-शय्या पर पहुँच जाने पर, कोपरनिकस ने धार्मिक अन्ध-विश्वास को चुनौती दी थी। उसके बाद से धर्म से प्रकृति-विज्ञान मूलतः मुक्त हो गया था, यद्यपि पूरे तौर से उसे धर्म से नजात दिलाने का काम अभी तक चलता रहा है और अनेक मस्तिष्कों में वह अब भी पूरा नही हुआ है। परन्तु उसके बाद से विज्ञान ने विशाल डगों के साथ बढ़ना शुरू कर दिया।

जिस समय वह शुरू हुआ था उससे जितना फासला बढता जाता था उसका विकास भी उसी अनुपात मे कई गुना अधिक तेज होता जाता था—जैसे कि दुनिया को वह यह दिखला देना चाहता था कि सजीव भूत की उच्चतम उपज की गति के सम्बंध में, अर्थात् मानवी मस्तिष्क की गति के सम्बन्ध में जो नियम लागू होता है वह जड़ भूत की गति के नियम का एकदम उल्टा है।

आधुनिक प्रकृति विज्ञान के प्रथम चरण का अन्त — निर्जीव पदार्थो के क्षेत्र में — न्यूटन के साथ हो जाता है। यह वह काल था जिसमे जो जानकारी मौजूद थी उस पर पूर्ण अधिकार कायम किया गया था। गणित, यान्त्रिकी और ज्योतिष विद्या के क्षेत्र मे, स्थैतिकी तथा गतिकी के क्षेत्र मे महान् कार्य किया गया था। इसकी विशेष वजह कैपलर और गैलीलियो थे जिनकी कृतियो के आधार पर न्यूटन ने अपने निष्कर्ष निकाले थे। किन्तु सजीव (कारबनिक) क्षेत्र मे प्रारम्भिक चीजो से आगे कोई प्रगति नहीं हुई थी। ऐतिहासिक रूप से एक के बाद एक आने वाले और एक दूसरे का स्थान ले लेने वाले जीवन के स्वरूपो के सम्बन्ध मे तथा उनके अनुरूप बदलने वाली जीवन की परिस्थितियो के सम्बन्ध मे अनुसन्धान का कार्य अभी तक आरम्भ नही हुआ था — यानी पुराप्राणिशास्त्र तथा भूगर्भशास्त्र का अभी तक जन्म नही हुआ था। यह नही समझा जाता था कि प्रकृति कोई ऐसी चीज है जिसका ऐतिहासिक क्रम मे विकास हुआ है, जिसका काल मे कोई इतिहास है। सिर्फ अवकाश के विस्तार को ही स्वीकार किया जाता था। वर्गीकरण करते समय जीवन के विविध रूपों को एक के बाद एक नही रखा जाता था, बल्कि उनको एक दूसरे के साथ-साथ ही रखा जाता था। प्राकृतिक इतिहास, ग्रहो के अण्डाकार कक्षों की तरह, समस्त कालों के लिए निश्चित माना जाता था। सजीव रचना का और निकट से विश्लेषण किया जा सके इसके लिए आवश्यक दोनों ही आधार अभी तक तैयार नही हुए थे, अर्थात्, न रसायन शास्त्र का अभी तक जन्म हुआ था और न सजीव रचना के मूल तत्व के, यानी कोशिका के

ज्ञान का। प्राकृतिक विज्ञान तो आरम्भ से ही क्रान्तिकारी था, किन्तु उसका सामना हो रहा था एक सौ फीसदी अपरिवर्तनशील प्रकृति से, ऐसी प्रकृति से जिसमे आज भी हर चीज़ उसी तरह थी जिस तरह संसार के आरम्भ मे वह थी और जिसमें कि ससार के अन्तकाल तक हर चीज उसी तरह बनी रहेगी जिस तरह वह एकदम आरम्भ मे थी।

यह खास बात है कि प्रकृति के सम्वन्ध मे इस रूढिवादी दृष्टिकोण की वजह से अकारवनिक और कारवनिक दोनो क्षेत्रों में [.. ..]*

ज्योतिष विद्या	भौतिकी	भूगर्भशास्त्र
यान्त्रिकी	रसायनशास्त्र	पुराप्राणिशास्त्र
गणित		खनिज विज्ञान

वनस्पति-शरीर विज्ञान	आरोग्य विज्ञान
पशु-शरीर विज्ञान	रोग-निद्रा शास्त्र
शरीर-रचना शास्त्र	

(इसमे) पहली दरार : कान्ट और लाप्लास ने पैदा की। दूसरी : भूगर्भशास्त्र और पुराप्राणिशास्त्र (लियेल, मन्द विकास के उसके सिद्धान्त) ने। तीसरी : कारवनिक रसायनशास्त्र ने, जो कारवनिक पिंडो को तैयार करता है और जीवित पिडो के सम्वन्ध मे रासायनिक नियमो की प्रामाणिकता की पुष्टि करता है। चौथी : १८४२ मे, ऊष्मा के यांत्रिक (सिद्धान्त) ने, ग्रोव ने। पाचवी : डारविन, लामार्क, कोशिका, आदि (सघर्ष, कूवियर तथा अगासिज़) ने। छठी . शरीर-रचना शास्त्र मे तुलनात्मक तत्व, जलवायु विज्ञान (समताप रेखाये), पशु तथा पादप भूगोल (१८वी शताब्दी के मध्यकाल के बाद से वैज्ञानिक यात्राओ के अभियान), आम भौतिक भूगोल (हमबोल्ट), उसके सम्बन्ध मे सामग्री के सग्रह ने। आकृति विज्ञान (भ्रूण-विज्ञान, बेयर) ने।

---

*वाक्य पूरा नही किया गया था। — स०

पुराना हेतुवाद तो हवा हो गया है, किन्तु यह चीज़ अब दृढ़ता के साथ प्रमाणित हो गयी है कि अपने शाश्वत चक्र में भूत ऐसे नियमों के अनुसार गति करता रहता है जो एक निश्चित अवस्था में — अनिवार्य रूप से — कभी यहाँ, कभी वहाँ सजीव प्राणियो मे चिन्तनशील मस्तिष्क की सृष्टि कर देते है।

पशुओं की सामान्य जीवन-पद्धति उन समकालीन परिस्थितियों से निर्धारित होती है जिनमे वे रहते है और जिनके अनुसार वे अपना अनुकूलन करते है। जहाँ तक मनुष्य का सवाल है, उसकी सामान्य जीवन-पद्धति की परिस्थितियाँ – जब से सकुचित अर्थ मे पशु से उसने अपने को अलग कर लिया है तब से अभी तक कभी नहीं रही है। आने वाला ऐतिहासिक विकास ही विस्तार से उनकी सृष्टि कर सकेगा। मनुष्य ही एकमात्र ऐसा प्राणी है जो मात्र पशु अवस्था से ऊपर उठ आने की क्षमता रखता है — उसकी सामान्य अवस्था उसकी चेतना के अनुरूप होती है, उसकी सृष्टि स्वयम् उसी को करनी पड़ती है।

* * * *

.. .. ईश्वर के साथ इतना बुरा सलूक कोई नही करता जितना प्राकृतिक विज्ञान के वे लोग करते है जो उसमे विश्वास रखते है। भौतिकवादी तो सीधे-सीधे तथ्यो की व्याख्या करते है, वे उस तरह के शब्दो का इस्तेमाल नही करते। जब पीछे पडने वाले धर्मनिष्ठ ईश्वर-भक्त उनके ऊपर ईश्वर को ज़बर्दस्ती लादने की चेष्टा करते है तो पहले तो वे उन्हे तथ्यो से परिचित कराते है, और फिर या तो लाप्लास की तरह रुखाई से जवाब दे देते है : *Sire, je n' avais pas,* आदि (महामहिम, मुझे उस कल्पना की कोई जरूरत नही पड़ी !),[७३] या और भी उग्र ढग से उन डच व्यापारियो की तरह जवाब दे देते है जो कि जब घूमते-फिरते जर्मन व्यापारी उनके ऊपर अपने घटिया माल को ज़बर्दस्ती थोपने की कोशिश करते है तब उन्हे भगाने के लिए चिढ़

कर कह देते है : *Ik kan die zaken niet gebruiken** । फिर बात यहीं खत्म हो जाती है। परन्तु अपने रक्षकों के हाथो में ईश्वर को क्या-क्या नहीं भुगतना पडा है ! आधुनिक प्राकृतिक विज्ञान के इतिहास में ईश्वर के समर्थक उसके साथ कुछ उसी तरह का व्यवहार करते है जिस तरह का व्यवहार जेना अभियान के समय उसके जनरलों और अफसरों ने फ्रेडरिक विलियम तृतीय के साथ किया था। सेना का एक के बाद एक डिवीजन हथियार डालता जाता है, विज्ञान की प्रगति के सामने एक के बाद एक गढ गिरता जाता है, और, अन्त में, प्रकृति के समस्त अनन्त प्रदेश मे विज्ञान की विजय-श्री की दुन्दुभी वज उठती है और उसमे सृष्टा के लिए कोई स्थान नही रह जाता। न्यूटन ने उसे "प्रथम आवेग" तक होने का श्रेय तो दे दिया था, किन्तु इसके आगे अपने सौर मंडल मे और अधिक दखल देने से उसे उसने विल्कुल रोक दिया था। धर्म-पिता सेक्की ने सौर मडल से उसे विल्कुल ही निकाल बाहर किया है। यह ठीक है कि इस कार्य को उसने सादर पूरे धार्मिक सम्मान के साथ किया है किन्तु, इसके बावजूद, वहाँ से निकाल भगाने के काम मे उसने कोई ढिलाई नही की है ! और सृष्टि सम्बन्धी कार्य के सिलसिले मे भी उसे उसने केवल आद्य नक्षत्र-पुज तक का ही श्रेय दिया है। और अन्य तमाम क्षेत्रों मे भी इसी तरह हुआ है। उनका अन्तिम महान् डौन क्विक्जोट, अगासिज तो जीवशास्त्र के क्षेत्र मे ईश्वर का सम्बध एकदम मूर्खतापूर्ण चीज़ो के साथ नत्थी कर देता है। अगासिज़ के अनुसार, ईश्वर ने न सिर्फ़ वास्तविक पशुओ की, बल्कि निराकार पशुओ की भी, निराकार मछली की भी सृष्टि की थी ! और, अन्त मे टिन्डल[७४] आते है जिन्होने प्रकृति के क्षेत्र मे ईश्वर के प्रवेश को एकदम निषिद्ध कर दिया है। उन्होने उसे भावनात्मक प्रक्रियाओ की दुनिया मे निर्वासित कर दिया है। उसकी सत्ता को वे सिर्फ इसलिए स्वीकार करते है कि, आख़िर, कोई न कोई तो ऐसा होना चाहिए जो इन तमाम

* इन चीजों की मुझे जरा भी जरूरत नहीं !— स०

वस्तुओं (प्रकृति) के सम्बन्ध में जौन टिन्डल से अधिक जानता हो ! वह पुराना ईश्वर — जो आकाश व पृथ्वी का सृष्टा था, तमाम वस्तुओं का पालक-प्रतिपादक था, जिसकी मर्ज़ी के बिना सिर का एक बाल तक नही गिर सकता था — बिचारा कितना पीछे पड़ गया !

टिन्डल की भावनात्मक आवश्यकता कोई भी चीज़ साबित नही कर सकती। शेवैलियर दे ग्रिउ की भी भावनात्मक आवश्यकता थी ! उसकी आवश्यकता यह थी कि मेनन लेस्कोट से वह प्रेम करे और उसे अपना बना ले। किन्तु मेनन लेस्कोट ने अपने को और उसे बार-बार बेच दिया। उसकी वजह से शेवैलियर को ताश मे बेईमानी करके कमाना पड़ा, वह ख़ुद दलाल बन गया। अब टिन्डल अगर इन चीजो के लिए उसे दोषी ठहरायेगा तो वह भी यही जवाब देगा — कि यह मेरी "भावनात्मक आवश्यकता" थी !

ईश्वर = *nescio* (नास्ति यानी, नही है); किन्तु ignorantia non est argumentum [७५] (उसके पक्ष मे एकमात्र दलील अज्ञान है) — [स्पिनोज़ा] !

फ्रेडरिक एंगेल्स

ब्रूनो बेयर तथा आरम्भिक ईसाई धर्म

१३ अप्रैल को बर्लिन मे एक ऐसे व्यक्ति की मृत्यु हो गयी जिसने किसी समय एक दार्शनिक और धर्मवेत्ता की भूमिका अदा की थी। किन्तु वर्षो तक उसके बारे मे मुश्किल से ही कोई चीज सुनने में आयी थी। समय-समय पर केवल एक "झक्की साहित्यिक" के रूप मे ही उसकी तरफ पब्लिक का ध्यान चला जाता था। सरकारी धर्माचार्यो ने उसको बिसार दिया था और इसलिए उसके सम्बन्ध मे वे मौत का सा सन्नाटा बनाये रखते थे। ऐसा करने वालो मे रेनान भी शामिल था। किन्तु, इसके बावजूद, वह व्यक्ति इन सबसे अधिक योग्य था। और जिस प्रश्न मे हम समाजवादियो की दिलचस्पी है : ईसाई धर्म की उत्पत्ति के इतिहास के प्रश्न मे — उसके सम्बध मे भी उसने उन सबकी अपेक्षा अधिक काम किया था।

उसकी मृत्यु के इस अवसर पर आइये, इस प्रश्न की वर्तमान परि-स्थिति के सम्बन्ध मे हम सक्षेप मे विचार कर ले और देखे कि उसके समाधान मे बेयर ने कितनी सहायता दी है।

हीगेल ने दर्शन पर यह उत्तरदायित्व डाला था कि विश्व-इतिहास के बुद्धि-सगत क्रम पर वह प्रकाश डाले। इसके बाद वह दृष्टिकोण नाकाफी हो गया था जो मध्य युगो के मुक्त चिन्तको से लेकर १८वी शताब्दी के नवालोक के प्रसारको तक हावी रहा था। अब केवल यह कहने से काम

नही चल सकता था कि तमाम धर्म, और इसलिए ईसाई धर्म भी, केवल ठग विद्या है।

स्पष्ट है कि यदि नीग्रो लोगो की जड़ पूजा अथवा आर्यों के सम्मिलित आदिम धर्म जैसी अपने-आप उत्पन्न होने वाली धार्मिक व्यवस्थाएँ बिना किसी ठगी के पैदा हो गयी थी, तो अब उनके आगे के विकास के लिए, पडे-पुरोहितो की ठग-विद्या शीघ्र ही एक अनिवार्य वस्तु बन गयी है। किन्तु धर्मान्धता चाहे जितनी निष्पाप हो, यह तै है कि कृत्रिम धर्म बिल्कुल आरम्भावस्था मे भी प्रवन्चना तथा इतिहास को गलत-सलत ढग से पेश करने की चाल का सहारा लिए बिना नही पनप सकते। जैसा कि वेयर ने नयी इंजील (New Testament) की अपनी आलोचना में स्पष्ट किया है, इस क्षेत्र मे ईसाई धर्म ने भी आरम्भकाल से ही काफी कारगुज़ारियाँ दिखलाई है। किन्तु इससे तो केवल एक आम व्यापार की ही पुष्टि होती है, प्रस्तुत विषय पर इससे कोई विशेष प्रकाश नही पड़ता।

एक ऐसे धर्म को, जिसने रोम के विश्व-साम्राज्य को अपने अधीन बना लिया था और जो १८ सौ वर्ष तक सभ्य मानव जाति के अधिकाँश मानव भाग पर शासन करता रहा हैं, केवल यह कह कर नही खत्म कर दिया जा सकता कि वह कुछ धूर्तों की मात्र एक चाल था। उन ऐतिहासिक परिस्थितियो के आधार पर, जिनमे वह उदय हुआ था और अपने प्रभुतापूर्ण पद तक पहुँचा था, जब तक ठीक-ठीक यह नही बताया जा सकता कि उसकी उत्पत्ति और उसके विकास का क्या कारण था तब तक उसके बारे मे कोई फ़ैसला नही किया जा सकता। ईसाई धर्म की यहीं स्थिति है। तब फिर जिस समस्या का उत्तर देना है वह यह है: इसका क्या कारण है कि रोम साम्राज्य के आम जनगण भी अन्य तमाम धर्मो की अपेक्षा अभी तक इसी बकवास को — जिसका प्रचार, विचित्र बात है! दासो तथा अन्य उत्पीडित लोगों ने भी किया है — पसद करते आये है? इसका क्या कारण है कि आखिर मे उस महात्वाकाक्षी कॉन्सटेन्टीन तक को यह मानना पड़ा था कि रोमन ससार के स्वेच्छाचारी

शासक पर अगर वह अपने को प्रतिष्ठित करना चाहता है तो इसका सबसे अच्छा उपाय यह होगा कि बकवास के इस धर्म को वह स्वीकार कर ले ?

इस प्रश्न का समाधान ढूढ़ने में किसी भी अन्य व्यक्ति की अपेक्षा ब्रूनो बेयर ने अधिक सहायता दी हैं। प्रतिक्रिया काल के अर्ध-विश्वासी धर्माचार्यों ने १८४९ से उसके विरुद्ध कितना ही संघर्ष चलाया, किन्तु वह विचलित नही हुआ। स्वयम् इजीलो की अन्तर्वस्तु (विचार-तत्वो) के आधार पर, इंजीलो के कालक्रम तथा उनकी परस्पर निर्भरता को उसने अकाट्य रूप से प्रमाणित कर दिया। इसी चीज़ को विल्के ने केवल भाषा-विज्ञान की दृष्टि से स्पष्ट किया था। ब्रूनो बेयर ने प्रमाणित कर दिया कि स्ट्रास के उस अस्पष्ट कल्पित सिद्धान्त में रत्तीभर भी वैज्ञानिक भावना नही है जिसमे कहा गया है कि इंजील के विवरणो के आधार पर आदमी उन्हे चाहे जितना ऐतिहासिक मान ले सकता है। और यदि इन्जीलो के सम्पूर्ण विचार-तत्वो मे से लगभग किसी चीज़ को ऐतिहासिक रूप से प्रमाणित नही किया जा सकता — जिससे कि ईसा-मसीह के ऐतिहासिक अस्तित्व तक के सम्बन्ध मे शंका की जा सकती है — तो, इसे प्रमाणित करके बेयर ने इस प्रश्न के समाधान के लिए ज़मीन तैयार कर दी है कि : उन भावों और विचारों की उत्पत्ति कहाँ से हुई थी जिन्हे गूथ कर ईसाई धर्म को एक प्रकार के दर्शन का रूप दे दिया गया है ? और ये भाव और विचार सारी दुनिया पर इस तरह छा कैसे गये थे ?

बेयर इस प्रश्न का अपने मृत्यु-काल के समय तक अध्ययन करते रहे थे। अपने शोध-कार्य से वे इस मुख्य निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि अलेक्ज़ेन्ड्रिया का यहूदी फिलो ही ईसाई धर्म का असली पिता था। ईसा की मृत्यु के चालीस वर्ष बाद तक वह ज़िन्दा था, लेकिन तब वह बहुत बुड्ढा हो गया था। और रोम का स्टाइक (स्थित-प्रज्ञ) दार्शनिक सिनेका, एक प्रकार से, ईसाई धर्म का चाचा था। फिलो की कही जाने वाली

जो अनेक रचनाएं हमे प्राप्त हुई है उनका जन्म वास्तव मेयहूदी परम्पराओं से सम्बन्धित रूपको तथा तर्कशील तत्वो के यूनानी, विशेष रूप से उसके उदासीनतावादी (स्टॉइक) दर्शन के साथ मिश्रण के गर्भ से हुआ है। पश्चिमी और पूर्वी दृष्टिकोण के इस समन्वय मे ईसाई धर्मी तमाम मूल विचार मिल जाते है। मनुष्य की जन्मजात पापवृत्ति; *Logos*, यानी वचन, जो ईश्वर के पास है और ईश्वर है और जो ईश्वर तथा मनुष्य के बीच मध्यस्थता का काम करता है, प्रायश्चित्, जिसे पशुओ की वलि चढ़ाकर नही, वल्कि ईश्वर के प्रति अपने हृदय को समर्पित करके पूरा किया जा सकता है—ईसाई धर्म के ये सब विचार-कण उसमे मौजूद है। और, अन्त में, ईसाई धर्म की वह मूल विशेपता भी उसमें मौजूद है जो नये धार्मिक दर्शन के अन्दर दुनिया की पूर्ण पुरानी व्यवस्था को ही उलट देती है • यानी यह नया धार्मिक दर्शन अपने अनुयायी गरीवों, दुखियारो, दासो तथा तिरस्कृतो के बीच ढूंढता है; धनियो, सत्ताशालियो, तथा विशेषाधिकार-सम्पन्न लोगो से वह घृणा करता है। समस्त सासारिक सुखो का परित्याग करने तथा शरीर को पीड़ा पहुँचाने के धर्मोद्दिग्य की उत्पत्ति इसी भावना के अन्दर से हुई थी।

दूसरी तरफ, ऑगस्टस ने आदेश जारी कर दिया कि न केवल ईश्वर-मानव को, वल्कि तथाकथित विशुद्ध धारणा को भी मानना राजाज्ञा के अनुसार आवश्यक है। उसने न केवल सीज़र तथा स्वयम् अपने को देवताओ की तरह पुजवाना शुरू कर दिया, वल्कि उसने इस वात का भी प्रचार किया कि वह स्वयम्, अर्थात्, ऑगस्टस सीज़र डिवस, देवदूत था; वह किसी मानवी पिता की सन्तान नही था, बल्कि उसकी मा ने उसे सूर्यदेव से (अपोलो से) प्राप्त किया था। किन्तु, वह सूर्यदेव (अपोलो) कही उस अपोलो का सम्वन्धी तो नही था जिसके विषय मे हेनरिख हाइने[७६] ने अपने गीतो मे लिखा है?

जैसा कि हम देखते है, हमे केवल मूल आधार की ही जरूरत है, फिर अपनी समस्त मूल विशेषताओ के साथ, ईसाई धर्म की पूरी इमारत

सामने खड़ी हो जाती है : वचन का अवतार एक विशेष व्यक्ति का रूप ले लेता है और पापयुक्त मानव जाति की मुक्त के लिए यह व्यक्ति सलीब पर चढ़ जाता है।

जिन स्रोतो का सचमुच भरोसा किया जा सकता है वे हमे निश्चित रूप से यह नही बताते कि उदासीनतावादी — फिलोवादी सिद्धान्तो के अन्दर ईसाई धर्म के इस बुनियादी विचार की स्थापना कब कर दी गयी थी। किन्तु इतना निश्चित है कि उसकी स्थापना दार्शनिको ने, फिलो के शिष्यो अथवा यूनानी वैरागियो (स्टॉइकों) ने नही की थी। धर्मो की स्थापना वे लोग करते है जो स्वयम् धर्म की आवश्यकता का अनुभव करते है तथा आम जनता की धार्मिक आवश्यकताओ को समझते हैं। आमतौर से यह चीज प्राचीन दार्शनिको के सम्बन्ध मे नही लागू होती। दूसरी तरफ़, हम देखते है कि आम पतन के समय, जैसे कि आजकल, दर्शन तथा धार्मिक रूढिवादिता आमतौर से विकृत तथा छिछले रूप ले लेते है। प्राचीन यूनानी दर्शन के अन्तिम स्वरूपो के गर्भ से — विशेषतौर से उसके एपीक्यूरसवादी सम्प्रदाय के गर्भ से — अनीश्वरवादी भौतिकवाद का जन्म हुआ था; किन्तु यूनान के घटिया दर्शन के गर्भ से इस सिद्धान्त का जन्म हुआ था कि ईश्वर एक और सिर्फ एक है तथा मानव आत्मा अमर है। इसी तरह, यहूदियो के धर्म के विकृत रूप के साथ बाहरी लोगों तथा अर्द्ध-यहूदियो के विचारों के मिश्रण तथा आदान-प्रदान के फलस्वरूप धार्मिक कर्म-काण्डो की उपेक्षा की जाने लगी और जाहवेह* को, जो कि पहले केवल यहूदियो

---

* जैसा कि एवल्ड ने प्रमाणित किया है, जाहवेह (Jahveh) के नाम के व्यजन अक्षरों के नीचे लिखने के लिए यहूदी लोग विन्दुओं वाली लिपि का (जिसमे स्वर वर्ण तथा पठन-चिन्ह रहते थे—) इस्तेमाल करते थे। जाहवेह का उच्चारण करने की मनाही थी। उसके व्यंजन अक्षरों के नीचे एडोनाई (Adonai) शब्द के स्वरवर्णों को वे लिखते थे। जाहवेह के स्थान पर वे इसे ही पढते थे। बाद मे इसे जेहोवा (Jehovah) पढा जाने लगा था। इसलिए यह शब्द किसी देवता का नाम नहीं है, बल्कि व्याकरण की एक भौंडी भूल है। हिब्रू (इब्रानी भाषा) में तो यह शब्द बिलकुल असम्भव है।

का राष्ट्रीय देवता था, एकमात्र सच्चे ईश्वर में वदल दिया गया। वहीं फिर स्वर्ग और पृथ्वी का रचयिता कहलाने लगा। साथ ही आत्मा की अमरता के विचार को भी उसमे शामिल कर लिया गया। यहूदियो के प्रारम्भिक धर्म मे इस विचार का कोई स्थान नही था। इस भाँति एकेश्वरवादी घटिया दर्शन का घटिया धर्म के साथ सम्पर्क कायम हुआ। घटिया धर्म ने उसे अपने तैयार-शुदा एक, और सिर्फ एक, ईश्वर की भेंट प्रदान की। इस तरह वह ज़मीन तैयार हो गयी जिसके ऊपर फिलो के विचारों के इसी तरह विगाडे गये रूप का यहूदियो के वीच विन्यास करके ईसाई धर्म को पैदा किया जा सकता था। इसके एक वार पैदा हो जाने पर यूनानियो और रोमनो दोनो को वह शिरोधार्य होगा। ईसाई धर्म का जन्म स्वयम् फिलो की रचनाओ के अन्दर से नही, वल्कि फिलो के विचारो के विकृत रूपो के अन्दर से हुआ था — यह इस चीज़ से सावित हो जाता है कि नयी इंजील (नयी वाइविल) ने फिलो की अधिकाश कृतियो की लगभग पूर्णतया उपेक्षा की है। पुरानी इंजील (पुरानी वाइविल) के आख्यानो के रूपको तथा उनकी दार्शनिक व्याख्याओ की तो ख़ासतौर से नयी इजील मे उपेक्षा की गयी है। वेयर ने इस पहलू की ओर पर्याप्त ध्यान नही दिया था।

अपने प्रारम्भिक रूप मे ईसाई धर्म कैसा लगता था इसका कुछ आभास जौन द्वारा लिखित दिव्य सन्देश (सुसमाचार) की तथाकथित पुस्तक को पढने से मिल सकता है। एक तरफ उसमे उद्दण्ड, गडवड-सड़वड धर्मान्धता है, अन्ध रुढियो की केवल शुरुआत है, तथाकथित ईसाई नैतिकता द्वारा निर्धारित शरीर को यातनाएँ पहुँचाने की वात है; किन्तु, दूसरी तरफ, उसमे वेशुमार झाँकियों और ईश्वरीय भविष्यवाणियो का उल्लेख है। धार्मिक अन्धमतो तथा नैतिक सिद्धान्तो का विकास वाद के काल मे, उस काल मे हुआ था जिसमे वाइविलो तथा दिव्य सन्देशवाहको (देवदूतो) के तथाकथित धर्म-पत्रो को लिखा गया था। इसके लिए — कम से कम जहाँ तक आचार-विचार का सम्वन्ध है —

वैरागियो (स्टाइकों) के दर्शन का, विशेपतौर से सिनेका के दर्शन का निर्द्वन्द्व भाव से इस्तेमाल किया गया था। वेयर ने साबित किया है कि ये धर्म-पत्र वहुधा उक्त दर्शन की अक्षरशः नकल कर लेते है। वास्तव में, इस चीज़ को ईसाई धर्मानुयाइयो ने भी देखा था, किन्तु वे कहते थे कि स्वयम् सिनेका ने उसे नयी इजील से नकल करके ले लिया था — यद्यपि सिनेका के समय तक नयी इजील लिखी भी नही गयी थी! अन्धमत का विकास एक तो ईशु की उस कथा को लेकर हुआ था जिसका उस समय जन्म ही हो रहा था और दूसरी तरफ़ उसका विकास उस संघर्ष के दर्म्यान हुआ था जो यहूदी ईसाइयो तथा मूर्त्तिपूजक (पेगन) ईसाइयो मे हो रहा था।

वे कौन से कारण थे जिन्होने ईसाई धर्म को विजयी होने तथा दुनिया पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने मे सहायता दी थी — इस सम्बन्ध मे भी वेयर ने अत्यन्त मूल्यवान वाते वताई है। किन्तु यहाँ पर उस जर्मन दार्शनिक का आदर्शवाद आड़े आ जाता है। उसके स्पष्ट रूप से देखने और वातो को ठीक-ठीक पेश करने मे वह वाधा डालता है। निर्णायक वातो के सम्वन्ध मे अक्सर मूलतत्व का स्थान कथन-चातुर्य ले लेता है। इसलिए, वेयर के विचारो का व्योरे मे विश्लेपण करने के वजाय, वेयर की रचनाओ तथा स्वयम् अपने व्यक्तिगत अध्ययन के आधार पर इस विपय मे हम स्वयम् अपनी धारणा वतायेगे।

रोमनो की विजय ने तमाम विजित देशो मे पहले तो पुरानी तमाम राजनीतिक परिस्थितियो का सीधे-सीधे अन्त कर दिया, फिर वाद में अप्रत्यक्ष रूप से उनके जीवन की सामाजिक परिस्थितियो को भी नष्ट कर दिया। ऐसा करने के लिए पहले तो रोमनो ने जागीरो के ऊपर आधारित पुराने सगठन (गुलामी की वात को अलग रखते हुए) को हटाकर, रोमन नागरिको और अन्य देशीय लोगो अथवा पराधीनों के वीच सीधा भेद कायम कर दिया था। दूसरे, और जो मुख्य चीज थी, रोमन राज्य के नाम पर उन्होने कर वसूलना शुरू कर दिया था।

साम्राज्य के अन्तर्गत, राज्य के हित में यदि इस बात की यथाशक्ति सीमा निर्धारित कर दी गयी थी कि गवर्नर लोग धन-सम्पदा की अपनी प्यास को बुझाने के लिए कहाँ तक लूट-खसोट कर सकते हैं, तो, साथ ही साथ, इस लूट-खसोट के स्थान पर राज्य कोष को भरने के लिए अधिकाधिक तबाही और बर्बादी लाने वाले टैक्स भी लगा दिये गये थे। इनका असर भयानक रूप से विनाशकारी था। तीसरे, हर जगह रोमन कानून को लागू कर दिया गया था जिसे रोमन जज ही लागू करते थे। देशी सामाजिक व्यवस्था को, जिस हद तक वह रोमन कानून के साथ मेल नही खाती थी, अवैध घोषित कर दिया गया था। इन तीनो उपायो से पीट-पाटकर सबको बराबर कर देने की ज़बर्दस्त शक्ति पैदा हो गयी थी। इन देशो की आबादियों के सबसे साहसी हिस्सो को या तो उन लड़ाइयो के दौरान —जो विजय से पहले, उसके साथ-साथ, या अक्सर उसके बाद भी लडी गयी थी — या तो कुचल दिया गया था, या गुलाम बना लिया गया था। इसके बाद जब सैकडों वर्षो तक इन तीनों तरीकों का बची हुई आबादियो के खिलाफ इस्तेमाल किया गया था तो उन्होने उन्हे पस्त कर दिया था। प्रान्तो में कायम होने वाले सामाजिक सम्बन्ध, इटली तथा राजधानी मे जो सम्बन्ध थे उनके अधिकाधिक अनुरूप बनते गये। आबादी तीन तीव्र रूप से विरोधी वर्गो मे बँटती गयी। ये वर्ग एकदम भिन्न-भिन्न तत्वो तथा जातियो के मेल से बन रहे थे। इनमे एक धनी लोगो का वर्ग था जिसमे (पैट्रोनियस जैसे) काफी वे गुलाम भी थे जो दासत्व से मुक्त हो गये थे; बडे ज़मीदार अथवा सूदख़ोर, या ईसाई धर्म के चचा, सिनेका की तरह के ऐसे लोग भी इसी वर्ग मे थे जो ज़मीदार और सूदख़ोर दोनो थे। दूसरा वर्ग सम्पत्तिविहीन मुक्त लोगो का था। रोम मे इनके भोजन और मनोरजन की व्यवस्था राज्य की ओर से की जाती थी। प्रान्तो मे वे खुद अपने सहारे जैसे-तैसे गुज़र करते थे। और, अन्त मे, तीसरा गुलामो का विशाल वर्ग था। राज्य यानी सम्राट के मुकाबले मे पहले दो वर्गो के अधिकार उतने ही अकिंचन थे जितने कि

अपने स्वामियों के मुकाबले में दासों के थे। टिवेरियस के समय से लेकर नीरो के समय तक यह एक क़ायदा बन गया था कि उनकी जायदाद को ज़ब्त करने के लिए धनी रोमन नागरिकों को मृत्यु की सजा दे दी जाती थी! सरकार का सहारा भौतिक रूप से सेना थी। रोमनों की पुरानी किसान-सेना की अपेक्षा यह सेना किराये के परदेशी सिपाहियों की सेना से अधिक मिलती थी। और, नैतिक रूप से, सरकार का सहारा यह आम धारण थी कि उस स्थिति से उबरने का और कोई उपाय नही था। सीज़र चाहे यह हो या वह हो, किन्तु फ़ौजी प्रभुत्व पर आधारित साम्राज्य एक अटल अनिवार्यता थी। यह धारणा किन अत्यन्त भौतिक परिस्थितियों पर आधारित थी इसकी जाँच-पड़ताल करने की जगह यह नहीं है।

आम अधिकार-विहीनता तथा इस निराशा की भावना के गर्भ से कि परिस्थितियो को सुधारने का कोई रास्ता नही है, उसी के अनुरूप, एक आम शिथिलता तथा मनोबल-हीनता का जन्म हुआ। कुलीन किस्म के थोड़े से जो पुराने रोमन बच गये थे उन्हे या तो हटा दिया गया या वे मर गये। टैसीटस उनमे से आख़िरी था। बाकी लोग सार्वजनिक जीवन से दूर रहते थे तो खुश होते थे; उनके जीवन का यही उद्देश्य था कि दौलत बटोरें और उसका भोग करें तथा आपस मे गुप-चुप बाते तथा आपसी साज़िशें करे। सम्पत्ति-विहीन मुक्त नागरिकों की स्थिति रोम में तो राज्य से पेंशन पानेवाले लोगो की थी, किन्तु प्रान्तो मे उनकी दशा असुखकर थी। वहाँ उन्हें काम करना पडता था। इससे भी बदतर चीज़ यह थी कि उन्हे दासों के साथ प्रतियोगिता करनी पड़ती थी। किन्तु वे शहरों में ही रहते थे। उनके अलावा, प्रान्तों मे किसान, मुक्त भू-स्वामी (इधर-उधर शायद अब भी सामूहिक स्वामित्व की व्यवस्था मौजूद थी), अथवा, जैसा कि गॉल में, कर्ज़ के कारण बडे भू-स्वामियो से बँधे, क्रीत दास भी पाये जाते थे। यह वह वर्ग था जिस पर सामाजिक उथल-पुथल का सबसे कम असर पड़ा था; धार्मिक उथल-पुथल का सबसे अधिक काल

तक विरोध भी इसी वर्ग ने किया था।* अन्त में, ग़ुलाम थे, जिनके अधिकार छीन लिये गये थे तथा जिनकी अपनी इच्छा ख़त्म कर दी गयी थी। जैसा कि स्पार्टकस की पराजय ने प्रमाणित कर दिया था, इस वात की भी सम्भावना उनके सामने नही रह गयी थी कि वे अपने को मुक्त कर ले। किन्तु, उनमें से अधिकांश या तो भूतपूर्व स्वतत्र नागरिक थे, अथवा स्वतंत्र पैदा हुए नागरिकों की संतान थे। इसलिए, जीवन की परिस्थितियो के विरुद्ध घृणा की भावना सम्भवत: उन्ही के अन्दर अब भी आमतौर से उग्र रही होगी, यद्यपि वाहरी तौर से वे कुछ भी करने में असमर्थ थे।

हम देखेंगे कि इस समय के जो सिद्धान्तकार थे वे इन परिस्थितियों के ही अनुरूप थे। दार्शनिक या तो केवल रुपया कमाने वाले स्कूल-मास्टर थे या सम्पत्तिशाली मजा-मौज मारने वालो की सेवा मे नियुक्त विदूषक थे। कुछ तो ग़ुलाम भी थे। अच्छी दशा में पहुँचने पर उनका क्या हाल हो जाता था इसका एक उदाहरण सिनेका प्रस्तुत करता है। साधुता और निग्रह का प्रचार करने वाला यह वैरागी दार्शनिक नीरो के दरवार का सवसे वड़ा षड्यन्त्रकारी था। दास-वृत्ति का हुए विना वह इस पद को प्राप्त नहीं कर सकता था। नीरो से उसने इनामों के रूप मे रुपया, सम्पत्ति, वाग-वगीचे और महल प्राप्त किये थे। प्रचार तो वह वाइविल के ग़रीव आदमी लज़ारस का करता था, किन्तु दरअसल वह ख़ुद उसी नीति-कथा का धनी आदमी था! नीरो जव उस पर नाराज़ हुआ और उसके खिलाफ़ कारंवाई करने के लिए तैयार हुआ केवल तभी उसने उससे यह प्रार्थना की थी कि हे सम्राट्! अपने तमाम पुरस्कारों को वापिस ले लो, मेरे लिये मेरा दर्शन ही काफ़ी है! केवल एकदम अलग-थलग पड़े हुए परसियस जैसे दार्शनिकों मे ही इस वात का साहस था कि अपने पतित समकालीनो के विरुद्ध अपने व्यंग-वाणो का प्रयोग कर सके। किन्तु जहाँ

---

* फॉल मेरेयर के अनुसार, मेन, पैलोपोनेसस के किसान ९वीं शताब्दी तक भी ज़ियस (यूनानी इन्द्र) के सामने वलि चढ़ाते थे।

तक दूसरे किस्म के सिद्धान्तकारो, नैयायिकों की वात थी, उनमें नयी परिस्थितियों की वजह से उत्साह था, क्योंकि जागीरों के तमाम भेदों के मिटा दिये जाने से निजी सम्पत्ति के अपने प्रिय अधिकार को वढाने का उन्हें खूव मौका मिल गया था। इस अधिकार के वदले मे अपने सम्राट के लिए उन्होंने अधिकार की एक ऐसी निकृष्ट राजकीय व्यवस्था तैयार कर दी थी जैसी कि इससे पहले कभी नही वनी थी।

विभिन्न कौमों की राजनीतिक तथा सामाजिक विशिष्टताओं के साथ-साथ उनके विशिष्ट धर्मों का भी रोमन साम्राज्य ने सफ़ाया कर दिया। प्राचीन काल के तमाम धर्म अपने-आप पैदा हुए कवीलाई और वाद मे जातीय धर्म हुआ करते थे। उनकी उत्पत्ति सम्बन्धित क़ौमो की सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियो से हुई थी और वे उन्ही के साथ एक प्राण हो गये थे। इन परिस्थितियों को, यानी उनकी नीवों को छिन्न-विच्छिन्न कर दिया गया और समाज के उनके परम्परागत स्वरूपों को, विरासत मे मिली हुई उनकी राजनीतिक संस्थाओं तथा राष्ट्रीय स्वाधीनता को जव नष्ट कर दिया गया, तव स्वाभाविक था कि उनसे सम्बन्धित धर्म की इमारत भी ढह जाय। प्राचीन काल मे आम नियम था कि राष्ट्रीय देवता अपने साथ दूसरे देवताओं के आ जाने की वात तो वर्दाश्त कर लेते थे, किन्तु अपने से ऊपर के किसी देवता को वे नही मान सकते थे। पूर्व के देवताओं को रोम में ले जाकर रखा गया तो उससे केवल रोमन धर्म को ही नुकसान पहुँचा था; पूर्व के धर्मों के पतन को-उससे नही रोका जा सका था। राष्ट्रीय देवता ज्योही अपने राष्ट्र की स्वतन्त्रता की रक्षा करने में असमर्थ हो गये, त्योही उनका खुद का भी सत्यानाश हो गया। हर जगह (सिवा किसानों के यहाँ, खासतौर से पहाड़ो के किसानों के यहाँ) यही हाल था। घटिया दार्शनिक नवालोक ने — मेरे मुंह से निकला जा रहा था कि वोल्टेयरवाद ने — रोम और यूनान मे जो कुछ किया था, वही चीज़ प्रान्तों मे रोमनो के ज़ोरो-ज़ुल्म ने की थी। अपनी स्वतंत्रता पर अभिमान करने वाले इन्सानो की जगह वहाँ हताश-

निराश पराधीन लोगों तथा स्वार्थी निकम्मों की एक कौम पैदा कर दी गयी थी।

ऐसी ही भौतिक तथा नैतिक परिस्थिति थी। वर्तमान असह्य हो रहा था, भविष्य और भी भयप्रद प्रतीत होता था। कोई मार्ग नही दिखाई देता था। केवल निराशा नजर आती थी, या फिर उन लोगों के लिए, जो उसका व्यय उठा सकते थे, एक और रास्ता था — इन्द्रियगत भोग-विलास की दुनिया मे खो जाने का ! ऐसे लोगो की सख्या वहुत ही थोड़ी थी। इसके वाद भवितव्य के सामने घुटने टेक देने का ही एकमात्र मार्ग था।

किन्तु सभी वर्गो मे अनिवार्य रूप से कुछ ऐसे लोगो की सख्या थी जो, भौतिक सुख-समृद्धि प्राप्त करने मे असमर्थ होकर, आत्मिक मोक्ष की खोज करते थे। पूर्ण निराशा से वचने के लिये वे इसी मे अपना परित्राण देखते थे। इस प्रकार की सान्त्वना उन्हे न ऐपीक्यूरस सम्प्रदाय के दार्शनिको से प्राप्त हो सकती थी और न वैरागी (स्टॉइक) दार्शनिको के सम्प्रदाय से। इसका सीधा-सादा कारण यह था कि ये दर्शन साधारण आदमी की चेतना के लिए नही थे। इसका दूसरा कारण यह था कि इन सम्प्रदायो के अनुयायियों का आचार-व्यवहार ऐसा होता था जो उनके सिद्धान्तो को कलकित करता था। सान्त्वना के इस मार्ग को खोये हुए दर्शन की जगह नही लेनी थी, वल्कि खो गये धर्म का स्थान ग्रहण करना था। इसके लिये आवश्यक था कि वह एक धार्मिक स्वरूप ग्रहण करे। जो भी चीज़ आम जनता को अपनी ओर आकर्षित करना चाहती थी उसे यही स्वरूप धारण करना पड़ता था। उस वक्त तो यह हालत थी ही, किन्तु सत्रहवी शताब्दी तक भी यही हालत थी।

इस चीज को कहने की आवश्यकता नही है कि जो लोग अपने चेतना-जगत् मे इस तरह की सान्त्वना ढूढ़ने की कोशिश करते थे, जो वाह्य जगत् से भागकर इस प्रकार अपनी आन्तरिक दुनिया में शरण ले लेना

चाहते थे, उनमे से अधिकाश अवश्यम्भावी रूप से दासों के ही बीच मिलते थे ।

इसी आम आर्थिक, राजनीतिक, बौद्धिक तथा नैतिक पतन के वातावरण में ईसाई धर्म का उदय हुआ था । पहले के जितने धर्म हुए थे, ईसाई धर्म उन सबके एक दृढ़ विरोधी के रूप मे सामने आया ।

पहले के तमाम धर्मो मे कर्म-काण्ड ही मुख्य हुआ करता था । बलि चढ़ाने तथा शोभा यात्राओ के कार्यों में भाग लेकर ही आदमी यह प्रकट कर सकता था कि वह किस धर्म का अनुयायी है । पूर्व मे अपने धर्म को स्पष्ट करने के लिए आदमी को भोजन तथा सफ़ाई के सम्बन्ध मे अत्यन्त सूक्ष्म नियमो का पालन करना पड़ता था । रोम और यूनान मे तो इन चीज़ो के विषय मे सहनशीलता बरती जाती थी, किन्तु पूर्व के देशो में धार्मिक प्रतिषेधों को लगाने का एक उन्माद था । वहाँ के अन्तिम पतन में इन प्रतिषेधो का योग कम नही था । दो अलग-अलग धर्मो के लोग (मिस्री, फारसी, यहूदी या बाबुल के वासी) एक साथ खा या पी नही सकते थे, रोज़मर्रा का कोई भी काम एक साथ वे नही कर सकते थे, यहाँ तक कि एक दूसरे से वे बोल तक नही सकते थे । मनुष्य को मनुष्य से अलग कर दिया गया था । प्राच्य के पतन का एक बड़ा कारण यही था । ईसाई धर्म में इस प्रकार के अलग-अलग धार्मिक रीति-रिवाज नही थे । प्राचीन जगत् के हवन-होम तथा उसकी शोभा यात्राओं का भी उसके अन्दर कोई स्थान नहीं था । इस प्रकार, तमाम राष्ट्रीय धर्मो तथा उनके सामान्य धार्मिक अनुष्ठानों को अस्वीकार करता हुआ तथा बिना किसी भेद-भाव के तमाम लोगो को सम्बोधित करता हुआ ईसाई धर्म इस रूप में सामने आता है कि उसके पहला विश्व-धर्म बनने की सम्भावना पैदा हो जाती है । अपने नये सार्वभौमिक ईश्वर को लेकर यहूदी धर्म ने भी एक सार्वभौमिक धर्म बनने का रास्ता अपनाया था । किन्तु ईश्वर-भक्तों और ख़तना किये हुए लोगो के अन्दर इज़रायल की सन्तान हमेशा एक अभिजात वर्ग ही बनी रही थी; और, वास्तव में,

एक सार्वभौमिक धर्म बनने के पहले स्वयम् ईसाई धर्म को भी यहूदी ईसाइयों की उच्चता की इस धारणा का (जो जौन की तथाकथित दिव्य सन्देशों की पुस्तक में अब भी छायी हुई थी) अन्त करना पड़ा था। दूसरी तरफ़, अपने विशिष्ट प्राच्य कर्म-काण्डों को ज्यों का त्यो बनाये रखकर, इस्लाम ने ख़ुद अपने को पूर्व तथा उत्तरी अफ्रीका के उस क्षेत्र तक ही सीमित कर लिया था जिसे ख़ानाबदोश अरबों ने जीता और फिर आबाद किया था। इस क्षेत्र मे वह मुख्य धर्म बन सकता था, किन्तु पश्चिम मे ऐसा नहीं हो सकता था।

दूसरे, ईसाई धर्म ने एक ऐसे तार को छू दिया था जिसकी प्रतिध्वनि की गूँज का अगणित दिलो मे उठना अनिवार्य था। समय की दुष्टता तथा आम भौतिक और नैतिक कष्टों से सम्बन्धित तमाम शिकायतो के उत्तर में पाप सम्बन्धी ईसाई-धर्मी चेतना कहती थी : हाँ, यही स्थिति है और इसके अलावा वह कुछ हो नही सकती; अपराध तुम्हारा ही है, दुनिया की भ्रष्टता के लिए, और स्वयम् अपनी आन्तरिक भ्रष्टता के लिये तुम सब उत्तरदायी हो ! और ऐसा कौन था जो इससे इन्कार करता ? *Mea culpa* (सब क़सूर मेरा ही है) ! सबके दुख के लिए हर एक के उत्तरदायित्व की स्वीकृति की बात अकाट्य थी। इस स्वीकृति को ही उस आत्मिक मोक्ष को प्राप्त करने की प्रारम्भिक शर्त बना दिया गया था जिसकी उसी समय ईसाई धर्म ने घोषणा की थी। और आत्मिक मोक्ष प्राप्त करने की इस बात को इस तरह से प्रस्तुत किया गया था कि पुराने प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय के सदस्य उसे आसानी से हृदयगम कर सकते थे। रुष्ट हो गये देवता को तुष्ट करने के लिए प्रायश्चित करने का विचार सभी पुराने धर्मो में पाया जाता था; फिर मानव-जाति के तमाम अपराधों के लिए मध्यस्थ की आत्म-आहुति का विचार क्यो न सहज ही सबको मान्य हो जाता ? इसलिए, ईसाई धर्म ने इस सार्वत्रिक भावना को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया कि मनुष्य स्वयम् आम भ्रष्टाचार के लिए ज़िम्मेदार हैं। प्रत्येक के अपराध

की चेतना ही आम भ्रष्टाचार का रूप ले लेती है। साथ ही साथ, अपने धर्माध्यक्ष की आहुति के रूप में ईसाई धर्म ने भ्रष्ट दुनिया से आन्तरिक मोक्ष प्राप्त करने के चिर-प्रतीक्षित समाधान की भी सार्वभौमिक व्यवस्था कर दी। इससे चेतना को सान्त्वना प्राप्त हुई। इस भाँति, ईसाई धर्म ने एक विश्व-धर्म होने की अपनी क्षमता को फिर से प्रमाणित कर दिया। वास्तव मे, एक ऐसे धर्म के रूप में वह सामने आया जो उस वक़्त की दुनिया के सर्वथा अनुकूल था।

इसीलिए ऐसा हुआ कि अनगिनत नये धार्मिक विचारों के उस काल में जो हज़ारो धर्मोपदेशक और पैगम्बर मरुभूमि में घूमते-फिरते थे उनमें से केवल ईसाई धर्म के संस्थापकों को ही सफलता मिल सकी। धर्मों के इन संस्थापकों से न केवल फिलिस्तीन, वल्कि सम्पूर्ण पूर्व उन दिनो भरा हुआ था, और उनके वीच एक भयंकर संघर्ष चल रहा था जिसे सैद्धान्तिक अस्तित्व के लिए डारविनवादी संघर्ष की संज्ञा दी जा सकती है। मुख्यतया उन्ही तत्वों की वजह से, जिनका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, ईसाई धर्म की फतह हुई। विभिन्न सम्प्रदायों के आपसी संघर्षो तथा विधर्मी दुनिया के विरुद्ध उन सवके संघर्षो के दौरान, प्राकृतिक वरण की प्रक्रिया के द्वारा, ईसाई धर्म ने विश्व-धर्म के अपने स्वरूप का कैसा क्रमशः विकास किया था इसका ज्ञान पूरे व्योरे के साथ ईसाई धर्म-संघ (चर्च) की पहली तीन शताब्दियो के इतिहास मे मिलता है।

फ्रेडरिक एंगेल्स

दैवी सन्देश का ग्रन्थ

एक और विज्ञान है जिसके बारे मे, सिवा थोड़े से उदारतावादी उन धर्मशास्त्रज्ञों के जो अपनी शक्ति भर उसे छिपाये रखने की कोशिश करते रहते है, इस देश में किसी को लगभग कोई जानकारी नही है। यह विज्ञान बाइबिल (इंजील) की ऐतिहासिक तथा भाषा सम्बन्धी आलोचना का है। इसका सम्बन्ध पुरानी और नयी बाइबिल मे समाविष्ट विभिन्न रचनाओ के काल, उनकी उत्पत्ति तथा उनके ऐतिहासिक मूल्य की जाँच-पड़ताल से है।

यह विज्ञान एक तरह से शुद्ध रूप से जर्मन है। इसके अतिरिक्त, उसका जो भी थोड़ा-बहुत अश जर्मनी की सीमाओ से बाहर जा सका है वह वास्तव मे उसका सर्वश्रेष्ठ अश नही है। जो अंश बाहर गया है उसका सम्बन्ध सहिष्णुतावादी उस आलोचना से है जो इस बात पर गर्व करती है कि वह पक्षपात-रहित तथा पूर्ण है और, साथ ही साथ, ईसाई धर्मी भी है। ग्रन्थों मे जो कुछ सग्रहीत है वह एकदम वह तो नही है जो पवित्र आत्मा ने बताया था, किन्तु उसमे वे दैवी सन्देश अवश्य सन्निहित है जिन्हे मानवता की पवित्र आत्मा के माध्यम से व्यक्त किया गया था, इत्यादि। इस भाँति, तुबिन्जेन सम्प्रदाय[७७] के लोग (बेयर,

गफ़रोरर, आदि) हालैण्ड तथा स्विजरलैंड में बहुत लोकप्रिय हैं। इंगलैण्ड में भी वे लोकप्रिय है। और, जो लोग इनसे थोड़ा आगे जाने को तैयार हैं, वे स्ट्रॉस के अनुयायी है। प्रसिद्ध अर्नेस्ट रेनेन के ऊपर भी वही उदार, किन्तु सर्वथा अनैतिहासिक आत्मा छायी हुई है। अर्नेस्ट रेनन ने जर्मन आलोचकों के साहित्य की ही चोरी की है, किन्तु वह भी अच्छी तरह से नही। उसकी तमाम रचनाओं में सिवा प्रचलित विचारों की एक सौन्दर्यवादी भावुकता के तथा उस निर्जीव भाषा के जिसमें वे विचार लिपटे हुए है, उसका अपना कुछ नही है।

किन्तु, अर्नेस्ट रेनन ने एक अच्छी चीज़ कही है :

"जब आप की यह जानने की इच्छा हो कि ईसाई धर्म के प्रारम्भिक समुदाय ठीक किस प्रकार के थे, तो उनकी तुलना हमारे पादरियो की आजकल की धार्मिक परिषदो से आप न कीजियेगा। उनकी तुलना दरअसल अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ की स्थानीय शाखाओं से करना अधिक सही होगा।"

और यह सही है। ईसाई धर्म ने आम जनता को उसी तरह प्रभावित किया था जिस तरह कि आधुनिक समाजवाद आज करता है। उसका प्रभाव भिन्न-भिन्न प्रकार के मतावलम्बियों के रूप में फैला था। इसके अतिरिक्त, अलग-अलग व्यक्तियों के परस्पर-विरोधी विचारों के रूप में भी वह फैला था। इनमे से कुछ विचार अधिक स्पष्ट थे, कुछ अधिक उलझे हुए थे — अधिकांशतया वे उलझे हुए ही थे, किन्तु शासन-व्यवस्था के, "अधिकारी वर्ग" के वे सबके सब विरुद्ध थे।

उदाहरण के लिए, दैवी संदेश (सुसमाचार) के हमारे ग्रन्थ को देखिए। हम देखेंगे कि, सर्वाधिक अन्धकारपूर्ण तथा रहस्यपूर्ण होने के बजाय, सम्पूर्ण नयी इंजील (बाइबिल) का यह सबसे सरल तथा स्पष्ट ग्रन्थ है। इस समय पाठक से हम यही आग्रह करना चाहते हैं कि हम जो कुछ कह रहे हैं उसे वह मान ले—धीरे-धीरे हम उसे साबित कर देंगे। यह ग्रन्थ ईसा सन ६८, या जनवरी ६९ में लिखा गया था और,

इसलिए, यह न केवल नयी इंजील (बाइबिल) का, जिसकी तिथि दर-असल निश्चित है, एकमात्र ग्रन्थ है, बल्कि सबसे पुराना ग्रन्थ भी है। सन् ६८ में ईसाई धर्म का क्या रूप था इसे हम इस ग्रन्थ में उसी तरह साफ-साफ़ देख सकते है जिस तरह कि दर्पण में कोई चीज साफ दिखलाई देती है।

सबसे पहले तो तरह-तरह के धार्मिक सम्प्रदाय इसमें दिखलाई देते हैं। एशिया के सात धर्म-संघों (गिरजाघरों) के नाम जो सदेश इसमे दिये गये हैं उनमें कम से कम तीन धार्मिक सम्प्रदायों का उल्लेख है। इन सम्प्रदायो के विषय मे अन्यथा हमे कुछ भी नही मालूम। ये सम्प्रदाय निकोलाइवादियो, बालमवादियो के तथा एक स्त्री के अनुयाइयों के है जिसे यहाँ जेज़ेबेल के नाम से प्रस्तुत किया गया है। इन तीनों ही सम्प्र-दायों के विषय मे कहा गया है कि अपने अनुयाइयों को उन चीजो को खाने की अनुमति वे देते थे जो मूर्तियों के ऊपर चढाई जाती थी। उनके बारे मे यह भी कहा गया है कि वे व्यभिचार प्रेमी थे। यह विचित्र बात है कि प्रत्येक बडे क्रातिकारी आन्दोलन के समय "मुक्त प्रेम" का प्रश्न हमेशा सामने आ जाता है। कुछ लोगो के लिए उसका अर्थ क्रान्ति-कारी प्रगति, अर्थात् उन परम्परागत पुरानी बेडियों को तोड देना होता है जो अब अनावश्यक हो गयी है, कुछ दूसरे लोगो के लिए वह एक अच्छा सिद्धान्त होता है जिसकी आड़ मे पुरुष और स्त्री के हर प्रकार के मुक्त तथा साध्य सम्बन्धों को वे मजे में ढक लेते हैं। मालूम होता है कि यहाँ दूसरे किस्म के लोग, अधकचरे किस्म के लोग ही जल्दी हावी हो गये थे, क्योंकि "व्यभिचार" हमेशा "मूर्तियों को चढाई गयी वस्तुओ" के खाने के साथ जुडा रहता है। यहूदियों तथा ईसाइयों दोनो को ही ये चीजें सर्वथा निषिद्ध थी। किन्तु कभी-कभी इन चीजो को खाने से इन्कार करना जोखिमपूर्ण, अथवा, कम से कम, असुखद हो जा सकता था। इससे स्पष्ट रूप से प्रकट होता है कि जिन मुक्त प्रेमियो का उल्लेख किया गया है वे आम तौर से हर एक के दोस्त बनने को तैयार रहते

थे। वे और चाहे जो रहे हों, किन्तु उस धातु के नहीं बने थे जिसके शहीद बनते है।

हर अन्य महान् क्रान्तिकारी आन्दोलन की तरह ईसाई धर्म का भी निर्माण जनता ने किया था। उसका उदय फिलिस्तीन में हुआ था। यह कैसे हुआ था इसके बारे में हमको बिल्कुल जानकारी नही है। उसका उदय ऐसे समय हुआ था जबकि नये मत-मतान्तरों, नये धर्मो, और नये पैगम्बरों का सैकड़ो की तादाद मे जन्म हो रहा था। वास्तव मे, वह केवल एक ऐसा औसत है जिसका निर्माण इनमें से अधिक प्रगतिशील धार्मिक सम्प्रदायों के आपसी संघर्षण से अपने-आप हुआ था। बाद मे एलेक्ज़ेन्ड्रिया के यहूदी, फिलो के प्रमेयो (सूत्रों) को जोड़कर और फिर वैराग्यपूर्ण (स्टॉइक) प्रभावो का मजबूत पुट देकर उसे एक सिद्धान्त का रूप दे दिया गया। दरअसल, फिलो को अगर हम ईसाई धर्म का सैद्धान्तिक पिता कह सकते है, तो सिनेका उसका चाचा था। नयी इन्जील (New Testament) मे पूरे के पूरे अश ऐसे है जो लगते है कि सिनेका की रचनाओ से लगभग अक्षरश. नकल कर लिये गये हैं। दूसरी तरफ, परसियस की व्यगात्मक रचनाओ मे आप को ऐसे अंश देखने को मिलेंगे जिनके बारे में लगता है कि उन्हें नयी इंजील से, जो तब तक अलिखित ही थी, नकल कर लिया गया था। दैवी सन्देश के हमारे ग्रन्थ मे इन समस्त सैद्धान्तिक तत्वो का कही कोई चिन्ह तक नही दिखलायी देता। इसमे ईसाई धर्म को उसके बिल्कुल अमार्जित रूप मे देखा जा सकता था। इसमें हमारे लिए वह इसी रूप में सुरक्षित है। इसमें मतवादी केवल एक ही प्रमुख बात मिलती है : कि भक्तों को यीशु के बलिदान ने बचा लिया है। किन्तु कैसे, और क्यो ऐसा हुआ यह सर्वथा अस्पष्ट है। यहूदियों और विधर्मियो के उस पुराने विचार के अलावा इसमे और कुछ नही मिलता कि आवश्यक है कि ईश्वर को, अथवा, देवताओ को बलिदानों के द्वारा तुष्ट किया जाय। इसी विचार को ईसाई धर्म की इस विशिष्ट धारणा मे बदल दिया गया है कि यीशु की

मृत्यु एक ऐसा महान बलिदान है जो सदा के लिए सबके बलिदानों की पूर्ति कर देता है (वास्तव मे, ईसाई धर्म को इसी धारणा ने सार्वलौकिक धर्म बना दिया था)।

मूल पाप के बारे मे —कही कोई चिह्न नही मिलता। त्रिगुट का (पिता, पुत्र तथा पवित्र आत्मा के त्रय की अभिव्यक्ति का) भी उसमें कोई उल्लेख नही है। यीशु "मेमना" है, किन्तु वे ईश्वराधीन है। वास्तव मे, एक अंश मे [१५ (३)] उन्हे मोजेज की बराबरी पर रक्खा गया है। एक पवित्र आत्मा के स्थान पर उसमें "ईश्वर की सात आत्माएँ" मिलती है। (३ (१), तथा ४ (५))। जिन सन्तों (शहीदो) की हत्या कर कर दी गयी है वे बदले के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते हुए कहते है : "हे प्रभु, जो लोग पृथ्वी पर निवास करते है उनका तू कब तक फैसला नही करेगा और कब तक हमारे ख़ून का बदला उनसे नही लेगा ?" [६—(१०)]। बदले के इस उद्गार को, बाद मे, ईसाई धर्म की नैतिकता की सैद्धान्तिक सहिता मे से सावधानी से काट दिया गया था, किन्तु, जहाँ तक व्यवहार का प्रश्न है, विधर्मियो के ऊपर विजयी होते ही ईसाइयों ने पूरे प्रतिशोध के साथ इसे कार्यान्वित किया था।

सच बात तो यह है कि ईसाई धर्म यहूदी धर्म के केवल एक सम्प्रदाय के रूप मे सामने आता है। उदाहरण के लिए, सात गिरजाघरों के नाम भेजे गये सन्देशो मे कहा गया है कि : "मै उनके पाखण्ड को जानता हूँ जो कहते है कि वे (ईसाई नही) यहूदी है, वे और कुछ नही है, सिर्फ शैतान के पुजारी हैं" [२—(६)]। फिर देखिये, ३—(६) में कहा गया है : "शैतान के वे पुजारी जो यह कहते है कि वे यहूदी है, किन्तु वे ऐसे कुछ नही है।" इस प्रकार, ईसवी सन् के ६९वें वर्ष में, हमारे लेखक को इस बात का किन्चित् भी ख़्याल नही था कि वह धार्मिक विकास के एक नये चरण का प्रतिनिधित्व कर रहा था, एक ऐसे चरण का जो, आगे चलकर, क्रान्ति के महानतम तत्वो मे से एक बन जाने

वाला था। इसी प्रकार, उस समय भी, जब सन्त लोग ईश्वर के सिंहासन के सम्मुख उपस्थित होते है, शुरू-शुरू मे हमे १ लाख ४४ हजार यहूदी देखने को मिलते हैं। इनमें १२ कबीलो के १२-१२ हजार आदमी है। सिर्फ़ इनके बाद ही उन विधर्मियों को अन्दर आने की अनुमति दी जाती है जो यहूदी धर्म के इस नये रूप को मानने लगे हैं।

नयी इंजील के सबसे पुराने, और एकमात्र, ग्रन्थ में चित्रित ईसाई धर्म का सन् ६८ मे यही रूप था। इसकी प्रामाणिकता के विषय मे कोई विवाद नही हो सकता। ग्रन्थ का लेखक कौन था, इसे हम नही जानते। वह अपने को जौन कहता है। वह अपने को "देवदूत" जौन बताने की भी चेष्टा नही करता। ऐसा वह कर सकता था, क्योकि "नये येरूशलम्" की नीवो मे "मेमने के १२ देवदूतो के नाम" [३१—(१४)] मौजूद है। इसलिए, जब उसने इस ग्रंथ को लिखा था तब वे मर चुके होंगे। वह एक यहूदी था यह बात उसकी यूनानी भाषा मे हिब्रू (यहूदी) भाषा के प्रभाव से स्पष्ट है। इन प्रभावो की उसमे भरमार है। उसकी भाषा में व्याकरण की जो गल्तियाँ मिलती है वे नयी इजील के दूसरे ग्रन्थो मे मिलने वाली गल्तियों से भी बहुत ज़्यादा है। जौन की तथाकथित दिव्य पुस्तक (बाइबिल), जौन के धर्म पत्रों, तथा इस ग्रन्थ के लेखक कम से कम तीन भिन्न-भिन्न व्यक्ति थे — इसे अगर उनमें संग्रहीत, एक दूसरे के पूर्णतया विरोधी सिद्धान्तों ने नही प्रमाणित कर दिया है, तो उनकी भाषा स्पष्ट रूप से इस बात को प्रमाणित कर देती है।

दैवी सन्देश के लगभग पूरे ग्रन्थ में ईश्वरी-ज्ञान सम्बन्धी जो झलकियाँ भरी हुई है उनमे से अधिकाश को पुरानी इजील के प्राचीन पैग़म्बरो तथा बाद के उनके नक्कालो की रचनाओं से अक्षरश. उतार लिया गया है। उसमे डेनियल के ग्रन्थ (जो लगभग ईसा से १६० वर्ष पहले लिखा गया था और जिसमे ऐसी चीजो की भविष्यवाणी की गयी थी जो शताब्दियो पहले घट चुकी थी) से लेकर "हेनोक के ग्रन्थ" तक के नक्कालो की रचनाओ से चीजे ज्यों की त्यो ले ली गयी है। "हेनोक का ग्रन्थ" यूनानी

भाषा में लिखा गया ईश्वर-ज्ञान सम्बन्धी एक पूरा गड़बड़झाला है। उसकी रचना ईसवी सन् के आरम्भ से बहुत पहले नही हुई थी। मूल कृति, यहाँ तक कि चुराये हुए अंशो की उसकी व्यवस्था भी, बहुत ही कच्ची है। प्रोफेसर फर्डीनेन्ड वेनरी ने पूरे सन्दर्भ के साथ, प्रकरण और अंश बताते हुए, अपने भाषणो मे यह स्पष्ट कर दिया है कि अपने ढकोसले-भरे ईश्वर-ज्ञान के हर भाग को हमारे लेखक ने कहाँ से चुराया है। ये भाषण प्रोफेसर फर्डीनेन्ड वेनरी ने बर्लिन विश्वविद्यालय मे १८४१ मे दिये थे। मैने यहाँ पर जो लिखा है उसके लिए मैं उनके उन्ही भाषणों का ऋणी हूँ। अस्तु अपने "जौन" की तमाम सनको की तह मे जाना अनावश्यक है। अच्छा यही होगा कि हम फौरन उस मुख्य चीज़ को ले लें जो इस ग्रन्थ के, जो कि निश्चय ही विलक्षण है, रहस्य का उद्घाटन कर देती है।

१८०० वर्ष बीत जाने के बाद भी "जौन" के तमाम रूढ़िवादी भाष्यकार यही आशा लगाये बैठे है कि उसकी भविष्यवाणियाँ पूरी होने वाली है; किन्तु, इन सब की बातो के एकदम विपरीत, "जौन" स्वयम् इस बात को कहता कभी नही थकता कि, "समय आ गया है, यह सब जल्दी ही होगा।" जिस सकट की उसने भविष्यवाणी की थी उसके सम्बन्ध मे तो खास तौर से वह यही बात कहता है। स्पष्ट है कि उस सकट को वह जल्दी ही देखने की आशा करता है।

इस सकट का सम्बन्ध उस महान् अन्तिम युद्ध से है जो ईश्वर और "यीशु-विरोधी" के बीच होने वाला है। यह "यीशु-विरोधी" नाम उसे (नीरो को — अनु०) दूसरो ने दे दिया था। इस विषय मे १३वें और १७वें अध्यायो का प्रमाण निर्णायक है। तमाम अनावश्यक अलंकारो को छोड दिया जाय तो "जौन" को समुद्र के अन्दर से एक जानवर निकलता दिखलाई देता है। इस जानवर के सात सिर और दस सीग हैं (सीगो से हमारा कोई वास्ता नही हैं)। "और मैंने उसके एक सिर को घायल देखा — लगता था कि उसे उसको मारने के लिए घायल कर

दिया गया था ; और उसका वह घातक घाव भर गया।" इस जानवर का पृथ्वी पर, ईश्वर और मेमने के विरुद्ध, ४२ महीनों तक (पवित्र सात वर्षों के आधे काल तक) पूर्ण आधिपत्य होने वाला था। इस काल में तमाम मनुष्यो को इस बात के लिए मजबूर कर दिया गया था कि अपने दाहिने हाथ मे, या अपने माथे पर, वे उस जानवर के चिह्न, अथवा उसके नाम की संख्या को धारण करे। "यही ज्ञान है। जिसमे समझ हो वह जानवर की सख्या को गिने; क्योंकि वह एक मनुष्य की संख्या है, और उसकी संख्या छः सौ छाछठ है।"

दूसरी शताब्दी मे भी इरेनियस इस बात को जानता था कि उस सिर का सम्बंध जो घायल था और फिर भर गया था — सम्राट् नीरो से था। वह पहला आदमी था जिसने ईसाइयों के ऊपर भयकर दमन किया था। उसकी मृत्यु के समय एक अफवाह फैल गयी थी कि वह मरा नही था, सिर्फ घायल हो गया था; एक दिन वह फिर प्रकट हो जायगा और सारी दुनिया मे आतक का राज्य क़ायम कर देगा। अकाइया (पुराने यूनान—अनु०) और एशिया मे खास तौर से यह अफवाह फैल गयी थी [टेसीटस, एन. ६-(२२)]। साथ ही साथ इरेनियस एक और बहुत पुराने पाठ को जानता था जिसके अनुसार नाम की सख्या छः सौ छाछठ के बजाय छः सौ सोलह होती थी।

१२वें अध्याय मे सात सिरो वाला जानवर फिर प्रकट हो जाता है। इस बार उसके ऊपर वह प्रसिद्ध लाल महिला भी सवार है जिसका ललित वर्णन पाठक स्वयम् पुस्तक में पढ सकते है। इस अध्याय मे जौन को एक फ़रिश्ता बताता है कि :

"जिस पशु को तूने देखा था — वह था, और नही है ...... सात सिर वे सात पर्वत है जिन पर वह स्त्री बैठी हुई है, और सात बादशाह हैं; पांच खत्म हो चुके है, एक मौजूद है, और दूसरा अभी तक आया नहीं है, और जब वह आयेगा तो वह थोड़े समय तक बना रहेगा। और जो पशु था, और अब नही है, वह भी आठवां है, और उन्हीं

सात के वर्ग का है ...... और वह स्त्री जिसे तूने देखा था वह महान् नगरी है जो पृथ्वी के सम्राटों पर राज्य करती है।"

यहाँ दो स्पष्ट वक्तव्य दिखलाई देते है: (१) लाल महिला रोम है, वह महान् नगरी है जो पृथ्वी के सम्राटों पर राज्य करती है; (२) जिस समय यह पुस्तक लिखी गयी उस समय छठवें रोमन सम्राट का शासन था, उसके वाद थोड़े समय राज्य करने के लिए एक दूसरा सम्राट आयेगा; और फिर वह लौट आयेगा जो "सात में से एक है", जो घायल हो गया था किन्तु अव अच्छा हो गया है, और जिसका नाम उस रहस्यपूर्ण सख्या मे मौजूद है। और इरेनियस जानता था कि यह नीरो ही है।

ऑगस्टस से गिनना हम शुरू करे तो ऑगस्टस, टाईवेरियस, कालीगुला, क्लाडियस और पाचवें नम्वर पर नीरो है। छठा, जो मौजूद है, गाल्वा है। इसका सिहासनारूढ होना रोम की सेनाओं के लिए, खासतौर से गॉल में, विद्रोह का सिगनल (सकेत) वन गया था। इन विद्रोही सेनाओं का नेतृत्व गाल्बा का उत्तराधिकारी, ओथो कर रहा था। इस भाँति, स्पष्ट है कि, हमारे ग्रन्थ की रचना गाल्वा के काल में की गयी होगी। गाल्वा का शासन ९ जून, ६८ से लेकर १५ जनवरी, ६९ तक चला था। और यह ग्रन्थ भविष्यवाणी करता है कि नीरो फौरन ही वापिस आने वाला है।

अव हम आखिरी सवूत को — यानी सख्या को लें। इसकी खोज भी फर्डीनेन्ड वेनरी ने ही की है। उसके वाद से वैज्ञानिक जगत् मे इसका किसी ने खण्डन नही किया।

हमारे सन् से लगभग ३०० वर्ष पहले से ही यहूदियों ने अपने अक्षरो का संख्याओ के प्रतीको के रूप मे प्रयोग करना आरम्भ कर दिया था। कल्पनाशील रब्वियों (यहूदी पुरोहितों) को लगा था कि संख्याओ के इन प्रतीको के रूप मे रहस्यवादी भाष्य करने का एक नया तरीका, या एक नयी गुप्त विद्या उनके हाथ आ लगी थी। गुप्त शब्दों को उन

अंकों के द्वारा व्यक्त किया जाता था जो उनके अक्षरों के अंकगत मूल्यों के जोड़ से प्राप्त होते थे। इन नये विज्ञान को उन्होंने *gematriah (geometry* या रेखागणित) की संज्ञा दी थी। हमारा "जौन" यहाँ पर इसी विज्ञान का इस्तेमाल करता है। अब हमें साबित करना है कि : (१) बतायी गयी संख्या मे एक आदमी का नाम है, और यह आदमी नीरो है; तथा (२) जो हल पेश किया गया है वह छः सौ छाछठ तथा छः सौ सोलह दोनो के सम्बन्ध मे सही है। हम हिब्रू भाषा के अक्षरों और उनके मूल्यो को देखें—

נ (nun)		n = 50	ק (keph)	k = 100
ר (resh)		r = 200	ס (samech)	s = 60
ו (vau)	for	o = 6	ר (resh)	r = 200
ן (nun)		n = 50		

नीरोन केसर, सम्राट नीरोन, यूनानी नेरोन कैसर। अब, यूनानी हिज्जे के स्थान मे लातिनी नीरो सीज़र को अगर हम हिब्रू अक्षरो में बदल दें, तो *Neron* के अन्त से *nun* गायब हो जाता है और, उसके साथ-साथ, पचास का मूल्य भी गायब हो जाता है। इससे हम छः सौ सोलह के उस दूसरे पुराने पाठ पर पहुँच जाते हैं। इससे अधिक और किस प्रमाण की अपेक्षा की जा सकती है ! *

तब फिर, रहस्यपूर्ण ग्रन्थ अब बिल्कुल साफ हो गया ! "जौन" भविष्यवाणी करते हैं कि सन् ७० के आस-पास नीरो फिर लौट आयेगा और उसके आतंकपूर्ण शासन की फिर से शुरुआत हो जायगी। यह शासन ४२ महीने, या १२६० दिन चलेगा। इस अवधि के बाद ईश्वर का अवतार होगा, वह यीशु-विरोधी नीरो को पराजित कर देंगे, महान्

* नाम की ऊपर दी हुई हिज्जे, द्वितीय nun के साथ और उसके बिना—दोनों रूपों में—तालमद (यहूदी संहिता —अनु०) में पायी जाती है। इसलिए प्रामाणिक है।

नगरी में आग लगाकर उसे नष्ट कर देंगे, और उस शैतान को हज़ार वर्ष के लिए जकड़ कर बांध देंगे। ईसा मसीह के शासन काल का (स्वर्ग युग का) श्रीगणेश हो जायेगा, आदि-आदि । उन अज्ञानी व्यक्तियों को छोड़कर जो अब भी अन्तिम निर्णय के दिन का हिसाब लगाने की कोशिश करते हैं, इस सब मे अब और किसी की दिलचस्पी नहीं रह गयी। परन्तु, आदिम-कालीन ईसाई धर्म की एक प्रामाणिक तस्वीर प्रस्तुत करने वाली रचना के रूप मे—ऐसी रचना के रूप मे जिसकी खुद उन्ही में से एक ने सृष्टि की थी — यह ग्रन्थ शेष सम्पूर्ण नयी इंजील (बाइबिल) से भी अधिक महत्वपूर्ण है ।

फ्रेडरिक एंगेल्स

लुडविग फ़ायरबाख़ और शास्त्रीय जर्मन दर्शन का अन्त

प्रस्तावना

१८५९ मे वर्लिन से प्रकाशित अपनी रचना, राजनीतिक अर्थशास्त्र की आलोचना में अंशदान की भूमिका मे कार्ल मार्क्स ने वतलाया है कि किस तरह १८४५ के वर्ष मे हम दोनों ने "मिलकर" व्रसल्स मे उस "विरोध को विस्तार से स्पष्ट करने का कार्य शुरू किया था जो हमारे दृष्टिकोण" के वीच —यानी इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या के उस दृष्टिकोण के वीच जिसका मुख्यतया मार्क्स ने विकास किया था— "और जर्मन दर्शन के भाववादी दृष्टिकोण के वीच" है। "इस कार्य के द्वारा दरअसल हम अपने पुराने दार्शनिक विश्वासों के साथ अपना हिसाव चुकता कर लेना चाहते थे। इस सकल्प को हीगेल के वाद के दर्शन की आलोचना के रूप मे पूरा किया गया था। दो वड़े-वड़े खण्डों में विभक्त इस रचना की पांडुलिपि वेस्टफेलिया मे, जहाँ से वह प्रकाशित होने वाली थी, वहुत पहले ही पहुँच गयी थी। तभी हमे यह खबर मिली कि वदली हुई परिस्थितियों मे उसका प्रकाशन नही हो सकेगा। तब हमने उस पांडुलिपि को चूहों को सौंप दिया ताकि उसे कुतर कर

वे अपनी आलोचना पूरी कर लें। ऐसा करने मे हमे कोई परेशानी भी नही हुई क्योंकि अपने मुख्य उद्देश्य को —अपने दिमाग की सफाई करने के उद्देश्य को—हमने प्राप्त कर लिया था।"७८

तब से ४० से अधिक वर्ष बीत गये है और मार्क्स की मृत्यु हो गयी है। हम दोनो मे से किसी को इस विषय पर फिर लिखने का मौका नही मिला। हीगेल के साथ अपने सम्बन्ध के विषय में भिन्न-भिन्न स्थानों पर अपने विचार हमने व्यक्त किये है, किन्तु कही भी उनकी पूरी, सुसम्बद्ध व्याख्या नही की है। और फायरबाख के बारे में, जो कि अनेक मानो मे हीगेलवादी दर्शन तथा हमारी धारणा के बीच की एक कडी है, तो फिर कभी कुछ लिखने का मौका ही नही मिला।

इस बीच मार्क्सवादी विश्व-दर्शन के प्रतिनिधि जर्मनी तथा यूरोप की सीमाओ के बाहर, बहुत दूर-दूर तक, तथा ससार की समस्त साहित्यिक भाषाओ मे पैदा हो गये है। दूसरी तरफ, विदेशो मे, विशेष तौर से इगलिस्तान और स्कैन्डीनेविया मे, प्राचीन जर्मन दर्शन का एक प्रकार से पुनर्जन्म हो रहा है, और स्वयम् जर्मनी मे भी ऐसा लगता है कि दर्शन के नाम पर वहाँ के विश्वविद्यालयो मे जो निस्सार सर्वदर्शनसार (या भ्रमरवाद—अनु०) लोगो के सामने रक्खा जाता है उससे वे ऊब रहे हैं।

इन परिस्थितियो मे, मुझे लगता था कि हीगेलवादी दर्शन के साथ हमारा क्या सम्बन्ध रहा है, हमने उसमे से क्या लिया था और कहाँ हम उससे अलग हो गये थे—इस चीज़ को संक्षेप मे, सुसम्बद्ध रूप से बतलाना अधिकाधिक आवश्यक हो गया है। हमारी मानसिक उथल-पुथल के उन दिनो मे हीगेल के बाद के दार्शनिको मे सबसे अधिक असर हमारे ऊपर फ़ायरबाख का ही पडा था; इसलिए उनके प्रभाव की पूर्ण आभार-स्वीकृति प्रकट करना भी मुझे लगता था कि एक अलिखित ऋण है जो मुझे चुकाना था। इसलिए, न्यू जीट के सम्पादको ने जब मुझसे आग्रह किया कि फायरबाख पर स्टॉर्क की पुस्तक की मैं समालोचना कर दूं तो इस अवसर का मैंने खुशी से स्वागत किया। मेरा लेख उक्त पत्र के १८८६

के चौथे और पांचवे अंकों में प्रकाशित हुआ था। यहां पर एक अलग प्रकाशन के रूप में उसे संशोधित रूप में दिया जा रहा है।

इन पंक्तियों को प्रेस भेजने से पहले १८४५-४६ की पुरानी पांडु-लिपि को ढूंढ-ढांढ़ कर उस पर एक बार फिर मैं नजर डाल गया हूँ। फ़ायरबाख से सम्बन्धित अंश उसमे पूरा नहीं किया गया था। जो भाग पूरा किया गया था उसमे इतिहास की भौतिकवादी धारणा की व्याख्या दी गयी थी। इससे मालूम होता है कि उस समय तक आर्थिक इतिहास का हमारा ज्ञान कितना अधूरा था। फ़ायरबाख के सिद्धान्त की उसमें कोई आलोचना नही है। इसलिए, हमारे वर्तमान उद्देश्य के लिए वह बेकार थी। इसके विपरीत, मार्क्स की नोटबुक मे मुझे फ़ायरबाख के सम्बन्ध मे उनके ग्यारह थीसिस (विचारो के बिन्दु) मिल गये है। उन्हें यहाँ एक परिशिष्ट के रूप मे दिया जा रहा है। ये नोट्स (टिप्पणियाँ) है जिन्हे जल्दी-जल्दी मे इस विचार के साथ लिख लिया गया था कि बाद मे कभी सविस्तार उनकी व्याख्या की जायगी। वे प्रकाशन के लिए कदापि नही लिखे गये थे। परन्तु एक ऐसी प्रथम दस्तावेज के रूप मे, जिसमे नये विश्व-दृष्टिकोण का ओजस्वी अंकुर मौजूद है, वे अत्यन्त मूल्यवान है।

लंदन, २१ फरवरी, १८८८ फ्रेडरिक एंगेल्स

लुडविग फ़ायरबाख़ तथा शास्त्रीय जर्मन दर्शन का अन्त

१

हमारे सामने जो पुस्तक* है वह हमे एक ऐसे काल में वापिस ले जाती है जो, समय की दृष्टि से, यद्यपि एक पीढ़ी से अधिक पुराना नही हुआ, किन्तु जर्मनी की वर्तमान पीढी के लिए इतना अपरिचित हो गया है कि ऐसा लगता है जैसे कि उसे बीते कम से कम सौ वर्ष हो गये हैं। और यह तब जब कि वह काल १८४८ की क्रान्ति के लिए जर्मनी की तैयारी का काल था। तब से अब तक हमारे देश मे जो कुछ हुआ है वह सब १८४८ का ही आगे का सिलसिला रहा है, उस क्रान्ति की अन्तिम इच्छा तथा वसीयत को पूरा करने का ही सिलसिला रहा है।

जिस तरह १८वी शताब्दी मे फ्रान्स मे दार्शनिक क्रान्ति ने राजनीतिक ह्रास को लाने मे मदद दी थी, उसी तरह १९वी शताब्दी मे जर्मनी मे हुआ है। परन्तु ये दोनो चीजें एक दूसरे से कितनी भिन्न मालूम पडती है! फ्रान्सीसी तमाम सरकारी विज्ञान से खुले आम लडाई कर रहे थे, चर्च (ईसाई धर्म-सघ) तथा अक्सर राजसत्ता के भी विरुद्ध वे लडाई करते थे। उनकी रचनाएँ बाहर हौलैण्ड अथवा इंगलैण्ड में

---

* "लुडविग फ़ायरबाख़," लेखक सी० एन० स्टॉर्क, पी० एच० डी०, स्टुटगार्ट फर्डि, एनके। १८८५। [एंगेल्स की टिप्पणी]

प्रकाशित होती थी, और बहुधा उन्हें खुद इस बात का खतरा रहता था कि वैस्टील (फ्रान्स के कुख्यात जेल में) में क़ैद कर दिये जायँ। दूसरी तरफ, जर्मन लोग प्रोफेसर होते थे, युवकों को शिक्षा देने के लिए राज्य की ओर से उनकी नियुक्ति होती थी। उनकी रचनाएँ स्वीकृत पाठ्य-पुस्तकों की तरह पढाई जाती थी। और, हीगेल की दार्शनिक प्रणाली को — जो जर्मनो के दार्शनिक विकास की उच्चतम प्रणाली थी — उसे तो एक तरह से प्रशियाई राज्य के शाही दर्शन के पद पर प्रतिष्ठित कर दिया गया था ! क्या यह सम्भव था कि इन प्रोफेसरों के पीछे, उनके दुर्बोध, विद्याडम्बरी शब्दो के पीछे, उनके भारी-भरकम, उकता देने वाले वाक्यो के पीछे कोई क्रान्ति छिपी हो ? क्या ठीक वही लोग जिन्हें उस समय क्रान्ति के प्रतिनिधि माना जाता था, यानी उदारवादी लोग ही, दिमाग को व्यर्थ मे उलझाने वाले इस दर्शन के सबसे तीखे विरोधी नही थे ? किन्तु जिस चीज़ को न सरकार देख पायी थी और न उदारवादियों ने देखा था उसे कम से कम एक व्यक्ति ऐसा था जिसने १८३३ मे ही देख लिया था। यह व्यक्ति हेनरिख हाइने[७१] था, दूसरा कोई नही।

हम एक उदाहरण ले ले। किसी भी दार्शनिक कथन को सकुचित दृष्टिकोण वाली सरकारो की ओर से इतनी कृतज्ञता नही प्राप्त हुई है और न उस पर उतने ही सकुचित मस्तिष्क वाले उदारपंथियो ने इतना रोप प्रकट किया हैं जितना कि हीगेल की इस प्रसिद्ध उक्ति पर उन्होने किया है : "जो भी वास्तविक है वह बुद्धि-संगत है; और जो बुद्धि-सगत है वह वास्तविक है।" यथार्थ मे यह मौजूदा व्यवस्था का समर्थन था; तत्कालीन निरकुशशाही, पुलिसवादी सरकार, कालकोठरियो की कार्र-वाइयों और सेन्सर की हरकतो का दार्शनिक समर्थन था। फ्रेडरिक विलियम तृतीय ने इस कथन को इसी रूप में समझा था और उसकी प्रजा ने भी उसको इसी तरह समझा था। परन्तु, हीगेल के अनुसार, ऐसा नही है कि हर चीज़ जो मौजूद है वह बिना और किसी शर्त के वास्तविक भी है। हीगेल के दृष्टिकोण मे केवल उसी चीज को वास्तविक की सज्ञा

से विभूषित किया जा सकता है जो साथ ही साथ आवश्यक भी है : "अपने विकास-क्रम मे वास्तविकता प्रमाणित कर देती है कि वह आवश्यक है।" इसलिए जरूरी नही है कि गवर्नमेन्ट का कोई विशेष काम बिना और किसी शर्त के वास्तविक मान लिया जाय। स्वयम् हीगेल ने "एक टैक्स के क़ानून" की मिसाल दी है। परन्तु, जो चीज़ आवश्यक है वह अन्त मे बुद्धि-सगत भी सिद्ध हो जाती है। इस चीज को जब उस समय के प्रशियाई राज्य पर लागू किया जाता है, तो हीगेलवादी कथन का मतलब केवल यह होता है : यह राजसत्ता उसी हद तक बुद्धि-सगत है, विवेक-पूर्ण है, जिस हद तक कि वह आवश्यक है। और, इसके बावजूद, अगर हमे वह अभिशाप की तरह लगती है तथा, अपने अनिष्टकारी चरित्र के बावजूद भी, कायम है तो सरकार के अनिष्टकारी स्वरूप को इस आधार पर आवश्यक करार दे दिया जाता है और सही समझाया जाता है कि उसकी जिम्मेदारी उसकी प्रजा पर है जिसका चरित्र खुद अनिष्ट-पूर्ण है। उस जमाने के प्रशियावासियो को वैसी ही सरकार मिली थी जैसी के वे अधिकारी थे !

परन्तु, हीगेल के अनुसार, वास्तविकता कोई ऐसा गुण नही है जो किसी भी सामाजिक अथवा राजनीतिक अवस्था के ऊपर हर हालत में और हर समय थोपा जा सके। बात इसकी उल्टी ही है। रोमन प्रजातंत्र वास्तविक था, किन्तु वह रोमन साम्राज्य भी वास्तविक था जिसने उसे उखाड़ कर स्वयम् उसकी जगह ले ली थी ! १७८९ मे फ्रान्सीसी राज-तंत्र इतना अवास्तविक बन गया था अर्थात् उसकी आवश्यकता पूरी तरह इस प्रकार ख़त्म हो गयी थी, वह इस प्रकार असंगत बन गया था, कि महान् फ्रान्सीसी क्रान्ति के लिए उसका अन्त करना आवश्यक हो गया था ! इस क्रान्ति के बारे मे हीगेल हमेशा अधिक से अधिक उत्साह से बात करते है। इस प्रकार, यहाँ पर राजतंत्र अवास्तविक था और क्रान्ति वास्तविक थी। और, इसी भाँति, विकास-क्रम मे, पहले जो सब वास्तविक था वह अवास्तविक बन जाता है, अपनी आवश्यकता को

जिन्दा रहने के अपने अधिकार को, अपनी युक्तता को काल-क्रम में वह खो देता है। और, मरणासन्न वास्तविकता के स्थान पर एक नवीन, विकास की क्षमता रखने वाली आवश्यकता का उदय होता है। —अगर पुराने में इस वात की अक़्ल होती है कि विना लड़ाई-झगड़ा के ही वह मर जाय तो यह कार्य शान्तिपूर्वक हो जाता है; अगर वह इस आवश्यकता का विरोध करता है तो उसे जोर-जवरदस्ती से पूरा किया जाता है। इस प्रकार, स्वयम् हीगेलवादी द्वन्द्ववाद के माध्यम से हीगेलवादी स्थापना अपने विरोधी तत्व में वदल जाती है: मानव इतिहास के क्षेत्र मे वह सव जो वास्तविक है कालान्तर मे युक्ति-विहीन वन जाता है, इसलिए युक्तिहीन वन जाना उसके प्रारब्ध मे ही लिखा रहता है, प्रारम्भ से ही उस पर युक्तिहीनता का अभिशाप लगा रहता है; और हर चीज जो मनुष्यों के मस्तिष्कों मे युक्तिसगत है वह, मौजूदा ऊपरी वास्तविकता के चाहे जितनी विपरीत हो, अन्ततः वास्तविक होकर रहती है। चिन्तन की हीगेलवादी पद्धति के समस्त नियमों के अनुसार, यह स्थापना कि हर चीज जो वास्तविक है युक्ति-सगत है इस दूसरी स्थापना का रूप ले लेती है: हर चीज़ जिसका अस्तित्व है विनाश की पात्र है।

किन्तु ठीक इसी चीज़ में तो हीगेलवादी दर्शन का वास्तविक महत्व तथा उसका क्रान्तिकारी स्वरूप निहित है (यहाँ, काण्ट के वाद से होने वाली पूरी प्रगति के अन्त के रूप में, हम केवल उसके इसी पक्ष तक अपने को सीमित रखेगे)। मानव चिन्तन तथा क्रियाशीलता की समस्त उपलब्धियों की पूर्णता की वात पर हीगेलवादी दर्शन ने सांघातिक प्रहार किया और इस कल्पना को हमेशा के लिए खत्म कर दिया। सत्य, जिसका संज्ञान प्राप्त करना दर्शन का कार्य है, हीगेल के हाथों में आधिकारिक अपने-आप मे पूर्ण वक्तव्यों का ऐसा कोई योग नही रह गया था जिसे एक वार जान लेने के वाद वस रटकर याद कर लेना ही काफ़ी है। अव से सत्य को संज्ञान की क्रिया के अन्तर्गत, विज्ञान के लम्बे ऐतिहासिक उस विकास-क्रम के अन्तर्गत ही प्राप्त किया जा सकता था, जो सदा

ज्ञान के निम्नतर स्तरो से अधिकाधिक उच्च स्तरो की ओर बढता जाता है। किन्तु यह विकास-क्रम ऐसे बिन्दु पर कभी नही पहुँच पाता जिस पर पहुँच कर वह यह कह सके कि तथाकथित पूर्ण (या परम) सत्य का पता उसने लगा लिया है और अब वह और आगे नही जा सकता। वह ऐसे बिन्दु पर कभी नही पहुँच पाता जिस पर पहुँच कर, अपने हाथो को मोड़कर उस परम सत्य को, जिसे उसने प्राप्त कर लिया है, आश्चर्य-भरी दृष्टि से निहारते रहने के अलावा उसके पास और कुछ करने को न रह जाय। और जो बात दार्शनिक ज्ञान के सम्बन्ध में सही है वह हर अन्य प्रकार के ज्ञान के सम्बन्ध मे भी सही है। व्यावहारिक कार्यों के सम्बन्ध मे भी वही सही है। जिस प्रकार कि ज्ञान मानवता की किसी पूर्ण, आदर्श अवस्था मे अपनी पूर्ण परिणति पर नही पहुँच पाता, उसी प्रकार इतिहास का भी कभी अन्त नही होता। पूर्ण (अनिन्द्य) समाज, पूर्ण (अनिन्द्य) "राजसत्ता," ऐसी वस्तुएँ है जिनका केवल कल्पना मे ही अस्तित्व हो सकता है। इसके विपरीत, समस्त क्रमिक ऐतिहासिक व्यवस्थाएँ निम्नतर से उच्चतर स्तर की दिशा मे मानव समाज के विकास के अन्तहीन क्रम की मात्र क्षणिक अवस्थाएँ है। प्रत्येक अवस्था आवश्यक है, और इसलिए उस समय के लिए तथा उन परिस्थितियो मे, जिनसे वह उत्पन्न हुई है, वह सही होती है। परन्तु उन नयी, उच्चतर परि-स्थितियो के सम्मुख, जो स्वयम् उसके गर्भ मे क्रमशः विकसित हो जाती हैं, वह अपनी उपयोगिता तथा औचित्य को खो बैठती है। उसका स्थान अनिवार्य रूप से एक उच्चतर अवस्था ले लेती है। फिर इसकी बारी आने पर यह अवस्था भी क्षय-ग्रस्त हो जाती है और मिट जाती है। जिस प्रकार बड़े पैमाने के उद्योग-धन्धों, प्रतियोगिता, तथा विश्व-व्यापार की स्थापना करके पूंजीपति वर्ग तमाम स्थायी, समय द्वारा प्रतिष्ठित सस्थाओं का अन्त अमल मे कर देता है, उसी प्रकार यह द्वन्द्वात्मक दर्शन अन्तिम, पूर्ण (परम) सत्य की तमाम धारणाओ और उन पर आधा-रित मानवता की पूर्ण अवस्थाओं की बात को खत्म कर देता है। इसके

(द्वन्द्वात्मक दर्शन के) लिए कोई भी वस्तु अन्तिम नही है, पूर्ण नही है, पवित्र नहीं है। यह बताता है कि प्रत्येक वस्तु क्षण-भंगुर है, प्रत्येक वस्तु का आन्तरिक स्वरूप क्षण-भंगुर है। निर्माण और निर्वाण की अनवरत प्रक्रिया के अतिरिक्त, निम्नतर से उच्चतर स्तर की ओर अन्तहीन प्रगति की क्रिया के अतिरिक्त और कोई चीज़ इसकी दृष्टि मे चिरस्थायी नही है। और स्वयम् द्वन्द्वात्मक दर्शन भी चिन्तनशील मस्तिष्क के अन्दर मात्र इस क्रिया का एक प्रतिबिम्ब है, इससे अधिक कुछ नही है। निस्सन्देह, इसका एक रूढिवादी पक्ष भी है : वह इस चीज को मानता है कि ज्ञान तथा समाज की विशिष्ट अवस्थाएँ अपने काल तथा देश (परिस्थितियों) के अनुसार सही होती है। किन्तु इसका रूढ़िवादी पक्ष यही समाप्त हो जाता है। देखने के इस तरीके की रूढिवादिता सापेक्ष है, इसका क्रान्तिकारी चरित्र निरपेक्ष है — यही एकमात्र निरपेक्ष वस्तु है जिसे द्वन्द्वात्मक दर्शन स्वीकार करता है।

यहाँ इस प्रश्न की जाँच-पड़ताल करने की ज़रूरत नही है कि आया यह दृष्टिकोण प्रकृति विज्ञान की वर्तमान अवस्था से मेल खाता है। वर्तमान प्रकृति विज्ञान कहता है कि सम्भव है कि एक दिन पृथ्वी का ही अन्त हो जाय। और यह बात तो, उसके अनुसार, लगभग निश्चित है कि एक दिन वह आदमियों के रहने लायक़ नहीं रह जायगी। इस प्रकार, प्रकृति विज्ञान इस बात को स्वीकार करता है कि मानव जाति के इतिहास की दिशा केवल उत्कर्ष की (उन्नति करते जाने की) ही नहीं है, बल्कि अधोपतन की भी है। बहरहाल, जो कुछ भी हो, अभी कम से कम उस मोड़ के बिन्दु से हम काफ़ी दूर है जहाँ पहुँच कर समाज का ऐतिहासिक क्रम अधोपतन की तरफ़ जाने लगेगा। और, हीगेलवादी दर्शन से हम इस बात की आशा नही कर सकते कि वह एक ऐसे विषय के बारे में ऊहा-पोह करे जिसे उसके समकालीन प्रकृति विज्ञान ने अभी पेश तक नहीं किया है!

किन्तु, दरअसल, जो बात यहाँ कही जानी चाहिए वह यह है : कि

ऊपर जिन विचारों की व्याख्या की गयी है हीगेल के दर्शन मे उनका इतनी स्पष्टता के साथ वर्णन नही किया गया था। हीगेल की पद्धति से वे अनिवार्य रूप से निकलते है, किन्तु उन्होने स्वयम् इतनी स्पष्टता के साथ कभी इन नतीजो को नही निकाला था। और इसका सीधा-सादा कारण यह था कि वे इस बात के लिए मजबूर थे कि एक दार्शनिक प्रणाली का निर्माण करे और, परम्परागत तकाजो के अनुसार, यह भी आवश्यक था कि दर्शन की जो प्रणाली वे निकाले वह किसी न किसी प्रकार के निरपेक्ष सत्य की खोज पर आधारित हो। इसलिए, इस बात पर, खासतौर से अपने ग्रन्थ **तर्कशास्त्र** मे, यद्यपि उन्होने बहुत अधिक जोर दिया था कि स्वयम् तार्किक, अथवा ऐतिहसिक क्रिया के अलावा और कोई शाश्वत सत्य नही है, परन्तु, फिर भी, इस बात के लिए वे मजबूर थे कि इस क्रिया को किसी न किसी लक्ष्य (परकाष्ठा) पर पहुँचा दे। ऐसा उन्होने इसलिए किया था कि आखिर किसी न किसी बिन्दु पर तो अपनी प्रणाली को उन्हे पूरा करना ही था। अपने ग्रन्थ **तर्कशास्त्र** मे इस अन्त को वे फिर एक आरम्भ का रूप दे सकते है, क्योकि जिस बिन्दु पर इस क्रिया का अन्त होता है—परम विचार के बिन्दु पर, वह अपने को "गैर बना लेता है" (alienates), अर्थात्, अपने को प्रकृति के रूप मे बदल लेता है और, बाद मे, मस्तिष्क मे, अर्थात्, विचारो तथा इतिहास मे पुन. जीवित हो उठता है। और उनका यह परम (या निरपेक्ष) विचार केवल इसलिए परम (या निरपेक्ष) है कि उसके विषय मे कहने को हीगेल के पास कुछ नही है। परन्तु, पूरे दर्शन के अन्त में आरम्भ-बिन्दु पर इस प्रकार लौटना केवल एक तरह से हो सकता है। वह तभी सम्भव हो सकता है जब कि इतिहास के अन्त की निम्न प्रकार कल्पना की जाय : मानव-जाति इसी परम विचार का बोध प्राप्त कर लेती है और घोषणा कर देती है कि उसका यह अनुबोध हीगेलवादी दर्शन मे प्राप्त होता है। परन्तु, इस तरह से, हीगेलवादी प्रणाली की सम्पूर्ण मतवादी अन्तर्वस्तु को ही परम सत्य घोषित कर दिया जाता है। यह उनकी द्वन्द्वात्मक

पद्धति के सर्वथा विपरीत है, क्योंकि उनकी द्वन्द्वात्मक पद्धति तो हर प्रकार के मतवाद का अन्त कर देती है। इस प्रकार उनके क्रान्तिकारी पक्ष को पुराण-पथी पक्ष के झाड-झंखाड के नीचे दवा दिया जाता है और जो चीज दार्शनिक वोध के सम्वन्ध मे सही है वह ऐतिहासिक अमल के सम्वन्ध मे भी सही है। मानव-जाति, जो, हीगेल के रूप में, परम विचार की धारणा की स्थापना करने की स्थिति तक पहुँच गई है, वह आचरण के क्षेत्र मे भी इस अवस्था तक अवश्य ही पहुँच गयी होगी कि इस परम विचार को वास्तविक जीवन में सजीव रूप दे दे। इसलिए जरूरी है कि समकालीनो से की जाने वाली परम विचार से सम्वन्धित व्यावहारिक राजनीतिक माँगों को एक हद से आगे न वढाया जाय। और, इसीलिए, **यथार्थ के दर्शन** (Philosophy of Right) के अन्त मे हमें पता चलता है कि परम विचार की प्राण-प्रतिष्ठा सामाजिक जागीरों पर आधारित उस एकराजतंत्र में होगी जिसका फ्रेडरिक विलियम तृतीय अपनी प्रजा से वरावर, किन्तु वृथा ही वादा करता आया है। अर्थात्, उसकी प्राण-प्रतिष्ठा सम्पत्तिशाली वर्गो के उस सीमित, मर्यादित, अप्रत्यक्ष शासन में होगी जो जर्मनी की तत्कालीन निम्न-पूजीवादी परिस्थितियों के उपयुक्त था। इसके अलावा, उसमे अभिजात वर्ग की आवश्यकता का भी दिग्दर्शन हमे एक काल्पनिक ढंग से करा दिया जाता है।

इस प्रकार, हीगेल की प्रणाली की आन्तरिक आवश्यकताएँ स्वयम् इस वात को वताने के लिए काफी है कि चिन्तन के एक सर्वथा क्रान्तिकारी तरीके के अन्दर से एक एकदम निर्जीव राजनीतिक निष्कर्ष क्यों निकला। वास्तव मे, इस निष्कर्ष के विशिष्ट रूप का कारण यह था कि हीगेल एक जर्मन था और, अपने समकालीन गेटे ही के समान, उसके पीछे भी अधकचरेपन की एक चोटी लटक रही थी। अपने-अपने क्षेत्र में उनमें से प्रत्येक एक महामानव था, किन्तु जर्मन अधकचरेपन से उनमें से कोई भी कभी अपना पल्ला पूरे तौर से न छुड़ा सका था!

किन्तु, इस सब के बावजूद, हीगलेवादी दार्शनिक प्रणाली जिन

अनुपम ऊँचाइयों पर पहुँची थी उन ऊँचाइयो के पास तक पहले की कोई भी प्रणाली नही फटक सकी थी। इसी तरह, दर्शन के क्षेत्र मे जिस वैचारिक सम्पदा का उसने विकास किया था वह आज भी हमे चकित कर देती है। मस्तिष्क के घटना-क्रिया विज्ञान [इसकी तुलना मस्तिष्क के भ्रूण विज्ञान तथा जीवाश्म विज्ञान से की जा सकती है। इस विज्ञान के जरिए इस बात का पता लगाया जाता है कि व्यक्ति की चेतना किन-किन मंज़िलो से विकसित होती हुई आगे बढी है। ऐसा उन मज़िलों की संक्षेप में फिर से सृष्टि करके किया जाता है जिनके अन्दर से, ऐतिहासिक क्रम मे, मानव चेतना गुजरी है], तर्कशास्त्र, प्राकृतिक दर्शन, मस्तिष्क के दर्शन आदि के ऐतिहासिक क्षेत्रो में, तथा मस्तिष्क के दर्शन के अलग-अलग ऐतिहासिक अंगो : इतिहास, यथार्थ और धर्म के दर्शन, दर्शन के इतिहास, सौन्दर्य-शास्त्र, आदि के तमाम भिन्न-भिन्न ऐतिहासिक क्षेत्रों मे हीगेल ने बहुत काम किया था और विकास के सर्वत्र व्याप्त सूत्र को ढूँढ़कर उजागर कर दिया था। और चूँकि वह केवल सृजनात्मक प्रतिभा रखने वाले एक महान पुरुष ही नही थे, बल्कि एक महान विद्वान भी थे, इस-लिए प्रत्येक क्षेत्र में उन्होने युगान्तरकारी कार्य किया था। यह चीज़ स्वयम् स्पष्ट है कि अपनी "दार्शनिक प्रणाली" की आवश्यकताओ के कारण, बहुधा उन्हे मजबूरन ऐसे उपायों का सहारा लेना पडता था जिनको लेकर उनके बौने विरोधी आज भी इतना शोरगुल मचाते हैं। किन्तु ऐसे उपायो का सम्बन्ध उनके रचनात्मक कार्य के मात्र ढाचे और मच-मचान से है। आदमी अगर बेकार के लिए इन्ही मे नही अटका रह जाता, बल्कि उस विशाल प्रासाद के अन्दर प्रवेश करता है जिसका उन्होने निर्माण किया था तो वहाँ उसे अनगिनत ऐसी रत्न-राशियाँ मिलती है जिनके मूल्य मे आज भी रत्ती भर कमी नही आयी है। सभी दार्शनिको के सम्बन्ध में यह बात सही है कि उनके दर्शन मे जो चीज़ नश्वर है वह उनकी "प्रणाली" ही है। इसका कारण भी सीधा सादा है। इसका कारण यह है कि प्रत्येक "प्रणाली" का जन्म मानवी मस्तिष्क

की इस अनश्वर इच्छा के अन्तराल से होता है कि समस्त असंगतियों को दूर कर दिया जाय। परन्तु यदि समस्त असंगतियों को एकबारगी ही दूर कर दिया जा सके, तब तो हम तथाकथित परम सत्य को प्राप्त कर लेगे। फिर विश्व के इतिहास की इति हो जायगी। परन्तु, इसे तो आगे जारी रहना ही है—यद्यपि करने के लिए इसके पास अब कुछ नहीं रह गया है। फलस्वरूप, एक सर्वथा नयी असाध्य असंगति की उत्पत्ति हो जाती है। इस चीज को ज्योंही हम समझ जायँगे कि दर्शन के कार्य को इस रूप मे प्रस्तुत करने का अर्थ इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं होता कि जिस काम को केवल सम्पूर्ण मानव-जाति अपने उत्तरोत्तर विकास-क्रम के माध्यम से ही पूरा कर सकती है उसे अकेला एक दार्शनिक पूरा कर दे—ज्योंही इस चीज़ को हम समझ जायँगे त्योंही समस्त दर्शन का इस अर्थ मे अन्त हो जायगा जिस अर्थ मे अभी तक हम उसे समझते है। और, वास्तव मे, पूरे तौर से देखा जाय तो इस चीज को समझने में इतनी मदद हमे किसी ने नही दी है जितनी स्वयम् हीगेल ने दी है। इस चीज को समझ लेने के बाद, आदमी "परम सत्य" की तलाश को तिलांजलि दे देता है, क्योंकि इस मार्ग पर चलकर अथवा किसी एक व्यक्ति के द्वारा उसे प्राप्त नही किया जा सकता। इसके बजाय, फिर आदमी वास्तविक विज्ञानो के माध्यम से तथा इन विज्ञानो से प्राप्त होने वाले परिणामो का द्वन्द्वात्मक चिन्तन की सहायता से योग निकाल कर, ऐसे सापेक्ष सत्यो की तलाश करने लगता है जिन्हे प्राप्त किया जा सकता है। बहरहाल, हीगेल के साथ दर्शन की इति हो जाती है। क्योंकि, एक तरफ तो उनकी प्रणाली के अन्दर दर्शन के पूरे विकास के सार को अत्यन्त उत्तम रूप मे प्रस्तुत कर दिया गया है, और, दूसरी तरफ, चाहे ऐसा अनजाने ही उन्होंने किया हो, उन्होंने हमे यह भी बतला दिया हैं कि, दार्शनिक प्रणालियो की भूल-भुलैयाँ के अन्दर से बाहर निकलकर, दुनिया का सच्चा प्रत्यक्ष ज्ञान कैसे प्राप्त किया जा सकता है।

जर्मनी के दर्शनमय वातावरण मे हीगेल की इस प्रणाली ने कितनी

जबर्दस्त उथल-पुथल पैदा कर दी होगी इसकी भली-भाँति कल्पना की जा सकती है। वह एक प्रकार की जय-यात्रा थी जो दशकों तक चलती रही थी। हीगेल की मृत्यु हो जाने पर भी उसका अन्त नही हुआ। इसके विपरीत, १८३० से १८४० तक के ही काल मे "हीगेलवाद" का अखण्ड राज्य था। कमोवेश मात्रा मे इस काल मे उसने अपने विरोधियों तक को प्रभावित कर दिया था। यही वह काल था जिसमे हीगेलवादी विचार जाने-अनजाने तमाम प्रकार के विज्ञानो के क्षेत्र मे व्यापक रूप से फैल गये थे। यहाँ तक कि जन-साहित्य तथा उन दैनिक अखबारो को भी उन्होने प्रभावित कर दिया था जिनसे औसत "शिक्षित चेतना" अपना मानसिक आहार प्राप्त करती है। इस भाँति, सम्पूर्ण मोर्चे पर हीगेलवादी विचारों की विजय हुई थी, किन्तु वह विजय आन्तरिक सघर्ष की मात्र एक भूमिका थी।

जैसा कि हम देख चुके है, पूरे तौर से लेने पर, हीगेल के सिद्धान्तों मे तमाम प्रकार के व्यावहारिक पार्टीगत विचारो को ढूंढ निकालने की पूरी गुन्जायश है। और उस समय के सिद्धान्त-ग्रस्त जर्मनी मे, दो चीजें सबसे अधिक व्यावहारिक थी : धर्म और राजनीति। जो हीगेलवादी प्रणाली को मुख्य महत्व देता वह इन दोनो ही क्षेत्रो में खूब दकियानूसी वन सकता था; जो उनकी द्वन्द्वात्मक पद्धति को मुख्य चीज मानता वह, राजनीति और धर्म दोनो के क्षेत्र मे, अधिक से अधिक उग्र-वादी विरोधियो के वर्ग मे शामिल हो सकता था। हीगेल की रचनाओं मे क्रान्तिकारी रोष का यद्यपि काफी जगह परिचय मिलता है, फिर भी पूरे तौर से देखने पर ऐसा लगता है कि उनका झुकाव रूढ़िवाद की तरफ अधिक था। वास्तव मे, अपनी पद्धति की अपेक्षा अपनी प्रणाली का निर्माण करने मे उन्हे "कही अधिक माथा-पच्ची" करनी पड़ी थी। चौथे दशक (१९वीं शताब्दी के) के अन्त तक पहुँचते-पहुँचते हीगेलवादी सम्प्रदाय के अन्दर की फूट काफी स्पष्ट हो उठी। धर्मपुनरुत्थानवादी रूढिवादियो तथा सामन्ती प्रतिक्रियावादियो से लड़ते समय वामपक्ष

के लोगो ने, तथाकथित नौजवान हीगेलवादियों ने उस समय के ज्वलन्त प्रश्नों के सम्बन्ध मे अपने उस पुराने दार्शनिक-शिष्ट संयम को धीरे-धीरे तिलांजलि दे दी जिसकी वजह से अभी तक सरकार उनकी ओर सहिष्णुता बरतती आयी थी और उनकी शिक्षाओ को सुरक्षा तक प्रदान करती आयी थी। और, १८४० मे, फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ के रूप मे, रूढ़िवादी धर्मपुनरुत्थानवाद तथा निरकुश सामन्ती प्रतिक्रियावाद को जब सिंहासनारूढ़ कर दिया गया; तब तो खुलकर एक तरफ सामने आना लाज़मी हो गया। लड़ाई अब भी दार्शनिक हथियारों के ही ज़रिए चलायी जाती थी, किन्तु अब उसका लक्ष्य-हवाई दार्शनिक उद्देश्य नही रह गये थे। उसका उद्देश्य गतानुगत धर्म तथा तत्कालीन राजसत्ता का अन्त करना हो गया था। ड्यूश जहरबुखेर *(Deutsche Jahrbucher)* मे तो व्यावहारिक उद्देश्यो को अब भी मुख्यतया दार्शनिक लिबास में ही पेश किया जाता था, किन्तु १८४२ के रेनीशी जीटुन्ग *(Rheinische Zeitung)* मे नौजवान हीगेलवादियो का सम्प्रदाय महत्वाकांक्षी उग्रवादी पूँजीपति वर्ग के दर्शन के रूप मे खुलकर सामने आ गया। दर्शन के झीने पर्दे का इस्तेमाल वह केवल सेन्सरशिप (सरकारी पुलिस विभाग की नजर) को धोखा देने के लिए करता था।

परन्तु, राजनीति का क्षेत्र उन दिनों अत्यन्त कंटकमय था, इसलिए लड़ाई की मुख्य दिशा ने धर्म-विरोध का रूप ले लिया था। अप्रत्यक्ष रूप से यह लड़ाई, खासतौर से १८४० के बाद से, राजनीतिक भी थी। १८३५ मे स्ट्रास द्वारा लिखित यीशु की जीवनी प्रकाशित हुई थी; उससे इस लड़ाई को पहली मानसिक प्रेरणा प्राप्त हुई थी। उसमे दैवी कहानियों के निर्माण के सम्बन्ध मे जिस सिद्धान्त की स्थापना की गयी थी उसका खण्डन बाद मे ब्रूनो बेयर ने किया था। उन्होने इस बात का प्रमाण दिया था कि अनेक इंजीली (ईसाई धर्म सम्बन्धी) कहानियो को स्वयम् उनके लेखको ने गढ लिया था। इनके बीच जो बहस चली थी उसे "आत्म-चेतना" तथा मुख्य वस्तु के बीच की लड़ाई के

दार्शनिक आवरण में चलाया गया था। दिव्य पुस्तकों में दी गयी चमत्कारपूर्ण कहानियों का जन्म समुदाय की कहानी रचने की अचेतन परम्परा के गर्भ से हुआ था, अथवा उन्हे इंजील के प्रचारकों ने स्वयम् गढ़ लिया था—इस प्रश्न को बढ़ा-चढाकर इस प्रश्न का रूप दे दिया गया था कि विश्व इतिहास मे किसकी शक्ति निर्णायक है—"मुख्य वस्तु" की अथवा "आत्म-चेतना" की। अन्त मे, स्टर्नर का प्रादुर्भाव हुआ, उस स्टर्नर का जो वर्तमान अराजकतावाद का पैगम्बर था। बाकुनिन ने उससे बहुत सीखा है। स्टर्नर ने सर्वसत्ताधारी "आत्म-चेतना" को लिया और उसके सिर पर अपने सर्वशक्तिशाली "अहम्"[८०] का मुकुट और पहना दिया!

हीगेलवादी सम्प्रदाय के ह्रास की प्रक्रिया के इस पहलू की हम और अधिक जाँच-पड़ताल नही करेंगे। निम्न चीज़ हमारे लिए उससे अधिक महत्व रखती है: पार्थिव धर्म के विरुद्ध लड़ाई की व्यावहारिक आवश्यकताओं ने सबसे पक्के नौजवान हीगेलवादियों के मुख्यांश को फिर अंग्रेज़-फ्रांसीसी भौतिकवाद की गोद में ढकेल दिया। इसकी वजह से उनके और उनकी हीगेलवादी दार्शनिक प्रणाली के बीच टकराव पैदा हो गया। भौतिकवाद प्रकृति को ही एकमात्र वास्तविकता मानता है, किन्तु हीगेलवादी प्रणाली के अन्दर प्रकृति को परम विचार का मात्र परकीयकरण *(alienation)* यानी, एक तरह से, उसका पतन, माना जाता है। हीगेलवादी दार्शनिक प्रणाली मे चिन्तन तथा चिन्तन की उत्पत्ति—विचार—को ही मूल वस्तु माना जाता है, प्रकृति को उससे उत्पन्न हुई चीज़, एक ऐसी चीज़ माना जाता है जिसका अस्तित्व केवल विचार की कृपा के कारण होता है। इसी असगति के गढ़े मे अच्छी या बुरी तरह जैसे उनसे बना वे डूबते-उतराते रहे।

तभी फायरबाख की रचना ईसाई धर्म का सार* [८१] आयी। एक

---

* Essence of Christianity.

ही प्रहार से इसने उस असंगति को ध्वस्त कर दिया—विना किसी अगर-मगर के भौतिकवाद को उसने फिर सिंहासनारूढ़ कर दिया। इसने कहा कि प्रकृति की सत्ता तमाम दर्शनों से स्वतंत्र है। प्रकृति ही वह आधार है जिस पर हम मानव-प्राणी, जो स्वयम् प्रकृति की उपज है, बड़े हुए हैं। प्रकृति और मानव से वाहर किसी चीज का अस्तित्व नही है। हमारी धार्मिक कल्पनाओं ने जिन उच्चतर जीवों की सृष्टि की है वे हमारे ही अपने सार-तत्व के काल्पनिक प्रतिविम्व मात्र है। हीगेलवादी प्रणाली का जो जादू था उसका असर खत्म हो गया, "प्रणाली" छिन्न-भिन्न हो गयी और उसे उठाकर एक तरफ फेंक दिया गया। असगति, जिसके बारे में प्रमाणित कर दिया गया था कि वह केवल हमारी कल्पना की चीज है, दूर हो गयी। इस पुस्तक का कैसा मुक्तिदायक प्रभाव पड़ा था इसे वही जान सकता है जिसने स्वयम् उसका अनुभव किया था। चारों तरफ उत्साह की लहर फैल गयी थी, हम सव फौरन फ़ायरवाखवादी वन गये थे। मार्क्स ने इस नयी धारणा का कितने उत्साह से अभिनन्दन किया था और अपने तमाम आलोचनात्मक संकोचों के वावजूद—वे उससे कितने अधिक प्रभावित हुए थे, इसे उनके ग्रन्थ पवित्र परिवार मे देखा जा सकता है।

यहाँ तक कि फ़ायरवाख की पुस्तक मे जो कमजोरियाँ थी उन्होंने भी उसके तात्कालिक प्रभाव को वढाने में मदद दी। उसकी साहित्यिक शैली की वजह से, जो कही-कही आडम्वरपूर्ण तक थी, उसके पढने वालो की संख्या काफ़ी वढ गयी। जो भी हो, हीगेलवादी दर्शन के दुर्ज्ञेय और दुर्गम गलियारों में वर्षो तक चक्कर लगाते रहने के वाद उसमे हम सव को वहुत ताजगी मिली। अत्यन्त अतिरंजितपूर्ण ढग से देव-स्थान पर प्रेम का जो उसने प्रतिष्ठापन किया था उसके सम्वन्ध मे भी यही वात सही थी। इस चीज का चाहे औचित्य न रहा हो, किन्तु, "शुद्ध विवेको" के असह्य वन गये सर्वसत्ताशाली शासन के वाद उसका निमित्त अवश्य पैदा हो गया था! परन्तु हमें इस चीज़ को नही भूलना चाहिए कि

फायरबाख की वास्तव मे यही दो कमजोरियाँ थी जिन्हे 'सच्चे समाजवाद" ने अपनाकर अपना आधार बना लिया था। १८४४ के बाद से शिक्षित जर्मनी मे "सच्चा समाजवाद" प्लेग की तरह फैलता गया था। वैज्ञानिक ज्ञान के स्थान पर अब उसने साहित्यिक वाक्यांशों को रखना शुरू कर दिया; उत्पादन का आर्थिक रूपान्तरण करके सर्वहारा अपनी मुक्ति प्राप्त करे इसे कहने के बजाय उसने "प्रेम" के माध्यम से मानव-जाति की मुक्ति प्राप्त करने की बात करनी शुरू कर दी। संक्षेप में, नीरस सुहानी रचनाओ तथा प्रेम के हर्षातिरेक की उस दुनिया मे वह खो गया जिसके प्रतिनिधि कार्ल ग्रुन थे!

एक और चीज है जिसे हमें नही भूलना चाहिए। वह यह है: हीगेल-वादी सम्प्रदाय तो विघटित हो गया था, किन्तु हीगेलवादी दर्शन को आलोचना के द्वारा पराजित नही किया जा सकता था। स्ट्रास और बेयर दोनों में से हर एक ने उसके एक-एक पक्ष को ले लिया था और फिर उसके आधार पर वे एक दूसरे के विरुद्ध शास्त्रार्थ करते थे। फायर-बाख ने उसकी प्रणाली को छिन्न-विच्छिन्न करके एक तरफ फेक दिया था। किन्तु किसी दर्शन को केवल यह कहकर नही खत्म कर दिया जा सकता कि वह गलत है। और हीगेलवादी दर्शन जैसी एक इतनी शक्तिशाली चीज को, जिसने कि राष्ट्र के बौद्धिक विकास पर इतना जबर्दस्त प्रभाव डाला था, तो केवल उसकी उपेक्षा करके हरगिज, हरगिज खत्म नही किया जा सकता था। उसे तो स्वयम् उसी के ढग से "रद्द किया" जा सकता था, अर्थात्, उसे केवल इस तरह पराजित किया जा सकता था कि आलोचना करके उसके रूप को तो नष्ट कर दिया जाय, किन्तु उसके माध्यम से जो नयी अन्तर्वस्तु (विचार-तत्व) प्राप्त हुई थी उसे बचा लिया जाय। यह कार्य कैसे सम्पन्न किया गया था इसे हम नीचे देखेंगे।

लेकिन, इसी बीच, १८४८ की क्रान्ति ने बिना किसी शिष्टाचार के सारे दर्शन को ही उठाकर उसी तरह एक तरफ ढकेल दिया जिस

तरह कि फ़ायरबाख ने हीगेल को ढकेल दिया था। और इस क्रिया में स्वयम् फायरबाख को भी ढकेलकर पीछे कर दिया गया।

२

तमाम दर्शन का, खासतौर से अधिक हाल के दर्शन का, महान् बुनियादी प्रश्न चिन्तन से सत्ता के सम्बन्ध का प्रश्न है। बहुत ही पुराने जमाने से, उस जमाने से जबकि अपने शरीरो की रचना के सम्बन्ध में वे एकदम कुछ नही जानते थे, स्वप्न मे दिखलाई देने वाले रूपों*(मानव रूपों) की वजह से मनुष्य यह विश्वास करते आये है कि चिन्तन तथा सम्वेदन की उनकी क्रियाएं उनके शरीरो की क्रियाएं न होकर, एक ऐसी विशिष्ट आत्मा की क्रियाएं है जो शरीर मे निवास करती है और मनुष्य की मृत्यु होने पर उसे छोड़कर चली जाती हैं। इसी जमाने से मनुष्य इस आत्मा तथा बाहरी दुनिया के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय मे सोचते विचारते आये है। मृत्यु होने पर अगर वह शरीर से बाहर चली जाती है और ज़िन्दा बनी रहती है, तब फिर उसके लिए दूसरी किसी खास मृत्यु का आविष्कार करने की कोई आवश्यकता नही है। अमरता की धारणा का जन्म इसी प्रकार हुआ था। विकास की उस अवस्था में इस धारणा से कोई सांत्वना नही मिलती थी, उल्टे वह भाग्य की उस रेखा की तरह लगता था जिसके विरुद्ध हाथ-पैर चलाना व्यर्थ था। और बहुत बार तो वह एक निश्चित विपत्ति के रूप में ही आती थी। यूनानी लोग उसे

---

* जगली लोगों तथा निम्न प्रकार के बर्बर लोगो में अब भी यह धारणा सब जगह मौजूद है कि स्वप्नों में जो मानवी रूप दिखलाई देते हैं वे वास्तव में वे आत्माएं हैं जो स्थायी तौर से अपने शरीरों को छोड़कर बाहर चली गयी हैं। इसलिए, सपने में दिखाई देने वाली प्रेतात्मा सपना देखने वाले के विरुद्ध जो काम करती है उनके लिए सपने में दिखाई देने वाले वास्तविक आदमी को जिम्मेदार ठहराया जाता है। उदाहरण के लिए, इमथर्न ने लिखा है कि १८८४ में गायना के इण्डियनों में भी इसी प्रकार का विश्वास फैला हुआ था। **(एंगेल्स की टिप्पणी)**

विपत्ति ही मानते थे। व्यक्तिगत अमरता की नीरस धारणा की उत्पत्ति सांत्वना की धार्मिक इच्छा के अन्दर से नही हुई थी, वल्कि उसका जन्म सार्वत्रिक अज्ञान के कारण पैदा हुई इस समस्या के गर्भ से हुआ था कि उस आत्मा का — जिसके बारे मे यह मान लिया गया था कि वह शरीर की मृत्यु के वाद भी जीवित बनी रहती है — क्या किया जाय।

प्रथम देवताओं की भी सृष्टि, ठीक इसी तरह से, प्राकृतिक शक्तियों पर मानवगुणारोपण के माध्यम से हुई थी। धर्मों के आगे विकास के क्रम मे, ये देवता अधिकाधिक अपार्थिव रूप ग्रहण करते गये। अन्त मे, पृथक्करण (अमूर्तिकरण) की एक क्रिया के द्वारा, मैं कह सकता हूँ कि आसवन (abstraction) की एक क्रिया के द्वारा, अनेक छोटे-मोटे सीमित तथा एक दूसरे को सीमित बनाने वाले देवताओं से मानवो के दिमाग मे एकेश्वरवादी धर्मों के एक एकान्तिक देवता का विचार उत्पन्न हुआ। स्वाभाविक रूप से, अमूर्तिकरण की यह क्रिया मानव के वौद्धिक विकास-क्रम मे ही घटित हुई थी।

इस प्रकार,सत्ता के साथ चिन्तन के सम्वन्ध के प्रश्न की, प्रकृति के साथ आत्मा के सम्वन्ध के प्रश्न की जडे भी—पूरे धर्म की जडो की ही तरह—जगली लोगो की संकुचित तथा अज्ञानपूर्ण धारणाओ मे ही मिलती है। सत्ता के साथ चिन्तन के सम्बन्ध का प्रश्न, प्रकृति के साथ आत्मा के सम्बन्ध का यह प्रश्न—पूरे दर्शन का प्रमुखतम प्रश्न है। परन्तु इस प्रश्न को उसके पूरे पैनेपन के साथ सबसे पहले तभी पूछा जा सका था, अपनी पूरी महत्ता को वह तभी प्राप्त कर सका था, जब ईसाई धर्म की मध्ययुगीन लम्बी निद्रा से योरोप की मानवता जाग उठी थी। सत्ता के साथ चिन्तन के सम्बन्ध के प्रश्न ने, इस प्रश्न ने कि : मूल चीज कौन है—आत्मा या प्रकृति —मध्य युगों के विद्याडम्वरवाद के सिलसिले में भी एक भारी भूमिका अदा की थी। ईसाई धर्म संघ (चर्च) के सम्बन्ध मे इस प्रश्न ने निम्न तीखा रूप ले लिया था : ससार की सृष्टि ईश्वर ने की थी, अथवा सनातन काल से ससार यों ही चला आयाहै ?

दार्शनिकों ने इस प्रश्न के जो उत्तर दिये उनके आधार पर वे दो बड़े दलों मे बँट गये। जिन लोगों का कहना था कि आत्मा ही मूल है और प्रकृति गौण है वे भाववाद के दल में शामिल हो गये। अन्त में, ये लोग किसी न किसी रूप में, यह भी मानते हैं कि संसार की किसी ने सृष्टि की थी। और, दार्शनिकों की दुनिया में, जैसे कि हीगेल की दुनिया में, ससार की सृष्टि की यह धारणा तत्सम्बन्धी ईसाई-धर्मी धारणा से भी अधिक जटिल तथा दुस्साध्य बन जाती है। दूसरे लोग, जिनका कहना था कि प्रकृति ही मूल चीज है वे, भौतिकवाद के विभिन्न सम्प्रदायों मे बँट गये।

इन दोनो शब्दों का, भाववाद और भौतिकवाद का, मूलतः इसके अलावा और कोई अर्थ नही था। यहाँ पर भी उनका और किसी अर्थ मे नही प्रयोग किया गया है। उनके अन्दर जब किसी दूसरे अर्थ को ढूंढ़ा जाता है तब जो भ्रम उत्पन्न हो जाता है उसे हम नीचे देखेंगे।

परन्तु चिन्तन और सत्ता के सम्बन्ध के प्रश्न का एक और भी पहलू है: चारो तरफ की अपनी दुनिया के सम्बन्ध में हमारे जो विचार हैं उनका स्वयम् इस दुनिया से क्या सम्बन्ध है? हमारा चिन्तन क्या वास्तविक दुनिया का सज्ञान प्राप्त कर सकता है? अपने विचारो तथा धारणाओं के अन्दर क्या हम असली दुनिया से सम्बंधित वास्तविकता का सही प्रतिबिम्ब पैदा कर लेते है? दर्शन की भाषा में इस प्रश्न को चिन्तन तथा सत्ता की अनन्यता (identity) का प्रश्न कहा जाता है। दार्शनिको का बहुत बड़ा बहुमत इस प्रश्न का उत्तर हाँ मे देता है। उदाहरण के लिए, हीगेल के दर्शन में तो उसका अनुमोदन स्वयम् स्पष्ट है; क्योंकि वास्तविक दुनिया मे जिस चीज का हम सज्ञान प्राप्त करते है वह उसका विचार-तत्व ही है — वही विचार-तत्व जो परम विचार को संसार के रूप में धीरे-धीरे साकार बनाता जाता है। इस परम विचार की सत्ता, संसार से स्वतंत्र तथा संसार की उत्पत्ति से पहले से, शाश्वत काल से कहीं

बनी रही है। किन्तु यह चीज़ और किसी प्रमाण के बिना ही स्पष्ट है कि विचार ऐसे तत्व को ही जान सकता है जो प्रारम्भ से ही विचार-तत्व है। यह चीज भी इतनी ही स्पष्ट है कि जिस बात को यहाँ प्रमाणित करना है वह अनकहे रूप में उक्त आधार वाक्य मे पहले से ही मौजूद है। परन्तु इसकी वजह से हीगेल को यह निष्कर्ष निकालने मे कोई दिक्कत नही होती कि चिन्तन और सत्ता की अनन्यता का जो उन्होंने प्रमाण दिया है उससे साफ है कि उनका दर्शन, जो उन्हे सही लगता है, एकमात्र सही दर्शन है। वे कहते हैं कि चिन्तन तथा सत्ता की अनन्यता अगर अपनी प्रामाणिकता सिद्ध करना चाहती है तो आवश्यक है कि मानव-जाति को वह इस बात के लिए तैयार करे कि उनके दर्शन को सिद्धान्त से बदलकर वह व्यवहार का रूप दे दे और समस्त ससार को हीगेलवादी सिद्धान्तों के अनुसार बदल दे। हीगेल का यह एक ऐसा भ्रम है जिसके लगभग सभी दार्शनिक शिकार है।

इनके अतिरिक्त, भिन्न-भिन्न दार्शनिको का एक और भी दल है। यह उन लोगो का दल है जो इस बात मे शंका प्रकट करते है कि दुनिया का कोई सज्ञान, अथवा कम से कम पूर्ण संज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। इनकी श्रेणी मे अधिक आधुनिक काल मे ह्यूम और कान्ट भी आ जाते है। दर्शन के विकास में इन लोगो ने बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। इस दृष्टिकोण के खण्डन के सिलसिले मे—कम से कम भाववादी दृष्टिकोण से—जो चीज निर्णायक है वह हीगेल द्वारा पहले ही कही जा चुकी है। फायरबाख ने उसमे जो भौतिकवादी चीजें जोड़ी थी वे चातुर्यभरी हो सकती है, परन्तु उनमे गहराई नही है। तमाम दूसरी दार्शनिक उड़ानो की तरह इस उडान का भी सबसे प्रभावशाली खण्डन स्वयं व्यवहार है—अर्थात्, प्रयोग और उद्योग है। किसी प्राकृतिक क्रिया के सम्बन्ध मे अपनी धारणा की सच्चाई को यदि हम उस क्रिया की स्वयम् सृष्टि करके प्रमाणित कर दे, उसकी परिस्थितियो से बाहर निकाल कर उसे खुद पैदा कर दे, और घाते मे उससे अपना काम भी करवा ले तो फिर

कान्ट की अग्राह्य "अज्ञेय वस्तु" का काम तमाम हो जायगा। पौधों और पशुओं की देह मे पैदा होने वाले रासायनिक पदार्थ भी उस समय तक ऐसी ही "अज्ञेय वस्तुएँ" बने रहे थे जब तक कि जैविक रसायनशास्त्र ने एक के बाद एक उन्हें स्वयम् नहीं बनाना शुरू कर दिया था। उसके बाद, वे "अज्ञेय वस्तुएँ" हमारे लिए वस्तुएँ बन गयीं। उदाहरण के लिए, मजीठ का रंग देने वाले पदार्थ अलीजरीन को हम ले लें। उसे हम अब खेतो में मजीठ की जड़ों में नही उगाते, बल्कि कही अधिक सस्ते और सीधे ढंग से कोलतार से तैयार कर लेते हैं। ३०० साल तक कोपरनिकस का सौर-मण्डल मात्र एक कल्पना था। उसके पक्ष मे १००, १०००, या १०,००० बातें कही जा सकती थी और विपक्ष में केवल एक, फिर भी वह कल्पना ही बना रहा था। लेकिन लवेरियर ने सौर-मंडल से प्राप्त तथ्यों के आधार पर जब न केवल एक अज्ञात ग्रह के अनिवार्य अस्तित्व का पता लगा लिया, बल्कि हिसाब लगा कर आकाश में उस जगह का भी पता-निशान बता दिया जहाँ इस ग्रह का होना लाजमी था, और फिर गाले ने इस ग्रह[८२] को जब सचमुच ढूंढ़ कर ही दिखा दिया, तब कोपरनिकस का सौर-मडल सिद्ध हो गया। इसके बावजूद, जर्मनी में नव-कान्टवादी यदि कान्टवादी धारणा के मुर्दे को फिर जिन्दा करने की कोशिश कर रहे हैं और इंगलैण्ड में (जहां कि दरअसल उसकी कभी मृत्यु नही हुई थी) अज्ञेयवादी ह्यूम की धारणा को फिर से जीवित करने की कोशिश कर रहे है, तो, इसका मतलब यह होता है कि वैज्ञानिक दृष्टि से वे पीछे की ओर जा रहे हैं। और, व्यावहारिक दृष्टि से इसका मतलब मात्र यह होता है कि, दुनिया के सामने भौतिकवाद से इन्कार करते हुए भी, चोरी-चोरी से एक निर्लज्ज ढंग से वे उसे स्वीकार करते जा रहे हैं। वास्तव मे, कान्ट और ह्यूम की धारणाओं का सिद्धान्त और व्यवहार दोनों के क्षेत्र में बहुत पहले ही खण्डन किया जा चुका है।

परन्तु, देकार्ते से हीगेल और हॉब्स से फ़ायरबाख तक के इस लम्बे काल में केवल शुद्ध तर्क से दार्शनिक नही अनुप्राणित हुए थे — यद्यपि वे

सोचते ऐसा ही थे। बात इसकी बिल्कुल उल्टी थी। वास्तव में, सबसे अधिक जो चीज़ उन्हे आगे ढकेलती जा रही थी वह थी प्राकृतिक विज्ञान तथा उद्योग-धन्धों की शक्तिशाली और निरन्तर तीव्र होती जाती प्रगति। जहाँ तक भौतिकवादियों की बात थी उनके सम्बन्ध मे तो यह बात ऊपर से ही बिल्कुल साफ दिखलाई देती थी; किन्तु भाववादी दार्शनिक प्रणालियाँ भी भौतिकवादी तत्व का अपने अन्दर अधिकाधिक समावेश करती जाती थी। मस्तिष्क तथा भूत के बीच जो विरोध है उसे सर्वेश्वरवादी ढग से दूर करने की वे कोशिश करती थी। इस भाँति, अन्ततोगत्वा, हीगेल-वादी प्रणाली — पद्धति तथा अन्तर्वस्तु की दृष्टि से, भाववादी ढंग से उल्टे खड़े कर दिये गये भौतिकवाद का ही प्रतिनिधित्व करती है।

इसलिए, इस चीज़ को समझा जा सकता है कि स्टॉर्क जब फायर-बाख़ का विश्लेषण करता है तो चिन्तन तथा सत्ता के सम्बन्ध के इस मूलभूत प्रश्न के विषय मे ही उसके दृष्टिकोण की क्यो सबसे पहले जाँच-पड़ताल करता है। शुरू मे वह एक संक्षिप्त भूमिका लिखता है। इस भूमिका मे पहले के दार्शनिकों के, ख़ासतौर से काण्ट के बाद आने वाले दार्शनिको के, विचारो का वह अनावश्यक रूप से भारी-भरकम दार्शनिक भाषा मे वर्णन करता है। इसमे हीगेल को जितना महत्व मिलना चाहिए था उससे बहुत कम दिया गया है। इसकी वजह यह है कि स्टॉर्क ने उनकी रचनाओं के किन्ही ख़ास अंशों को बहुत औपचारिक ढग से देखा है। इस भूमिका के बाद फिर स्वयम् फायरबाख़ के "अवि-भूतवाद" के विकास-क्रम का एक विस्तृत विवरण उसने दिया है। इस विकास-क्रम को ठीक उसी रूप मे पेश किया गया है जिसमे इस विषय से सम्बन्धित फायरबाख़ की रचनाओ मे वह सिलसिलेवार ढंग से पाया जाता है। इस विवरण को श्रम तथा स्पष्टता से प्रस्तुत किया गया है। दोष उसमे केवल यही है कि, सम्पूर्ण पुस्तक की तरह, यह विवरण भी दार्शनिक शब्दावली के झाड़-झखाड़ से बोझिल हो गया है। हर जगह इस शब्दावली से बचना मुश्किल रहा हो ऐसी भी बात नही है। इससे

उस समय और भी ज़्यादा परेशानी पैदा हो जाती है जब लेखक किसी एक ही दार्शनिक सम्प्रदाय की अभिव्यंजना शैली का, अथवा यहाँ तक कि स्वयम् फ़ायरवाख़ की अभिव्यजना शैली का, अनुकरण नही करता और जगह-जगह अत्यन्त भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियों की शब्दावलियों को, ख़ास तौर से उन प्रवृत्तियों की शब्दावलियो को बीच मे घुसेड देता है जो आज चारों तरफ जोरों से फैली हुई है और अपने को दार्शनिक बताती है !

फायरबाख़ का विकास एक हीगेलवादी से एक भौतिकवादी मे हुआ था —यद्यपि, यह सही है कि, एकदम पक्के रूढ़िवादी हीगेलवादी फ़ायरबाख़ कभी नही थे। विकास के इस क्रम मे एक निश्चित अवस्था पर पहुँच कर अपने पूर्ववर्त्तियो की भाववादी प्रणाली के साथ पूर्ण सम्बन्ध-विच्छेद करना उनके लिए आवश्यक हो गया था। दुर्निवार रूप से अन्त में फ़ायरबाख़ इस चीज़ को मानने के लिए मजबूर हो गये थे कि "परम विचार" के पूर्व-लौकिक हीगेलवादी अस्तित्व की बात, संसार के अस्तित्वशील होने से पहले उनकी "तार्किक मानसिक-श्रेणियो (logical categories) के पूर्व-अस्तित्व", रखने की बात — वास्तव में इहलोकातीत सृष्टा के अस्तित्व में किये जाने वाले विश्वास की अब तक बच गयी काल्पनिक यादगार के अलावा और कुछ नही है; कि भौतिक, इन्द्रियों से जाना जा सकने वाला केवल वह ससार ही एकमात्र सचाई है जिसके हम स्वयम् एक अंग हैं; तथा, हमारी चेतना और चिन्तन—वे चाहे जितने अतीन्द्रिय प्रतीत हों—वास्तव में एक भौतिक, शारीरिक अग की, मस्तिष्क की ही उपज हैं। भूत (matter) मस्तिष्क (mind) की उत्पत्ति नहीं है, बल्कि मस्तिष्क स्वयम् भूत की सर्वोच्च उत्पत्ति है — इसके अतिरिक्त वह कुछ नही है। निस्सदेह, यह शुद्ध भौतिकवाद है। किन्तु, इतनी दूर तक पहुँच जाने के बाद, फ़ायरबाख़ रुक जाता है। चिर-प्रचलित दार्शनिक पूर्वग्रह से, भौतिकवाद की अन्तर्वस्तु के विरुद्ध नही, बल्कि भौतिकवाद नाम के विरुद्ध फैले हुए पूर्वग्रह से — वह मुक्त नही हो पाता। वह कहता है :

"मेरी दृष्टि मे भौतिकवाद मानवी सत्ता तथा ज्ञान के प्रासाद की आधार-शिला है; परन्तु मेरी दृष्टि मे वह वही चीज़ नही है जो किसी दैहिकी-विद् की दृष्टि मे, अधिक सकुचित अर्थ मे मोलेशकॉट जैसे किसी प्रकृति विज्ञान-वेत्ता की दृष्टि मे वह है। उनके दृष्टिकोण तथा मत के अनुसार तो वह (यानी भौतिकवाद—अनु०) स्वयम् ही प्रासाद है। भूतकाल के सम्बन्ध मे भौतिकवादियो से मैं पूर्णतया सहमत हूँ; किन्तु भविष्य के सम्बन्ध मे उनसे सहमत नही हूँ।"

यहाँ फायरबाख़ उस भौतिकवाद को, जो भूत तथा मस्तिष्क के सम्बन्ध की एक निश्चित समझदारी पर आधारित विश्व-सम्बन्धी एक आम दृष्टिकोण है, उसके उस विशेष रूप से मिला देता है जिसमे, एक खास ऐतिहासिक अवस्था मे, अर्थात्, १८वी शताब्दी मे, इस विश्व दृष्टि-कोण की अभिव्यजना हुई थी। इससे भी अधिक, उसे वह उसके उस छिछले, विकृत रूप के साथ मिला देता है जिसमे प्रकृतिवादियो तथा वैद्यो-डाक्टरो के दिमागो में १८वीं शताब्दी का भौतिकवाद आज भी ज़िन्दा है। यह उसका वही रूप है जिसका पिछली शताब्दी के पाँचवें दशक मे बुखनर, वोग्त तथा मोलेशकॉट ने अपने दौरो के समय प्रचार किया था। किन्तु जिस तरह अपने विकास-क्रम मे भाववाद कई अवस्थाओ से गुज़रा था, उसी तरह भौतिकवाद भी कई मजिलो से होता हुआ आगे बढा था। प्रकृति विज्ञान तक के क्षेत्र मे होने वाली प्रत्येक युगान्तरकारी खोज के साथ उसे अपने रूप मे परिवर्तन करना पड़ा है। और, जब, इतिहास की भी भौतिकवादी व्याख्या कर दी गयी, तब तो इस क्षेत्र मे भी उसके विकास के लिए एक नया पथ खुल गया था।

पिछली शताब्दी का भौतिकवाद प्रधानतया यांत्रिक था, क्योकि उस समय तक समस्त प्राकृतिक ज्ञानो के क्षेत्र मे केवल यान्त्रिकी का—और वह भी वास्तव में ठोस पिण्डो की, आकाशीय तथा भौमिक पिण्डो की यांत्रिकी का, संक्षेप मे, गुरुत्वाकर्षण की यान्त्रिकी का ही एक निश्चित

अवस्था तक विकास हुआ था। रसायनशास्त्र उस समय तक केवल अपनी वचकानी, प्रादाहिक अवस्था मे ही था। जीव-शास्त्र भी तब तक घुटनों पर चलने वाला एक नन्हा शिशु था। पौदों और पशुओ के शरीरों की केवल मोटे तौर से ही अभी तक छान-बीन की गयी थी। उनकी व्याख्या केवल यान्त्रिक कारणों की बुनियाद पर की जाती थी। १८वी शताब्दी के भौतिकवादियों की दृष्टि मे मनुष्य का वही स्थान था जो देकार्ते की दृष्टि मे एक पशु का था—यानी वह एक मशीन था। रासायनिक तथा जैविक स्वरूप रखने वाली प्रक्रियाओ को केवल यांत्रिकी के मापदण्डों से देखने की कोशिश करना —यही प्राचीन फ्रान्सीसी भौतिकवाद की पहली खास, किन्तु उस समय की लाजमी कमजोरी थी। निस्सदेह, रासायनिक तथा जैविक प्रक्रियाओं के सम्वन्ध में भी यान्त्रिकी के नियम लागू होते हैं, किन्तु इन नियमो को दूसरे, अधिक ऊंचे नियम पीछे ढकेल देते हैं।

इस भौतिकवाद की दूसरी विशिष्ट कमजोरी यह थी कि विश्व को एक प्रक्रिया के रूप मे, भूत के अविच्छिन्न ऐतिहासिक विकास के रूप में वह नही देख पाता था। प्रकृति-विज्ञान का उस समय जो स्तर था और उसके साथ दार्शनिक चिन्तन की जो अधिभूतवादी, अर्थात् द्वन्द्ववाद-विरोधी पद्धति जुड़ी हुई थी, यह कमजोरी उसी से पैदा होती थी। इतना जरूर मालूम था कि प्रकृति शाश्वत गति की दशा मे रहती है। परन्तु, तत्कालीन धारणाओ के अनुसार, यह गति, शाश्वत रूप से एक चक्र मे ही होती थी और, इसलिए, अपने स्थान से वह कभी आगे नही जाती थी। वारम्बार उससे एक ही नतीजे निकलते थे। यह धारणा उस समय लाजमी थी। सौरमंडल की उत्पत्ति के सम्वन्ध मे कान्ट का सिद्धान्त अभी ही सामने आया था। उसे अब भी केलव एक कौतूहल की ही वस्तु समझा जाता था। पृथ्वी के विकास का इतिहास, अर्थात्, भूगर्भशास्त्र, अब भी एकदम अज्ञात था; और इस विचार को तो वैज्ञानिक रूप से अभी पेश ही नहीं किया जा सकता था कि आज के जो सजीव प्राकृतिक प्राणी हैं वे सरल से सश्लिष्ट की ओर होने वाले विकास की एक लम्बी शृखला का परिणाम हैं। इसलिए

प्रकृति के सम्बन्ध मे अनैतिहासिक दृष्टिकोण का होना अनिवार्य था। पर इस चीज़ को लेकर १८वी शताब्दी के दार्शनिको को हम इसलिए और दोषी नही ठहरा सकते कि यही चीज हीगेल मे भी पायी जाती है। उनके कथनानुसार, प्रकृति महज विचार का "परकीयकरण" (alienation) है, इसलिए कालक्रम में उसका कोई विकास नही हो सकता; उसका विकास केवल अवकाश मे हो सकता है, केवल उसी मे वह अपनी विविधता का विस्तार कर सकती है। इस प्रकार अपने विकास की सारी अवस्थाओं को एक साथ एक के बाद एक वह प्रदर्शित करती है और, शाश्वत रूप से, इन्ही प्रक्रियाओ की पुनरावृत्ति करती जाने के लिए मजबूर है। काल की गति से पृथक, अवकाश मे विकास करने की यह बेतुकी बात प्रकृति के सम्बन्ध में हीगेल ने उस समय कही थी जबकि भूगर्भशास्त्र, भ्रूणशास्त्र, पौधो तथा पशुओ के दैहिकी-विज्ञान और जैविक रसायनशास्त्र का निर्माण हो रहा था, तथा, इन नये विज्ञानो के आधार पर बाद मे उत्पन्न होने वाले विकास के सिद्धान्त (theory of evolution) की ओजपूर्ण भविष्यवाणियाँ की जा रही थी (उदाहरण के लिए, गेटे और लामार्क के कथनों को ले लीजिए)। काल मे विकास समस्त विकास की मूलभूत शर्त है, लेकिन हीगेल ने इसे नही माना था। पर उनकी प्रणाली के लिए वह आवश्यक था। इसलिए दार्शनिक प्रणाली की खातिर उनकी पद्धति को स्वयम् अपने प्रति झूठा बन जाना पड़ा था।

इतिहास के क्षेत्र मे भी यही अनैतिहासिक धारणा फैली हुई थी। इस क्षेत्र मे, मध्य युगो के अवशेषो के विरुद्ध होने वाले संघर्ष की वजह से, दृष्टिपथ धुधला हो रहा था। मध्य युगों को इतिहास का केवल क्रम-भग माना जाता था: मध्य युग के हजार वर्षो को सार्वत्रिक बर्बरता के वर्ष माना जाता था। मध्य युगों में जो जबर्दस्त प्रगति हुई थी — यानी योरोपीय सस्कृति के क्षेत्र का जो विस्तार हुआ था, विकास की क्षमता रखने वाले जो बडे-बडे राष्ट्र एक दूसरे के अगल-बगल मे उठ खड़े हुए थे, और, अन्त मे, चौदहवी तथा पंद्रहवीं शताब्दियो में जो विराट

प्राविधिक प्रगति हुई थी — उस सबको अनदेखा कर दिया गया था। इस तरह, जो महान् ऐतिहासिक पारस्परिक सम्बन्ध कायम हो रहे थे उन पर बुद्धि-सगत ढग से विचार करना असम्भव बना दिया गया था और इतिहास उदाहरणो तथा दृष्टान्तों का अधिक से अधिक एक ऐसा सग्रह बन गया था जिसका दार्शनिक लोग अपने काम के लिए इस्तेमाल कर सकते थे।

पिछली शताब्दी के पाँचवी दशक मे जर्मनी के अन्दर भौतिकवाद को बदनाम करने वाले जो क्षुद्र प्रचारक उसमे दिलचस्पी लेते थे वे भी अपने शिक्षको की इस कमजोरी को किसी प्रकार दूर नही कर सके थे। इस दरम्यान प्रकृति-विज्ञान के क्षेत्र में जो बहुविधि प्रगति हुई थी वह उनके लिए ससार के सृष्टा के अस्तित्व के विरुद्ध सिर्फ नये प्रमाणो का ही काम देती थी। इस सिद्धान्त का विकास करने की वास्तव में उन्होने जरा भी कोशिश नही की थी। भाववाद अपने अवसान के समीप पहुँच गया था। १८४८ की क्रान्ति ने उस पर प्राण-घातक प्रहार कर दिया था। किन्तु यह देखकर उसे सन्तोष हो सकता था कि भौतिकवाद, कम से कम उस समय, और भी नीचे गिर गया था। उस भौतिकवाद की जिम्मेदारी लेने से फायरबाख ने जब इन्कार किया था तो निर्विवाद रूप से उसने ठीक ही किया था। बस, उसे जो चीज नही करनी चाहिए थी वह केवल यह थी कि इन घूमते-फिरते प्रचारको के सिद्धान्तों को उसे आम भौतिकवाद नही समझ लेना चाहिए था।

किन्तु, इस सम्बन्ध मे दो चीजे है जिनका उल्लेख करना जरूरी है। एक तो यह कि, फायरबाख के जीवनकाल मे भी, प्राकृतिक-विज्ञान के क्षेत्र मे एक उग्र उथल-पुथल मची हुई थी। उसकी कुछ स्पष्ट, सापेक्ष रूपरेखा पिछले १५ वर्षो से ही दिखलाई देने लगी थी। नये-नये वैज्ञानिक तथ्य जबर्दस्त तेजी के साथ सामने आ रहे थे; किन्तु उनके बीच परस्पर सम्बन्ध स्थापित करने का काम और, इस तरह से, एक के बाद एक होने वाली खोजों से उत्पन्न अव्यवस्था के बीच एक व्यवस्था कायम करने

का काम, अभी केवल एकदम हाल मे ही सम्भव हो सका है। यह सही है कि कोशिका, ऊर्जा के रूपान्तरण तथा डारविन के नाम से सम्बद्ध विकास के सिद्धान्त से सम्वन्धित तीनो निर्णायक खोजें फायरबाख के जीवन-काल मे ही हो गयी थी। परन्तु यह कैसे सम्भव था कि ग्रामीण एकान्तता मे रहने वाला वह एकाकी दार्शनिक इन तमाम वैज्ञानिक प्रगतियो को इतनी अच्छी तरह समझ लेता कि इन खोजो के पूरे महत्व को उस समय पहचान जाता जब कि प्रकृति विज्ञान-वेत्ता स्वयम् या तो इन चीज़ो के बारे मे वाद-विवाद मे उलझे हुए थे, या फिर यह नही जानते थे कि पर्याप्त रूप से इनका उपयोग कैसे किया जाय? इसका पूरा दोष जर्मनी की तत्कालीन अभागी परिस्थितियो को था। इन परिस्थितियो के परिणाम-स्वरूप, दर्शन की कुर्सियो पर तो ऐंच-पेंच करने वाले सार-संग्रही पिस्सू-मार बकवासियों ने कब्ज़ा कर लिया था और फायरबाख को, जो उन सबसे बहुत बड़े थे, निष्कासित अवस्था मे एक छोटे-से गाँव मे रहने के लिए मजबूर हो जाना पड़ा था। इसलिए, यदि प्रकृति की उस एतिहासिक धारणा को फायरबाख हृदयंगम नही कर सके थे जिसे हृदयगम करना अब सम्भव हो गया था और जिससे कि फ्रान्सीसी भौतिकवाद का सारा एकपक्षीपन दूर हो जाता था, तो इसमे उनका दोष नही था।

दूसरे, फ़ायरबाख का यह कहना भी सर्वथा सही है कि केवल प्राकृतिक-वैज्ञानिक भौतिकवाद ही वास्तव में "मानवी ज्ञान के प्रासाद की आधार-शिला है, परन्तु वह स्वयम् प्रासाद नही है।" हम केवल प्रकृति के बीच नही रहते, मानव समाज के भी अन्दर रहते हैं, और, प्रकृति की ही तरह, इस मानव समाज के विकास का भी अपना एक इतिहास है, उसका भी अपना एक विज्ञान है। इसलिए आवश्यक यह था कि समाज के विज्ञान का, अर्थात्, तथाकथित ऐतिहासिक तथा दार्शनिक विज्ञानों के कुल योग का उसकी भौतिक आधार-शिला के साथ समन्वय कायम कर दिया जाय, और उसके आधार पर फिर उसका पुनर्निर्माण किया

जाय। किन्तु इस काम को पूरा करना फ़ायरबाख़ के भाग्य में नहीं लिखा था। "आधार-शिला" के बावजूद, रूढ़िगत भाववादी बेड़ियों से ही वह इस क्षेत्र में जकड़े रहे। इस बात को उन्होंने स्वयम् इन शब्दों में स्वीकार किया है: "भूतकाल के सम्बन्ध में मैं भौतिकवादियों से पूर्णतया सहमत हूँ; लेकिन भविष्य के सम्बन्ध में मैं उनसे सहमत नहीं हूँ।" परन्तु, वास्तव में, सामाजिक क्षेत्र में, "आगे की ओर" जो नहीं बढ़ सका था वह स्वयं फायरबाख़ था। १८४० या १८४४ के अपने दृष्टिकोण से आगे वह न जा सका। इसका भी मुख्य कारण उसका वही एकान्तवास था। लोगों से मिलने-जुलने की प्रवृत्ति फ़ायरबाख़ में दूसरे सभी दार्शनिकों से अधिक थी, परन्तु उसके एकान्तवास ने उसे इस बात के लिए बाध्य कर दिया था कि अपनी ही श्रेणी के दूसरे लोगों के साथ मैत्रीपूर्ण अथवा विरोधी वाद-विवादों के दौरान अपने दार्शनिक विचारों की स्थापना करने के बजाय, वह मात्र अपने अकेले मस्तिष्क के अन्दर से उनकी स्थापना करे! आगे हम सविस्तार देखेंगे कि इस क्षेत्र में कितना अधिक भाववादी वह बना रहा था।

यहाँ अब सिर्फ इतना और जोड़ देने की जरूरत रह गयी है कि फ़ायरबाख़ के भाववाद की तलाश स्टॉर्क गलत जगह पर करता है।

"फायरबाख़ भाववादी है; वह मानव-जाति की प्रगति में आस्था रखता है" (पृष्ठ १९)। "इसके बावजूद, उसकी पूरी समझ की आधार-शिला, अर्थात् नींव, भाववाद ही बना रहता है। हम अपनी आदर्श प्रवृत्तियों का अनुसरण करते रहते हैं; ऐसी हालत में हमारे लिए यथार्थवाद विचलनों से बचने के एक अस्त्र से अधिक नहीं है। दया, प्रेम और सत्य तथा न्याय के लिए उत्साह—क्या ये आदर्श शक्तियाँ नहीं हैं?" (पृष्ठ ८)

पहले तो, यहाँ आदर्शवाद (भाववाद) का अर्थ आदर्श लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयत्न करने के अलावा और कुछ नहीं है। परन्तु, अधिक से अधिक, इनका सम्बन्ध कान्टवादी भाववाद तथा "विवेक-सम्बन्धी" उसके "आदेश" से है; परन्तु, कान्ट ने स्वयम् अपने दर्शन को "अनुभवातीत

भाववाद" कहा था। ऐसा उसने इस कारण कदापि नही कहा था कि उसमे उसने नैतिक आदर्शो की भी व्याख्या की थी। ऐसा कहने के कारण विल्कुल दूसरे थे, जैसा कि स्टॉर्क को याद होगा। दार्शनिक आदर्शवाद (भाववाद) का आधार किन्ही नैतिक, अर्थात् सामाजिक आदर्शो के प्रति आस्था है — इस अन्ध-विश्वास का जन्म दर्शन के क्षेत्र से वाहर, उन अध-कचरे जर्मनो के वीच हुआ था जिन्होने दार्शनिक संस्कृति के उन चन्द टुकड़ों को, जिनकी उन्हें जरूरत थी, शिलर की कविताओं से लेकर रट लिया था! कान्ट के निर्जीव "विवेक के आदेश" की इतनी सख्ती से किसी ने आलोचना नही की है, न शिलर द्वारा प्रचारित अप्राप्य आदर्शो के प्रति अधकचरे भावनात्मक उत्साह का इतनी निर्ममता से किसी ने मजाक ही वनाया है जितना कि उस पूर्ण भाववादी हीगेल ने वनाया है (उदाहरण के लिए, उनकी रचना, घटना-क्रिया विज्ञान देखिए)। कान्ट के "विवेक के आदेश" को निर्जीव इसलिए कहा गया है कि वह असम्भव की माँग करता है और इसलिए कभी किसी चीज़ को प्राप्त नही कर पाता।

दूसरे, इस चीज को हम किसी प्रकार अस्वीकार नहीं कर सकते कि हर चीज जो मनुष्यों को क्रियाशील वनाती है ऐसा करने के लिए उन्हें उनके मस्तिष्क के द्वारा प्रभावित करती है। खाने और पीने तक के सम्वन्ध मे ऐसा ही होता है। खाने या पीने की क्रिया का श्रीगणेश भूख या प्यास की सम्वेदना के फलस्वरूप होता है। यह सम्वेदना मस्तिप्क के द्वारा प्रेपित होती है। उसका अन्त सन्तृप्ति की सम्वेदना से होता है। यह सम्वेदना भी मस्तिष्क से ही प्रेषित होती है। वाह्य जगत् के जो प्रभाव मनुष्य पर पड़ते है वे उसके मस्तिष्क मे प्रकट होते है; उसके अन्दर वे भावनाओं, विचारो, आवेगों, सकल्पों — सक्षेप में, "मानसिक प्रवृत्तियो" के रूप में प्रतिविम्वित होते हैं, और इस रूप मे वे "मानसिक-शक्तियाँ" वन जाते हैं। फिर, यदि, मनुष्य को इसीलिए भाववादी मान लिया जाता है कि वह "मानसिक प्रवृत्तियों" का अनुसरण करता है और इस चीज़ को स्वीकार करता है कि "मानसिक शक्तियाँ" उसे प्रभावित करती है, तव तो हर

आदमी जो जरा भी स्वाभाविक है एक जन्मजात भाववादी कहलायेगा। और, तब तो, कोई भौतिकवादी हो ही कहाँ से सकता है ?

तीसरे, इस विश्वास का भौतिकवाद और भाववाद के आपसी विरोध से कतई कोई सम्बन्ध नही है कि मानवता, कम से कम वर्तमान समय मे, मोटे तौर से प्रगतिशील दिशा में आगे बढ रही है। इस बात में फ्रान्सीसी भौतिकवादियो की आस्था ईश्वरवादी वाल्तेयर तथा रूसो से किसी प्रकार कम नहीं थी। वास्तव में, उनकी इस आस्था ने लगभग एक धर्मान्धता का रूप ले लिया था। उसके लिए अक़्सर उन्हे बड़ी से बड़ी व्यक्तिगत कुर्बानियाँ करनी पड़ती थी। उदाहरण के लिए, अगर ऐसा व्यक्ति कभी कोई हुआ है जिसने अपने पूरे जीवन को ही "सत्य तथा न्याय की प्रतिष्ठा के लिए" —इन शब्दों का हम अच्छे अर्थों में इस्तेमाल कर रहे है—अर्पित कर दिया था, तो वह दिदरो था ! इसलिए, स्टॉर्क यदि इस सब को भाववाद घोषित करता है, तो इससे सिर्फ यही सिद्ध होता है कि भौतिकवाद शब्द का तथा, दोनो प्रवृत्तियों के बीच के सम्पूर्ण विरोध का उसके लिये कोई अर्थ नही रह गया है।

सच बात यह है कि ऐसा कहकर स्टॉर्क, यद्यपि सम्भवतः बिना इस चीज को समझे हुए ही, भौतिकवाद शब्द के विरुद्ध रूढ़िगत अधकचरी विद्वेष की जो भावना फैली हुई है उसके सामने अक्षम्य रूप से आत्मसमर्पण कर देता है। भौतिकवाद के विरुद्ध पूर्वग्रह की इस भावना का कारण यह है कि पादरियो ने एक लम्बे काल तक बराबर उसे बदनाम किया है। अधकचरे व्यक्ति की दृष्टि मे भौतिकवाद शब्द का अर्थ होता है—पेटूपन, शराबखोरी, नेत्र-वासना, वेश्या वृत्ति, अहकार, तृष्णा, लोलुपता, लोभीपन, मुनाफाखोरी तथा सट्टे बाजार की चोरी-बेईमानी—सक्षेप मे, उसकी दृष्टि मे उसका अर्थ वे सारी बुराइयाँ होती है जिनमे लुक-छिपकर वह स्वयम् हिस्सा लेता है। और भाववाद शब्द का अर्थ उसकी दृष्टि में है—अच्छाई, सार्वत्रिक लोकोपकार की भावना तथा आम तौर से एक "बेहतर दुनिया" ! इस "बेहतर दुनिया" के सम्बन्ध में दूसरों के सामने

वह बढ-बढ़ कर बाते करता है, लेकिन उसकी ओर स्वयं उसका रुझान केवल तभी होता है जब वह किसी मुसीबत मे फँस जाता है, अथवा जब अपनी आम "भौतिकवादी" अतिशय रगरेलियों के कारण वह दीवालिया हो जाता है और उसके बुरे दिन आ जाते हैं। अपने इस परम प्रिय राग को वह केवल उसी समय गाता है! मनुष्य क्या है? — आधा पशु, आधा देवता!

बाकी तो, शोरगुल करने वाले उन सहायक प्रोफेसरो के हमलों और सिद्धान्तो से, जिन्हे जर्मनी मे आजकल दार्शनिक कहा जाता है, स्टॉर्क बडी मेहनत से फायरबाख की रक्षा करता है। जिन लोगो को प्राचीन जर्मन-दर्शन की इस अवरनाल मे दिलचस्पी हो उनके लिए, निस्सन्देह, यह चीज महत्व की हो सकती है; सम्भव है कि स्वयम् स्टॉर्क को भी वह आवश्यक प्रतीत हुई हो। लेकिन हम पाठक पर उसे व्यर्थ नही लादेंगे।

३

फायरबाख का असली भाववाद उस समय सामने आता है जिस समय धर्म और आचार-शास्त्र के सम्बन्ध मे उसके दर्शन पर हम विचार करते है। फायरबाख धर्म का अन्त नही करना चाहता, वह उसका परिष्कार करके उसे निर्दोष बनाना चाहता है। उसका कहना था कि स्वयम् दर्शन को धर्म मे सम्मिलित कर लिया जाना चाहिए।

> "केवल धार्मिक परिवर्तनो से ही मानवी युगो की विशिष्टता का निर्माण होता है। कोई भी ऐतिहासिक आन्दोलन तभी अनिवार्य बन सकता है जबकि उसकी जड़ें मनुष्यो के दिलो मे हो। दिल धर्म का कोई रूप नही है, इसलिए आवश्यक है कि धर्म की भी सत्ता दिल ही के अन्दर हो; दिल ही धर्म की मूल वस्तु है।" (स्टॉर्क द्वारा उद्धृत, पृष्ठ १६८)

फ़ायरवाख के अनुसार, धर्म प्रेम के ऊपर आधारित मानव प्राणियों का पारस्परिक सम्बन्ध है, वह उनके हृदय पर आधारित सम्बन्ध है। अभी तक अपनी सचाई को यह सम्बन्ध वास्तविकता के कल्पनाशील आदर्श (दर्पण वाले) प्रतिबिम्ब मे ढूंढता रहा है — वह उसे एक या अनेक देवताओं की —अर्थात् मानवी गुणो के काल्पनिक आदर्श (दर्पण वाले) प्रतिबिम्बों की — मध्यस्थता मे ढूंढता रहा है, — किन्तु अब वह उसे सीधे-सीधे और बिना किसी की मध्यस्थता के "मैं" और "तू" के बीच के प्रेम के अन्दर पा गया है। इस तरह, अन्त में, यौन प्रेम फ़ायरबाख के नये धर्म के आचार-व्यवहार का यदि सर्वोच्च रूप नही, तो एक सर्वोच्च रूप तो अवश्य ही बन जाता है।

इसमें सन्देह नही कि प्रेम-अनुराग पर आधारित सम्बन्ध मानव प्राणियों के बीच, और विशेष रूप से स्त्री-पुरुषो के बीच, तभी से चले आये है जब से मानव-जाति की उत्पत्ति हुई है। यौन प्रेम का खासतौर से विकास हुआ है और पिछले ८०० वर्षों मे उसने एक ऐसा स्थान प्राप्त कर लिया है जिससे इस काल के तमाम काव्यो का अनिवार्य रूप से वह केन्द्र-बिन्दु बन गया है। राज्य द्वारा निर्धारित यौन प्रेम को, अर्थात्, शादी-विवाह के कानूनो को, उच्चतर धार्मिक समर्थन प्रदान करने के कार्य तक ही मौजूदा धर्मो ने अपने को मुख्यतया सीमित रखा है। किन्तु अगर ये सारे धर्म कल मिट जायँ तो भी प्रेम और मित्रता के आचार-व्यवहार में इसकी वजह से लेशमात्र भी अन्तर नही पडेगा। उदाहरण के लिए, १७९३-९८ के वर्षो के दरम्यान फ्रान्स मे ईसाई धर्म वास्तव मे इस तरह एकदम गायब हो गया था कि फिर नेपोलियन तक निर्विरोध तथा बिना भारी कठिनाई के उसकी पुनः प्रतिष्ठा न कर सका था। और, बीच के इस काल मे, फायरबाख के अर्थ मे, किसी एवजी धर्म की आवश्यकता भी कही महसूस नही की गयी थी!

फायरबाख का भाववाद यहाँ निम्न बात मे व्यक्त होता है: यौन प्रेम, मैत्री, दया, आत्मोत्सर्ग, आदि को —मानव प्राणियो के पारस्परिक

आकर्षण पर आधारित सम्बन्धों के रूप मे, अर्थात् बिना किसी विशेष धर्म से—जो दरअसल उसकी दृष्टि मे भी एक वीती चीज़ है—उनका सम्बन्ध जोड़े, जैसे वे है उसी सीधे-सादे रूप मे वह नही स्वीकार करता। इसके विपरीत, वह कहता है कि ये सम्बन्ध अपनी पूर्णता को केवल तभी प्राप्त कर सकेगे जब धर्म के नाम से उनका पवित्रीकरण कर दिया जाएगा। मुख्य चीज़ उसके लिए यह नही है कि ये शुद्ध रूप से मानवी सम्बन्ध मौजूद है, बल्कि मुख्य चीज यह है कि उन्हे एक नये, सच्चे धर्म के रूप मे स्थापित कर दिया जाय। वे अपनी पूरी गरिमा तभी प्राप्त कर सकेंगे जब कि उनके ऊपर धार्मिक छाप लगा दी जायगी। रिलीजन (धर्म) शब्द की उत्पत्ति रेलीगेयर *(Religare)* से हुई है। इस शब्द का मौलिक मतलब था—एक बन्धन। इसलिए, दो व्यक्तियो के बीच का हर बन्धन (रिश्ता) एक धर्म है। शब्द-विज्ञान सम्बन्धी इस तरह की तिकड़मे ही भाववादी दर्शन का आखिरी सहारा रह गयी है। उसके लिए इस चीज़ का महत्व नही है कि वास्तविक प्रयोग के आधार पर हुए उसके ऐतिहासिक विकास के अनुसार शब्द का अर्थ क्या है, उसके लिए जिस चीज का महत्व है वह यह है कि उक्त शब्द की उत्पत्ति के अनुसार उसका अर्थ क्या होना चाहिए। और इसीलिए यौन प्रेम तथा स्त्री-पुरुष के सम्भोग पर देवत्वारोपण करके उन्हे एक धर्म का रूप दे दिया गया है, जिससे कि धर्म शब्द का, जो उनकी भाववादी स्मृतियो को इतना प्रिय है, शब्द-कोश से लोप न हो जाय। पेरिस के लुई ब्लाकवादी सुधारक भी पिछली शताब्दी के चौथे दशक मे ठीक इसी प्रकार की बातें किया करते थे। उनका भी यही विचार था कि जो आदमी धर्म नही मानता वह केवल एक राक्षस हो सकता है। वे हमसे कहा करते थे : *"Donc l'atheisme c'est votre religion"*! (अच्छा तो, नास्तिकता ही तुम्हारा धर्म है!) फ़ायरबाख़ यदि प्रकृति की मूलतः भौतिकवादी धारणा के आधार पर एक सच्चे धर्म की स्थापना करना चाहता है, तो यह कुछ ऐसी ही बात है जैसे कि आधुनिक रसायनशास्त्र

को ही कोई सच्ची कीमियागरी मान ले ! धर्म यदि अपने ईश्वर के विना ज़िन्दा रह सकता है तो कीमियागरी भी विना अपने पारस पत्थर के बनी रह सकती है। प्रसगवश, यहाँ यह भी कह दिया जाय कि कीमियागरी और धर्म के बीच एक अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है। पारस पत्थर में अनेक ईश्वर-जैसे गुण होते है और हमारे सन् की प्रथम दो शताब्दियो के मिस्री-यूनानी कीमियागरो का ईसाई धर्म के सिद्धान्तों का विकास करने मे काफी हाथ था। कौप और वर्थलौट ने जो तथ्य प्रस्तुत किये है उनसे यह चीज प्रमाणित हो जाती है।

फ़ायरबाख़ का यह कथन है कि "केवल धार्मिक परिवर्तनों से ही मानवी युगो की विशिष्टता का निर्माण होता है"... निश्चित रूप से गलत है। अव तक जितने धर्म हुए है उनमे से केवल तीन ही विश्व धर्मों के बारे मे — बौद्ध, ईसाई, और इस्लाम धर्मो — के बारे मे ही यह कहा जा सकता है कि महान् ऐतिहासिक मोडो के साथ-साथ धार्मिक परिवर्तन भी हुए है। पुराने कबीलाई (tribal) और राष्ट्रीय (national) धर्म, जो अपने-आप पैदा हुए थे, शुद्धि (धर्म-परिवर्तन) का काम नही करते थे और ज्योही सम्बन्धित कबीले या कौम (राष्ट्र-जाति) की स्वतत्रता नष्ट हो जाती थी त्योही प्रतिरोध करने की उनकी सारी शक्ति का भी नाश हो जाता था। इस सम्बन्ध मे जर्मनों के लिए तो पतनोन्मुख रोमनो के विश्व साम्राज्य तथा उसके द्वारा नये-नये स्वीकार किए गये नये ईसाई विश्व धर्म के साथ उनका मामूली सम्पर्क ही काफी हुआ था। यह नया ईसाई धर्म रोमन साम्राज्य की आर्थिक, राजनीतिक तथा विचार-धारात्मक परिस्थितियों में एकदम फिट बैठता था। हम देखते है कि केवल इन्ही विश्व धर्मों — विशेपतया ईसाई और इस्लाम धर्मो — के सन्दर्भ मे, जो कि कमोवेश मात्रा मे कृत्रिम रूप से पैदा हुए थे, यह वात सही है कि आम ऐतिहासिक आन्दोलन धार्मिक रामनामी ओढकर प्रकट हुए थे। किन्तु ईसाई धर्म के सन्दर्भ मे भी, वास्तविक सार्वभौमिक महत्व की क्रान्तियो के धार्मिक आवरण पहन कर प्रकट होने की बात

पूजीपति वर्ग के मुक्ति संघर्ष की केवल पहली अवस्थाओं तक ही — तेरहवी से सत्रहवी शताब्दी तक ही—सीमित है । और, इसका कारण, जैसा कि फायरवाख सोचता है, मनुष्यों के दिल और उनकी धार्मिक आवश्यकताएँ नही थी, वल्कि इसका कारण मध्ययुगों का वह सम्पूर्ण पुराना इतिहास था जो धर्म तथा ईश्वर-ज्ञान की विचारधाराओ के अलावा और किसी प्रकार की विचारधारा से परिचत नही था। किन्तु, १८वी शताब्दी का पूजीपति वर्ग जब इतना मजवूत हो गया कि अपने वर्गीय दृष्टिकोण के अनुरूप, स्वयम् अपनी विचारधारा रख सके, तब उसने अपनी महान् और निर्णयकारी क्रान्ति, फ्रान्सीसी क्रान्ति कर दी। इस क्रान्ति के समय उसने केवल न्यायशास्त्रीय तथा राजनीतिक विचारों के ही नाम पर अपील की थी, धर्म के सम्वन्ध मे सिर्फ उसी हद तक उसने फिक्र की थी जिस हद तक कि उसके मार्ग मे वह आड़े आता था। लेकिन इस वात का उसे कभी खयाल तक नही हुआ कि पुराने धर्म के स्थान पर वह एक नये धर्म की स्थापना करे। हर कोई जानता है कि रौवसपियर ने जब ऐसी कोशिश की थी तो वह किस तरह असफल रहा था।[83]

वर्ग विरोधो और वर्ग शासन पर आधारित जिस समाज में हम रह रहे है उसने अन्य मानव प्राणियो के साथ केवल मानवी भावनाओ के आधार पर सम्बन्धो का निर्माण करने की सम्भावना को आज काफी कम कर दिया है। इन भावनाओ को धर्म के उच्चासन पर वैठाकर इस सम्भावना को और भी अधिक कम कर देने का कोई कारण नही है। इसी तरह, वर्तमान इतिहास-लेखन की पद्धति ने, खासतौर से जर्मनी मे, महान् ऐतिहासिक वर्ग सघर्षो की समझदारी को काफी धुधला वना दिया है, इसलिए इस वात की भी अब जरूरत नही है कि इन सघर्षो के इतिहास को धार्मिक इतिहास का मात्र पुछल्ला वनाकर उसकी समझदारी प्राप्त करने की सम्भावना को असम्भव वना दिया जाय। यहां यह वात भली-भाँति स्पष्ट हो जाती है कि फायरवाख से हम लोग

से ही अच्छा है' तो वह यह समझता है कि वह कोई वहुत वड़ी वात कह रहा है। परन्तु वह यह भूल जाता है कि जव कोई यह कहता है कि 'मनुष्य स्वभाव से ही वुरा है' तो वह उससे भी कही वड़ी वात कहता है।"

हीगेल के दर्शन मे वुराई वह रूप है जिसके अन्दर ऐतिहासिक विकास की प्रेरक शक्ति अपने को सामने प्रस्तुत करती है। इसमें दोनो अर्थ मौजूद है। एक तो यह कि, हर नयी प्रगति पूजी जाने वाली वस्तुओं के विरुद्ध अनिवार्य रूप से एक पाप की तरह लगती है; पुरानी और मरणासन्न, किन्तु रीति-रिवाज़ द्वारा प्रतिष्टापित परिस्थितियों के विरुद्ध वह एक विद्रोह की तरह मालूम पड़ती है: और, दूसरे यह कि वर्ग विरोधो की उत्पत्ति के वाद से, ऐतिहासिक विकास के उत्तोलको (लीवरो) का जिन चीज़ो ने काम किया है वे मनुष्य की यही पापी लालसाएँ है—वे उसकी लिप्सा तथा सत्ता के लिए उसकी लोलुपताएँ है। यह एक ऐसी वास्तविकता है जिसका —सामन्तवाद तथा पूँजीवाद का इतिहास एक लम्वा और लगातार प्रमाण प्रस्तुत करता है। परन्तु, नैतिक वुराई की ऐतिहासिक भूमिका की जाँच-पड़ताल वह करे इसका फायरवाख को खयाल तक नही आया था। इतिहास उसके लिए एक ऐसा भयावना प्रदेश वना हुआ था जिसके अन्दर उसे अच्छा नही लगता था। खुद उसका यह कथन भी उसके हाथों मे विल्कुल वांझ वना रहा था कि: "शुरू-शुरू मे प्रकृति के अन्दर से जव मनुष्य निकला था तव वह मनुष्य नही था, प्रकृति का एक जीव मात्र था। मनुष्य — मनुष्य, संस्कृति, (तथा) इतिहास की उपज है।"

इसलिए, नैतिक अचार-व्यवहार के सम्वन्ध में फ़ायरवाख हमें जो वतला सकते हैं वह वहुत ही नगण्य है। सुख प्राप्ति की कामना मनुष्य में अर्न्तजात है, इसलिए समस्त नैतिकता का आधार उसी को होना चाहिए। परन्तु सुख प्राप्ति की कामना का दो-दो तरह से परिष्कार होता है। एक तो, हमारे कार्यों के स्वाभाविक परिणाम उसका परिष्कार करते हैं: विषय-भोग के वाद विषादभरी अन्यमनस्यकता आती है और

लगातार अति करने से बीमारी पैदा हो जाती है । दूसरे, उसका परिष्कार हमारे कार्यों के सामाजिक परिणामो से होता है : यदि सुख-प्राप्ति की दूसरे लोगो की ऐसी ही कामना का हम सम्मान नही करते तो वे स्वयम् अपनी रक्षा करेंगे और, इस तरह, हमारी अपनी सुख-प्राप्ति की कामना के मार्ग मे आड़े आयेंगे । अस्तु, आवश्यक है कि, अपनी इच्छा-पूर्ति के लिए हम अपने आचरण के परिणामो को ठीक-ठीक समझे और दूसरों को भी सुख प्राप्त करने का अपने ही बराबर अधिकार दें । अपने सम्बन्ध मे बुद्धि-सगत आत्म-संयम का इस्तेमाल करना और, दूसरो के साथ, व्यवहार मे प्रेम का—बारम्बार प्रेम का—प्रयोग करना : यही फायरबाख की नैतिकता के बुनियादी नियम है । उनके अन्य तमाम नियम इन्ही से निकलते है । परन्तु इन इनी-गिनी उक्तियों (प्रस्थापनाओ) की तनुता और तुच्छता को न तो फ़ायरबाख के जोशीले से जोशीले कथन छिपा सकते है, न स्टॉर्क की बडी से बडी स्तुतियाँ !

स्वयम् अपने मे ही लवलीन रहकर अत्यन्त असाधारण परिस्थितियों मे ही कोई व्यक्ति सुख-प्राप्ति की अपनी कामना को पूरा कर सकता है। इससे उसका तथा अन्य लोगो का कोई लाभ नही हो सकता । इसके विपरीत, मनुष्य यदि सुख-प्राप्ति चाहता है तो अपनी इस इच्छा की पूर्ति के लिए उसे बाह्य दुनिया मे लवलीन होना पडता है, उसे उन साधनो मे दिलचस्पी लेनी पड़ती है जो उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते है, अर्थात् उसे भोजन, पर-लिङ्ग के व्यक्ति, पुस्तको, बातचीत, बहस-मुबाहसे, बाहरी कामो, इस्तेमाल तथा काम के तमाम पदार्थो, आदि मे दिलचस्पी लेनी पड़ती है। फ़ायरबाख़ का नीतिशास्त्र या तो यह मान लेता है कि सन्तृप्ति के ये साधन तथा पदार्थ स्वाभाविक रूप से ही हर व्यक्ति को मिल जाते है, अथवा वह सिर्फ ऐसी सीख देता है जिस पर अमल नही किया जा सकता और इसलिए, उन लोगो के लिए, जिनके पास ये साधन नही है उसका दमड़ी भर भी मूल्य नही होता । फायरबाख स्वयम् भी इस चीज़ को साफ-साफ कहता है :

'महल और झोपड़ी मे मनुष्य अलग-अलग ढंग से सोचता है।" "भूख और तकलीफ के कारण अगर तुम्हारे शरीर मे कोई जान नहीं रहती तो तुम्हारे सिर मे, तुम्हारे मस्तिष्क अथवा दिल में, नैतिकता के लिए भी कोई स्थान नही रह सकता।" "राजनीति को ही हमारा धर्म वन जाना चाहिए," आदि।

सुख-प्राप्ति की अपनी इच्छा पूरा करने के सम्वन्ध में दूसरो के समान अधिकार के विपय मे क्या स्थिति इससे वेहतर है? फायरवाख ने सबके समान अधिकार की इस वात को निरपेक्ष वताया है; उसने कहा है कि यह वात तमाम कालो और तमाम परिस्थितियों के लिए सही है। परन्तु यह चीज़ कव से सही है? प्राचीन काल में गुलामों और उनके मालिको के वीच, अथवा मध्ययुगों मे अर्द्ध-गुलामो और उनके सामन्ती स्वामियों के वीच क्या कभी सुख प्राप्ति की इच्छा-पूर्ति करने के समान अधिकार की वात होती थी? उत्पीड़ित वर्ग की सुख-प्राप्ति की इच्छा को निर्ममता के साथ और "कानूनी अधिकार के द्वारा" क्या शासक वर्ग की सुख-प्राप्ति की इच्छा की वलिवेदी पर जवर्दस्ती क़ुर्वान नही कर दिया जाता था? हाँ, निस्सन्देह, यह कार्य अनैतिक था; परन्तु, अव अधिकारों की समानता की वात को स्वीकार कर लिया गया है। सामन्तवाद के विरुद्ध अपनी लड़ाई के दौरान तथा पूजीवादी उत्पादन के विकास-क्रम मे, जिस समय पूजीपति वर्ग को जागीरो के तमाम विशेषाधिकारो को, अर्थात् व्यक्तिगत विशेषाधिकारों को ख़त्म करने के लिए तथा, कानून की दृष्टि में, पहले निजी कानून के क्षेत्र में और फिर क्रमशः सार्वजनिक क़ानून के भी क्षेत्र मे तमाम व्यक्तियों की समानता के सिद्धान्त की स्थापना करने के लिए मजवूर होना पड़ा था तभी से, और उसी मात्रा में, अधिकारों की समानता की इस वात को शब्दो मे स्वीकार कर लिया गया है। किन्तु मानसिक अधिकारों के आधार पर सुख-प्राप्ति की इच्छा की नाममात्र की ही पूर्ति हो सकती है। सर्वाधिक मात्रा में उसकी पूर्ति भौतिक साधनों के ही आधार पर होती है। किन्तु पूंजीवादी उत्पादन

इस वात की पूरी व्यवस्था कर देता है कि समान अधिकारो के स्वामी, विशाल वहुमत को ये भौतिक सावन सिर्फ़ उतने ही मिल सके जितने कि केवल उनके हाड-मास को वनाये रखने के लिए आवश्यक है। इसलिए, वहुमत की सुख-प्राप्ति की इच्छा की पूर्ति के समान अधिकार के प्रति गुलामी अथवा अर्द्ध-गुलामी की व्यवस्था से अधिक सम्मान का भाव पूंजीवादी उत्पादन के अन्दर कदापि नहीं है। और, सुख के मानसिक साधनो के सम्वन्ध मे, शैक्षिक साधनो के सम्वन्ध मे—हमारी हालत क्या कोई वेहतर है ? क्या "सादोवा [८४] का स्कूल मास्टर" भी मात्र एक काल्पनिक व्यक्ति ही नही है ?

और भी। नैतिकता के फ़ायरवाख के सिद्धान्त के अनुसार, स्टॉक एक्सचेन्ज (सट्टा वाजार) नैतिक आचरण का सर्वोच्च मन्दिर है वशर्ते कि आदमी हमेशा सही सट्टा लगाता हो। सुख की मेरी कामना यदि मुझे सट्टा वाजार ले जाती है और, अपने कार्य-कलापों के परिणामो का सही-सही अनुमान लगाकर, वहाँ यदि मैं इस तरह काम करता हूँ जिससे कि केवल सुखकर नतीजे निकलते है और मुझे किसी प्रकार की परेशानियो का सामना नही करना पड़ता, अर्थात् यदि मैं सट्टे मे हमेशा जीतता हूँ, तो फायरवाख के अनुसार मेरा आचरण पूर्णतया नैतिक होगा। इसके अलावा, ऐसा करके मैं किसी दूसरे आदमी द्वारा सुख-कामना के अपने अधिकार का इस्तेमाल किये जाने के मार्ग में भी किसी प्रकार की वाधा नही डालता। वह दूसरा आदमी भी उसी प्रकार अपनी इच्छा से सट्टा वाजार गया था जिस प्रकार मैं गया था; मेरे साथ उसने जव सट्टा किया तो ऐसा उसने सुख-प्राप्ति की अपनी कामना के लिए ही किया था उसी तरह जिस तरह कि मैने किया था। फिर अगर उसे नुकसान हो जाता है (वह अपना रुपया हार जाता है), तो यह वात अपने-आप सिद्ध हो जाती है कि उसका काम अनैतिक था क्योंकि उसने गलत अनुमान लगाया था, और चूँकि मैंने उसे वह सज़ा दे दी है जिसका वह पात्र था, इसलिए एक आधुनिक राडामेन्थस[८५] की तरह अपनी इस सफलता के लिए अभिमानपूर्वक

। पीठ भी ठोंक ले सकता हूँ। सट्टा बाजार में प्रेम का भी शासन होता है—अगर हम उसे केवल एक भावुकतापूर्ण आलकारिक ढंग से नही देखते। इसका कारण यह है कि उसमे (सट्टे बाजार में) प्रत्येक व्यक्ति को दूसरों से सुख को प्राप्ति होती है। प्रेम मे भी ऐसा ही होना चाहिए और व्यवहार मे होता भी ऐसा ही है। अगर अपने कार्यों के फल के सम्बन्ध मे सही-सही अनुमान लगाकर मैं जुआ खेलता हूँ और इसलिए उसमें जीत जाता हूँ तो मैं न सिर्फ फायरवाखवादी नैतिकता के समस्त कठोर से कठोर आदेशों का पालन करता हूँ, बल्कि, साथ ही साथ, एक धनी व्यक्ति भी बन जाता हूँ! दूसरे शब्दों मे, फायरबाख की नैतिकता आधुनिक पूँजीवादी समाज के लिए ही बनी मालूम होती है, यद्यपि स्वयम् फायरबाख की न तो शायद ऐसी इच्छा रही होगी और न उसने इसकी कल्पना ही की रही होगी।

पर प्रेम! —हाँ, फायरबाख के दर्शन मे प्रेम का हर जगह और हर समय साम्राज्य है। प्रेम उसका वह अद्भुत देवता है जो व्यावहारिक जीवन की सभी कठिनाइयो पर विजय पाने मे मदद देता है। — और यह भी एक ऐसे समाज मे जो एक दूसरे के सर्वथा विरोधी हित रखने वाले वर्गों मे बँटा हुआ है! यहाँ आकर उसके दर्शन के क्रान्तिकारी रूप का अन्तिम अवशेप भी अन्तर्धान हो जाता है। रह जाती है केवल वही पुरानी बकवास: एक दूसरे से प्रेम करो! — लिंग अथवा हैसियत का विचार किये बिना एक दूसरे को छाती से लगा लो! — मेल-मिलाप का एक सार्वत्रिक उत्सव मनाओ!

संक्षेप में, नैतिकता के फायरवाखवादी सिद्धान्त का भी वही हश्र होता है जो उसके पहले तमाम ऐसे सिद्धान्तों का हुआ है। इस सिद्धान्त की रचना तमाम कालो, तमाम कौमो, तथा तमाम परिस्थितियों के लिए की गयी है: और ठीक इसी कारण से वह कभी भी और किसी भी जगह काम नहीं देता। जहाँ तक वास्तविक दुनिया का सम्बन्ध है, इसमे वह उतना ही बेकार साबित होता है जितना कि काण्ट का विवेक

का आदेश बेकार साबित हुआ था ! वास्तव मे, प्रत्येक वर्ग की, यहाँ तक कि प्रत्येक पेशे की, अपनी निजी नैतिकता होती है । और बिना किसी मुसीबत मे पड़े हुए इस नैतिकता का जब भी वह उल्लघन कर सकता है वह बिना किसी हिचक के करता है । और प्रेम, जिसका काम सबको मिलाना है, प्रकट होता है युद्धो के रूप मे, झगड़ो, मुकदमो, घरेलू कलह और तलाको के रूप में ! उसके नाम पर एक दूसरे का हर तरह से शोपण किया जाता है ।

आख़िर यह कैसे हुआ कि फायरबाख़ ने जो इतना बड़ा काम किया था उसका परिणाम इतना अलाभकर निकला ? इसका कारण बहुत सीधा है । इसका कारण यह है कि फायरबाख हवाई दुनिया से—जिसके लिए उसके दिल मे इतनी जबर्दस्त घृणा है—वास्तविकता की जीवित दुनिया मे आने की कभी कोशिश नही करता । अपनी पूरी ताकत से वह प्रकृति और मनुष्य के नामो की माला जपता रहता है । किन्तु ये चीज़ें उसके लिए मात्र शब्द बनी रहती हैं । वास्तविक प्रकृति अथवा वास्तविक मानव के सम्बन्ध मे कोई भी निश्चित चीज़ हमे बता सकने की क्षमता उसमे नही है । फायरबाख़ के अमूर्त मानव से वास्तविक जीवित मनुष्यो के पास आदमी तभी पहुँच सकता है जब कि वह उन्हे इतिहास के कर्त्ताओ के रूप मे देखे । और फायरबाख ठीक इसी चीज को करने से इन्कार करता था । यही वजह थी कि १८४८ के वर्ष को वह बिल्कुल नही समझ सका था । इस वर्ष के फलस्वरूप, वास्तविक दुनिया से उसका एकदम सम्बन्ध-विच्छेद हो गया था, वह एकान्त की दुनिया में चला गया था । इस चीज की भी जिम्मेदारी मुख्यतया जर्मनी की तत्कालीन परिस्थितियो पर ही थी । इन परिस्थितियो ने ही उसे दुःखपूर्ण एकाकी जीवन बिताने के लिए मजबूर कर दिया था ।

परन्तु फायरबाख ने जो कदम नही उठाया था उसका उठाया जाना जरूरी था । फायरबाख़ के नये धर्म का मूल निरपेक्ष (अमूर्त) मानव की पूजा थी । इसके स्थान पर वास्तविक मानवो और उनके ऐतिहासिक

विकास के विज्ञान की पद-प्रतिष्ठा का किया जाना आवश्यक था। फायर-वाख़ के दर्शन से आगे बढकर, इस काम का श्रीगणेश १८४५ मे मार्क्स ने अपने ग्रन्थ पवित्र परिवार में किया था।

४

स्ट्रास, वेयर, स्टर्नर, फायरवाख़ —ये सब हीगेलवादी दर्शन की शाखाओ के ही प्रतिनिधि थे, क्योकि दर्शन के क्षेत्र को इन लोगों ने तिलांजलि नही दी थी। यीशु की जीवनी तथा सिद्धान्तशास्त्र लिखने के वाद, दर्शन के क्षेत्र में, रेनान की तरह की साहित्यिक कृतियां तथा धार्मिक इतिहास से सम्वन्धित चीज़ों की ही सृष्टि स्ट्रॉस करता रहा था। वेयर ने ईसाई धर्म की उत्पत्ति के इतिहास के ही क्षेत्र में सिर्फ़ कुछ सफलता प्राप्त की थी, किन्तु इस क्षेत्र मे उसने जो काम किया था वह महत्व-पूर्ण था। वाकुनिन ने स्टर्नर को प्रूधो से मिला दिया था और उनके मेल से जो चीज़ तैयार हुई थी उस पर "अराजकतावाद" का लेविल लगा दिया था, किन्तु स्टर्नर इसके वाद भी एक कौतूहल की ही चीज़ वना रहा। दार्शनिक के रूप में अकेले फ़ायरवाख़ का ही महत्व था। किन्तु न केवल दर्शन —जिसे तमाम विशेप विज्ञानों से ऊपर तथा विज्ञानों को एक सूत्र में जोड़ने वाला विज्ञानों का विज्ञान वताया जाता है— उसके लिए एक अलघ्य दीवार, एक अभेद्य पवित्र वस्तु ही वना रहा, वल्कि, एक दार्शनिक की हैसियत से भी वह अधर में ही लटका रहा। नीचे वह एक भौतिकवादी था और ऊपर भाववादी। आलोचना करके हीगेल का खण्डन कर सकने की क्षमता उसमे नही थी; इसलिए उसने उसे वेकार कहकर एक तरफ फेंक दिया। जहाँ तक स्वयम् उसका प्रश्न था, हीगेलवादी दार्शनिक प्रणाली की ज्ञान-गंगा की तुलना मे वह कोई भी वडी चीज़ प्राप्त नहीं कर सका था। उसकी एकमात्र उपलब्धि था प्रेम का एक आडम्वरी धर्म तथा एक क्षुद्र, नपुसक नैतिकता।

किन्तु, हीगेलवादी मत के विघटन के अन्दर से एक और ही प्रवृत्ति

उत्पन्न हुई थी। उसके अन्दर से विकसित होने वाली यही वह एक प्रवृत्ति थी जिससे वास्तविक फल निकला है। यह प्रवृत्ति मूलतः मार्क्स* के नाम के साथ जुड़ी हुई है।

यहाँ भी भौतिकवादी दृष्टिकोण को अपनाकर ही हीगेलवादी दर्शन से सम्बन्ध-विच्छेद किया गया था। इसका मतलब हुआ कि यह दार्शनिक प्रवृत्ति इस बात के लिए कृत-सकल्प थी कि वास्तविक जगत् को—प्रकृति और इतिहास को —वह ठीक उसी रूप में देखेगी जिसमें हर उस व्यक्ति को वह दिखलाई देती है जो उसे पूर्वकल्पित भाववादी धारणाओं से मुक्त होकर देखता है। तै कर लिया गया था कि हर उस भाववादी उड़ान को निर्ममता के साथ ठुकरा दिया जायगा जिसका तथ्यों के साथ —किसी काल्पनिक नही, बल्कि उनके अपने वास्तविक अन्तर्सम्बन्धों के अन्तर्गत —तारतम्य नही बैठता। और भौतिकवाद का इसके अलावा और कुछ

---

* यहाँ मैं एक व्यक्तिगत सफाई देने की इजाजत चाहता हू। इस सिद्धान्त में मेरे अशदान का पिछले दिनों में, बार-बार उल्लेख किया गया है। इसलिए, इस बात को बिल्कुल साफ कर देने के लिए, मेरे लिए कुछ शब्द न कहना अब एक तरह से कठिन हो गया है। इस बात से तो मैं इन्कार नहीं कर सकता कि मार्क्स के साथ ४० वर्ष के अपने सहयोग-काल में तथा उससे पहले भी, इस सिद्धान्त की नींव रखने के सिलसिले में, और विशेष तौर से उसका विकास करने के सिलसिले में, मेरा भी कुछ स्वतंत्र अशदान था। किन्तु उसके मुख्य मूलभूत सिद्धान्तों की स्थापना करने का श्रेय, खासतौर से अर्थशास्त्र और इतिहास के क्षेत्र में, मार्क्स को ही है। इन सबसे अधिक, जिस अन्तिम पैने रूप में इस सिद्धान्त को सूत्रबद्ध किया गया है उसका श्रेय मार्क्स को है। अधिक से अधिक कुछ विशेष क्षेत्रों में किये गये मेरे काम को छोड़कर, मैंने जो कुछ किया था उसे मार्क्स मेरे बिना भी भली-भाँति कर सकते थे। मार्क्स ने जो कुछ किया उसे मैं नहीं कर सकता था। मार्क्स हम सबसे ऊंचे थे, वे दूर तक देखते थे, और उनका दृष्टिकोण अधिक व्यापक तथा तीक्ष्ण था। मार्क्स एक जीनियस थे—असामान्य मेधा के स्वामी थे; बाकी हम सबको, अधिक से अधिक, प्रतिभाशाली कहा जा सकता था। उनके बिना यह सिद्धान्त वह न होता जो आज है। इसलिए यह ठीक ही है कि उसका नामकरण उनके नाम पर हुआ है। **(एंगेल्स की टिप्पणी)**

मतलब भी नही है। किन्तु यहाँ पर पहली बार भौतिकवादी विश्व-दृष्टिकोण को सचमुच गम्भीरता से स्वीकार किया गया था। और फिर उसे—कम से कम उसकी मूल विशेषताओं में—सुसगत रूप से ज्ञान के तमाम क्षेत्रों मे लागू किया गया था।

हीगेल को एकदम फेंक नही दिया गया। इसके विपरीत, उनके क्रान्तिकारी पक्ष से, जिसका ऊपर वर्णन किया जा चुका है, अर्थात् उनकी द्वन्द्वात्मक पद्धति से ही श्रीगणेश किया गया। परन्तु, अपने हीगेलवादी स्वरूप में यह पद्धति उपयोग-योग्य नही थी। हीगेल के कथनानुसार, द्वन्द्ववाद विचार का आत्म-विकास है। परम विचार न केवल शाश्वत काल से मौजूद है—कहाँ पर, यह अज्ञात है—बल्कि सम्पूर्ण मौजूदा संसार की वास्तविक जीवित आत्मा भी वही है। उन तमाम प्रारम्भिक अवस्थाओं से, जिनका तर्कशास्त्र में विस्तार के साथ वर्णन किया गया है, निकलता हुआ वह अपने-आप मे विकसित हो जाता है। वे सभी अवस्थाएँ उसमें सन्निहित है। फिर वह प्रकृति का रूप धारण करके अपना "अलगाव कर लेता है" (alienates)। वहाँ, बिना अपनी चेतना के, प्रकृति की अनिवार्यता के भेष में, एक नये विकास-क्रम की अवस्था से वह गुज़रता है। अन्त में, मनुष्य के रूप में वह फिर आत्म-चेतना प्राप्त कर लेता है। फिर अपने बिल्कुल भौड़े रूप से शुरू करके यह आत्म-चेतना इतिहास मे अपना अग-विन्यास करती है और, अन्त मे, हीगेलवादी दर्शन के रूप में, परम विचार पुनः अपनी पूर्ण सत्ता को प्राप्त कर लेता है। इस भाँति, हीगेल के अनुसार, प्रकृति और इतिहास मे जो द्वन्द्वात्मक विकास दिखलाई देता है, अर्थात्, निम्नतर से उच्चतर दिशा मे होने वाली प्रगति मे जो कार्य-कारण का अन्तर्सम्बन्ध दिखलाई देता है और जो आखिर मे तमाम टेढ़े-मेढ़े रास्तो तथा अस्थायी उलट-पलटों से होता हुआ अपनी सत्ता को स्थापित करता है, वह शाश्वत काल से चले आने वाले विचार के आत्म-विकास की मात्र एक नक़ल *(Abklatsch)* है। यह आत्म-विकास कहाँ होता रहा है यह कोई नही जानता, किन्तु हर हालत मे वह

चिन्तनशील मानवी मस्तिष्क से स्वतंत्र ही कही होता रहा है। इस विचारधारात्मक विकृति का अन्त करना आवश्यक था। धारणाओ को एक बार फिर हमने भौतिकवादी ढग से अपने मस्तिष्को मे ग्रहण किया—अर्थात् वास्तविक वस्तुओ को परम धारणा (विचार) की इस या उस अवस्था के प्रतिरूपो के रूप मे देखने के बजाय हमने उन्हे वास्तविक वस्तुओ के प्रतिरूपो *(Abbilder)* की तरह देखा। इस भाँति द्वन्द्ववाद गति के आम नियमों का विज्ञान बन गया—बाह्य जगत् तथा मानवी चिन्तन दोनो के गति सम्बन्धी आम नियमो का विज्ञान। ये नियम दो प्रकार के हैं। मूल तत्व मे वे एक ही है, किन्तु उनकी अभिव्यक्ति के रूप मे अन्तर है। मानवी मस्तिष्क उनको सचेतन ढग से लागू कर सकता है, किन्तु प्रकृति के क्षेत्र मे तथा अभी तक अधिकाशतया मानवी इतिहास के क्षेत्र मे भी ये नियम अचेत रूप से, आकस्मिक लगने वाली घटनाओ की एक अन्तहीन शृखला के बीच, एक बाह्य आवश्यकता के रूप मे काम करते आये है। चीजो को इस तरह से ग्रहण करने के फलस्वरूप, अवधारणाओ (विचारो) का द्वन्द्ववाद स्वयम् वास्तविक ससार की द्वन्द्वात्मक गति का सचेत प्रतिबिम्ब मात्र बन गया और, इस प्रकार, हीगेल के द्वन्द्ववाद को सीधा खड़ा कर दिया गया, अथवा, यह कहना चाहिए कि, पहले वह सिर के बल खडा हुआ था और अब उसे उसके पैरो के ऊपर खडा कर दिया गया। यह भी कुछ कम उल्लेखनीय बात नहीं है कि इस भौतिकवादी द्वन्द्ववाद की खोज, जो वर्षो से काम का हमारा सबसे अच्छा औजार और हमारा सबसे तेज हथियार रहा है, केवल हम दो ने ही नही की थी, बल्कि, हमसे और यहाँ तक कि हीगेल से भी स्वतंत्र रूप से, एक जर्मन मजदूर ने, डीट्जगेन* ने भी कर ली थी।

---

* देखिए : *Das Wesen der menschlichen Kopfarbeit, dargestellt von eimen Handarbiter* (मानव-मस्तिष्क के कार्य की प्रकृति हाथ से काम करने वाले एक मजदूर द्वारा लिखित) हैम्बर्ग, मेसनर, १८६९। (एंगेल्स की टिप्पणी)

इस प्रकार, हीगेलवादी दर्शन के क्रान्तिकारी पक्ष को फिर से जिन्दा कर लिया गया। साथ ही साथ, उसे उस भाववादी साज-शृंगार से मुक्त कर दिया गया जिसकी वजह से हीगेल के हाथो उसे सुसंगत रूप मे लागू नही किया जा सका था। संसार को बनी-बनायी वस्तुओं के एक सग्रह के रूप में नही, बल्कि प्रक्रियाओं के एक ऐसे समूह के रूप में देखा जाना चाहिए जिसके अन्तर्गत न केवल ऊपर से स्थायी दिखलाई देने वाली वस्तुएँ, बल्कि हमारे मस्तिष्कों में उनके मानसिक प्रतिरूप भी, अवधारणाएँ भी, अनवरत गति से जीवन और निर्वाण की दशाओं से गुजरती रहती है; जिसके अन्तर्गत, ऊपर से दिखलाई देने वाली समस्त आकस्मिकता तथा समस्त अस्थायी अपकर्षो के बावजूद, अन्त मे, प्रगतिशील दिशा में विकास की ही विजय होती है — यह महान् बुनियादी विचार, यह महान् मूलभूत समझ, विशेष तौर से हीगेल के काल से, साधारण चेतना में इतनी मजबूती से पैठ गयी है कि अब इस आम बात का मुश्किल से ही कभी कही विरोध किया जाता है। किन्तु इस मूलभूत विचार को शब्दों में स्वीकार कर लेना और परीक्षण के प्रत्येक क्षेत्र में ब्योरे के साथ वास्तविक रूप में उसको लागू करना —ये दो भिन्न-भिन्न चीजें है। परन्तु जांच-पडताल का कार्य सदा यदि इसी दृष्टिकोण से आरम्भ किया जाता है, तो अन्तिम समाधानो तथा शाश्वत सत्यो की बात खत्म हो जाती है, फिर उनकी माँग का सदा के लिए अन्त हो जाता है। आदमी को फिर सदा इस चीज़ का ध्यान रहता है कि समस्त उपार्जित ज्ञान की एक अनिवार्य सीमा होती है, तथा वह उन परिस्थितियों द्वारा प्रभावित होता है जिनमे उसे प्राप्त किया जाता है। दूसरी तरफ, फिर आदमी ने अपने को उन विरोधो (antitheses) से — सत्य और झूठ, अच्छे और बुरे, अभिन्न और भिन्न-भिन्न, आवश्यक और आकस्मिक के बीच के विरोधों की बात से आतंकित नही होने दिया। पुराने अधिभूतवाद के लिए, जो अब भी प्रचलित है, ये विरोध अलंघ्य थे। पर अब आदमी समझ गया था कि इन विरोधों (विपरीतताओं) की सत्यता

केवल सापेक्ष है; कि जिसे इस समय सच्चा माना जाता है उसका छिपा हुआ झूठ का भी एक पहलू है जो बाद मे अपने आप को प्रकट करेगा, ठीक उसी तरह जिस तरह कि जिसे आज झूठा माना जाता है उसका सत्य का भी एक पक्ष है जिसकी वजह से पहले उसे सत्य समझा जा सका था। आदमी जानता है कि जिसे आवश्यक बताया जाता है उसकी रचना केवल आकस्मिक घटनाओ से हुई है और तथाकथित आकस्मिक उस रूप का नाम है जिसकी ओट मे आवश्यकता अपने को छिपाये रखती है — इत्यादि।

जाँच-पडताल तथा चिन्तन के उस पुराने तरीके के, जिसे हीगेल ने "अधिभूतवादी" तरीका कहा है, अस्तित्व का उसके जमाने मे बहुत काफी ऐतिहासिक औचित्य था। यह तरीका **वस्तुओं** को पहले से निर्धारित, स्थिर तथा स्थायी वस्तुओ के रूप मे देखना पसन्द करता था। इस तरीके के अवशेष अब भी लोगो के दिमागों में मजबूती से जमे हुए है। प्रक्रियाओ की जॉच-पडताल सम्भव हो सके इसके लिए आवश्यक था कि पहले वस्तुओ की जॉच-पडताल की जाय। इसके पहले कि आदमी यह देख सके कि किसी वस्तु मे क्या परिवर्तन हो रहे है यह जानना जरूरी था कि वह विशेष वस्तु है क्या। प्रकृति विज्ञान के सम्बन्ध मे भी यही बात थी। पुराने अधिभूतवाद का, जो वस्तुओ को पूरी बनी-बनाई चीजो के रूप मे देखता था, जन्म एक ऐसे प्रकृति विज्ञान के गर्भ से हुआ था जो मृत तथा जीवित वस्तुओ की पूरे तौर से तैयार चीज़ो के रूप मे जाँच-पड़ताल करता था। किन्तु जब जाँच-पड़ताल का यह काम इतना आगे बढ गया कि यह सम्भव हो गया कि उन परिवर्तनो की व्यवस्थित ढग से जॉच-पडताल करने के कार्य को हाथ मे लेने का निर्णायक कदम उठाया जा सके जो स्वयम् प्रकृति के अन्दर इन वस्तुओं मे होते है, तब, दर्शन के क्षेत्र मे भी, पुराने अधिभूतवाद की मृत्यु का घण्टा बज गया। और, वास्तव मे, पिछली शताब्दी के अन्त काल तक प्रकृति विज्ञान मुख्यतया एक **संग्रह करने वाला** विज्ञान था, पूरे तौर

से तैयार चीजों का विज्ञान; किन्तु, हमारी शताब्दी में, वह मूलतः व्यवस्थित करने वाला विज्ञान बन गया है, — प्रक्रियाओं का, इन वस्तुओं की उत्पति और विकास का, तथा उन अन्तर्सम्बन्धों का विज्ञान बन गया है जो प्रकृति की इन तमाम प्रक्रियाओं को सूत्रबद्ध करके एक महान् इकाई की रचना करते है। दैहिकी की, जो पौदों और पशुओं के शरीरों में घटनेवाली प्रक्रियाओ की जाँच-पड़ताल करती है; भ्रौणिकी की, जो जीवाणु अवस्था से परिपक्वता की अवस्था तक प्रत्येक शरीर की विकास-क्रिया की छानबीन करने का काम करती है; भौमिकी की, जो पृथ्वी के तल के क्रमशः निर्माण की क्रिया की जाँच-पड़ताल करती है — इन सबकी उत्पत्ति हमारी ही शताब्दी मे हुई है।

परन्तु, इन सबसे अधिक, प्राकृतिक प्रक्रियाओं के अन्तर्सम्बन्ध-विषयक हमारे ज्ञान को अत्यन्त तेजी से आगे बढ़ाने मे जिन चीजों ने मदद दी है वे तीन महान खोज हैं। उनमे पहली खोज कोशिका की है। इसी इकाई की गुणन तथा विभेदन-क्रिया के आधार पर पौदे और पशु का सम्पूर्ण शरीर विकसित होता है। इससे न केवल यह बात साफ हो जाती है कि समस्त उच्चतर प्राणियो का विकास तथा प्रस्फुटन एक ही सामान्य नियम के अनुसार होता है; बल्कि, कोशिका की परिवर्तित होने की क्षमता के आधार पर वह मार्ग भी स्पष्ट हो जाता है जिस पर चलकर प्राणी अपनी जातियों को बदल ले सकते है, और, इस भाँति, व्यक्तिगत विकास की अवस्था से भी आगे बढ़ सकते है।

दूसरी खोज ऊर्जा के रूपान्तरण के सिद्धान्त की है। इसने यह सिद्ध कर दिया है कि वे तमाम तथाकथित शक्तियाँ जो सबसे पहले निर्जीव प्रकृति में सक्रिय दिखलाई देती है —यानी यांत्रिक शक्ति तथा उसकी सम्पूरक — तथाकथित स्थितिज ऊर्जा, ऊष्मा, विकिरण (प्रकाश अथवा विकीर्ण ऊष्मा), विद्युत, चुम्बकत्व तथा रासायनिक ऊर्जा —ये सारी शक्तियाँ एक ही सर्वव्यापी गति की अभिव्यक्ति की नाना शक्लें (रूप) है। ये निश्चित अनुपातों में एक दूसरे के रूप मे परिवर्तित होती रहती

हैं जिससे कि उस चीज़ के स्थान में जिसकी एक निश्चित मात्रा लुप्त हो जाती है दूसरी चीज़ की एक निश्चित मात्रा का प्रादुर्भाव हो जाता है और, इस भाँति, प्रकृति की सम्पूर्ण गति उसके एक रूप के दूसरे रूप में रूपान्तरण की सतत क्रिया का रूप ले लेती है।

अन्तिम खोज, जिसे सबसे पहले एक सुसम्बद्ध रूप में डारविन ने निर्धारित किया था, इस चीज़ का प्रमाण थी कि प्रकृति की सजीव उत्पत्तियो का, जिनमे मानव भी शामिल है, हमारे चारो ओर आज जो भण्डार दिखलाई देता है वह विकास की एक ऐसी लम्बी क्रिया का परिणाम है जिसमे शुरू के चन्द एक-कोशीय कीटाणुओ से ही सबका प्रस्फुटन हुआ है। और ये कीटाणु स्वयम् ऐसे प्रोटोप्लाज़्म (जीव-द्रव्य) अथवा एल्बूमेन (अण्डुकल्प) से उत्पन्न हुए हैं जिनकी उत्पत्ति रासायनिक क्रियाओ से हुई थी।

इन तीन महान् खोजो की मदद से प्राकृतिक विज्ञान के क्षेत्र मे जो विशाल प्रगति हुई है उसकी वजह से अब हम ऐसे स्थान पर पहुँच गये हैं जहाँ न केवल हम यह दिखला सकते है कि विशिष्ट क्षेत्रों मे प्रकृति की प्रक्रियाओ के बीच पारस्परिक सम्बन्ध है, बल्कि यह भी सिद्ध कर सकते हैं कि ये समस्त विशिष्ट क्षेत्र भी पूरे तौर से आपस मे एक सूत्र मे बँधे हुए हैं। इस प्रकार, स्वयम् अनुभव-सिद्ध प्राकृतिक विज्ञान ने जो तथ्य प्रस्तुत कर दिये हैं उन्ही की सहायता से, प्रकृति के अन्दर पाये जाने वाले अन्तर्सम्बन्ध का एक पूर्ण चित्र लगभग एक व्यवस्थित रूप मे हम सामने प्रस्तुत कर दे सकते है। इस सर्वतोमुखी चित्र को प्रस्तुत करने के काम को पहले तथाकथित प्राकृतिक दर्शन का काम माना जाता था। वास्तविक, किन्तु अभी तक अज्ञात, अन्तर्सम्बन्धो के स्थान में आदर्श, काल्पनिक अन्तर्सम्बन्धो को रखकर तथा अप्राप्त तथ्यो की जगह मनगढन्त चीजो को पेश करके तथा वास्तविक रूप से रिक्त स्थानो की केवल दिमागी तौर से पूर्ति करके ही वह इस कार्य को सम्पन्न करता था। इस कार्य के क्रम मे उसने अनेक ओजस्वी विचारो की कल्पना की थी और बाद मे होने-

वाली अनेक खोजों के पूर्व संकेत दिये थे; किन्तु, साथ ही साथ, उसने काफ़ी चीजें ऐसी भी प्रस्तुत की थीं जो निरी वकवास थीं। और, दर-असल, इसके अलावा और कुछ हो भी नही सकता था। आज, जब कि अपने काल के लिए उपयुक्त, "प्रकृति का शृंखलावद्ध ज्ञान" प्राप्त करने के वास्ते केवल इस वात की आवश्यकता रह गयी है कि प्राकृतिक विज्ञान की जाँच-पड़ताल के परिणामो को केवल द्वन्द्वात्मक रूप से, अर्थात्, उनके अन्तर्सम्वन्ध जैसे है ठीक उसी रूप में हृदयगम कर लिया जाय; जब कि इस अन्तर्सम्वन्ध का द्वन्द्वात्मक स्वरूप प्रकृति वैज्ञानिकों के अधिभूतवादी ढंग से शिक्षित मस्तिष्को के अन्दर भी उनकी इच्छा के विरुद्ध घुसता जा रहा है, तो समझ लेना चाहिए कि प्राकृतिक दर्शन की इह लीला अब पूर्णतया समाप्त हो गयी! उसको फिर से जीवित करने का प्रत्येक प्रयत्न न केवल निष्प्रयोजन, वल्कि पीछे की ओर ले जाने वाला क़दम होगा।

परन्तु जो वात प्रकृति के सम्वन्ध में सही है—जिसे कि विकास की एक ऐतिहासिक क्रिया के रूप मे यहाँ स्वीकार कर लिया गया है—वही उसकी तमाम शाखाओं सहित समाज के इतिहास के सम्वन्ध में भी तथा उन तमाम विज्ञानो की समष्टि के सम्वन्ध में भी सही है जिनका मानवी (तथा दैवी) वस्तुओ से सम्वन्ध है। इस क्षेत्र में भी, इतिहास, इन्साफ़, धर्म, आदि के दर्शन का निर्माण घटनाओं के द्वारा स्पष्ट किये जा सकने वाले वास्तविक अन्तर्सम्वन्धो के स्थान में दार्शनिक के दिमाग में गढ लिये गये काल्पनिक अन्तर्सम्वन्धो को रखकर किया गया है; उसकी पूर्णता में तथा उसके अलग-अलग अगो मे भी इतिहास को विचारों के क्रमश: होते जाने वाले प्रत्यक्षीकरण के रूप मे समझा गया है—और, जैसा कि स्वाभाविक है, इसे स्वयम् दार्शनिक के अपने प्रिय विचारो के क्रमशः होते जाने वाले प्रत्यक्षीकरण के रूप मे ही हमेशा देखा-समझा गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार, इतिहास, अचेतन रूप से, किन्तु अनिवार्य रूप से, पहले से निर्धारित एक आदर्श लक्ष्य की ओर वढ़ता आया है। उदाहरण के लिए, हीगेल के दर्शन मे वह (इतिहास—अनु०) उसके परम विचार के प्रत्यक्षीकरण की

दिशा मे प्रगति करता आया है—और परम विचार की दिशा मे होने वाली यह अपरिवर्तनीय प्रवृत्ति ही ऐतिहासिक घटनाओ के आन्तरिक अन्तर्सम्वन्ध का आधार रही है ! इस प्रकार, वास्तविक, तव तक अज्ञात अन्तर्सम्वन्ध के स्थान मे एक नये रहस्यपूर्ण—अचेतन, अथवा क्रमश: चेतना-सम्पन्न होते जाने वाले—विधाता की स्थापना कर दी गयी थी। इसलिए, जिस प्रकार प्रकृति के क्षेत्र मे किया गया था उसी प्रकार यहाँ भी यह आवश्यक हो गया था कि वास्तविक अन्तर्सम्वन्धों का पता लगाकर इन मनगढ़न्त, कृत्रिम अन्तर्सम्वन्धो का अन्त कर दिया जाय। —अन्तिम रूप से इस कार्य का अर्थ यह होता है कि गति के उन आम नियमो को खोज निकाला जाय जो मानव समाज के इतिहास मे अपने को निर्देशक नियमो के रूप मे प्रकट करते हैं।

किन्तु, एक वात में समाज के विकास का इतिहास प्रकृति के विकास के इतिहास से मूलत: भिन्न सिद्ध होता है। प्रकृति मे—उसके ऊपर मनुष्य के घात-प्रतिघात की वात को अगर हम छोड़ दें—केवल अन्धी, अचेतन शक्तियाँ एक दूसरे पर घात-प्रतिघात करती रहती है और आम नियम इन्ही की परस्पर-क्रिया के माध्यम से काम करता है। जो तमाम चीजें होती हैं उनमे से कोई भी चीज सचेत ढग से इच्छित लक्ष्य के रूप मे नहीं होती—न उन असख्य प्रकट आकस्मिक घटनाओ के क्षेत्र में जो सतह पर दिखलाई देती है, और न उन अन्तिम परिणामो के क्षेत्र मे जो इन आकस्मिक घटनाओ मे अन्तर्निहित नियमितता की पुष्टि करते हैं। इसके विपरीत, समाज के इतिहास के क्षेत्र मे समस्त कर्त्तागण चेतनावान होते है, वे सकल्प अथवा गाढाभिलापा के साथ काम करने वाले मनुष्य होते हैं, वे निश्चित लक्ष्यो की दिशा मे काम करते हैं। किसी सचेत उद्देश्य के विना, किसी अभीप्सित लक्ष्य के विना कुछ नही होता। यह फर्क यद्यपि ऐतिहासिक जाँच-पड़ताल के लिए महत्वपूर्ण है, विशेप तौर से अलग-अलग युगो और घटनाओ की जाँच-पडताल के लिए, —किन्तु इस वात को वह नही वदल सकता कि इतिहास का क्रम किन्ही आन्तरिक आम नियमो से

निर्देशित होता है। क्योंकि, यहाँ भी, समग्रता में, तमाम व्यक्तियों के अभीप्सित लक्ष्यों के बावजूद, संयोग (आकस्मिकता) का ही राज्य फैला दिखलाई देता है। जिस चीज़ की इच्छा की जाती है वह विरले ही होती है; अधिकांशतया तो नाना अभीप्सित लक्ष्य एक-दूसरे को काट देते हैं और आपस में टकरा जाते हैं, अथवा प्रारम्भ से ही ये लक्ष्य असाध्य होते हैं, अथवा उन्हे प्राप्त करने के साधन अपर्याप्त होते हैं। इस प्रकार, असंख्य वैयक्तिक इच्छाओं तथा वैयक्तिक कार्यों के संघर्ष इतिहास के क्षेत्र में एक ऐसी स्थिति पैदा कर देते हैं जो पूर्णतया उस स्थिति के समान होती है जो अचेतन प्रकृति के क्षेत्र में पायी जाती है। कार्यों के लक्ष्य तो अभीप्सित होते है, किन्तु इन कार्यों के फलस्वरूप जो वास्तविक परिणाम निकलते है वे अभीप्सित नही होते; अथवा जब कभी वे अभीप्सित लक्ष्य के अनुरूप प्रतीत होते है तब भी उनके जो अन्तिम फल निकलते हैं वे अभीप्सित फलों से सर्वथा भिन्न होते हैं। इस प्रकार, समग्र रूप से देखने पर, ऐतिहासिक घटनाएँ भी सयोग से ही निर्देशित मालूम होती हैं। किन्तु जहाँ सतह पर संयोग (आकस्मिक घटनाओ) का आधिपत्य होता है, वास्तव मे वहाँ भी सदैव आन्तरिक, छिपे हुए नियमों से ही वह निर्देशित होता है। प्रश्न केवल इन नियमों को खोज निकालने का होता है।

अपने इतिहास का मनुष्य स्वयम् निर्माण करते हैं — उसका परिणाम चाहे जो कुछ हो। प्रत्येक व्यक्ति अपने अभीप्सित लक्ष्य को प्राप्त करने की सचेत रूप से चेष्टा करता है। भिन्न-भिन्न दिशाओं में काम करने वाली ऐसी अनेक इच्छाओं तथा बाह्य जगत् पर पड़ने वाले उनके नानाविधि प्रभावों का संयुक्त परिणाम ही इतिहास होता है। इस तरह, यह बात भी महत्वपूर्ण होती है कि अनेक व्यक्ति किस चीज की इच्छा रखते हैं। इच्छा —गाढ़ाभिलाषा, अथवा सोच-विचार से निश्चित होती है। किन्तु वे उत्तोलक (कारण) जो तात्कालिक रूप से गाढ़ाभिलाषा अथवा विचारों को निश्चित करते हैं नाना प्रकार के होते है। आंशिक रूप से बाह्य वस्तुएँ ऐसे उत्तोलक बन सकती है; आंशिक रूप से आदर्शवादी

प्रेरणाएँ, महात्वाकांक्षाएँ, "सत्य तथा न्याय के लिए उत्साह," व्यक्तिगत घृणा की भावना, अथवा तरह-तरह की मात्र व्यक्तिगत सनकें तक इन उत्तोलको का काम कर सकती है। किन्तु, एक ओर तो, हम इस चीज को देख चुके है कि इतिहास के क्षत्र मे सक्रिय अनेक व्यक्तिगत इच्छाओं के फलस्वरूप अधिकाशतया ऐसे परिणाम निकलते हैं जो उन परिणामो से सर्वथा भिन्न होते है जो अभीप्सित होते है— और वहुधा तो अभीप्सित परिणामो के वे विल्कुल उल्टे होते है, इसलिए, सम्पूर्ण परिणाम के सन्दर्भ मे, व्यक्तियो की इच्छा-आकांक्षाएँ भी केवल गौण महत्व रखती है। दूसरी ओर, यह प्रश्न उठता है कि तव फिर इन इच्छा-आकाक्षाओ के पीछे कौन-सी चालक शक्तियाँ काम करती है? वे कौन से ऐतिहासिक कारण है जो कर्त्ताओ के मस्तिष्कों मे इन प्रेरणाओं (इच्छा-आकांक्षाओ) का रूप ले लेते है?

पुराने भौतिकवाद ने यह प्रश्न अपने से कभी पूछा ही नही था। इसलिए, इतिहास सम्वन्धी उसकी धारणा, अगर उसकी कोई धारणा है भी, मूलत: उपयोगितावादी है। हर चीज का निर्णय वह कार्य के प्रयोजनों (प्रेरणाओ) के आधार पर करता है। इतिहास के रगमच पर काम करने वाले मनुष्यों को वह उत्तम (सच्चरित्र) और नीच (दुश्चरित्र) की श्रेणियो मे वाँट देता है और फिर देखता है कि, आमतौर से, उत्तम लोग ठग लिये जाते है और नीच लोग जीत जाते है। अस्तु, पुराने भौतिकवाद को लगता है कि इतिहास के अध्ययन से कोई वहुत ज्ञानवर्धक वस्तु नही प्राप्त की जा सकती, और हमे भी यह स्पष्ट हो जाता है कि इतिहास के क्षेत्र मे पहुँचकर पुराना भौतिकवाद स्वयम् अपने प्रति अनुत्तरदायी वन जाता है, क्योकि, इसके वजाय कि वह इस वात की छानवीन करे कि इस क्षेत्र मे काम करने वाली आदर्श प्रेरक शक्तियो (भाववादी प्रयोजनो) के पीछे क्या है, इन प्रेरक शक्तियो की परिचालक शक्तियाँ क्या है, वह इन आदर्श-प्रेरक शक्तियों को (भाववादी प्रयोजनों को) ही अन्तिम कारण मान लेता है। असंगति इस वात में नही है कि आदर्श (भाववादी) प्रेरक

शक्तियों (या प्रयोजनों) की सत्ता को स्वीकार कर लिया गया है, वल्कि इस वात मे है कि जाँच-पड़ताल के काम को इस वात का पता लगाने के लिए और आगे नही वढ़ाया जाता कि इन आदर्श (भाववादी) प्रेरक शक्तियों के पीछे कौन कारण काम करते हैं। दूसरी तरफ़, इतिहास का दर्शन, विशेप रूप से हीगेल का दर्शन, इस वात को स्वीकार करता है कि इतिहास के रगमच पर काम करने वाले मनुष्यो की प्रत्यक्ष तथा वास्तविक रूप से काम करने वाली प्रेरणाएँ भी ऐतिहासिक घटनाओं का अन्तिम कारण कदापि नही होती; इन प्रेरणाओ के पीछे दूसरी प्रेरक शक्तियाँ होती है जिनकी खोज की जानी चाहिए। किन्तु यह दर्शन इन शक्तियों को स्वयम् इतिहास के अन्दर नही ढूँढता, वल्कि वह उन्हे बाहर से, दार्शनिक विचारधारा के क्षेत्र से इतिहास के क्षेत्र मे लाता है। उदाहरण के लिए, प्राचीन यूनान के इतिहास की स्वयम् उसके आन्तरिक अन्त-संम्वन्धों के आधार पर व्याख्या करने के वजाय, हीगेल केवल यह कह देता है कि वह "सौन्दर्यमय वैयक्तिकता के स्वरूपो" का प्रस्फुटन है, एक "कलाकृति" का प्रत्यक्षीकरण है—इसके अतिरिक्त कुछ नही ! प्राचीन यूनानियो के विषय मे हीगेल ने बहुत-कुछ ऐसा भी लिखा है जो उदात्त और गम्भीर है, किन्तु उसके कारण इस चीज़ को कहे विना नही हम आज रह सकते कि इस तरह की व्याख्या से, जो मात्र शव्द-जाल है, हमें सन्तुष्ट नही किया जा सकता।

इसलिए, जव यह सवाल उठता है कि उन परिचालक शक्तियो की जाँच-पड़ताल की जाय जो —चेतन अथवा अचेतन रूप से, और वास्तव में, वहुधा अचेतन रूप से ही — इतिहास के रगमच पर काम करने वाले मनुष्यो की प्रेरणाओ के पीछे काम करती है और, अन्ततोगत्वा, जो इतिहास की वास्तविक परिचालक शक्तियों का काम करती है, तव प्रश्न यह नही होता है कि इक्के-दुक्के व्यक्तियो की — वे चाहे जितने वड़े व्यक्ति हो, —प्रेरणाओं की जाँच-पड़ताल की जाय, वल्कि यह होता है कि इस वात की जाँच-पड़ताल की जाय कि वे प्रेरणाएँ कौन सी है जो विशाल जन

समुदायो को, पूरी की पूरी कौमो को, तथा हर कौम के अन्दर पूरे के पूरे वर्गों को, आन्दोलित और गतिशील बना देती है — और, यह भी, केवल क्षण भर के लिए नही, उस क्षणिक सूखे भूसे की आग की तरह नही जो तुरन्त ही बुझ जाती है, बल्कि एक ऐसी स्थायी कर्मठता के लिए जो महान् ऐतिहासिक परिवर्तन पैदा करती है। उन परिचालक कारणो का पता लगा कर ही जो, कार्यरत जन समुदायो और उनके नेताओ — तथाकथित बड़े आदमियों — के मस्तिष्को मे, स्पष्ट अथवा अस्पष्ट रूप से, सीधे-सीधे अथवा सैद्धान्तिक, यहाँ तक कि गौरवान्वित रूप से, सचेत प्रेरणाओ के रूप मे प्रतिबिम्बित होते है, हम उन नियमो का पता-निशान पा सकते है जो सम्पूर्ण इतिहास के क्षेत्र मे तथा विशेष कालो और विशेष देशो मे शासन करते है। उस प्रत्येक वस्तु को जो मनुष्यो को गतिशील बनाती है उनके मस्तिष्कों के अन्दर से गुजरना होता है; परन्तु मस्तिष्क के अन्दर वह कौन-सा स्वरूप धारण करेगी यह बहुत कुछ उस वक्त की परिस्थितियो पर निर्भर करेगा। मजदूर यद्यपि उस तरह मशीनो को अब नही तोडते जिस तरह राइन के किनारे १८४८ मे वे उनके टुकड़े-टुकडे कर देते थे, किन्तु इसका मतलब यह कदापि नही होता कि अब उन्होने पूँजीवादी मशीन उद्योग के साथ सामंजस्य स्थापित कर लिया है।

किन्तु, पिछले तमाम कालो मे जहाँ इतिहास के इन परिचालक कारणो की जाँच-पडताल करना लगभग असम्भव था — क्योकि उनके और उनके परिणामो के परस्पर सम्बन्ध पेचीदा तथा प्रच्छन्न होते थे — वही हमारे वर्तमान युग ने इन परस्पर-सम्बन्धो को इतना सुबोध बना दिया है कि इस पहेली को हल किया जा सकता है। बडे पैमाने के उद्योग-धन्धो की स्थापना के बाद से, अर्थात्, कम से कम १८१५ की योरोपीय शान्ति-सन्धि के बाद से, यह बात इगलैण्ड के किसी आदमी से छिपी नही रही है कि वहाँ जो सारा राजनीतिक सघर्ष हो रहा है उसके मूल मे यह झगड़ा है कि दो वर्गो, यानी भू-स्वामियो के अभिजात वर्ग तथा पूँजीपति वर्ग (मध्यम वर्ग) मे से किस वर्ग का आधिपत्य हो। बोर्बनो के वापिस

आ जाने के वाद से, यही चीज फ्रान्स मे देखी गयी है । पुनर्स्थापना काल के, थायरी से लेकर गिज़ो, मिगने तथा थायर्स तक के इतिहासकार भी सब जगह कहते हैं कि मध्य युगो के वाद के समस्त फ्रान्सीसी इतिहास को समझने की भी यही कुजी है। और, १८३० के वाद से, मज़दूर वर्ग को, सर्वहारा वर्ग को दोनों ही देशो मे सत्ता के एक तीसरे प्रतिद्वन्द्वी (प्रतियोगी) के रूप मे स्वीकार कर लिया गया है। परिस्थितियां दरअसल इतनी स्पष्ट हो गयी थी कि इस वात को न देखने के लिए कि आधुनिक इतिहास की चालक शक्ति — कम से कम दो सवसे उन्नत देशो के अन्दर —इन तीन महान् वर्गो का आपसी संघर्ष तथा उनके हितो का टकराव है —आदमी को जानवूझकर अपनी आंखे वन्द कर लेनी पडती।

किन्तु ये वर्ग अस्तित्व मे कैसे आये थे ? पहले की विशाल, सामन्ती भू-सम्पत्ति की उत्पत्ति के विपय मे चाहे पहली ही नजर मे यह कहना सम्भव रहा हो कि वह —कम से कम आरम्भ मे —राजनीतिक कारणो से पैदा हुई थी, उसे वलपूर्वक कव्जा करके प्राप्त किया गया था, किन्तु पूजीपति वर्ग तथा सर्वहारा वर्ग के अस्तित्व के सम्वन्ध मे तो यह वात नही कही जा सकती। इनके सम्वन्ध मे तो साफ़-साफ़ और प्रत्यक्ष रूप से देखा जा सकता है कि इन दो महान् वर्गो का जन्म और विकास शुद्ध आर्थिक कारणों से हुआ था। और यह वात भी उतनी ही स्पष्ट है कि भूस्वामियो तथा पूंजीपति वर्ग के वीच सघर्ष का कारण, ठीक उसी तरह जिस तरह कि पूंजीपति वर्ग तथा सर्वहारा वर्ग के वीच भी सघर्ष का कारण, सर्वप्रथम और सर्वोपरि आर्थिक हित थे; राजनीतिक सत्ता की चाह केवल इन हितो को वढ़ाने के एक साधन के रूप मे की जाती थी। पूजीपति वर्ग तथा सर्वहारा वर्ग दोनो का उदय आर्थिक परिस्थितियो में हुए परिवर्तन के परिणाम-स्वरूप, और भी निश्चित रूप से कहा जाय तो उत्पादन के तरीके में हुए परिवर्तन के परिणाम-स्वरूप — हुआ था। इन दो वर्गो का विकास उस सक्रमण के कारण हुआ था जो उत्पादन के

क्षेत्र मे पहले दस्तकारो के सघ (गिल्ड) से कारखानो के हस्त-निर्माण मे, तथा फिर कारखानो के हस्तनिर्माण से भाप और यांत्रिक शक्ति से चलने वाले बड़े पैमाने के उद्योग-धन्धो मे हुआ था। एक विशेष अवस्था मे पहुँचकर पूजीपति वर्ग द्वारा चालू की गयी नयी उत्पादक शक्तियो के बीच —जिनके अन्तर्गत श्रम-विभाजन की व्यवस्था कायम की गयी थी और भिन्न-भिन्न काम करने वाले अनेक श्रमिको [Teılarbeiter] को मिलकर काम करने के लिए एक आम निर्माण-शाला (कारखाने) मे ला दिया गया था —तथा इन उत्पादक शक्तियो के माध्यम से विकसित होनेवाली विनिमय की परिस्थितियो और आवश्यकताओं के बीच तथा इतिहास द्वारा सौपी गयी और कानून द्वारा पवित्र बना दी गयी उत्पादन की मौजूदा व्यवस्था के बीच विरोध पैदा हो गया, अर्थात्, उनके तथा श्रमिक सघ (गिल्ड) के विशेषाधिकारो और सामन्ती व्यवस्था के अनेक व्यक्तिगत व स्थानीय विशेषाधिकारो के बीच (जो उन रियासतों के लिए जिन्हे विशेपाधिकार प्राप्त नही थे एक तरह की बेड़ियाँ बने हुए थे) विरोध पैदा हो गया। पूजीपति वर्ग जिन उत्पादक शक्तियो का प्रतिनिधित्व करता था उन्होने उत्पादन की उस व्यवस्था के विरुद्ध बग़ावत कर दी जिसके प्रतिनिधि सामन्ती भूस्वामी तथा श्रमिक संघो के मालिक थे। जो फल निकला वह ज्ञात है : सामन्ती बेडियाँ चकनाचूर कर दी गयी। इगलैण्ड मे यह काम धीरे-धीरे किया गया, फ्रान्स मे उसे एक ही प्रहार मे पूरा कर दिया गया। जर्मनी में यह क्रिया अब तक भी पूरी नही हुई। परन्तु जिस तरह विकास की एक खास अवस्था मे पहुँच कर कारखानों मे होने वाले हस्तनिर्माण का उत्पादन के सामन्ती तौर-तरीको से टकराव होने लगा था, ठीक उसी तरह बड़े पैमाने के उद्योग-धन्धो का अब उत्पादन की उस पूँजीवादी व्यवस्था के साथ टकराव होने लगा है जिसकी उत्पादन की सामन्ती व्यवस्था के स्थान मे स्थापना की गयी थी। इस व्यवस्था से, उत्पादन के पूंजीवादी तरीके की सकुचित सीमाओ से जकड़े ये उद्योग-धन्धे एक तरफ तो जनता के विशाल जन समुदाय को

अधिकाधिक मात्रा में साधन-हीन सर्वहारा बनाते चले जा रहे है और, दूसरी तरफ, ऐसी पैदावारो का अधिकाधिक बड़ा अम्बार लगाते चले जा रहे हैं जो बिक नही पाती। इसके फलस्वरूप एक विचित्र अन्तर्विरोध उत्पन्न हो गया है —एक तरफ अति-उत्पादन है और दूसरी तरफ आम जनता के बढते हुए दुख-दर्द हैं और ये दोनों एक दूसरे के कारण है। इस अन्तर्विरोध की अनिवार्य माँग है कि उत्पादन के तरीक़े को बदलकर उत्पादक शक्तियों को फिर मुक्त कर दिया जाय।

अस्तु, कम से कम आधुनिक इतिहास मे तो यह बात प्रमाणित ही हो गयी है कि समस्त राजनीतिक सघर्ष वर्ग सघर्ष होते हैं, तथा मुक्ति के लिए किये जाने वाले समस्त वर्ग सघर्षो का अन्तिम लक्ष्य, उनके अनिवार्य राजनीतिक स्वरूप के बावजूद – क्योंकि प्रत्येक वर्ग संघर्ष एक राजनीतिक संघर्ष होता है —आर्थिक मुक्ति प्राप्त करना होता है। इसलिए, कम से कम यहाँ पर तो, राजसत्ता —राजनीतिक व्यवस्था —गौण (या अधीन) होती है, और नागरिक समाज —आर्थिक सम्बन्धो का क्षेत्र —ही निर्णायक तत्व होता है। परम्परागत धारणा — जिसके प्रति हीगेल ने भी सम्मान व्यक्त किया था, यह थी कि निर्णायक तत्व राजसत्ता होती है तथा नागरिक समाज उसी के द्वारा निर्धारित होता है। ऊपर से ऐसा ही मालूम पड़ता है। जिस तरह यह आवश्यक होता है कि किसी अलग व्यक्ति के कार्यो से सम्बन्धित समस्त परिचालक शक्तियाँ उसके मस्तिष्क के अन्दर से गुजरें और उसे सक्रिय बनाने के लिए उसकी ख़ुद की इच्छा की प्रेरक शक्तियों का रूप ग्रहण कर ले, उसी तरह यह भी आवश्यक होता है कि नागरिक समाज की तमाम आवश्यकताएँ —इससे कोई फर्क नही पड़ता कि उस वक़्त किस वर्ग का शासन है —कानूनों के रूप मे सर्व-सामान्य की मान्यता प्राप्त करने के लिए राजसत्ता की इच्छा के रूप मे सामने आएँ। यह इस प्रश्न का ऊपरी पहलू है —वह पहलू जो स्वयम् स्पष्ट है। परन्तु, प्रश्न उठता है : व्यक्ति तथा राजसत्ता दोनों की —इस मात्र ऊपरी (बाह्य) इच्छा-शक्ति की अन्तर्वस्तु क्या है, और यह अन्तर्वस्तु

कहाँ से आयी है ? इच्छा सिर्फ इसी चीज़ की क्यों की जाती है और दूसरी किसी चीज की क्यों नही ? अगर हम इस चीज की छानवीन करे तो हमे पता चलता है कि, समग्र रूप मे लेने पर, आधुनिक इतिहास मे राजसत्ता की इच्छा नागरिक समाज की वदलती हुई आवश्यकताओं, इस या उस वर्ग के आधिपत्य, और, अन्त मे, उत्पादक शक्तियों तथा विनिमय के सम्वन्धों के विकास-क्रम से निर्धारित होती है।

किन्तु यदि हमारे आधुनिक युग मे भी, जिसमे उत्पादन तथा सम्वाद-वहन (सचार) के इतने विराट साधन मौजूद है, राजसत्ता एक ऐसी सत्ता नही है जिसका स्वतंत्र रूप से विकास होता हो, वल्कि एक ऐसी सत्ता है जिसके अस्तित्व तथा विकास की व्याख्या अन्तिम रूप से सामाजिक जीवन की आर्थिक परिस्थितियो के आधार पर ही की जा सकती है, तव पहले के उन तमाम जमानो के वारे मे तो यह वात और भी अधिक सच रही होगी जिनमें मनुष्य के भौतिक जीवन का उत्पादन कार्य इन प्रचुर सहायक साधनों की सहायता से नही किया जाता था और, इसलिए, जिनमे इस तरह के उत्पादन की आवश्यकता की और भी अधिक प्रभुता मनुष्यों के ऊपर रही होगी। समग्र रूप से देखने पर वड़े उद्योग-धंधों और रेलों के युग मे आज भी अगर राजसत्ता उत्पादन को कन्ट्रोल करने वाले वर्ग की आर्थिक आवश्यकताओ का ही—सकेन्द्रित रूप में—प्रक्षेपण (प्रतिविम्व) है, तव फिर उस युग मे राजसत्ता उस वर्ग का और भी अधिक प्रतिविम्व (प्रक्षेपण) रही होगी जो उत्पादन को कन्ट्रोल करता था जिसमे मनुष्यो की प्रत्येक पीढी को अपनी भौतिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए अपने जीवन-काल के औसतन कही वड़े भाग को लगाना पडता था और, इसलिए, जितने आज हम इन भौतिक आवश्यकताओ के आश्रित है इससे कही अधिक उसे उनका आश्रित रहना पड़ता था। पहले के युगो के इतिहास की ज्योंही इस दृष्टिकोण से गम्भीरतापूर्वक छानवीन की जाती है त्योंही प्रचुर रूप मे इस वात की पुष्टि हो जाती है। किन्तु, इस चीज़ पर यहाँ विचार नही किया जा सकता।

राजसत्ता तथा सार्वजनिक विधि-विधान का निर्धारण यदि आर्थिक संबन्धों से होता है तो, निस्सन्देह, निजी आचार-व्यवहार की भी निर्धारणा उन्हीं से होती है। वास्तव में, इस निजी आचार-व्यवहार का काम मूलतः उन आर्थिक सम्बन्धों को सही करार दे देना ही होता है जो व्यक्तियों के बीच मौजूद होते हैं और जो तत्कालीन परिस्थितियों में स्वाभाविक होते हैं। पर यह कार्य जिस रूप में होता है उसके काफी भिन्न-भिन्न स्वरूप हो सकते है। इंगलैण्ड की तरह, सम्पूर्ण राष्ट्रीय विकास के समानुकूल उनमें पूंजीवादी तत्व की प्राण-प्रतिष्ठा करके पुराने सामन्ती क़ानूनों (विधि-विधानों) को ही मुख्यतया बनाये रखा जा सकता है। सामन्ती नाम के खोल में इस भाँति सीधा-सीधा पूंजीवादी अर्थ डाला जा सकता है। किन्तु, वैसा भी हो सकता है जैसा कि योरोपीय महाद्वीप के पश्चिमी भाग में हुआ था। वहाँ रोमन कानून (विधि-विधान) को आधार-शिला के रूप में स्वीकार कर लिया गया था। रोम का यह विधि-विधान मालों का उत्पादन करने वाले समाज का पहला वह विधि-विधान था जो दुनिया में बना था। उसमें मालो के सीधे-सादे स्वामियों (खरीदने वालों और बेचने वालों, कर्जदारों और कर्ज देने वालों, ठेकों, इकरार-नामों, आदि) के समस्त मूल कानूनी सम्बन्धो का अत्यन्त विस्तार के साथ और सर्वथा बेजोड़ ढंग से विवरण प्रस्तुत किया गया था। इस रोमन क़ानून को यदि आधार-शिला के रूप मे स्वीकार कर लिया जाता है तो ऐसे समाजो के लिए, जो अब भी निम्न-पूजीवादी अथवा अर्द्ध-सामन्ती है, या तो सीधे-सादे अदालती अमल (सामान्य क़ानून) के द्वारा उसे सम्बन्धित समाज के स्तर तक नीचे ले आया जा सकता है या फिर, तथाकथित ज्ञानी और उपदेशक न्यायविदों की सहायता से, उसे क़ानून की एक ऐसी विशेष सहिता में ढलवा लिया जा सकता है जो उक्त सामाजिक स्तर के अनुरूप हो।—इन परिस्थितियों के अन्तर्गत, ऐसी संहिता क़ानूनी दृष्टिकोण से भी रद्दी होगी (उदाहरण के लिए, प्रशियाई **लैण्डरेख्त** को देखिए)। परन्तु, यह भी संभव है कि किसी

महान् पूंजीवादी क्रान्ति के बाद इसी रोमन विधि-विधान के आधार पर पूंजीवादी समाज की फ्रान्सीसी नागरिक संहिता *(Code Civil)* की तरह की एक क्लासिक (श्रेष्ठ) कानूनी सहिता का निर्माण कर लिया जाय। इसलिए, पूंजीवाद के कानूनी नियम यदि समाज की केवल आर्थिक जीवन-परिस्थितियो को ही कानूनी रूप मे प्रकट करते हैं तो, परिस्थितियो के अनुसार, इस काम को वे अच्छी तरह से भी कर सकते है और बुरी तरह से भी।

मनुष्य के ऊपर विचारधारात्मक सत्ता के रूप मे पहली चीज़ जो हमारे सामने आती है वह राजसत्ता है। अन्दरूनी और बाहरी हमलो से अपने सामूहिक हितो की रक्षा के लिए समाज एक साधन (अस्त्र) तैयार कर लेता है। यह साधन (अस्त्र) राजसत्ता है। पैदा होते ही यह साधन (organ) अपने को समाज से स्वतत्र कर लेता है, और, वास्तव मे, जितना ही अधिक वह एक विशेष वर्ग का औजार बनता जाता है, उतनी ही अधिक मात्रा मे सीधे-सीधे उस वर्ग के आधिपत्य को वह लागू करता है। शासक वर्ग के विरुद्ध उत्पीडित वर्ग का सघर्ष लाज़मी तौर से एक राजनीतिक संघर्ष बन जाता है, सबसे पहले वह उस वर्ग के राज-नीतिक प्रभुत्व के विरुद्ध सघर्ष बन जाता है। इस राजनीतिक सघर्ष और उसके आर्थिक आधार के परस्पर सम्बन्ध की चेतना मन्द हो जाती है और यह भी संभव है कि वह बिल्कुल ही मिट जाय। यद्यपि सघर्ष मे भाग लेने वालो के अन्दर इस सम्बन्ध की चेतना पूर्णतया ख़त्म नही होती, किन्तु इतिहासकारो के अन्दर तो लगभग हमेशा ही वह अन्तर्धान हो जाती है। रोमन प्रजातत्र के अन्दर जो सघर्ष हुए थे उनके सम्बन्ध मे जो प्राचीन स्रोत मिलते है उनमे केवल एपियन ही एक ऐसा है जो साफ-साफ और निश्चित रूप से बताता है कि उन सघर्षो की तह मे मूल चीज़ भू-सम्पत्ति थी।

परन्तु समाज से स्वतंत्र एक सत्ता बनते ही राजसत्ता तुरन्त एक और विचारधारा को जन्म दे देती है। वास्तव मे, आर्थिक आधार के

साथ उसके इस सम्बन्ध को सबसे ज़्यादा पेशेवर राजनीतिज्ञो, सार्वजनिक कानूनो के सिद्धान्तकारो तथा वैयक्तिक कानून (आचार-व्यवहार) के न्यायशास्त्रियो के बीच भुला दिया जाता है। चूँकि कानूनी मान्यता प्राप्त करने के लिए हर विशिष्ट मामले में आवश्यक होता है कि उससे सम्बन्धित आर्थिक तथ्य न्यायशास्त्रीय प्रयोजनो (या प्रेरणाओ) के रूप में सामने आये ; और चूंकि, उनको कानूनी मान्यता देते समय उस समय की सम्पूर्ण क़ानूनी व्यवस्था का भी खयाल रखना आवश्यक होता है, इसलिए, न्यायशास्त्रीय रूप ही सब कुछ बन जाता है और आर्थिक अन्तर्वस्तु का कोई महत्व नही रह जाता ! सार्वजनिक कानून और वैयक्तिक कानून को फिर सर्वथा स्वतंत्र क्षेत्रो के रूप मे देखा जाने लगता है। मान लिया जाता है कि उनमे से प्रत्येक का स्वयम् अपना स्वतंत्र ऐतिहासिक विकास हुआ है; उनमे से प्रत्येक को उसके समस्त आन्तरिक अन्तर्विरोधो का दृढतापूर्वक अन्त करके व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है और, दरअसल, इसी चीज़ की आवश्यकता है।

और भी अधिक उच्च विचारधाराएँ, अर्थात्, वे विचारधाराएँ जो भौतिक, आर्थिक आधार से और भी अधिक दूर है, दर्शन और धर्म का रूप ले लेती हैं। इस क्षेत्र मे धारणाओ तथा उनके अस्तित्व की भौतिक परिस्थितियो का अन्तर्सम्बन्ध अधिकाधिक सश्लिष्ट बनता जाता है, बीच की कडियो की वजह से वह अधिकाधिक अस्पष्ट होता जाता है। परन्तु यह अन्तर्सम्बन्ध है। जिस तरह कि १५वी शताब्दी के मध्य के बाद से आने वाला नवजागरण (रिनेसाँ) का पूरा काल नगरो की और, इसलिए, नगरवासियों (बर्गरो) की अनिवार्य उत्पत्ति था, उसी तरह बाद का नवोदित दर्शन भी उन्ही की उपज था। सार-तत्व मे, उसकी अन्तर्वस्तु केवल ऐसे विचारो की ही दार्शनिक अभिव्यक्ति थी जो छोटे और मझोले शहरी व्यवसायियो के बड़े पूँजीपति वर्ग मे विकसित होने में सहायक थे। इस बात को पिछली शताब्दी के अंग्रेज़ों और फ्रान्सीसियो मे, जो अधिकांशतया जितने दार्शनिक थे उतने ही राजनीतिक अर्थशास्त्री भी

थे, स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है ; और हीगेलवादी दर्शन-प्रणाली के सम्बन्ध मे तो इसे हम ऊपर प्रमाणित ही कर चुके हैं।

अब सक्षेप मे सिर्फ धर्म के विषय मे और हम बात करेंगे, क्योंकि धर्म भौतिक जीवन से सबसे अधिक दूर होता है और लगता है कि भौतिक जीवन मे उसका रत्ती भर भी सम्बन्ध नही है। धर्म का अत्यन्त आदिम काल मे उदय हुआ था। उसका आधार मनुष्यों की भ्रान्तिपूर्ण, तथा आदिम वे धारणाएँ थी जो स्वयम् अपने स्वरूप तथा उस वाह्य प्रकृति के सम्बन्ध मे वे रखते थे जो चारो तरफ से उन्हे घेरे थी। परन्तु, एक बार उत्पन्न हो जाने के बाद प्रत्येक विचारधारा सम्बन्धित विचार-सामग्री के सन्दर्भ मे ही विकास करती है तथा इस सामग्री का भी आगे विकास करती चलती है। अगर ऐसा न हो तो वह विचारधारा ही न रह जाय, अर्थात् ऐसी चीज ही न रह जाय जिसका स्वतंत्र सत्ता रखने वाले ऐसे विचारो के साथ सम्बन्ध है जो स्वतत्र रूप से और केवल अपने नियमो के अन्तर्गत विकास करते है। जिन व्यक्तियो के मस्तिष्को मे यह चिन्तन-क्रिया चलती है दरअसल उनके जीवन की भौतिक परिस्थितियाँ ही अन्ततोगत्वा इस क्रिया के क्रम को निर्धारित करती हैं — यह बात अनिवार्य रूप से इन व्यक्तियो को अज्ञात रहती है क्योकि वरना तो समस्त विचारधारा का ही अन्त हो जायगा। इसलिए ये मूल धार्मिक सकल्पनाएँ, जो मूलत सगोत्रीय जनो के प्रत्येक दल मे एक ही जैसी होती है, दल के बँट जाने पर प्रत्येक जाति के अन्दर उसके अपने खास ढग से, जीवन की जिन परिस्थितियो मे उसे रहना पड़ता है उनके अनुसार विकसित होती है। जनो के कई दलो के अन्दर, और विशेष रूप से आर्यो (तथाकथित इण्डो-योरोपियनों) के अन्दर यह प्रक्रिया कैसी थी इसे तुलनात्मक पुराण विद्या मे सविस्तार बतलाया गया है। प्रत्येक जन के अन्दर इस प्रकार जिन देवताओ का निर्माण होता था वे राष्ट्रीय देवता होते थे, उनका शासन-क्षेत्र उस राष्ट्रीय क्षेत्र से आगे नही जाता था जिसकी रक्षा करने का उन पर उत्तरदायित्व था ; उसकी सीमाओं के

आगे दूसरे देवताओं का एकछत्र राज्य होता था। कल्पना जगत् मे वे तभी तक बने रह सकते थे जब तक कि राष्ट्र बना रहता था ; उसके पतन के साथ उनका भी पतन हो जाता था। विश्व रोमन साम्राज्य ने, जिसके उदय की आर्थिक परिस्थितियो की छान-बीन करने की हमें यहाँ जरूरत नही है, पुराने राष्ट्रो का अन्त कर दिया था। फलस्वरूप, पुराने राष्ट्रीय देवताओं का ह्रास हो गया, यहाँ तक कि रोमन देवताओं का भी, क्योंकि ये भी केवल रोम नगर की संकुचित सीमाओं की आवश्यकताओं के ही अनुरूप बने थे। विश्व साम्राज्य की एक विश्वधर्म के द्वारा पूर्ति करना आवश्यक था —यह चीज़ उन कोशिशों से साफ़-साफ स्पष्ट थी जो इस बात के लिए की जा रही थी कि रोम मे देशी के साथ-साथ उन तमाम विदेशी देवताओं को भी जो ज़रा भी सम्माननीय थे मान्यता दी जाय और उनके लिए पूजा की वेदियों की व्यवस्था कर दी जाय। परन्तु एक नये विश्वधर्म की रचना इस प्रकार, शाही फरमान से नही हो जाती। नया विश्वधर्म, ईसाई धर्म इस बीच चुपचाप पैदा हो गया था ; उसकी उत्पत्ति प्राच्य, विशेष रूप से यहूदी, धर्मशास्त्र के आम सिद्धान्तों तथा देहाती यूनानी, विशेष रूप से स्टॉइक (विषय-विरागी) दर्शन के मेल से हुआ था। मूल रूप में वह कैसा था इसका बहुत मेहनत से पता लगाना आवश्यक है, क्योंकि उसका अधिकृत स्वरूप, जिसमें वह हमें मिला है, उसका केवल वह स्वरूप है जिसमें उसे राजधर्म बनाया गया था। इस उद्देश्य के लिए उसे यह रूप निकाइया की काउन्सिल ने दिया था।

यह तथ्य कि २५० वर्षों के अन्दर ही वह राजकीय धर्म बन गया था इस बात को स्पष्ट करने के लिए काफी है कि वह उस समय की परिस्थितियों के अनुरूप धर्म था। मध्य युगों मे, उसी मात्रा में जिस मात्रा में सामन्तवाद का विकास हुआ था, उसके धार्मिक प्रतिरूप की हैसियत से, ईसाई धर्म का भी विकास होता गया था —उसके अन्दर उसी के अनुरूप सामन्ती महन्तों की ऊँची-नीची श्रेणियाँ भी बनती गयी

थी। और जब बर्गर (नागरिक व्यवसायी) समृद्ध होने लगे तो, सामन्ती कैथोलिकवाद के विरुद्ध, प्रोटेस्टेन्टवादी धर्म-द्रोह बढने लगा। सबसे पहले इसका उदय दक्षिणी फ्रान्स में, अल्बीजेन्सो[८६] के बीच उस समय हुआ था जिस समय कि वहाँ के नगर अपने विकास के उच्चतम शिखर पर पहुँच गये थे।

मध्य युगों ने धर्मशास्त्र के साथ विचारधारा के अन्य समस्त रूपों—दर्शन, राजनीति, न्यायशास्त्र—को भी जोड़ दिया था और उन्हे धर्मशास्त्र के उपविभागों का रूप दे दिया था। इस प्रकार, प्रत्येक सामाजिक तथा राजनीतिक आन्दोलन को उन्होने मजबूर कर दिया था कि वह धर्मशास्त्रीय स्वरूप में सामने आये। जन समुदाय के अन्दर अन्य सब चीजों को हटाकर केवल धार्मिक भावनाएं कूट-कूटकर भर दी गयी थी; इसलिए एक तीव्र आन्दोलन खड़ा करने के लिए आवश्यक हो गया था कि उनके हितों को धार्मिक परिवेश मे प्रस्तुत करके उन्हे आलोडित किया जाय। और, जिस प्रकार कि आरम्भकाल से ही बर्गरो (नागरिक व्यवसायियों) ने अपने साथ-साथ सम्पत्तिविहीन शहरी साधारण जनों, दिन मे काम करने वाले श्रमिको तथा हर प्रकार के नौकरो के एक ऐसे समुदाय को जन्म दे दिया था जिसका मान्यता-प्राप्त किसी भी सामाजिक वर्ग से कोई सम्बन्ध नही था और जो बाद मे आने वाले सर्वहारा वर्ग का पूर्वगामी बनने वाला था, उसी प्रकार धर्म के खिलाफ उठने वाला विद्रोह भी जल्दी ही बर्गरों (नागरिक व्यवसायियो) के नरम धर्म-द्रोह और सामान्य जन के क्रान्तिकारी धर्म-द्रोह मे बँट गया था।—सामान्यजन का क्रान्तिकारी धर्म-द्रोह स्वयम् बर्गर धर्म-द्रोहियो की भी आखो का काँटा था!

प्रोटेस्टेन्ट धर्म-द्रोह की अनुन्मीलनीयता उठते हुए बर्गरो (पूजीपतियो) की अपराजेयता के साथ जुडी हुई थी। ये शहरी पूजीपति जब काफी शक्तिशाली हो गये तब सामन्ती अभिजातवर्ग के विरुद्ध उनके सघर्प ने, जो अभी तक प्रधानतया स्थानीय था, राष्ट्रीय विस्तार ग्रहण करना शुरू कर दिया। पहला महान् विस्फोट जर्मनी मे हुआ—तथाकथित धर्म-

सुधार आन्दोलन [Reformation] के रूप मे। वर्गर (शहरी पूंजीपति) न तो अभी इतने शक्तिशाली थे और न इतने काफी विकसित ही हो गये थे कि शेष विद्रोही वर्गों —नगरो के साधारण जनो, अभिजात वर्ग के निचले स्तरों के लोगों तथा खेतो पर काम करने वाले किसानों को अपने झण्डे के नीचे इकट्ठा कर सके। आरम्भ मे सामन्ती सरदार पराजित हो गये। किसानो ने विद्रोह कर किया —यह विद्रोह सम्पूर्ण क्रान्तिकारी संघर्ष की चरम परिणति था। किन्तु शहरों ने किसानों का साथ छोड़ दिया और, इस भाँति, क्रान्ति अधार्मिक राजाओ की सेनाओं से पराजित हो गयी और क्रान्ति से होने वाला सारा लाभ इन्ही राजाओं को मिल गया। इसके बाद तीन शताब्दियो तक जर्मनी उन देशों की पांत में नही आ सका जो इतिहास मे स्वतन्त्र सक्रिय भूमिका अदा कर रहे थे। किन्तु जर्मन लूथर के साथ-साथ फ्रान्सीसी कालविन भी पैदा हो गया था। अपनी खास फ्रान्सीसी तेजी से उसने धर्म-सुधार के पूंजीवादी स्वरूप को एकदम सामने ला दिया, चर्च (ईसाई धर्म-संघ) को गणतांत्रिक और जनवादी उसने बना दिया। जर्मनी मे लूथरवादी धर्म-सुधार आन्दोलन पतित हो चुका था और उस देश को उसने विनाश के कगार पर पहुँचा दिया था, किन्तु कालविनवादी धर्म-सुधार आन्दोलन जेनेवा, हालैण्ड तथा स्कॉटलैण्ड के प्रजातन्त्रवादियो का फरहरा बन गया, उसने हालैण्ड को स्पेन तथा जर्मन साम्राज्य से मुक्त करा दिया और पूजीवादी क्रान्ति के दूसरे अंक के लिए, जो उस समय इंगलैण्ड मे खेला जा रहा था, उसने सैद्धान्तिक वेष-भूषा प्रस्तुत कर दी। कालविनवाद ने उस समय के पूंजीपति वर्ग के हितों की धार्मिक वेष मे यहाँ अच्छी तरह हिमायत की; और, इसीलिए, १६८९ में, जब सामन्ती अभिजात वर्ग के एक भाग तथा पूजीपति वर्ग के दर्म्यान समझौता हो गया और क्रान्ति समाप्त हो गयी तो उसे भी पूरी मान्यता न मिल सकी। इंगलैण्ड के राजकीय चर्च की पुनः स्थापना हो गयी। अब उसका स्वरूप पुराने कैथो-लिकवाद का वह नही रह गया था जिसमें पोप के स्थान पर बादशाह

होता था, वल्कि, इसके वजाय, उसका काफी कालविनीकरण हो गया था। पुराना राजकीय चर्च इतवार को कैथोलिक ढग से खूव आनन्दपूर्वक मनाया करता था; आनन्द-विहीन कालविनवादी इतवार के खिलाफ उसने सघर्ष किया। नये, पूँजीवादी चर्च ने फिर इसी कालविनवादी इतवार को चालू कर दिया। इंगलैण्ड मे आज भी वही चलता है।

फ्रान्स मे कालविनवादी अल्पमत को १६८५ मे कुचल दिया गया था। उसे या तो कैथोलिक मतावलम्वी वना दिया गया था या देश से निकाल दिया गया था। परन्तु इससे फ़ायदा क्या हुआ ? उस समय भी नास्तिक पियरे वायल अपने क्रिया-कलापो के शिखर पर था, और १६९४ मे वाल्तेयर पैदा हो गया था। लुई चौदहवें ने जोर-जवर्दस्ती के जो कानून वनाये थे उन्होने फ्रान्सीसी पूजीपति वर्ग के लिए इस वात को और आसान वना दिया कि अपनी क्रान्ति को उसी एकान्तिक अधार्मिक, मात्र राजनीतिक रूप मे वह पूरा कर ले जो उन्नत पूजीपति वर्ग के रूप मे उसके अनुकूल था। राष्ट्रीय परिपदो मे प्रोटेस्टेन्टो की जगह स्वतत्र चिन्तको (नास्तिकों) ने वैठना शुरू कर दिया। इसके साथ-साथ ईसाई धर्म ने अपने अन्तिम चरण मे प्रवेश किया। अव वह इस योग्य नही रह गया था कि भविष्य मे किसी प्रगतिशील वर्ग को इच्छा-आकाक्षाओं की पूर्ति के लिए एक विचारधारात्मक रामनामी का काम दे सके। अधिकाधिक मात्रा मे केवल शासक वर्गो की सम्पत्ति वह वनता गया। ये वर्ग सरकार के एक अस्त्र के रूप मे, निम्न वर्गो को सीमाओ के अन्दर रोके रखने के लिए उसका इस्तेमाल करते है। इसके अलावा, प्रत्येक अलग-अलग वर्ग स्वयम् अपने उपयुक्त धर्म का इस्तेमाल करता है : भू-स्वामियो का अभिजात वर्ग —कैथोलिक जेसुइटवाद (मक्कारी) का अथवा प्रोटेस्टेन्ट कट्टरपंथिता का; उदार तथा उग्र विचारो वाला पूजीपतिवर्ग —युक्तिवाद का; और इस चीज से कोई अन्तर नही पडता कि ये सव सज्जन स्वयम् अपने-अपने धर्मो मे विश्वास करते है या नही !

इसलिए, हम देखते है कि : एक वार उसकी स्थापना हो जाने के

बाद, धर्म के अन्दर हमेशा परम्परागत उपादान मौजूद रहते हैं, उसी प्रकार जिस प्रकार कि विचारधारा के सभी क्षेत्रों में परम्परा एक अत्यन्त पुराणपंथी (दकियानूसी) शक्ति का काम करती है। परन्तु उपादानों में जो परिवर्तन होते हैं वे वर्ग सम्बन्धों से पैदा होते हैं, अर्थात् उन लोगों के आर्थिक सम्बन्धों से पैदा होते हैं जो उन परिवर्तनों को पूरा करते हैं। और यहां —इतना इतना ही काफी होगा।

यहां ऊपर इतिहास की मार्क्सवादी धारणा की केवल एक सामान्य रूपरेखा ही दी जा सकती थी —कुछ उदाहरण देकर अधिक से अधिक उसे कुछ स्पष्ट करने की ही चेष्टा की जा सकती थी। इस धारणा की सचाई का प्रमाण स्वयम् इतिहास से ही प्राप्त किया जाना चाहिए। इस सम्बन्ध में सविनय मैं इतना ही कह सकता हूं कि अन्य रचनाओं में इस कार्य को काफी मात्रा में किया गया है। परन्तु यह धारणा इतिहास के क्षेत्र में दर्शन की समाप्ति कर देती है, ठीक उसी तरह जिस तरह कि प्रकृति की द्वन्द्ववादी धारणा समस्त प्राकृतिक दर्शन को अनावश्यक तथा असम्भव बना देती है। इसके बाद किसी भी चीज के अन्तर्सम्बन्धों को अपने दिमाग से ईजाद करने की जरूरत नहीं रहती, जरूरत सिर्फ वास्तविकताओं के अन्दर से उन्हें ढूंढ़ निकालने की होती है। प्रकृति तथा इतिहास के क्षेत्रों से बहिष्कृत दर्शन के लिए अब केवल शुद्ध चिन्तन का —जितना भी वह बच गया है —क्षेत्र शेष रह जाता है: अब उसके लिए स्वयम् चिन्तन-क्रिया के नियमों का सिद्धान्त — तर्कशास्त्र तथा द्वन्द्ववाद ही शेष रह जाता है।

* *

१८४८ की क्रान्ति के बाद "शिक्षित" जर्मनी ने सिद्धान्त को अलविदा कह दी और व्यवहार की दुनिया में चला गया। हस्तश्रम पर आधारित छोटे पैमाने के उत्पादन तथा कारखानों के निर्माणकार्य का स्थान असली बड़े पैमाने के उद्योग-धन्धों ने ले लिया। विश्व-मंडी में जर्मनी ने फिर पदार्पण किया। नये छोटे-से जर्मन साम्राज्य ८७ ने छोटे-छोटे राज्यों की

व्यवस्था, सामन्तवाद के अवशेषों तथा नौकरशाही प्रबन्ध-व्यवस्था आदि की कम से कम उन सबसे निकृष्ट बुराइयो का अन्त कर दिया जो इस विकास के मार्ग मे बाधक बन रही थी। परन्तु, सट्टेबाजार ने अपने देव-स्थान की स्थापना करने के लिए दार्शनिक के अध्ययन कक्ष का जिस हद तक परित्याग कर दिया, उसी हद तक शिक्षित जर्मनी अपनी उस महान् सैद्धान्तिक क्षमता को भी खो बैठा जो घोर से घोर राजनीतिक अपमान के दिनो मे भी जर्मनी का गौरव थी। उसकी इस क्षमता का सम्बन्ध शुद्ध ज्ञानिक अन्वेषण से था, उसमे इस बात की चिन्ता नही की जाती थी कि उससे जो परिणाम निकलेगा वह व्यावहारिक रूप से उपयोग-योग्य हो सकेगा या नही, उससे पुलिस के अधिकारी नाराज हो जायेगे या नही। यह सही है कि सरकारी जर्मन प्रकृति विज्ञान, विशेष रूप से विशेषीकृत शोधकार्य के क्षेत्र मे, अपना स्थान आगे की पांत मे बनाये रहा। किन्तु अमरीकी पत्रिका विज्ञान तक ने लिखा है —और सही ही लिखा है — कि विशिष्ट तथ्यों के बीच पूर्ण रूप से सह-सम्बन्ध स्थापित करने तथा उनका सामान्यीकरण करके उन्हे नियमो का रूप देने के कार्य के क्षेत्र मे निर्णायक प्रगति जर्मनी के बजाय अब इगलैण्ड मे कही अधिक हो रही है। और, दर्शन समेत समस्त ऐतिहासिक विज्ञानो के क्षेत्र मे सिद्धान्त के लिए पहले जो एक नि शक उत्साह होता था, वह —शास्त्रीय दर्शन के साथ-साथ, अब बिल्कुल ही खत्म हो गया है। उसका स्थान निस्सार भ्रमरवाद (सार-सग्रहवाद) ने तथा पदोन्नति और आमदनी की जबर्दस्त चिन्ता ने ले लिया है; यह चिन्ता नौकरी तलाश करने के निकृष्ट स्तर तक पहुँच गयी है। इन विज्ञानो के आधिकारिक प्रतिनिधि पूँजीपति वर्ग तथा मौजूदा राजसत्ता के निर्लज्ज सिद्धान्तकर बन गये है —और यह काम वे ऐसे समय मे कर रहे है जब कि पूँजीपति वर्ग और उसकी राज-सत्ता दोनो ही मज़दूर वर्ग के खुले विरोधी के रूप मे सामने आ गये है।

सिद्धान्त के प्रति जर्मनो की अभिरुचि अब केवल मजदूर वर्ग मे अक्षुण्ण बनी हुई है। यहाँ उसे खत्म नही किया जा सकता। यहाँ पदो

की चिन्ता नही है, मुनाफे कमाने अथवा ऊपर का कृपापूर्ण संरक्षण प्राप्त करने की चिन्ता नही है। इसके विपरीत, विज्ञान जितनी ही निर्ममता तथा निस्वार्थता से आगे बढता है उतनी ही अधिक मात्रा में वह पाता है कि उसके और मजदूरों के हितो तथा इच्छा-आकाक्षाओ के बीच पूर्ण सादृश्य है। नयी चिन्तनधारा ने, जो यह मान कर चली थी कि समाज के सम्पूर्ण इतिहास को समझने की कुंजी श्रम के विकास के इतिहास मे निहित है, आरम्भ से ही, चुनकर, अपनी बात मजदूर वर्ग से कही है और उसके बीच जो समर्थन उसे मिला है उसे सरकारी तौर से मान्यता-प्राप्त विज्ञान से न तो उसने प्राप्त करने की कोशिश की थी और न यह आशा ही रखी थी कि वह उसे वहाँ से प्राप्त होगा। जर्मन मजदूर वर्ग का आन्दोलन ही जर्मनी के शास्त्रीय दर्शन का उत्तराधिकारी है।

फ्रेडरिक एंगेल्स

न्यायशास्त्रीय समाजवाद

मध्य युगों का विश्व सम्वन्धी दृष्टिकोण मूलतः धर्मशास्त्रीय था। योरोपीय दुनिया मे वास्तव मे कोई अन्दरूनी एकता नही थी किन्तु, वाहरी तौर से, सवके दुश्मन सरासेनो (जेहादी अरवो—अनु०) के खिलाफ़ ईसाई धर्म ने उसे एकतावद्ध कर दिया था।

पश्चिम योरोपीय दुनिया को कैथोलिकवाद ने एकता के सूत्र मे वांध दिया था। पश्चिम योरोपीय दुनिया मे ऐसे राष्ट्रो का एक विस्तृत समूह था जो आपस मे वरावर आदान-प्रदान करते हुए उन्नति कर रहे थे। उसकी यह धार्मिक एकता केवल विचारों तक ही नही सीमित थी। उसका वास्तविक अस्तित्व था—और वह भी न केवल पोप के, उसके एक राजकीय केन्द्र के रूप में, वल्कि, सवसे अधिक, उस चर्च (ईसाई धर्म-सघ) के रूप में जिसका एक सामन्ती तथा श्रेणीवद्ध सगठन था। हर देश की लगभग एक-तिहाई भूमि का मालिक चर्च था। इसकी वजह से सामन्ती सगठन के अन्दर उसकी जवर्दस्त शक्ति थी। सामन्ती भू-स्वामित्व पर आधारित यह चर्च ही भिन्न-भिन्न देशो के वीच की वास्तविक कड़ी था; चर्च का सामन्ती सगठन लौकिक सामन्ती राज्य-व्यवस्था को भी धार्मिक रूप से पवित्र वना देता था। इसके अलावा, पादरियो का वर्ग ही एकमात्र शिक्षित वर्ग था। इसलिए यह स्वाभाविक था कि चर्च का धर्मत ही

समस्त चिन्तन का स्रोत तथा आधार होता था। न्यायशास्त्र, प्रकृति विज्ञान, दर्शन, हर चीज को एक ही कसौटी पर परखा जाता था : उसकी विपय-वस्तु चर्च के सिद्धान्तो से मिलती थी या नही मिलती थी।

किन्तु सामान्तवाद के गर्भ मे पूजीपति वर्ग की शक्ति वढ़ती जा रही थी। वडे-वडे भू-स्वामियों के मुकावले मे एक नया वर्ग पैदा हो गया था। उत्पादन के सामन्ती तरीके का मूल आधार यह था कि उपज को, एक सीमित दायरे के अन्दर, कुछ उत्पादकों द्वारा और कुछ स्वयम् सामन्ती स्वामियो द्वारा इस्तेमाल कर लिया जाता था; किन्तु नगर के व्यवसायी (वर्गर) मुख्यतया मालो के उत्पादक तथा व्यापारी थे। वे केवल यही काम करते थे। कैथोलिकवादी विश्व दृष्टिकोण की रचना सामन्तवाद के आधार पर हुई थी; वह अव इस नये वर्ग तथा उत्पादन और विनिमय की उसकी परिस्थितियो के लिए काफी नही था। इसके वावजूद, वहुत दिनों तक, यह नया वर्ग सर्वशक्तिशाली धर्मशास्त्र की वेडियो मे जकड़ा रहा। १३वी से लेकर १७वी शताव्दी तक जितने भी धर्म-सुधार-आन्दोलन हुए है तथा उनसे सम्वन्धित धार्मिक नारो के नीचे जितने भी संघर्ष चलाये गये हैं, सैद्धान्तिक रूप से वे सव शहरो के वर्गरों (पूजीपतियों) तथा साधारण जनो और इन दोनो के सम्पर्क से वागी हो उठने वाले किसानो द्वारा वार-वार किये जाने वाले उन प्रयत्नो के अलावा और कुछ नही थे जिनके द्वारा पुराने धर्मशास्त्रीय विश्व-दृष्टिकोण को वे परिवर्तित आर्थिक परिस्थितियो तथा नये वर्ग के जीवन की स्थिति के अनुकूल वना देना चाहते थे। किन्तु ऐसा किया नही जा सकता था। इंगलैण्ड में धर्म का झण्डा आखिरी वार १७वी शताव्दी मे उडा था; इसके वाद मुश्किल से ५० वर्ष ही वीते होगे कि फ्रान्स मे उस नये विश्व-दृष्टिकोण का खुले रूप मे उदय हो गया जो पूजीपति वर्ग का क्लासिकल (आदर्श) दृष्टिकोण वनने वाला था। यह न्यायशास्त्रीय विश्व-दृष्टिकोण था।

यह वास्तव मे धर्मशास्त्रीय दृष्टिकोण का लौकिकीकरण (या अधार्मिकीकरण) था। अन्धमत का, दैवी अधिकार का स्थान मानवी अधि-

कार ने ले लिया; चर्च (ईसाई धर्म-सघ) की जगह राजसत्ता ने ग्रहण कर ली। जिन आर्थिक तथा सामाजिक परिस्थितियो को पहले इसलिए चर्च तथा उसके धर्मसिद्धान्तो द्वारा रचा माना जाता था कि उन्हे चर्च ने मान्यता प्रदान कर दी थी, उन्हे अब अधिकार पर आधारित तथा राजसत्ता द्वारा रचा माना जाने लगा। माल के विनिमय के सामाजिक पैमाने पर होने लगने से और, ख़ास तौर से, पेशगी तथा कर्ज के माध्यम से उसकी व्यवस्था के पूर्ण रूप से विकसित हो जाने से चूँकि पेचीदा पारस्परिक व्यापारिक अनुवन्धनो के सम्वन्ध पैदा हो जाते है इसलिए इनकी माँग होती है कि ऐसे नियम वनाये जाँय जो सामान्य रूप से लागू हो सकें। और चूँकि ऐसे नियमो की —अर्थात् अधिकार सम्वन्धी राजसत्ता द्वारा निश्चित किये गये मानदण्डों की — स्थापना केवल समुदाय ही कर सकता है, इसलिए खयाल कर लिया गया था कि अधिकार सम्वन्धी इन मानदण्डो की उत्पत्ति आर्थिक वास्तविकताओ के गर्भ से नही हुई है, वल्कि उनकी स्थापना राजसत्ता ने औपचारिक ढंग से कर दी है! और, चूँकि प्रतियोगिता, जो माल के स्वतत्र उत्पादको के व्यापार का मूलभूत स्वरूप है, सवको वरावर करने वाली सवसे वडा तत्व है, इसलिए कानून के सामने सवकी वरावरी का नारा पूंजीपति वर्ग के सघर्ष का मुख्य नारा बन गया। सामन्ती प्रभुओ तथा उनका सरक्षण करने वाली निरकुश राजाशाही के विरुद्ध इस नये महात्वाकाँक्षी वर्ग का संघर्ष, हर वर्ग के सघर्ष की तरह, चूँकि एक राजनीतिक संघर्ष ही हो सकता था, राजसत्ता पर आधिपत्य कायम करने का ही सघर्ष हो सकता था, और चूँकि उसे कानूनी (न्यायिक) माँगों के आधार पर ही लडा जा सकता था, इसलिए, इस वजह से भी, न्यायशास्त्रीय दृष्टिकोण को वल मिला था।

किन्तु पूंजीपति वर्ग ने अपनी एक विरोधी प्रतिमूर्ति पैदा कर दी, उसने सर्वहारा वर्ग को जन्म दे दिया। इसकी वजह से, पूंजीपति वर्ग राजनीतिक सत्ता पर अपनी विजय पूरा करे इसके पहले ही एक नये वर्ग-सघर्ष का श्रीगणेश हो गया। जिस प्रकार सामन्ती अभिजात वर्ग के

विरुद्ध अपनी लड़ाई के समय, परम्परा के प्रभाव-वश, कुछ देर तक पूंजीपति वर्ग धर्मशास्त्रीय दृष्टिकोण को अपनाये रहा था, उसी प्रकार शुरु-शुरु में सर्वहारा वर्ग ने भी अपने विरोधी से उसके न्यायशास्त्रीय दृष्टिकोण को ले लिया था और पूंजीपति वर्ग से लड़ने के लिए उसी के अन्दर अस्त्रों की उसने तलाश की थी। सर्वहारा वर्ग की पार्टी तथा उसके सैद्धान्तिक प्रतिनिधियो की प्रारम्भिक मान्यताएँ पूर्णतया "अधिकार की" न्यायशास्त्रीय "आधार-शिला" पर स्थित थी — एकमात्र अन्तर यह था कि "अधिकार" का जो आधार इन्होने अपने लिए बनाया था वह पूंजीपति वर्ग के अधिकार के आधार से भिन्न था। एक तरफ तो समानता की माँग को बढ़ाते हुए उन्होने कहा था कि अधिकार सम्बन्धी समानता पूरे तौर से तभी कायम हो सकती है जबकि सामाजिक समानता की स्थापना कर दी जाय; दूसरी तरफ़, एडम स्मिथ की इस स्थापना के आधार पर कि समस्त धन-सम्पदा का स्रोत श्रम तो है किन्तु श्रम की पैदावार मे भू-स्वामी तथा पूंजीपति को भी हिस्सा मिलना चाहिए, उन्होने यह निष्कर्ष निकाला था कि यह बँटवारा अन्यायपूर्ण है; इसे या तो बिल्कुल खत्म कर दिया जाय या फिर मजदूर के पक्ष मे बदल दिया जाय। परन्तु इस प्रश्न को "अधिकार की" मात्र न्यायशास्त्रीय "आधार-शिला" के सहारे छोड़ देने से उन अहितकर परिस्थितियो को मिटाने में किसी भी प्रकार की मदद नही मिलती थी जिन्हें पूंजीपति वर्ग के पूंजीवादी उत्पादन के तरीके ने, अर्थात् बड़े पैमाने के उद्योग-धन्धो पर आधारित उत्पादन के तरीके ने उत्पन्न कर दिया था। इस बात की अनुभूति के ही कारण प्रारम्भिक समाजवादियों में जो सबसे प्रतिभाशाली थे, उन्होंने, अर्थात् सेन्ट साइमन, फूरिए तथा ओवेन ने न्यायशास्त्रीय राजनीतिक क्षेत्र का पूर्णतया परित्याग कर दिया था और घोषित कर दिया था कि सभी प्रकार का राजनीतिक संघर्ष निरर्थक है।

आर्थिक परिस्थितियों ने मजदूर वर्ग के अन्दर मुक्ति की जो कामना जगा दी थी उसे अच्छी तरह से व्यक्त करने और पूर्ण रूप से अंगीकार

करने की दृष्टि से ये दोनों ही दृष्टिकोण एक समान असन्तोषप्रद थे। श्रम की सम्पूर्ण पैदावार तथा समानता की माँगों को ज्योंही कानूनी (न्यायिक) ढग से सविस्तार पेश किया गया त्योंही असाध्य अन्तर्विरोधो के भँवर मे वे खो गयी और मूल समस्या — उत्पादन की पद्धति को बदलने की समस्या —लगभग अछूती ही पड़ी रही। महान् कल्पनावादियो द्वारा राजनीतिक सघर्ष को तिलाजलि दे देने का अर्थ, साथ ही साथ, वर्ग-सघर्ष को भी, अर्थात् जिस वर्ग के हितो का वे प्रतिनिधित्व करते थे उसकी क्रियाशीलता के एकमात्र स्वरूप को भी तिलाजलि दे देना था। दोनो ही दृष्टिकोण उस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को नजरन्दाज़ कर देते थे जिससे उनकी उत्पत्ति हुई थी। दोनो ही भावनाओ को अपील करते थे —कुछ न्याय की भावना को, और अन्य कुछ मानवता की भावना को। दोनो ही अपनी मांगो को ऐसी पवित्र कामनाओ के वेश मे प्रस्तुत करते थे कि उनके बारे मे यह नही कहा जा सकता था कि हजार वर्ष पहले या हज़ार वर्ष बाद पूरा करने के बजाय उनका उसी समय पूरा किया जाना क्यो आवश्यक था।

उत्पादन के सामन्ती तरीके के पूँजीवादी तरीके मे बदल जाने की वजह से मजदूर वर्ग उत्पादन के साधनो के स्वामित्व से बिल्कुल ही वंचित हो गया है। उत्पादन के पूँजीवादी तरीके की चक्की मे पिसकर वह निरन्तर और अधिकाधिक मात्रा मे सम्पत्ति-विहीनता की पुश्तैनी अवस्था मे पहुँचता जा रहा है। इस मजदूर वर्ग के जीवन की वास्तविक परिस्थितियो को पूँजीपति वर्ग के कानूनी (न्यायिक) मायाजाल के अन्दर पूरे तौर से कभी व्यक्त नही किया सकता। जीवन की इस परिस्थिति को पूर्ण रूप से वह खुद भी तभी जान सकता है जब कि, कानूनी स्याही से रगे चश्मो के बिना, चीजो को जैसी वे है उसी वास्तविक रूप मे वह देखे। किन्तु मार्क्स ने इतिहास की अपनी भौतिकवादी धारणा के द्वारा उसे ऐसा ही करने मे मदद दी थी। ऐसा उन्होने इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करके किया था कि, अन्ततोगत्वा, कानूनी (न्यायिक), राजनीतिक,

दार्शनिक, धार्मिक तथा मनुष्य की अन्य धारणाओ की पैदायश उसके जीवन की आर्थिक परिस्थितियों से, उत्पादन तथा उपज के विनिमय के उसके तरीक़े से होती है। इस प्रकार, उन्होने विश्व सम्बन्धी एक ऐसे दृष्टिकोण को प्रस्तुत कर दिया था जो सर्वहारा वर्ग के जीवन तथा संघर्ष की परिस्थितियों के अनुरूप था । मजदूरो के दिमागो मे भ्रमो का जो अभाव था वह सम्पत्ति के उनके अभाव के ही सर्वथा अनुरूप था। और विश्व सम्बन्धी सर्वहारा वर्ग का यह दृष्टिकोण अब सारी दुनिया मे फैल रहा है।

ब्लौक के नाम एंगेल्स का पत्र

लन्दन, २१- २ सितम्बर, १८९०

प्रिय महोदय,

आपका ३ तारीख का पत्र मुझे फोकस्टोन मे मिला, लेकिन चूंकि वहाँ मेरे पास वह पुस्तक नही थी इसलिए मैं जवाब न दे सका। १२ तारीख को जब मैं घर लौटा तो मेरे लिए इतना बहुत सा जरूरी काम पडा था कि आज से पहले आप को कुछ पंक्तियाँ लिखने के लिए भी मैं समय न पा सका। कृपया मेरी इस मजबूरी को स्वीकार करें और देर में लिखने के लिए माफ करें।

(१) सबसे पहले, 'उत्पत्ति' ८८ के पृष्ठ १६ से आप ने यह नतीजा निकाला है कि पुनलुआ परिवार के विकास की प्रक्रिया को इतनी धीमी गति से कार्य करते दिखलाया गया है कि उससे ऐसा लगता है कि हवाई मे, वहाँ के राजपरिवार के अन्दर भाइयो और (एक ही मा से उत्पन्न) बहिनो के बीच इस शताब्दी तक मे शादियाँ हुई है। भाइयो और बहिनो के बीच होने वाली शादियो के उदाहरण पूरे प्राचीन काल मे हमें मिलते है; मिसाल के लिए टोलमियो (मिस्र के यूनानी सम्राटो) के यहाँ ऐसा ही होता था। परन्तु, दूसरी बात यह है कि, एक ही मा से उत्पन्न भाइयो और बहिनो तथा एक ही पिता से उत्पन्न भाइयो और बहिनो के बीच फर्क करना यहाँ जरूरी है। भाई, बहिन शब्दो की उत्पत्ति गर्भ शब्द: से

हुई है और इसलिए मौलिक रूप से उनका मतलब केवल मा की तरफ़ के भाइयो और वहिनो ही से था। मातृसत्ता काल मे ही यह भावना बहुत दिनो तक बनी रही है कि एक ही मा के बच्चे, चाहे उनके पिता अलग-अलग हो, उन बच्चो की अपेक्षा अधिक नजदीकी सम्बन्ध रखते है जो एक ही पिता के किन्तु अलग-अलग माताओ के हो। परिवार का पुनलुआ रूप केवल एक ही मा की सन्तानो के बीच विवाह वर्जित करता है, एक ही पिता की किन्तु अलग-अलग माताओ द्वारा उत्पन्न सन्तानो के बीच विवाह को वह कदापि नही रोकता। इस धारणा के अनुसार तो ऐसी सन्तानो को (अलग-अलग माताओ से उत्पन्न एक ही पिता की सन्तानो को —अनु०) संबन्धी तक भी नहीं माना जाता (क्योंकि मातृसत्तात्मक अधिकार का ही बोलबाला है)। जहाँ तक मै जानता हूँ यूनान के प्राचीन इतिहास मे भाइयो और बहिनो के बीच होने वाली शादियो के जो उदाहरण हमे मिलते है वे उन्ही व्यक्तियो तक सीमित है जिनकी माताएँ भिन्न-भिन्न थी, या फिर ऐसे व्यक्तियो की शादियो के उदाहरण मिलते है जिनके बारे मे इस बात का पता नही लगाया गया था कि वे भिन्न-भिन्न माताओ की सन्ताने थी। ऐसी हालत मे यह नामुमकिन नही है कि उनकी माताएँ अलग-अलग रही हो। इसलिए इस प्रकार की शादियां पुनलुआई रीति-रिवाजो के खिलाफ कतई नही है। आपने इस तथ्य की ओर ध्यान नही दिया कि पुनलुआ काल तथा यूनान की एक-पत्नीत्व की प्रथा के बीच समाज मातृसत्तात्मक (माताप्रधान) व्यवस्था से छलांग मारकर पितृसत्तात्मक, (पिताप्रधान) व्यवस्था मे पहुँच गया था। इसकी वजह से परिस्थिति काफ़ी बदल गयी थी।

वाखस्मुथ की *Hellenische Alterthumer* के अनुसार, वीर रस प्रधान यूनानी काल मे "विवाह करने वाले व्यक्तियो के बीच माता-पिता और बच्चों के सम्बन्ध को छोडकर और किसी भी प्रकार के नजदीकी सम्बन्ध के विषय मे किसी प्रकार की झिझक नही मिलती" (३, पृष्ठ १५६)। "क्रीटा मे पूरी वहिन के साथ विवाह करना अनुचित नही

माना जाता था" (वही, पृष्ठ १७०) । अन्त मे, खण्ड १० की, स्ट्रैबो की बात को ले ले । इस समय मुझे वह अश नही मिल रहा है क्योकि इस पुस्तक को अध्यायो मे विभाजित नही किया गया है, किन्तु, जब तक कि इस बात के विपरीत कोई प्रमाण न मिल जाय, पूरी वहिन का मतलब मैं पिता के रिश्ते से होने वाली वहिन ही समझता हूँ ।

(२) आपके पहले मुख्य कथन को मै निम्न प्रकार सशोधित करना चाहता हूँ :

इतिहास की भौतिकवादी धारणा के अनुसार, वास्तविक जीवन का उत्पादन तथा पुनरुत्पादन ही अन्ततोगत्वा इतिहास का निर्णायक तत्व होता है । इससे अधिक न मार्क्स ने, न मैने ही कभी कहा है । इसलिए अगर कोई इसको तोड़-मरोड़ कर यह कहता है कि अकेला आर्थिक तत्व ही निर्णायक होता है, तो उक्त प्रस्थापना को वह एक अर्थहीन, हवाई बकवास मे बदल देता है । आर्थिक परिस्थिति आधार होती है, किन्तु ऊपरी ढाँचे (Super-structure) के विभिन्न तत्व भी ऐतिहासिक सघर्षो के क्रम पर प्रभाव डालते है और, अनेक बार तो, उनके स्वरूप को निश्चित करने मे प्रमुख भूमिका अदा करते है । ये तत्व है वर्ग-सघर्ष के राजनीतिक स्वरुप और उनके परिणाम, अर्थात् · सफल लडाई, आदि के बाद विजयी वर्ग द्वारा स्थापित किये गये विधान और न्यायिक (कानूनी) रूप । यहाँ तक कि इन तमाम वास्तविक सघर्षो मे भाग लेने वालो के मस्तिष्को मे इन सघर्षो के प्रतिविम्ब (reflexes) तथा राजनीतिक, न्यायशास्त्रीय और दार्शनिक सिद्धान्त, धार्मिक विचार तथा अन्धमतो के रूप मे हो गया उनका विकास भी ऐतिहासिक सघर्षो के क्रम पर अपना प्रभाव डालता है और उनके स्वरूप को निश्चित करने मे बहुत बार प्रमुख भूमिका तक अदा करता है । इन तमाम तत्वो की एक दूसरे पर क्रिया-प्रतिक्रिया होती रहती हे जिसमे, दुर्घटनाओ की पूरी अपार भीड के बीच (अर्थात्, ऐसी चीजो तथा घटनाओ की भीड के बीच जिनका अन्दरूनी परस्पर-सम्बन्ध इतनी दूर का है अथवा जिसे प्रमाणित करना इतना असम्भव है कि हम उसे

अस्तित्वहीन, नगण्य तक मान ले सकते है), अन्त मे, आर्थिक क्रिया एक अनिवार्यता के रूप मे सामने आ जाती है। वरना तो इस सिद्धान्त को इतिहास के किसी भी काल पर लागू करना एक घात के किसी सरल समीकरण को हल कर लेने के काम से भी अधिक आसान हो जायगा।

अपने इतिहास का हम स्वयम् निर्माण करते है, परन्तु सर्वप्रथम, ऐसा हम अत्यन्त निश्चित मान्यताओ तथा परिस्थितियों के अन्तर्गत करते है। इनमे आर्थिक मान्यताएं और परिस्थितियां अन्ततोगत्वा निर्णायक होती है। किन्तु राजनीतिक मान्यताएं और धारणाएं आदि, तथा, वास्तव मे, वे परम्पराएं भी जो मानवी मस्तिष्को मे जमी रहती हैं, इसमें एक भूमिका अदा करती है —यद्यपि इनकी भूमिका निर्णायक नही होती। प्रशियाई राज्य का उदय तथा विकास भी ऐतिहासिक, अन्ततोगत्वा आर्थिक, कारणों से हुआ था। परन्तु विना थोथे विद्याडम्बर का सहारा लिए यह मुश्किल से ही कहा जा सकता है कि और दूसरे तत्वो को छोडकर (खास तौर से, प्रशा के स्वामित्व के कारण पोलैण्ड के साथ उसके उलझाव को, और उसकी वजह से उन अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक सम्वधों के साथ उसके उलझाव को छोड़कर जिन्होने आस्ट्रियाई राजवश की सत्ता की स्थापना में वास्तव मे निर्णायक भूमिका अदा की थी) केवल आर्थिक अनिवार्यता ने इस वात को तै कर दिया था कि, उत्तर तथा दक्षिण के वीच आर्थिक, भापा-सम्वन्वी और, —धर्मसुधार आन्दोलन के वाद, —जो धार्मिक अन्तर पैदा हो गये थे उनका अपने अन्दर समावेश करके, उत्तरी जर्मनी के अनेक छोटे-छोटे राज्यो मे से खास तौर से ब्रैण्डेनवर्ग का राज्य ही वहाँ की महान शक्ति वन जाए। अपने को हास्यास्पद वनाये विना अर्थशास्त्र के माध्यम से इस चीज़ को वताना मुश्किल होगा कि जर्मनी का प्रत्येक, पुराना और वर्तमान, छोटा राज्य क्यो अस्तित्व मे आया था। इसी तरह उसके माध्यम से यह वताना भी मुश्किल होगा कि उच्च जर्मन भापा के व्यजनो के उन परिवर्तनो की उत्पत्ति कैसे हुई थी जिन्होने उस भौगोलिक विभाजन को और चौड़ा वना दिया था जो सुडेटीय पर्वतमाला से लेकर

टॉनस तक फैले पर्वतो की वजह से पहले मे मौजूद था और पूरी जिन्होने जर्मनी के एक कोने से दूसरे कोने तक बाकायदा एक दरार पैदा कर दी थी।

दूसरे, इतिहास का निर्माण इस प्रकार होता है कि जो अन्तिम परिणाम निकलता है वह हमेशा अनेक वैयक्तिक इच्छाओं के सघर्ष का फल होता है और इनमे से प्रत्येक इच्छा स्वयम् भी जो कुछ वह होती है वह जीवन की अनेकानेक विशिष्ट परिस्थितियो के ही कारण होती है। इस प्रकार, एक दूसरे को काटनेवाली अनगिनत शक्तियाँ होती है शक्तियो के समानान्तर चतुर्भुजो की एक अनन्त श्रृखला होती है और वह परिणाम—जिसे ऐतिहासिक घटना कहा जाता है, इन्ही के अन्दर से निकलता है। इसे स्वयम् भी एक ऐसी शक्ति के फल के रूप मे देखा जा सकता है जो पूरे तौर से देखने पर अचेतन रूप से और बिना किसी इच्छा-शक्ति के काम करती है। प्रत्येक वैयक्तिक इच्छा के मार्ग मे हर दूसरा व्यक्ति रुकावट पैदा करता है और जो चीज़ अन्त मे सामने आती है वह ऐसी होती है जिसकी किसी ने इच्छा नही की थी। इस भाँति, अब तक इतिहास एक प्राकृतिक प्रक्रिया के रूप मे ही चलता आया है और मूलत वह प्राकृतिक प्रक्रिया की गति के नियमो के ही अधीन रहा है। किन्तु, इस बात से कि व्यक्तियों की इच्छाएँ—जिनमे से हर एक वही चाहता है जिसे चाहने के लिए उसकी भौतिक शरीर-रचना तथा बाह्य, अन्ततोगत्वा आर्थिक, परिस्थितियाँ (या उसकी ख़ुद की निजी परिस्थितियाँ, या आम समाज की परिस्थितियाँ) उसे मजबूर करती है—ठीक उस वस्तु को नही हासिल कर पाती जिसे वे चाहती है, बल्कि वे एक संयुक्त औसत मे, एक आम संयुक्त परिणाम मे विलीन हो जाती हैं—यह निष्कर्ष नही निकाला जाना चाहिए कि ये इच्छाएँ शून्य के समान है। इसके विपरीत, अन्तिम परिणाम मे उनमे से प्रत्येक का योगदान होता है और उस हद तक वह उस परिणाम मे शामिल होती है।

मैं आपसे आग्रह करना चाहूँगा कि इस सिद्धान्त का अध्ययन आप इसके मूल स्रोतों के आधार पर करें, इधर-उधर के दूसरो से प्राप्त साधनो

के आधार पर न करें। ऐसा करने मे वास्तव मे आसानी भी बहुत होती है। मार्क्स ने शायद ही कोई ऐसी चीज़ लिखी होगी जिसमे इस सिद्धान्त की बात न रही हो। किन्तु उसके प्रयोग का एक अत्यन्त उत्कृष्ट उदाहरण लुई बोनापार्ट के १८वें ब्रूमेयर मे खास तौर से देखने को मिलता है। पूंजी मे भी उसका अनेक जगह उल्लेख है। अन्त में, आप का ध्यान मैं अपनी रचनाओ : विज्ञान में श्री यूजेन ड्यूरिंग की क्रान्ति और लुडविग फ़ायरबाख तथा शास्त्रीय जर्मन दर्शन का अन्त की ओर भी आकर्षित करना चाहूँगा। इनमे ऐतिहासिक भौतिकवाद का विवरण अत्यन्त विस्तार से मैंने प्रस्तुत किया है। जहाँ तक मैं जानता हूँ इससे अधिक विस्तृत विवरण उसका और कहीं नही मिलता।

आंशिक रूप से मार्क्स और मैं स्वयम् इस बात के लिए जिम्मेदार है कि नये लोग कभी-कभी इस सिद्धान्त के आर्थिक पहलू पर ज़रूरत से ज़्यादा ज़ोर देते है। अपने विरोधियो का खण्डन करने के लिए, जो इससे बिल्कुल ही इन्कार करते थे, मुख्य सिद्धान्त के ऊपर हमे अधिक ज़ोर देना पड़ा था, और (इतिहास की —अनु०) अन्योन्य क्रिया मे जो अन्य तत्व रहते है उनकी व्याख्या करके उनको उनका उचित स्थान देने का न तो हमारे पास हमेशा समय ही था, न स्थान, और न मौक़ा। किन्तु जब भी इतिहास के किसी अंग को प्रस्तुत करने का, अर्थात्, इस सिद्धान्त को अमली तौर से लागू करने का प्रश्न उठता था, तब दूसरी ही बात होती थी और उसमे किसी तरह की ग़लती नही की जा सकती थी। परन्तु, दुर्भाग्य से, बहुत अक्सर ऐसा देखने मे आता है कि लोग ज्योंही किसी नये सिद्धान्त के मुख्य उसूलो को समझ लेते है—और वह भी हमेशा बिल्कुल सही-सही ढग से नही—त्योंही वे सोचने लगते है कि उसको उन्होने पूरे तौर से हृदयगम कर लिया है और बिना किसी कठिनाई के वे उसका इस्तेमाल कर सकते हैं! इस दोष से मै हाल के अनेक "मार्क्सवादियो" को भी बरी नहीं कर सकता, क्योकि इस सम्बन्ध में इन लोगो ने भी खूब ही अजीब तरह का कूड़ा-करकट लिखा है।

कल (यह मैं २२ सितम्बर को लिख रहा हूँ) शूमेन की पुस्तक, (*Griechische Alterthumer*, बर्लिन, १८५५, १, पृष्ठ ५२) मे मुझे एक और अत्यन्त महत्वपूर्ण अश मिल गया। यह उस व्याख्या की पूरे तौर से पुष्टि करता है जो मैंने ऊपर प्रस्तुत की है। अश निम्न प्रकार है : "लेकिन, यह बात मालूम है कि प्राचीन यूनान मे अलग-अलग माताओं की सन्तानों —अर्द्ध-भाइयो और बहिनो के बीच होने वाली शादियो को सगोत्रीय सम्भोग नही माना जाता था।"

मैं आशा करता हूँ कि, बात को सक्षेप मे कहने के उद्देश्य से, बीच-बीच मे जो कई चीजे मैंने जोड दी है उनकी वजह से आपको बहुत परेशानी नही होगी।

मैं हूँ आपका अनुरक्त,
एफ० एगेल्स

श्री श्मिट के नाम एंगेल्स का पत्र

लन्दन, २७ अक्तूबर, १८६०

ज्योंही मुझे कुछ क्षणों की फुरसत मिली है मैं तुम्हें उत्तर देने बैठ गया हूँ। मेरा खयाल है कि ज़्यूरिच की नौकरी को तुम्हे ज़रूर स्वीकार कर लेना चाहिए। वहाँ अर्थशास्त्र के सम्बन्ध मे हमेशा ही तुम बहुत-कुछ सीख सकोगे, खास तौर से अगर तुम इस चीज़ का ध्यान बनाये रखोगे कि ज़्यूरिच मुद्रा और सट्टे का अन्ततः एक तीसरे दर्जे का ही बाज़ार है। इसकी वजह से वहाँ जो असर पड़ते है वे दूसरे या तीसरे दर्जे के होने के कारण कमज़ोर होते है, अथवा फिर उन्हे जान-बूझकर विकृत कर दिया जाता है। लेकिन तुम्हे उसकी क्रिया का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त हो जायगा और लन्दन, न्यूयॉर्क, पेरिस, बर्लिन तथा वियना से आने वाली स्टॉक एक्सचेंज (सट्टे बाजार) सम्बधी मूल रिपोर्टों का अनुकरण करने के लिए तुम मजबूर हो जाओगे और, इस भाँति, मुद्रा तथा शेयर बाजार के प्रतिवर्त के रूप में, विश्व बाजार का भी चित्र तुम्हारे सामने स्पष्ट हो जायगा। आर्थिक, राजनीतिक तथा अन्य प्रकार के प्रतिबिम्बों का रूप वैसा ही होता है जैसा मनुष्य की आँखों में बनने वाले प्रतिबिम्बो का होता है: उन्हे एक सघनित लेन्स के अन्दर से गुज़रना होता है और, इसलिए, वे उल्टे यानी अपने सिर के बल खड़े हुए दिखलाई देते है। कमी केवल उस तन्त्रिका-तंत्र की रहती है जो हमारे सामने उन्हे उनके पैरों पर फिर

सीधा खड़ा कर दे। मुद्रा बाज़ार के आदमी को उद्योग-धन्धों तथा विश्व वाजार की गति मुद्रा और शेयर बाजार के केवल उल्टे (विलोमकृत) प्रतिबिम्व मे ही दिखलाई देती है और, इसलिए, कार्य उसके लिए कारण बन जाता है। इस चीज़ को बहुत पहले पाँचवे दशक मे ही मैंनचेस्टर मे मैंने अनुभव किया था। उद्योग-धन्धो की क्रिया-विधि तथा उसके आवधिक (periodical) अधिकतम तथा न्यूनतम विन्दुओ को समझने की दृष्टि से लन्दन के शेयर बाज़ार (स्टॉक एक्सचेन्ज) से आने वाली रिपोर्टें बिल्कुल वेकार होती थी, क्योकि इनको भेजने वाले सज्जन हर चीज़ को केवल मुद्रा बाज़ार के सकटो के सर मढने की कोशिश करते थे। वे यह नही समझते थे कि मुद्रा बाज़ार के ये सकट स्वयम् आम तौर से अन्य ही किसी चीज़ के मात्र लक्षण थे। उस समय मुख्य काम इस चीज को गलत साबित करना था कि औद्योगिक संकटो का कारण अस्थायी अति-उत्पादन होता है। इसकी वजह से इस काम का एक प्रवृत्ति-साधक पहलू भी होता था जो तोडने-मरोडने के काम को वढावा देता था। अव इस काम का—कम से कम, हमारे लिए —हमेशा के लिए महत्व खत्म हो गया। इसके अलावा, यह भी वास्तव मे सही है कि मुद्रा बाजार के भी खुद अपने संकट हो सकते है। —इन संकटों मे उद्योग-धन्धो की प्रत्यक्ष गडवडियो की केवल एक गौण भूमिका होती है, अथवा कोई भी भूमिका नही होती। इस क्षेत्र मे ख़ास तौर से पिछले २० वर्षो के इतिहास के सिलसिले मे, अभी बहुत कुछ प्रमाणित करने और जाँचने-पडतालने की जरूरत है।

जहाँ सामाजिक स्तर पर श्रम-विभाजन होता है, वहाँ श्रम की अलग-अलग क्रियाएँ एक दूसरे से स्वतत्र बन जाती है। अन्ततोगत्वा निर्णायक तत्व उत्पादन ही होता है। किन्तु उत्पादित वस्तुओ का व्यापार ज्योही उत्पादन से स्वतत्र हो जाता है त्योही वह स्वयम् अपनी एक अलग राह पर चलने लगता है। उसकी यह गति यद्यपि अब भी पूरे तौर से देखने पर उत्पादन की गति से नियत्रित होती है, फिर भी, खास-खास बातो मे, और इस आम निर्भरता के ही अन्तर्गत रहते हुए, यह नया तत्व

स्वयम् अपनी प्रकृति मे निहित नियमो का अनुसरण करता है। इस गति की खुद अपनी अवस्थाएँ होती है और फिर वह खुद भी उत्पादन की गति को प्रभावित करती है।

अमरीका की खोज सोने की तृष्णा के कारण हुई थी। इससे पहले इसी तृष्णा ने पुर्तगालियो को अफ्रीका जाने के लिए बाध्य कर दिया था (देखिए: सुएट बियर की रचना, "बहुमूल्य धातुओं का उत्पादन")। इसका कारण यह था कि १४वी और १५वी शताब्दियो मे योरोप के उद्योग-धधो का तथा उसी के अनुरूप व्यापार का जो जबर्दस्त विस्तार हो गया था उसके लिए विनिमय के और अधिक साधनो की आवश्यकता पैदा हो गयी थी। जर्मनी, जो १४५० से १५५० तक चाँदी का महान् देश रहा था, अब इस आवश्यकता की पूर्ति नही कर सकता था। १५०० और १८०० के बीच पुर्तगालियो, डचो तथा अंग्रेजो ने भारत की जो फ़तह की थी उसके पीछे भारत से आयात प्राप्त करने का लक्ष्य था— वहाँ किसी चीज का निर्यात करने का सपने मे भी किसी को खयाल नही था। इसके बावजूद, केवल व्यापारिक स्वार्थो की वजह से की गयी इन खोजो तथा विजयो का उद्योग-धन्धो के ऊपर कितना विराट् प्रभाव पड़ा था! आधुनिक बड़े पैमाने के उद्योग-धन्धो की सृष्टि और विकास इन देशो को निर्यात करने की आवश्यकताओ को ही लेकर हुए थे!

मुद्रा बाजार के सम्बन्ध में भी ठीक ऐसी ही बात है। मुद्रा मे होने वाला व्यापार ज्योही मालो के व्यापार से अलग हो जाता है त्योही— उत्पादन तथा मालो के व्यापार द्वारा निर्धारित की गयी निश्चित परि-स्थितियो के अन्तर्गत तथा इन्ही की सीमाओं के भीतर—उसका खुद का विकास होने लगता है, उसकी प्रकृति तथा अलग-अलग अवस्थाओं द्वारा निर्धारित किये गये स्वयम् उसके विशेष नियम काम करने लगते है। इसी मे अगर यह बात भी जोड दी जाय कि, आगे विकसित होकर, मुद्रा व्यापार अपने अन्दर ऋण-पत्रो के व्यापार को भी समेट लेता है और इन ऋण-पत्रों मे केवल सरकारी पत्र नही रहते बल्कि औद्योगिक तथा

परिवहन के स्टॉक भी रहते है —और फिर इसकी वजह से मुद्रा व्यापार उस उत्पादन के एक अश पर भी अपना सीधा नियत्रण कायम कर लेता है जिससे कि, पूरे तौर से देखने पर, वह स्वयम् नियत्रित होता है, तो हम देखेंगे कि उत्पादन पर मुद्रा व्यापार का प्रभाव और भी अधिक पेचीदा हो जाता है। मुद्रा के व्यापारी रेलो, खानो, लोहे के कारखानो, आदि के मालिक होते है। उत्पादन के इन साधनो के दो रूप हो जाते है : कभी-कभी उनका काम प्रत्यक्ष उत्पादन मे मदद देना होता है, किन्तु कभी-कभी उन्हे उन शेयर-होल्डरों की आवश्यकताओ के अनुसार भी काम करना पडता है जो मुद्रा के व्यापारी होते है। इस चीज का सबसे ज्वलन्त उदाहरण उत्तरी अमरीका की रेलो मे देखने को मिलता है। इन रेलो का काम पूरे तौर से किसी जे गूल्ड, अथवा किसी वान्डरविल्ट आदि की स्टॉक एक्सचेन्ज (सट्टे बाज़ार) से सम्बन्धित उन दैनिक कार्रवाईयों पर निर्भर करता है जिनका उक्त रेलो तथा संवहन के एक साधन के रूप मे उनके हितो से कोई सम्बन्ध नही है। और यहाँ, इंगलैण्ड मे भी भिन्न-भिन्न रेल कम्पनियो के बीच सीमा क्षेत्रों को लेकर दशाब्दियो तक चलने वाली लड़ाइयाँ हमने देखी है। इन लड़ाइयो पर बेहिसाब रुपया बर्बाद किया गया था,—उत्पादन तथा सवहन के हित मे नही, बल्कि सिर्फ इसलिए कि उनके शेयरो (हिस्से) के मालिक मुद्रा व्यापारियो मे आपस मे झगडा था। आम तौर से इस झगडे का एकमात्र उद्देश्य इन शेयर-होल्डरों की सट्टेबाजारी मे मदद देना था।

उत्पादन के मालो के व्यापार के साथ और इन दोनो के मुद्रा व्यापार के साथ सम्बन्ध के विषय मे अपनी धारणा के बारे में इन चन्द सकेतो के द्वारा ऐतिहासिक भौतिकवाद के विषय मे तुम्हारे प्रश्नो का उत्तर मूलत. मैंने दे दिया। इस चीज को श्रम विभाजन के दृष्टिकोण से सबसे आसानी से समझा जा सकता है। समाज के अन्दर कुछ ऐसे आम काम पैदा होते है जिनके बिना उसका निस्तार नही हो सकता। इन कामो के लिए जिन व्यक्तियों को नियुक्त किया जाता है उनसे समाज के अन्दर ही श्रम विभाजन

की एक नयी शाखा कायम हो जाती है। इससे उन व्यक्तियों के कुछ खास हित पैदा हो जाते है जो उन लोगों के हितों से भिन्न होते है जिन्होंने उन्हें उन कामो की सत्ता सौंपी थी; वे उन लोगों से स्वतंत्र हो जाते है और — राजसत्ता का जन्म हो जाता है। और अब चीजें ठीक उसी ढंग से चलने लगती हैं जिस ढंग से मालो के व्यापार के तथा, बाद मे, मुद्रा के व्यापार के क्षेत्र मे वे चलती है : मुख्यतया उत्पादन की गति का अनुसरण करने के लिए बाध्य होते हुए भी, अपनी अन्तर्निहित सापेक्ष स्वतंत्रता की वजह से —अर्थात्, उस सापेक्ष स्वतंत्रता की वजह से जो एक बार उसको प्रदान कर दी गयी थी और धीरे-धीरे और अधिक विकसित हो गयी है —यह नयी सत्ता स्वयम् भी उत्पादन-परिस्थितियों तथा उत्पादन के क्रम पर प्रभाव डालती है। यह अन्योन्य (पारस्परिक) क्रिया दो असमान शक्तियो के बीच की क्रिया होती है : एक तरफ, आर्थिक गति होती है; दूसरी तरफ, वह नयी राजनीतिक सत्ता जो अधिक से अधिक स्वतंत्रता प्राप्त करने का प्रयत्न करती है, और जिसमे, एक बार स्थापित हो जाने के बाद स्वयम् खुद की गति पैदा हो जाती है। पूरे तौर पर देखा जाय तो अन्त मे आर्थिक गति ही की विजय होती है, किन्तु उसे भी उस राजनीतिक गति-विधि से प्रभावित होना पड़ता है जिसकी स्वयम् उसने सृष्टि की थी और जिसे उसने, एक तरफ, राजसत्ता की गति से और, दूसरी तरफ, उसके साथ-साथ पैदा हो जाने वाले उसके विरोध से सापेक्ष स्वतंत्रता सौंपी थी। जिस प्रकार कि मुख्यतया तथा उन प्रतिबन्धो के अन्दर, जो ऊपर बताये जा चुके है, औद्योगिक बाजार की गति मुद्रा बाजार मे प्रतिबिम्बित — और दरअसल उल्टे (विलोमकृत) रूप में प्रतिबिम्बित होती है, उसी तरह उन वर्गो का संघर्ष जो पहले से मौजूद है और एक दूसरे से लड़ रहे हैं सरकार तथा विरोधी दल के आपसी संघर्ष के रूप मे प्रतिबिम्बित होता है —पर यह भी उसी तरह उल्टे (प्रतिलोमकृत) रूप मे —प्रत्यक्ष रूप मे नही बल्कि अप्रत्यक्ष रूप मे, वर्ग संघर्ष के रूप मे नही बल्कि राजनीतिक सिद्धान्तों के लिए किये जाने वाले संघर्ष के रूप मे प्रतिबिम्बित होता है।

वास्तव में वह इतने विकृत रूप में प्रतिबिम्बित होता है कि उसे समझने में हमे हजारों वर्ष लग गये है ।

आर्थिक विकास पर राजशक्ति का प्रभाव तीन प्रकार का हो सकता है : वह आर्थिक विकास की ही दिशा मे काम कर सकती है, ऐसा होने पर विकास की गति और तेज हो जाती है; वह विकास का विरोध कर सकती है, और तब आजकल की परिस्थितियो में प्रत्येक महान् देश में अन्ततोगत्वा टूट-फूटकर वह छिन्न-विच्छिन्न हो जायगी; अथवा फिर आर्थिक विकास को किसी खास दिशा में जाने से रोककर उसके लिए विकास की वह दूसरी कोई दिशाएँ निर्धारित कर दे सकती है । अन्त में, इसका अंजाम भी ऊपर के दोनो अंजामो मे से किसी एक की श्रेणी के अन्तर्गत आ जायगा । परन्तु, यह बात तो स्पष्ट है कि, दूसरी और तीसरी स्थितियो मे राजनीतिक सत्ता आर्थिक विकास को बहुत धक्का पहुँचा सकती है तथा शक्ति और साधनो की भारी बर्बादी का कारण बन सकती है ।

फिर विजय तथा आर्थिक साधनो के पाशविक विनाश के कांड भी होते है । किसी जमाने मे, किन्ही विशेष परिस्थितियो के अन्तर्गत, इसके द्वारा सम्पूर्ण स्थानीय अथवा राष्ट्रीय आर्थिक विकास को नष्ट कर दिया जा सकता था । आजकल ऐसी चीज का, आमतौर से, कम से कम बड़े देशो मे उल्टा ही असर होता है : अन्ततः, विजेता की अपेक्षा विजित कौम आर्थिक, राजनीतिक तथा नैतिक रूप से अक्सर और अधिक मजबूत हो जाती है ।

यही बात कानून के सम्बन्ध मे है । ज्योंही श्रम का वह नया विभाजन आवश्यक हो जाता है जो पेशेवर वकीलो को पैदा करता है, त्योंही एक दूसरा नया तथा स्वतंत्र क्षेत्र उत्पन्न हो जाता है । उत्पादन तथा व्यापार पर इसकी तमाम आम निर्भरता के बावजूद, इस क्षेत्र मे उन अन्य क्षेत्रों को प्रभावित करने की भी एक विशेष क्षमता होती है । आधुनिक राज्य मे कानून के लिए केवल यही नही आवश्यक है कि वह आम आर्थिक

परिस्थिति के अनुरूप हो और उसकी अभिव्यंजना करे, बल्कि यह भी आवश्यक है कि उसकी यह अभिव्यंजना आन्तरिक रूप से सुसंगत हो जिससे कि अपनी आन्तरिक असंगतियों के कारण वह निरर्थक न हो जाय। और इस चीज को सम्भव बनाने की प्रक्रिया में उसके अन्दर आर्थिक परिस्थितियों का सही-सही प्रतिबिम्ब अधिकाधिक क्षीण होता जाता है। ऐसा इसलिए और भी अधिक होता है कि कानून के नियम किसी वर्ग के आधिपत्य की एकदम खुले, खालिस और पूर्ण रूप से अभिव्यंजना विरले ही कभी करते हैं—क्योंकि ऐसा अगर वे करें तो "इन्साफ की धारणा" को चोट पहुँचेगी। यहाँ तक कि नेपोलियन की न्याय संहिता *(Code Napoleon)* में भी क्रान्तिकारी पूँजीपति वर्ग की १७९२-'९६ वाली इन्साफ की शुद्ध, सुसंगत धारणा अनेक रूपों में दूषित हो गयी है; और, जिस हद तक वह उसमें मौजूद है उसमें भी, सर्वहारा वर्ग की बढ़ती हुई शक्ति की वजह से, नित दिन तरह-तरह के ऐसे परिवर्तन होते रहते हैं जिनसे वह धारणा और भी क्षीण होती जाती है। परन्तु इनकी वजह से नेपोलियन की न्याय संहिता के विधान की एक ऐसी पुस्तक बने रहने में कोई फर्क नहीं पड़ता जो दुनिया के हर भाग में वहाँ की हर नयी न्याय संहिता के लिए मूल आधार का काम देती है। इस तरह, बहुत हद तक, "इन्साफ के विकास" क्रम का अर्थ केवल यह होता है कि, पहले तो, इस के माध्यम से कानूनी सिद्धान्तों के रूप में आर्थिक सम्बन्धों के सीधे-सीधे रूपान्तरण के कारण जो असंगतियाँ पैदा हो जाती हैं उनको खत्म करने की, तथा कानून की एक सामंजस्यपूर्ण व्यवस्था की स्थापना करने की कोशिश की जाती है; और फिर, उन दरारों को पाटने की कोशिश की जाती है जो आगे के और आर्थिक विकास के प्रभाव तथा दबाव के कारण, इस व्यवस्था में बार-बार पैदा होती हैं और इस व्यवस्था को और भी अधिक असंगतियों के भँवर में फँसाती रहती हैं। (यहाँ मैं इस समय केवल दीवानी के क़ानून की बात कर रहा हूँ।)

क़ानूनी सिद्धान्तों के रूप में आर्थिक सम्बन्धों का प्रतिबिम्ब भी

अनिवार्य रूप से उल्टा-पल्टा होता है . जो आदमी उन पर अमल करता है उसे इस प्रतिबिम्ब की कोई चेतना नही होती। न्यायशास्त्री सोचता है कि वह जिन प्रस्थापनाओ के आधार पर काम कर रहा है वे पूर्व-सिद्ध है, जब कि वास्तव मे वे मात्र आर्थिक प्रतिवर्त होती है। इस भाँति, हर चीज उल्टी नजर आती है। और, मुझे यह बात स्पष्ट लगती है कि यह अपवर्तन (उल्टापन) —जो कि, जब तक उसके बारे मे जानकारी नही हो जाती, तब तक जिसे हम **विचारधारात्मक दृष्टिकोण** कहते है वह बना रहता है—फिर आर्थिक आधार को भी स्वयम् प्रभावित करता है और, किन्ही सीमाओ के अन्दर, उसे बदल भी दे सकता है। उत्तराधिकार (दाय) प्राप्त करने के अधिकार का आधार आर्थिक है—यहाँ हम मान लेते है कि परिवार के विकास-क्रम की अवस्थाएँ एक ही हैं। — इसके बावजूद, इस चीज़ को साबित करना, उदाहरण के लिए, मुश्किल होगा कि इगलैण्ड मे वसीयत करने वाले को मिली हुई अक्षुण्ण आज़ादी तथा फ्रान्स मे हर छोटी-छोटी बात के लिए इस सम्बध मे उस पर लगे सख्त प्रतिबन्धो की वजहे केवल आर्थिक है। परन्तु, ये दोनों ही व्यवस्थाएँ आर्थिक क्षेत्र को काफी मात्रा मे प्रभावित करती हैं, क्योकि वे सम्पत्ति के वितरण पर असर डालती है।

जहाँ तक विचारधारा के उन विषयो का सम्बन्ध है जो हवा मे और भी ऊँचे उड़ते है—धर्म, दर्शन, इत्यादि का—तो इनके पास ऐसी चीजो का एक प्रागऐतिहासिक भण्डार मौजूद है जिन्हे आज हम निरी बकवास ही कह सकते है। यह भण्डार पहले से मौजूद था। ऐतिहासिक काल ने उसे अपना लिया था। प्रकृति, स्वयम् मनुष्य की अपनी सत्ता, भूतो-प्रेतो, जादू की शक्तियो, आदि-आदि के बारे मे भिन्न-भिन्न प्रकार की जो ये गलत धारणाएँ है उनका आधार अधिकाशतया केवल एक नकारात्मक आर्थिक तत्व है; प्रागऐतिहासिक काल के आर्थिक विकास का जो निम्न स्तर था उसकी कमी की प्रकृति सम्बधी ये गलत धारणाएँ पूर्ति करती थी। आशिक रूप से ये गलत धारणाएँ उस काल के निम्न आर्थिक विकास का अवस्थापन करती थी। यहाँ तक कि

वे उसकी वजह भी होती थी। और यद्यपि प्रकृति का जो उत्तरोत्तर ज्ञान बढता गया है उसके पीछे भी मुख्य प्रेरक शक्ति आर्थिक अनिवार्यता थी—और अब इसकी भूमिका और भी अधिक बढ गयी है—किन्तु इस तमाम आदिमकालीन बकवास के पीछे किन्ही आर्थिक कारणों को ढूंढने और पाने की कोशिश करना सिर्फ शेखी बघारना होगा। इस बकवास को क्रमश: खत्म करने अथवा, यों कहना चाहिए कि, उसकी जगह पर नयी किन्तु सदा उससे कुछ कम निरर्थक बकवास की स्थापना करने की क्रिया का इतिहास ही विज्ञान का इतिहास है। जो लोग इस काम को करते है उनका सम्बन्ध फिर श्रम-विभाजन के विशेष क्षेत्रो से हो जाता है और उन्हे लगने लगता है कि वे एक स्वतत्र क्षेत्र मे काम कर रहे है। और श्रम के सामाजिक विभाजन की व्यवस्था के अन्तर्गत जिस हद तक एक स्वतत्र दल के रूप मे वे काम करते है उसी हद तक उनके क्रिया-कलाप, जिनमे उनकी गल्तियाँ भी शामिल है, समाज के सम्पूर्ण विकास पर, उसके आर्थिक विकास पर भी प्रभाव डालते है। पर, इस सबके बावजूद, वे स्वयम् भी आर्थिक विकास के प्रबल प्रभाव के अधीन होते हैं। उदाहरण के लिए, पूजीवादी काल के सम्बध मे दर्शन के क्षेत्र मे इस चीज को बहुत आसानी से प्रमाणित किया जा सकता है।

हौब्स पहला आधुनिक भौतिकवादी था (१८वीं शताब्दी की समझदारी के अर्थ मे)। किन्तु एक ऐसे युग मे जब कि सारे योरप मे निरकुश राजतत्र की व्यवस्था अपने पूरे उरूज पर थी और इंगलैण्ड मे वह खुलकर जनता के विरुद्ध काम करने लगी थी, तब वह निरकुश शासनवादी था! लौक, धर्म और राजनीति दोनो के क्षेत्र मे, १६८८ के वर्गीय समझौते की सन्तान था। अग्रेज ईश्वरवादी और उनके अधिक सुसगत कृति-साधक —यानी फ्रान्सीसी भौतिकवादी, पूजीपति वर्ग के सच्चे दार्शनिक थे। फ्रान्सीसी भौतिकवादी तो पूजीवादी क्रान्ति तक के सच्चे दार्शनिक थे। कान्ट से लेकर हीगेल तक जर्मन दर्शन मे बराबर जर्मन

अधकचरापन पाया जाता है, कभी वह सकारात्मक रूप से उसमें मौजूद रहता है और कभी नकारात्मक रूप से। किन्तु, इस विभाजन के एक निश्चित क्षेत्र के रूप में, हर युग के दर्शन का आधार एक निश्चित चिन्तन-सामग्री होती है जो उसके पूर्वज उसके लिए छोड़ जाते हैं। उसकी शुरुआत इसी से होती है। और यही कारण है कि आर्थिक रूप से पिछड़े हुए देश दर्शन के क्षेत्र मे अब भी आगे-आगे रह सकते है: १८वी शताब्दी मे इगलैण्ड की अपेक्षा —जिसके दर्शन को फ्रासीसियो ने अपना आधार बनाया था—फ्रान्स आगे था और, बाद मे, जर्मनी इन दोनो से ही आगे निकल गया था।

परन्तु फ्रान्स तथा जर्मनी दोनो मे दर्शन तथा साहित्य का जो आम प्रस्फुटन उस समय हो रहा था वह बढते हुए आर्थिक विकास का ही परिणाम था। अन्ततोगत्वा आर्थिक विकास का ही प्राधान्य होता है, इस बात को इन क्षेत्रो के सिलसिले मे भी मै सही मानता हूँ। —परन्तु उसका प्रभाव उस विशेष क्षेत्र द्वारा स्वय निर्धारित की गयी परिसीमाओं के भीतर ही पडता है। उदाहरण के लिए, दर्शन के क्षेत्र मे उसकी प्रधानता पूर्वजो द्वारा छोडी गयी उस दार्शनिक सामग्री के ऊपर आर्थिक प्रभावो (और ये खुद भी आम तौर से राजनीतिक तथा अन्य छद्म रूपो मे काम करते हैं) की सक्रिया के माध्यम से प्रकट होती है जो पहले से मौजूद है। यहाँ अर्थ व्यवस्था किसी चीज की नये सिरे से सृष्टि नही करती, परन्तु वह उस ढग को निर्धारित करती है जिसके माध्यम से मौजूद मिली चिन्तन-सामग्री को बदला तथा और आगे विकसित किया जाता है। और यह काम भी अधिकाशतया वह अप्रत्यक्ष रूप से करती है, क्योकि दर्शन पर सबसे अधिक प्रत्यक्ष प्रभाव राजनीतिक, कानूनी तथा नैतिक प्रतिवर्तो का पडता है।

धर्म के सम्बन्ध मे जो कुछ भी अत्यन्त आवश्यक था उसे मैंने फायरबाख* के अन्तिम भाग मे कह दिया है।

---

* इस सग्रह के पृष्ठ ३३०–३५८ देखिए। —स०

इसलिए बार्थ अगर यह समझते है कि आम गति के ऊपर आर्थिक गति के राजनीतिक तथा अन्य प्रतिवर्तो की प्रत्येक प्रतिक्रिया से हम इन्कार करते है, तो वह केवल हवा मे लाठी भाँज रहे है। इसे देखने के लिए उन्हे मार्क्स की रचना, १८वें ब्रूमेयर पर ही सिर्फ नज़र डालने की जरूरत है। उसमें एक तरह से राजनीतिक सघर्षो तथा घटनाओ द्वारा अदा की जानेवाली **खास** भूमिका पर ही विचार किया गया है। निस्सन्देह, यह भूमिका वे आर्थिक परिस्थितियो के ऊपर अपनी **आम** निर्भरता की परिधि मे रहकर ही अदा करती है। अथवा वह **पूंजी**[८९] के उदाहरण के लिए, काम के दिन से सम्बधित उस भाग को देख ले जिसमे दिखलाया गया है कि कानून-निर्माण के कार्य का, जो कि निश्चय ही एक राजनीतिक कार्य है, आम गति पर कितना तीक्ष्ण प्रभाव पड़ता है। अथवा पूजीपति वर्ग के इतिहास से सम्बधित भाग को वह देख ले (अध्याय २४)। अथवा वह इसी बात पर विचार करे कि राजनीतिक सत्ता आर्थिक रूप से अगर इतनी शक्तिहीन है तब फिर सर्वहारा वर्ग के राजनीतिक अधिनायकत्व के लिए हम क्यों लडते है? शक्ति (अर्थात्, राज्य-शक्ति) भी आर्थिक सत्ता है!

किन्तु पुस्तक[९०] की आलोचना करने का समय मेरे पास इस वक्त नही है। पहले मुझे तीसरे खण्ड* को प्रकाशित करना है। इसके अलावा, मेरा खयाल है कि इस काम को, उदाहरण के लिए, बर्नस्टीन काफी अच्छी तरह से पूरा कर सकते है।।

इन तमाम सज्जनो में जिस चीज की कमी है वह द्वन्द्ववाद है। वे हमेशा कभी केवल कार्य को देखते है, कभी कारण को। वे इस चीज को कभी नही समझ पाते कि यह एक खोखली कल्पना है, कि वास्तविक जगत् मे इस तरह की आधिभौतिक ध्रुवीय रूप से सर्वथा विरोधी वस्तुएँ केवल सकट-कालो मे ही दिखलाई देती है और शेप समय उसकी सम्पूर्ण विराट

---

* मार्क्स की **पूंजी** के तीसरे खण्ड के। —स०

प्रक्रिया अन्योन्य क्रिया के रूप मे ही चलती रहती है —यद्यपि जिन शक्तियो के बीच यह अन्योन्य प्रक्रिया चलती है वे अत्यन्त असमान होती है। आर्थिक क्रिया सबसे शक्तिशाली, सबसे आदिकालिक तथा सबसे निर्णायक होती हे। यहाँ पर प्रत्येक वस्तु सापेक्ष है और निरपेक्ष कोई चीज़ नही है —इसे वे कभी नही देख पाते। जहाँ तक उनका सम्बन्ध है मानो हीगेल कभी हुआ ही नही था। ....

फ्रेडरिक एंगेल्स

समाजवाद : काल्पनिक तथा वैज्ञानिक के अंग्रेज़ी संस्करण की भूमिका

यह छोटी-सी पुस्तक मूलत: एक बृहत्तर ग्रथ का अग है। १८७५ के करीब बर्लिन विश्वविद्यालय के अवैतनिक सहायक प्रोफेसर, डा० यू० ड्यूरिग ने यकायक और काफी जोर-शोर के साथ एलान किया कि वे समाजवाद के हामी हो गये है। जर्मन जनता के सामने उन्होने केवल एक विस्तृत समाजवादी सिद्धान्त ही नही पेश किया, बल्कि समाज के पुनर्गठन की एक सम्पूर्ण व्यावहारिक योजना भी रखी। स्वभावत. उन्होने अपने पूर्वाधिकारियो को पानी पी-पीकर कोसा और, सबसे बडी बात यह है कि, अपना सारा गुस्सा मार्क्स के ऊपर उतार कर उन्होने उनका सम्मान बढ़ाया।

यह लगभग ऐसे समय हुआ, जब जर्मन समाजवादी पार्टी की दो शाखाएँ, —आइजेनाखवादी तथा लासालवादी —अभी अभी एक हो गयी थी, और इस प्रकार उन्होने अपनी शक्ति बहुत अधिक बढ़ा ली थी। इतना ही नही, उन्होने इस समूची शक्ति को अपने सामान्य शत्रु के विरुद्ध लगा देने की क्षमता भी प्राप्त कर ली थी। जर्मनी की समाजवादी पार्टी तेजी से एक शक्ति बनती जा रही थी। लेकिन अगर उसे

एक शक्ति बनना था, तो उसकी पहली शर्त यह थी कि उन्होने हाल मे जो एकता हासिल की थी वह खतरे मे न पडने पाये। लेकिन डा० ड्यूरिंग ने खुलेआम अपने इर्दगिर्द एक गुट बनाना शुरू किया। इस गुट मे एक भावी पृथक् पार्टी के बीज छिपे हुए थे। इसलिये यह जरूरी हो गया कि हमे जो चुनौती दी गयी थी, हम उसें स्वीकार करे, और हमारी इच्छा हो या न हो, हम यह लड़ाई शुरू करें।

यह काम चाहे बहुत मुश्किल न हो, लेकिन लबा और पेचीदा जरूर था। जैसा कि सभी जानते है, हम जर्मन लोग ठोस गंभीरता के साथ काम करते है—इसे आप हमारी उग्र चिन्तनशीलता कह ले, या चाहे तो चिन्तनशील उग्रवादिता कह ले। हम मे से जब भी कोई किसी ऐसे सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है, जो उसकी दृष्टि मे नवीन है, तब सबसे पहले वह एक सर्वव्यापी प्रणाली के रूप मे उसका विस्तार करना आवश्यक समझता है। उसे यह सिद्ध करना पडता है कि तर्कशास्त्र के प्राथमिक सिद्धान्त तथा सृष्टि के मूल नियम अनन्त काल से इसीलिए चले आ रहे है कि अन्तत उनकी परिणति इस नये आविष्कृत चरम सिद्धान्त मे हो। और इस मामले मे डा० ड्यूरिंग जातीय मान से किसी माने मे घटकर नही थे। मानसिक, नैतिक, प्राकृतिक तथा ऐतिहासिक दर्शन की एव सम्पूर्ण "प्रणाली", "अर्थशास्त्र तथा समाजवाद की" एक सम्पूर्ण "प्रणाली", और, अत मे, एक "अर्थशास्त्र का आलोचनात्मक इतिहास' —कुछ नही तो, अठपेजी साइज की ये तीन मोटी-मोटी पोथियाँ थी, बाहर से, और अदर से भी भारी-भरकम। मानो सभी पुराने दार्शनिको तथा अर्थशास्त्रियो के, और विशेषत मार्क्स के, खिलाफ तर्को के तीन सेना-दल खडे कर दिये गये थे।—दरअसल, "विज्ञान मे एक समूची क्राति" ला देने की कोशिश की गयी थी।—और मुझे इन्ही सबसे निपटना था! देश-काल की धारणाओ से लेकर द्विधातुवाद तक, भूत और गति की नित्यता से लेकर नैतिक विचारो की अनित्यता तक, डारविन के प्राकृतिक वरण् के सिद्धान्त से लेकर भावी समाज मे युवको

की शिक्षा तक–मुझे हर संभव विषय की विवेचना करनी पड़ी। जो भी हो, मेरे प्रतिद्वंदी की व्यवस्थित व्यापकता ने मुझे इस बात का अवसर दिया कि उसके विरुद्ध इन तमाम विभिन्न विषयों पर मार्क्स के और अपने विचारों को पहले से अधिक सम्बद्ध रूप मे मैं विकसित कर सकू। यही मुख्य कारण था कि मैने यह काम हाथ मे लिया, अन्यथा यह काम बिल्कुल ही अलाभकर होता।

मेरा उत्तर पहले समाजवादी पार्टी के मुखपत्र, लाइपज़िग के **"वोरवार्ट्स"** मे एक लेख-माला के रूप मे, और पीछे **"श्री ड्यूरिंग द्वारा विज्ञान में प्रवर्तित क्रांति'** के नाम से एक पुस्तक के रूप मे, प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक का दूसरा संस्करण ज़ूरिच से १८८६ मे प्रकाशित हुआ था।

अपने मित्र, आजकल फ्रांसीसी प्रतिनिधि-सभा में लिली के प्रतिनिधि, पॉल लाफार्ज के अनुरोध पर, इस पुस्तक के तीन अध्यायों को मैंने एक पैम्फलेट की शक्ल दे दी थी। उन्होंने इस पैम्फलेट का अनुवाद किया था और **समाजवाद: काल्पनिक तथा वैज्ञानिक** के नाम से १८८० मे प्रकाशित किया था। इस फ्रांसीसी पाठ से ही पोलिश और स्पेनिश भाषाओ के सस्करण तैयार किये गये थे। १८८३ मे हमारे जर्मन बंधुओं ने इस पैम्फलेट को मूल भाषा (यानी जर्मन) मे प्रकाशित किया था। तब से इस जर्मन पाठ के आधार पर इटालवी, रूसी, डैनिस, डच तथा रूमानियन भाषाओ मे इसके अनुवाद प्रकाशित हो चुके है। इस तरह, वर्तमान अंग्रेजी सस्करण को लेकर यह पुस्तिका इस समय दस भाषाओ मे प्रचलित है। जहाँ तक मुझे मालूम है, और किसी समाजवादी पुस्तक के, यहाँ तक कि १८४८ के हमारे **"कम्युनिस्ट घोषणापत्र"** या मार्क्स कृत **"पूंजी"** के भी इतने अधिक अनुवाद नही हुए है। जर्मनी मे इसके चार सस्करण निकल चुके है, जिनमे कुल मिलाकर २०,००० प्रतियाँ छप चुकी है।

पुस्तक का परिशिष्ट "मार्क"* इस उद्देश्य से लिखा गया था कि जर्मन समाजवादी पार्टी के अदर जर्मनी मे भू-सम्पत्ति के इतिहास तथा विकास का कुछ प्रारभिक ज्ञान फैलाया जा सके। एक ऐसे समय जबकि इस पार्टी मे शहरो की मेहनतकश जनता को शामिल करने का काम करीब-करीब पूरा हो चुका था, और जबकि खेतिहर मजदूरो और किसानों को हाथ मे लेना था, इस काम को करना और भी जरूरी मालूम हो रहा था। अनुवाद के साथ इस परिशिष्ट को भी शामिल कर लिया गया है, क्योकि भूमि सबधी अधिकारोंके उन मूल रूपो को, जो सभी ट्यूटानिक जातियों मे समान रूप से पाये जाते है, तथा उनके पतन के इतिहास को इगलैड मे लोग जर्मनी से भी कम जानते है। इस परिशिष्ट के मूल रूप को मैने अक्षुण्ण रखा है और हाल मे मैक्सिम कोवालेव्स्की ने जो परिकल्पना सम्मुख रखी है, उसकी ओर सकेत नही किया है। इस परिकल्पना के अनुसार, कृषि-योग्य भूमि तथा चरागाहो का मार्क के सदस्यो के बीच बटवारा होने से पहले, उनमे एक विशाल पितृसत्तात्मक कुटुम्ब-समुदाय द्वारा सम्मिलित रूप से खेती की जाती थी। यह प्रणाली कई पीढियो तक जारी रही थी (दक्षिण-स्लाव 'जाद्रुगा' के रूप मे अब भी उसे देखा जा सकता है)। बाद मे, यह समुदाय जब इतना बडा हो गया कि सम्मिलित प्रबंध के योग्य न रह गया, तब जमीन का बटवारा कर लिया गया। कोवालेव्स्की की बात संभवतः बिलकुल सही है, लेकिन यह विषय अब भी विचाराधीन है।

जहा तक अर्थशास्त्र के नये पारिभाषिक शब्दो का प्रश्न है, इस पुस्तक मे जिन शब्दो का उपयोग हुआ है, वे मार्क्स के "पूंजी" के अग्रेजी सस्करण मे इस्तेमाल किये गये शब्दो से मेल खाते है। "माल

*"मार्क"—प्राचीन जर्मनी की ग्राम-पचायत। एगेल्स ने इस शीर्षक से "समाजवाद : काल्पनिक तथा वैज्ञानिक" के पहले जर्मन सस्करण और पहले अग्रेजी संस्करण में एक परिशिष्ट जोड दिया था। उसमें उन्होंने जर्मनी के किसानों का प्राचीन काल से इतिहास दिया है। —सपादक।

के उत्पादन" से हमारा तात्पर्य उस आर्थिक दौर से है, जिसमे वस्तुओं का उत्पादन उत्पादको के व्यवहार के लिए ही नही, वल्कि विनिमय के लिये भी होता है; अर्थात् उनका उत्पादन माल के रूप में होता है, उपयोग-मूल्यो के रूप में नही। विनिमय के लिए जब से उत्पादन शुरू हुआ था तव से लेकर आज तक यही दौर चल रहा है; परतु उसका पूरा विकास पूजीवादी उत्पादन-प्रणाली के अतर्गत ही होता है, अर्थात् उन अवस्थाओं मे ही होता है जिनमे उत्पादन के साधनों का स्वामी, पूजीपति, मज़दूरी देकर मज़दूरो को, यानी उन लोगो को काम पर रखता है, जो अपनी श्रम शक्ति को छोड कर उत्पादन के सभी साधनो से वंचित हो चुके है; और उसे बेचकर पैदावार की लागत से वह जितना अधिक कमाता है, उस सबको हडप लेता है। औद्योगिक उत्पादन के मध्य-युग से आज तक के इतिहास को हम तीन दौरो मे वांट सकते है: (१) दस्तकारी का दौर, जिसमे छोटे कारीगर-मालिक, थोड़े से कारीगर-मजदूरों और शागिर्दो के साथ काम करते है; इस दौर मे हर मजदूर पूरी चीज तैयार करता है। (२) कारखाने मे उत्पादन का दौर, जब मज़दूरों की अधिक वड़ी संख्या एक वड़े कारखाने मे एकत्र होकर, श्रम-विभाजन के सिद्धान्त के आधार पर, पूरी वस्तु का उत्पादन करती है; इस दौर में हर मजदूर उत्पादन की किसी एक आंशिक क्रिया को ही पूरा करता है, इसलिए किसी वस्तु का उत्पादन तभी पूरा होता है जब, एक के वाद एक, वह सभी के हाथो से गुजरती है। (३) आधुनिक उद्योग का दौर, इसमें शक्ति से चलनेवाली मशीनों से उत्पादन होता है। इसमें मजदूर का काम सिर्फ इतना ही रह जाता है कि वह यांत्रिक साधन, यानी मशीन के काम की देखभाल रखे और उसे ठीक करता रहे।

मुझे अच्छी तरह मालूम है कि इस पुस्तक की विषयवस्तु पर ब्रिटिश पाठकों के काफी वड़े भाग को आपत्ति होगी। लेकिन अगर हम यूरोपियनों ने ब्रिटेन के "संभ्रान्त" लोगो के पूर्वाग्रहो का ज़रा भी खयाल किया होता तो जिस हालत में हम है उससे और भी गयी-गुज़री हालत में होते। हम

जिस सिद्धान्त को "ऐतिहासिक भौतिकवाद" कहते हैं, इस पुस्तक में उसी का पक्ष लिया गया है और अग्रेजी पाठको मे से अधिकाश को तो 'भौतिकवाद" नाम से ही चिढ है। "अज्ञेयवाद" [९३] को सहन किया जा सकता है, परन्तु भौतिकवाद को कतई स्वीकार नही किया जा सकता !

और फिर भी सत्रहवी सदी से लेकर आज तक सभी प्रकार के आधुनिक भौतिकवाद की जन्मभूमि इगलैंड रहा है !

भौतिकवाद इगलैंड का औरस पुत्र है। ब्रिटिश 'स्कूलमैन' डंस स्कोटस पहले ही पूछ चुके थे, 'क्या भूत के लिए चिंतन करना असभव है ?'

"इस अलौकिक व्यापार को संभव बनाने के लिए, उन्होने ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता की शरण ली थी, अर्थात् उन्होने धर्म के माध्यम से भौतिकवाद का उपदेश दिया था। इसके अतिरिक्त, वह नामवादी थे। नामवाद* भौतिकवाद का पहला रूप था और मुख्य रूप से वह अग्रेजी स्कूलमैनो मे ही प्रचलित रहा है।

"वास्तव मे अग्रेज़ी भौतिकवाद के जन्मदाता बेकन थे। उनके अनुसार प्राकृतिक दर्शन ही सच्चा दर्शन है और इद्रियानुभूति पर आधारित भौतिक विज्ञान ही इस प्राकृतिक दर्शन का सबसे मुख्य अग है। प्रमाण के लिए वह अक़्सर अनाक्सागोरस और उसकी सदृश वस्तुओ (homoıomeriae) का, दिमाक्रिटस और उसके अणुओ का हवाला देते है। उनके अनुसार हमारी इन्द्रिया कभी धोखा नही देती और सारा ज्ञान उन्ही के द्वारा प्राप्त होता है। सारा विज्ञान अनुभव पर आधारित है और उसका काम है इन्द्रियो द्वारा प्राप्त तथ्यो की अन्वेषण की एक तर्कसंगत प्रणाली के माध्यम से जाच करना। अनुमान, विश्लेपण, तुलना, निरीक्षण, प्रयोग —इस तर्कसगत प्रणाली के यही मुख्य रूप है। भूत मे जो गुण निहित है, उनमे सबसे पहला और [illegible] गति। यह गति केवल यात्रिक तथा गणि-

* नामवाद [illegible] n नाम से) मध्ययुगीन दर्शन की वह
जिसके अनुयायी [illegible] तीय अवधारणाएँ मिलती-जुलत
नाम भर हैं। —

तीय गति के रूप में ही नही, बल्कि मुख्यतः भूत के एक आवेग, उसकी प्राणशक्ति, तनाव — अथवा जैकब बोह्मे की भाषा मे कहे तो, दर्द-भरी बेकरारी, 'qual' * — के रूप मे पायी जाती है ।

"भौतिकवाद के पहले सृष्टिकर्त्ता बेकन के दर्शन मे भौतिकवाद के बहुमुखी विकास के बीज अवरुद्ध ही है । उसमें एक ओर तो भूत के चारों ओर ऐन्द्रिय, काव्यात्मक चकाचौध है और वह अपनी मनोहारी हसी से मानव की सपूर्ण सत्ता को जैसे अपनी ओर खीचती है । और, दूसरी ओर, सूत्र रूप मे प्रतिपादित उसके सिद्धात मे कदम-कदम पर असगतियां अकुरित होती है । ये असंगतिया उसके दर्शन मे धर्म के क्षेत्र से आयी है ।

"भौतिकवाद का जब और आगे विकास हुआ तो वह एकागी हो गया । जिस आदमी ने बेकन के भौतिकवाद को व्यवस्थित रूप दिया, उसका नाम हौब्स है । इन्द्रियजनित ज्ञान का काव्यात्मक सौरभ नष्ट हो जाता है और वह गणितशास्त्री के निराकार अनुभव मे बदल जाता है । रेखागणित को सर्वश्रेष्ठ विज्ञान घोषित कर दिया जाता है । भौतिकवाद मानवद्रोही बन जाता है । यदि उसे अपने शत्रु, मानवद्रोही, अशरीरी अध्यात्मवाद को उसी के घर में पराजित करना है तो भौतिकवाद को अपने शरीर को ताडना देनी होगी और तपस्वी बनना होगा । इस प्रकार, ऐन्द्रिय की जगह वह बौद्धिक रूप ग्रहण कर लेता है । परन्तु, इस तरह, उसमे वह सुसंगति और व्यवस्था भी आ जाती है जो बुद्धि की विशेषता है —फिर इसका परिणाम चाहे जो हो ।

---

* 'Qual' शब्द में श्लेष है, जो उसमे दार्शनिक अर्थ भर देता है । इसका शाब्दिक अर्थ है, यत्रणा, एक ऐसी पीडा या दर्दभरी बेकरारी जो कुछ करने के लिए बाध्य कर देती है । इसके साथ ही रहस्यवादी बोहमे ने इसजर्मन शब्द में लैटिन शब्द qualitas (गुण) का कुछ अर्थ डाल दिया है । उसका 'qual' बाहर से पहुँचायी जानेवाली पीडा के विपरीत, वह क्रियावर्धक तत्व है, जो अपने अधीन किसी वस्तु, सबंध, अथवा व्यक्ति के स्वत:स्फूर्त विकास से उत्पन्न होता है, और फिर उसे खुद आगे बढाता है । **(अंग्रेज़ी संस्करण में एंगेल्स का नोट ।)**

"बेकन के काम को आगे बढानेवाले, हौब्स इस प्रकार तर्क करते है : यदि समस्त मानवीय ज्ञान इन्द्रियजनित है, तो हमारी अवधारणाएँ और हमारे विचार भी वास्तविक जगत् के आभास मात्र है, अपने इन्द्रियगम्य रूप से विच्छिन्न आभास । दर्शन इन आभासो को नाम भर दे सकता है। एक से अधिक आभास के लिए एक ही नाम चल सकता है। नामो के भी नाम हो सकते है। यदि एक ओर हम यह कहे कि सभी विचारो की उत्पत्ति सवेदनाओ की दुनिया मे होती है और, दूसरी ओर, यह भी कहे कि शब्द शब्द से अधिक भी कुछ है, या यह कहे कि जिन प्राणियो को हम अपनी इन्द्रियो द्वारा जानते है, यानी जो कि व्यक्ति और समष्टि हर हालत मे व्यक्ति है —उनके अतिरिक्त भी ऐसे प्राणी है, जिनका अस्तित्व व्यक्तिगत न होकर आम (या सर्वव्यापी) है, तो यह अपने-आप मे एक परस्पर-विरोधी वस्तु होगी । जिस तरह अशरीरी शरीर कहना बेमानी है, उसी तरह अशरीरी वस्तु कहना भी निरर्थक है । शरीर, सत्ता, वस्तु एक ही वास्तविकता के अलग-अलग नाम है । **चिंतन को चिंतन करनेवाले भूत से पृथक् कर सकना असभव है** । ससार मे जितने परिवर्तन होते रहते है यह भूत ही उनका मूलाधार है । 'असीम' शब्द निरर्थक है, अगर उससे यह न समझा जाये कि हमारे मस्तिष्क में जोडते जाने की अतहीन सामर्थ्य है । हमे चूंकि भौतिक पदार्थ ही बोधगम्य है, इसलिए ईश्वर के अस्तित्व के बारे मे हम कुछ नही जान सकते । अकेला मेरा अस्तित्व निश्चित है । हर मानवीय आवेश एक ऐसी यान्त्रिक गति है, जिसका आरभ और अत है । जो हमारे आवेग के विषय है उन्ही को हम अच्छा कहते है । मनुष्य भी उन्ही नियमो के अधीन है, जिनके अधीन प्रकृति है । शक्ति और स्वतत्रता अभिन्न है ।

"हौब्स ने बेकन के दर्शन को व्यवस्थित रूप तो दिया था, परन्तु वह बेकन के इस मूलभूत सिद्धात को नही प्रमाणित कर सका था कि समस्त मानवीय ज्ञान की उत्पत्ति सवेदनाओ की दुनिया से (इन्द्रिय-जगत् से) होती है । इसका प्रमाण लौक ने अपने ग्रथ 'मानवीय समझदारी के सम्बध मे निबध' मे दिया था ।

"हौब्स ने बेकन के भौतिकवाद के ईश्वरवादी पूर्वाग्रहो को छिन्न-भिन्न कर दिया था; इसी प्रकार जिन बचे-खुचे धार्मिक बंधनों ने लौक के संवेदनावाद को अभी तक जकड रखा था, उन्हे कौलिंस, डौडवेल, कावर्ड, हार्टले, प्रीस्टले ने तोड डाला। जो भी हो, व्यावहारिक भौतिकवादियों के लिए ईश्वरवाद (आस्तिकवाद) धर्म से छुटकारा पाने का महज एक सरल उपाय है।"*

ब्रिटेन मे आधुनिक भौतिकवाद की उत्पत्ति के बारे मे कार्ल मार्क्स ने इसी तरह लिखा था। उनके पूर्वजो को मार्क्स ने जो सम्मान दिया था, वह अगर आजकल अंग्रेजो के मन को ठीक नही भाता तो यह और भी अफसोस की बात है। फिर भी इस बात से इन्कार नही किया जा सकता कि बेकन, हौब्स और लौक ही फ्रांस के उस उज्ज्वल भौतिकवादी मत के जन्मदाता थे जिसने, बावजूद जल-थल पर लडी गयी उन सारी लडाइयों के जिनमे जर्मनो या अंग्रेजो ने फ्रासीसियो के ऊपर विजय पायी थी, अट्ठारहवी शताब्दी को मुख्यतया एक फ्रासीसी शताब्दी बना दिया था।—और यह बात फ्रांस की उस चरम क्राति के पहले ही हो गयी थी जिसके परिणामो से अभ्यस्त होने का बाहर वाले, इगलैंड और जर्मनी के हम लोग अब भी प्रयत्न कर रहे है।

इस बात से इन्कार नही किया जा सकता। इस शताब्दी के मध्य मे हर उस शिक्षित और सुसंस्कृत विदेशी को जो इंगलैंड मे आकर बस गया था अंग्रेजी सभ्रान्त मध्यवर्ग की वह चीज़ बेतरह खटकती थी जिसे वह धर्मान्धता और मूर्खता के अलावा और कुछ नही कह सकता था। उस समय हम सभी भौतिकवादी थे, या कम से कम, बहुत ज़्यादा आज़ाद खयाल के लोग थे; और यह बात हमारी बिल्कुल समझ मे नही

---

* मार्क्स तथा एगेल्स द्वारा रचित 'Die Heilige Familie' (पवित्र परिवार), १८४५ मे माइन तटवर्ती फ्रांकफुर्त से प्रकाशित, पृ० २०१-०४ (एंगेल्स की टिप्पणी) १४

आती थी कि इगलैंड के प्राय. सभी शिक्षित लोग तरह-तरह की असंभव, अलौकिक बातो मे कैसे विश्वास करते है और बकलैंड तथा मैंटेल जैसे भूगर्भशास्त्री तक अपने विज्ञान के तथ्यो को कैसे इस तरह तोड़-मरोड़ देते है कि बाइबिल की सृष्टि सम्बंधी कपोल-कल्पनाओं के वे बहुत खिलाफ न जान पड़े ! और अगर आप उस समय ऐसे आदमियो से मिलना चाहते, जो मजहबी मामलो मे अपना जहन इस्तेमाल करने की हिम्मत रखते थे, तो आपको अशिक्षित, और जैसा कि उन दिनो उन्हे कहा जाता था, 'मैले-कुचैले' लोगों के बीच—मेहनतकश जनता, खासकर ओवेन के अनुयायी, समाजवादियो के बीच —जाना पड़ता ।

लेकिन तब से इगलैंड 'सभ्य' हो चुका है । १८५१ की प्रदर्शिनी ने इंगलैंड की द्वीपीय कूपमंडूकता के अत की घोषणा कर दी थी । इगलैंड ने खान-पान, चाल-ढाल और विचारो मे, धीरे-धीरे अन्तर्राष्ट्रीय रूप ग्रहण किया—यहाँ तक कि मुझे इच्छा होने लगती है कि अगर कुछ अग्रेज़ी तौर-तरीक़े और रिवाज यूरोप मे भी उतना ही फैल जाते, जितना कि दूसरे यूरोपीय आचार-विचार यहा फैले है तो कितना अच्छा होता ! जो भी हो, इगलैंड मे जैतून के बढिया तेल के फैलने के साथ-साथ (१८५१ से पहले वह अभिजात वर्ग तक ही सीमित था) मजहबी मामलो मे यूरोपीय सशयवाद भी घातक रीति से फैल गया, और हालत यहाँ तक पहुँच गयी है कि यद्यपि अभी तक अज्ञेयवाद बिल्कुल वैसी ही यहा की "खास चीज" नही बन पाया है जैसा कि इगलैंड का चर्च है, तो भी, जहा तक उसके सम्मानित होने का प्रश्न है, वह करीब-करीब बपतिस्मा के स्तर पर पहुच गया है, और 'ईसाई मुक्ति सेना' से तो यकीनन ऊपर ही गिना जाने लगा है । ऐसी स्थिति मे, मैं यह सोचे बिना नही रह सकता कि नास्तिकता की इस प्रगति से जो लोग सचमुच दुःखी है और जो उसकी निंदा करते है, उन्हे इस बात से सान्त्वना मिलेगी कि यह "नये, निराले खयालात" कही बाहर नही पैदा हुए है, रोजमर्रा के इस्तेमाल की और बहुत-सी चीजों की तरह "जर्मनी के बने" नही

है, वल्कि; असंदिग्ध रूप से, ठेठ अंग्रेजी है। दरअसल, दो सौ साल पहले इन विचारो के अंग्रेज जन्मदाता अपने आज के इन वंशजो से कहीं अधिक हिम्मतवर और आगे बढ़े हुए थे।

और सचमुच, अगर लकाशायर की अर्थपूर्ण भाषा में पूछा जाय तो "लज्जालु" भौतिकवाद के अतिरिक्त अज्ञेयवाद और है क्या? प्रकृति के विषय में अज्ञेयवादी धारणा सम्पूर्ण रूप से भौतिकवादी है। समस्त प्राकृतिक जगत् नियमो से अनुशासित है, और उसमें वाह्य हस्तक्षेप की विलकुल गुजाइश नही है। परन्तु इसमे इतना वह और जोड़ देता है—ज्ञात जगत् से परे किसी परमब्रह्म की सत्ता है कि नहीं, इसका निश्चय, या खण्डन करने का हमारे पास कोई साधन नही है। लाप्लास से नेपोलियन ने जब यह पूछा था कि उस महान् ज्योतिषशास्त्री की पुस्तक "खगोलीय गति-विज्ञान" में सृजनकर्ता का उल्लेख तक क्यो नही किया गया था, और उसने गर्व से उत्तर दिया था कि, "Je n'avais pas besoin de cette hypothese"* तव तो यह वात कही जा सकती थी। परन्तु अव विश्व सम्वन्धी हमारी विकासवादी धारणा के अन्दर न तो किसी सृजनकर्ता के लिए कोई भी स्थान है, न शासक के लिए। इस समूचे विद्यमान जगत् से वाहर किसी परमब्रह्म की वात करना ही विरोधपूर्ण है, और मुझे तो लगता है कि ऐसा करना धार्मिक जनता की भावनाओ का व्यर्थ में अपमान करना भी है।

फिर हमारा अज्ञेयवादी यह भी मानता है कि अपनी इन्द्रियों से हमे जो सूचना मिलती है हमारा सारा ज्ञान उसी पर आधारित है। परन्तु वह प्रश्न करता है, हम कैसे जानें कि अपनी इन्द्रियों के द्वारा हमें जिन वस्तुओ की उपलब्धि होती है, हमारी इन्द्रियाँ उनका हमे एकदम सही चित्र देती हैं? और तव वह हमें वताता है कि जव वस्तुओ और उनके गुणों की वह वात करता है तव उसका मतलव वास्तव में इन वस्तुओं

---

* "मुझे उस परिकल्पना की आवश्यकता नहीं थी।" —संपादक

और गुणो से नही होता —क्योकि उनके वारे मे तो कुछ भी निश्चित रूप से जानने मे वह असमर्थ है। —उसका मतलव केवल उन प्रभावो से होता है जो ये वस्तुये उसकी इन्द्रियो पर डालती है। अव इस तर्क का केवल तर्क से उत्तर देना अवश्य कठिन है। परन्तु तर्क से पहले व्यवहार था। Im Anfang war die That। * और मानवीय उद्भावना-शक्ति द्वारा इस कठिनाई की उद्भावना किये जाने से पहले ही मानवीय व्यवहार ने इसे हल कर लिया था। किसी वस्तु के अस्तित्व का प्रमाण वास्तविकता है। हलवे का प्रमाण इसमे है कि हम हलवा खाते हैं। इन वस्तुओ मे जो गुण हम देखते है, उनके अनुसार ज्योही उनको हम अपने उपयोग मे लाना शुरू करते है त्योही अपने इन्द्रिय-ज्ञान को हम एक ऐसी कसौटी पर कसते है जो कभी गलत नही हो सकती। यदि यह इन्द्रिय-ज्ञान झूठा है, तो उस वस्तु से काम लेने की जो आशा हम करते है वह भी झूठी सावित होगी और हमारा प्रयत्न निष्फल होगा। किन्तु अपने ध्येय को प्राप्त करने मे यदि हम सफल होते है, यदि हम देखते है कि किसी वस्तु के सवंध मे हमारी जो धारणा है उससे वह मेल खाती है, और उससे जो काम हम लेना चाहते है वह उस काम मे आती है, तो यह इस वात का पक्का सवूत है कि इस हद तक, उसके और उसके गुणों के वारे मे हमारा सज्ञान वाह्य वास्तविकता के अनुकूल है। और जव भी हम असफलता का सामना करते है, हमे साधारणतः अपनी असफलता का कारण समझने मे देर नही लगती। हम देखते है कि जिस सज्ञान के आधार पर हमने काम किया था, वह या तो अधूरा और सतही था, या अन्य सज्ञानो के परिणामो के साथ उसे ठीक से नही जोड़ा गया था —अर्थात्, जैसा कि हम कहते है —दोपपूर्ण ढग से तर्क किया गया था। जब तक अपनी इन्द्रियो को अनुशासित रखने और उनका उपयोग करने मे हम सावधानी वरतते है, और अपने व्यवहार

---

* "प्रारभ मे व्यवहार का ही अस्तित्व था" —गेटे कृत ट्रेजेडी **"फास्ट"** से।
—सपादक

को उचित रूप से प्राप्त और प्रयुक्त किये गये इन्द्रिय-ज्ञान द्वारा निर्धारित सीमाओं के ही भीतर रखते है, तब तक हम देखेंगे कि हमारे प्रयोग के फल से यह सिद्ध हो जाता है कि हमारा इंद्रिय-ज्ञान इंद्रियों द्वारा उपलब्ध की गयी वस्तु की वास्तविक प्रकृति के अनुकूल है। एक भी ऐसा उदाहरण हमे नही मिला जिसमे हम इस परिणाम पर पहुँचे हो कि वैज्ञानिक रूप से नियंत्रित हमारा इंद्रिय-ज्ञान बाह्य जगत् के विषय मे हमारे मन मे जिन विचारो को जन्म देता है वे स्वभाव से ही वास्तविकता के प्रतिकूल है, अथवा बाह्य जगत् और उसके विषय मे हमारे इंद्रिय-ज्ञान मे किसी प्रकार की स्वाभाविक असगति है।

लेकिन फिर नव-काटवादी अज्ञेयवादी आते है, और कहते है—हमे किसी वस्तु के गुणो का सच्चा ज्ञान हो सकता है, परन्तु "अज्ञेय वस्तु" को हम किसी भी ऐन्द्रिय अथवा मानसिक प्रकिया की मदद से नही समझ सकते। यह अज्ञेय वस्तु (वस्तु-अपने-मे) हमारी समझ के बाहर है। हीगेल ने बहुत पहले ही इसका उत्तर दे दिया था। उन्होने कहा था : अगर आप किसी वस्तु के सभी गुणो को जानते है, तो आप स्वयम् उस वस्तु को भी जानते है; फिर इसके अलावा और कोई बात नही रह जाती कि वह वस्तु हमसे बाहर स्थित है। और जब अपनी इन्द्रियो के द्वारा आपने इस बात को भी जान लिया तो कांट की विख्यात Ding an sich —"अज्ञेय वस्तु" के शेषाश को भी आपने ग्रहण कर लिया। इसमे इतना और जोड दिया जा सकता है कि काट के समय मे प्राकृतिक वस्तुओ का हमारा ज्ञान सचमुच इतना आंशिक और विच्छिन्न था कि उनका यह सन्देह करना स्वाभाविक ही था कि इन वस्तुओं मे से हर एक के बारे मे हमारा जो सूक्ष्म ज्ञान है उससे परे एक रहस्यमय किसी अज्ञेय वस्तु (वस्तु-अपने-मे) का अस्तित्व है। परन्तु विज्ञान की विराट् प्रगति के कारण, एक के बाद एक, ये अज्ञेय वस्तुये ज्ञेय बनती गयी है, विश्लेषित हुई है, और, इतना ही नही, उनको पुनरुत्पादित भी कर लिया गया है। और जिस वस्तु को हम उत्पादित कर लेते है, उसे

अज्ञेय तो हरगिज नही मान सकते। इस शताब्दी के पूर्वार्द्ध के रसायन विज्ञान के लिए कार्बनीय पदार्थ इसी तरह के रहस्यमय पदार्थ थे, पर अब कार्वनीय प्रक्रियाओ की सहायता के विना ही, एक के वाद एक, इन कार्वनीय पदार्थों को हम उनके रासायनिक तत्वो मे तैयार करने लगे हैं। आधुनिक रसायनशास्त्री कहते है कि जहा हमने किसी भी पिण्ड (चाहे वह कुछ भी क्यों न हो) की रासायनिक वनावट को जान लिया त्योंही हम उसे उसके तत्वों से तैयार कर ले सकते है। उच्चतम कार्व-नीय पदार्थों की अर्थात् अल्व्यूमिनीय पिण्डो की रासायनिक बनावट को जानने से अभी हम वहुत दूर है, परन्तु यह सोचने का कोई कारण नही है कि हम इस ज्ञान को प्राप्त न कर सकेंगे—इसमे चाहे फिर शताब्दिया ही क्यो न लग जाये। उससे लैस होकर हम कृत्रिम अल्व्यूमेन को उत्पन्न कर सकेंगे। परन्तु जव हम यह कर लेंगे तव तो हम कार्व-नीय जीवन को ही उत्पन्न कर लेगे, क्योकि अपने निम्नतम से लेकर उच्चतम रूपो तक जीवन अल्व्यूमिनीय पिण्डो के अस्तित्व का ही साधारण रूप है।

लेकिन इन औपचारिक मानसिक प्रतिवन्धो को लगा लेने के वाद ही, हमारे अज्ञेयवादी की वातचीत और काम का पूरा रवैया घोर भौतिकवादी जैसा हो जाता है, और असलियत मे वह है भी वही। वह कह सकता है कि जहाँ तक हम जानते है, भूत और गति को, या जैसा कि आजकल हम कहते है, शक्ति को न तो उत्पन्न किया जा सकता है और न नष्ट, परन्तु हमारे पास इस वात का प्रमाण नही है कि उन्हे किसी भी समय उत्पन्न नही किया गया था। मगर अगर उनकी इस स्वीकारोक्ति को आप किसी खास मामले मे उसके खिलाफ इस्तेमाल करने की कोशिश करे, तो वह आपके दावे को उसी वक्त ख़ारिज कर देगा। कल्पना मे (In abstracto) चाहे अध्यात्मवाद की सभावना को वह मान ले, किन्तु यथार्थ मे (in concreto) वह उसे अपने पास तक नही फटकने देगा। जहाँ तक हम जानते हैं, और जान सकते हैं,

वह आपको बतायेगा कि इस विश्व का न तो कोई सृजनकर्ता है और न शासक; जहा तक हमारा सबध है, भूत और शक्ति को न तो उत्पन्न किया जा सकता है और न विनष्ट; हमारे लिए मन शक्ति का एक रूप है, मस्तिष्क का एक धर्म है; हम इतना ही जानते हैं कि यह भौतिक जगत् अपरिवर्तनीय नियमो से अनुशासित है, इत्यादि। इस प्रकार, जिस हद तक वह वैज्ञानिक है, जिस हद तक वह कुछ जानता है, वह भौतिक-वादी है, पर अपने विज्ञान से बाहर, उन क्षेत्रो में, जिनके बारे में वह कुछ जानता नही, वह अपने अज्ञान को एक रहस्यमय रूप दे देता है, और उसे अज्ञेयवाद के नाम से पुकारता है।

जो भी हो, एक बात साफ मालूम होती है। यदि मैं अज्ञेयवादी होता तो भी यह स्पष्ट है कि इस छोटी-सी पुस्तक मे इतिहास की जिस धारणा को मैने चित्रित किया है, उसे मैं "ऐतिहासिक अज्ञेयवाद" नही कह सकता था। मे ऐसा करता तो धर्म मे विश्वास रखनेवाले लोग मेरे ऊपर हसते और अज्ञेयवादी गुस्से मे आकर मुझसे पूछते कि क्या मै उनका मजाक उडाने जा रहा हूँ? इसलिए मै आशा करता हूँ कि इस धारणा को अग्रेजी मे, और अग्रेजी के साथ और भी बहुत-सी भाषाओं में अगर मै "ऐतिहासिक भौतिकवाद" का नाम देता हूँ तो ब्रिटिश "संभ्रात" वर्ग को भी बहुत ज़्यादा गुस्सा नही आएगा। इतिहास की गति की इस धारणा के अनुसार सभी महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओ की महान् प्रेरक शक्ति और उनका अन्तिम कारण समाज का आर्थिक विकास, उत्पादन तथा विनिमय की प्रणाली मे होने वाले परिवर्तन और, इसके फलस्वरूप, समाज का विभिन्न वर्गो मे होने वाला विभाजन तथा एक दूसरे के खिलाफ इन वर्गो के संघर्ष होते है।

मेरे ऊपर इतना अनुग्रह करना अग्रेजो के लिए सभवत: और भी आसान हो जायगा अगर मै उन्हे यह दिखा दूँ कि ऐतिहासिक भौतिक-वाद ब्रिटिश "सभ्रांत" वर्ग के लिए भी हितकर सिद्ध हो सकता है। मै इस बात का उल्लेख कर चुका हूँ कि आज से चालीस या पचास साल पहले

इंगलैंड मे आकर बसने वाले हर सुसंस्कृत विदेशी की दृष्टि मे अंग्रेजों के "सभ्रान्त" मध्यवर्ग की धर्मान्धता और मूर्खता—तब वह इसे धर्मान्धता और मूर्खता ही कह सकता था—बुरी तरह खटकती थी। अब मै यह सिद्ध करने जा रहा हूँ कि उस जमाने का "सभ्रांत" अंग्रेज मध्यवर्ग इतना बुद्धू नही था जितना एक होशियार विदेशी को वह लगता था। उसकी धार्मिक प्रवृत्तियो के कारण को समझा जा सकता है।

जब यूरोप मध्ययुग से निकला तो उसका क्रांतिकारी तत्त्व शहरो का उठता हुआ मध्यवर्ग था। उसने मध्ययुगीन सामन्ती सगठन के अन्दर अपने लिए एक सम्मानित स्थान बना लिया था, परन्तु यह स्थान भी उसकी विकासशील शक्ति के लिये बहुत सकुचित हो गया था। सामती व्यवस्था के कायम रहते मध्यवर्ग का, पूंजीवादी वर्ग का विकास असभव था, इसलिए सामती व्यवस्था का पतन अवश्यभावी था।

किन्तु सामतवाद का महान् शक्तिशाली अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र रोमन कैथोलिक चर्च था। बावजूद तमाम अदरूनी लडाइयो के, समस्त सामती पश्चिमी यूरोप को उसने एक विशाल राजनीतिक प्रणाली के अतर्गत एकताबद्ध कर दिया था। इस प्रणाली का विच्छेदकारी यूनानियो से भी उतना ही विरोध था जितना मुस्लिम देशो से। सामती सस्थाओ के चारो ओर उसने ईश्वरीय पावित्र्य का प्रभामडल फैला रखा था। सामती नमूने पर पदो की खुद अपनी एक क्रमबद्ध व्यवस्था उसने कायम कर रखी थी। अत मे कैथोलिक जगत् की पूरी एक-तिहाई भूमि का स्वामी होने के नाते, वह स्वय सबसे शक्तिशाली सामन्ती जमीदार था। इस गैरमजहबी सामतवाद पर हर देश मे, और हर बात को लेकर, आक्रमण किया जा सके इसके पहले, उसके इस पवित्र केंद्रीय सगठन को नष्ट कर देना आवश्यक था।

लेकिन, मध्यवर्ग की प्रगति के साथ ही साथ, विज्ञान का भी शक्तिशाली पुनरुत्थान हो रहा था—ज्योतिष, यान्त्रिकी, भौतिक विज्ञान, शरीर-रचना विज्ञान, दैहिकी—इन सब का अध्ययन-अनुशीलन फिर से आरभ हो रहा था। और अपने औद्योगिक उत्पादन के विकास के लिए पूंजीवादी

वर्ग को एक ऐसे विज्ञान की आवश्यकता थी, जो प्राकृतिक वस्तुओं के भौतिक गुणो और प्रकृति की शक्तियों की क्रिया पद्धतियो को बता सके। विज्ञान उस समय तक और कुछ नही, मात्र चर्च का विनीत दास था। धर्म द्वारा निर्धारित सीमाओ का उल्लघन करने की उसे अनुमति नही थी, और इसलिए वस्तुतः वह विज्ञान था ही नही। विज्ञान ने चर्च के खिलाफ विद्रोह कर दिया और चूकि विज्ञान के बिना पूजीवादी वर्ग का काम ही नही चल सकता था, इसलिए उसे इस विद्रोह मे सम्मिलित होना पड़ा।

जिन बातो को लेकर उठते हुए मध्यवर्ग का सस्थापित धर्म के साथ टकराव होना लाजिमी था, ऊपर उनमे से केवल दो का जिक्र किया गया है, लेकिन इस चीज को दिखाने के लिए इतना ही काफी होगा कि रोमन चर्च के दावो के खिलाफ लडने मे जिस वर्ग की सबसे प्रत्यक्ष दिलचस्पी थी वह पूजीवादी वर्ग था; और दूसरे, यह कि सामतवाद के ख़िलाफ हर सघर्प को उस जमाने मे मजहबी जामा पहनना पड़ता था, और इस सघर्प को सबसे पहले चर्च के ही ख़िलाफ चलाना पडता था। किन्तु विश्वविद्यालयो और शहरो के व्यापारियो के उसके ख़िलाफ आवाज उठाते ही लाजिमी था—और वास्तव मे हुआ भी ऐसा ही था—कि उसे फौरन आम देहाती जनता का, किसानो का जोरदार समर्थन मिलने लगे क्योकि उन्हे खुद सर्वत्र अपने अस्तित्व तक के लिए अपने लौकिक तथा आध्यात्मिक सामन्ती प्रभुओ के ख़िलाफ सघर्प करना पडता था।

सामतवाद के विरुद्ध पूंजीवादी वर्ग के लम्बे संघर्ष की परिणति तीन जबर्दस्त, निर्णयात्मक लडाइयो के रूप मे हुई थी।

पहली लड़ाई वह थी जिसे जर्मनी का प्रोटेस्टेटवादी धर्म-सुधार-आदोलन कहा जाता है। लूथर ने चर्च के ख़िलाफ लडाई की जो आवाज उठायी थी उसके जवाब मे राजनीतिक किस्म के दो विद्रोह हुए थे। पहला, फ्राज फान सिकिगन के नेतृत्व में होने वाला सामतो का विद्रोह (१५२३) था, और दूसरा १५२५ का महान् किसान-युद्ध। दोनो

लडाइयाँ हार गयी थी। इन हारो का मुख्य कारण इन विद्रोहो मे सबसे ज़्यादा दिलचस्पी रखने वाले दलो की, यानी शहर के पूँजीवादियों की ढील-ढाल थी। उनकी इस दुविधा के कारणो की चर्चा हम यहाँ नही कर सकते, लेकिन उसी घड़ी से इस संघर्ष ने, लक्ष्यभ्रष्ट होकर, स्थानीय राजाओ और केंद्रीय सत्ता के बीच सघर्ष का रूप ले लिया और इसका परिणाम यह हुआ कि अगले दो सौ वर्षो के लिए जर्मनी यूरोप के राजनीतिक दृष्टि से सक्रिय राष्ट्रो की श्रेणी से गायब हो गया। लूथर के धर्म सुधार-आदोलन ने एक नये धर्म को जन्म दिया, एक ऐसे धर्म को जो निरकुश राज्यतत्र के सर्वथा अनुकूल था। उत्तर पूर्वी जर्मनी के किसानो ने जहा लूथरवाद को ग्रहण किया त्योही आजाद किसानो से वे अर्द्धदास बन गये।

लेकिन जहा लूथर असफल रहा वहा कैलविन की विजय हुई। कैलविन का मत उसके युग के सबसे साहसी पूजीवादियो के उपयुक्त था। नियतिवाद का उसका सिद्धान्त इस वास्तविकता की धार्मिक अभिव्यक्ति था कि प्रतियोगितापूर्ण व्यापारिक जगत् मे सफलता या असफलता मनुष्य के कर्म या कौशल पर नही, बल्कि ऐसी परिस्थितियो पर निर्भर करती है, जिन पर उसका कोई वश नही है। यह सफलता या असफलता उस व्यक्ति पर निर्भर नही करती, जो इच्छा करता है या दौड-भाग करता है, बल्कि अज्ञात और अधिक शक्तिशाली आर्थिक शक्तियो की कृपा पर निर्भर करती है। यह बात आर्थिक क्राति के युग मे और भी सही थी, ऐसे युग मे जिसमे सभी पुराने व्यापारिक मार्गो और केंद्रो की जगह नये मार्ग और केंद्र कायम हो गये थे, जिसमे दुनिया के लिए भारत और अमरीका के मार्ग खुल गये थे, और जिसमे अर्थशास्त्र से सम्बधित सबसे पवित्र विश्वास —सोने और चादी के मूल्य तक —लड़खडाने और टूटने लगे थे। कैलविन के चर्च का विधान सम्पूर्ण रूप से जनवादी तथा गणतत्रवादी था, और जहाँ ईश्वर के राज्य तक को गणतात्रिक रूप दे दिया गया था वहाँ इस लौकिक जगत् के राज्य ही राजाओ, बडे पादरियो और सामतो के

अधिकार मे कैसे रह सकते थे ? जर्मन लूथरवाद स्वेच्छा से जहाँ राजाओ का अस्त्र वन गया, वही कैलविनवाद ने हालैंड मे एक गणतंत्र की स्थापना कर दी थी और इंगलैंड मे, और विशेष कर स्काटलैंड में, सक्रिय गणतत्र-वादी पार्टियाँ खड़ी कर दी थी ।

दूसरी महान् पूजीवादी उथल-पुथल को कैलविनवाद के रूप में पहले से ही अपना सिद्धान्त तैयार मिला । यह उथल-पुथल इंगलैंड मे हुई थी । शहरों के मध्यवर्ग ने इसका सूत्रपात किया था, और फिर देहाती इलाकों के स्वतंत्र काश्तकारो ने लड़कर उसे पूरा किया था । यह भी एक विचित्र वात है कि इन तीनों महान् पूजीवादी विद्रोहो में वह फ़ौज जिसे यह लड़ाई लडनी थी किसानो के अन्दर से ही तैयार हुई थी और किसान ही वह वर्ग है जो, एक वार विजय मिली नही कि, उस विजय के आर्थिक परि-णामो के कारण शर्तिया चौपट हो जाता है । क्रौमवेल के सौ वर्ष वाद इंगलैंड का स्वतंत्र काश्तकार वर्ग करीव-करीव गायव हो गया था । जो भी हो, अगर स्वतंत्र काश्तकारो का यह वर्ग न होता और शहरों के साधारण लोग न होते तो पूंजीपति वर्ग अकेले इस लडाई को उसके कटु अत तक कभी न लड़ पाता और न चार्ल्स प्रथम को सूली पर ही कभी चढा पाता । पूँजीवादी वर्ग की उन जीतो को भी हासिल करने के लिए, जिनके लिए परिस्थितियाँ तैयार हो चुकी थी, क्राति को और वहुत काफी आगे ले जाना आवश्यक था —ठीक उसी तरह जैसे १७९३ में फ्रास मे हुआ था और १८४८ मे जर्मनी मे हुआ था । वास्तव मे, पूंजीवादी समाज के विकास का यह एक नियम ही मालूम होता है ।

ख़ैर, क्रातिकारी कार्यवाहियों की इस अधिकता के वाद आवश्यक रूप से उसकी अनिवार्य प्रतिक्रिया भी हुई और, अपनी दफा, यह प्रति-क्रिया भी जिस विंदु पर रुक सकती थी उस पर न ठहरकर उससे आगे वढ गयी । इस तरह, वहुत वार आगे-पीछे जाने के वाद, अंत मे, गुरुत्व का एक नया केंद्र स्थापित हुआ और उससे फिर एक नया सिलसिला शुरू हुआ । ब्रिटिश इतिहास के उस शानदार युग का, जिसे सभ्रात वर्ग

के लोग "महान् विद्रोह" के नाम से जानते है, और उसके वाद के सघर्षो का अत एक ऐसी अपेक्षाकृत तुच्छ घटना से हुआ था, जिसे उदारपथी इतिहासकारो ने "गौरवपूर्ण क्राति" का नाम दिया है।

यह केन्द्र जहाँ से एक नया सिलसिला शुरू हुआ था उठते हुए मध्य-वर्ग और भूतपूर्व सामती जमीदारो के बीच समझौते का फल था। और यद्यपि ये जमीदार आज की ही तरह अभिजात वर्ग के लोग कहे जाते थे, वे वहुत दिनो से उस पथ पर चल चुके थे जिस पर चलकर वहुत वाद मे आनेवाले फ्रास के लुई फिलिप की ही तरह वे "राज्य के पहले पूंजी-पति" वन गये थे। इगलैंड का यह सौभाग्य ही था कि वड़े-वडे पुराने सामंतो ने 'गुलावो की लड़ाई' मे एक-दूसरे को मार कर खत्म कर दिया था। उनके उत्तराधिकारी यद्यपि अधिकतर पुराने परिवारो के ही वशवर थे परन्तु उन परिवारो से उनका सवध सीधा नही वल्कि इतनी दूर का हो गया था कि वे खानदानी न रहकर विलकुल एक नये प्रकार के लोग वन गये थे, जिनके संस्कार और प्रवृत्तियाँ पूंजीवादी अधिक थी, सामंती कम। वे रुपयो की कीमत पूरी तरह समझते थे, और सैकडो छोटे किसानो को निकालकर और उनकी जगह भेडे रखकर उन्होने फौरन लगान वढाना शुरू कर दिया। हेनरी अष्टम ने चर्च की जमीनो को लुटाने के साथ ही साथ, वहुत-सी नयी पूंजीवादी किस्म की जमीदारियाँ कायम कर दी। पूरी सत्रहवी शताव्दी मे अनगिनत जागीरो को ज़व्त करने और एकदम हाल मे या थोडे ही दिन पहले मालामाल हुए लोगो को उन्हे फिर से वख्श देने का जो सिलसिला चलता रहा था उसका भी यही नतीजा हुआ था। फलस्वरूप, हेनरी सप्तम के समय से ही "अभिजात वर्ग" ने औद्योगिक उत्पादन के विकास मे वाधा डालना तो दूर रहा, उल्टे, परोक्ष रूप से, उससे फायदा उठाने की कोशिश की थी; और वडे-वड़े जमीदारों का एक ऐसा भाग सदा मौजूद रहता था जो, आर्थिक या राजनीतिक कारणो से, महाजनी और औद्योगिक पूंजीवादी वर्ग के नेताओ के साथ सहयोग करने को प्रस्तुत रहता था। इसलिए १६८९ का समझौता वहुत आसानी से सम्पन्न

हो गया था। "माल और मसव" की राजनीतिक लूट-खसोट वड़े-वड़ सामती परिवारो के लिए छोड़ दी गयी थी —वस शर्त यह थी कि महाजनो, कारखानेदारो और व्यापारी मध्यवर्ग के आर्थिक हितों की ओर वे यथेष्ट ध्यान देते रहे। और ये आर्थिक हित उस जमाने में इतने शक्तिशाली थे कि वे राष्ट्र की सामान्य नीति को निश्चित कर सकते थे। छोटी-मोटी वातो को लेकर चाहे जो झगड़े हो, लेकिन कुल मिलाकर अभिजात वर्ग का अल्प शासक गुट इस वात को अच्छी तरह जानता था कि उसकी ख़ुद की आर्थिक समृद्धि औद्योगिक तथा व्यापारिक मध्यवर्ग की समृद्धि के साथ अनिवार्य रूप से जुडी हुई थी।

उसके वाद से, पूंजीवादी वर्ग इगलैड के शासक वर्गो का एक विनीत परन्तु माना हुआ भाग वन गया। राष्ट्र की विशाल मेहनतकश जनता को अधीन वनाये रखने मे, और सव के साथ, उसका भी स्वार्थ था। व्यापारी या कारखानेदार ख़ुद अपने क्लर्को, कर्मचारियों और घरेलू नौकरो के मुकावले मे मालिक की हैसियत रखता था, या, जैसा कि अभी हाल तक कहा जाता था, वह उनका "कुदरती मुखिया" होता था। उसका स्वार्थ इस मे था कि उनसे ज़्यादा से ज़्यादा और अच्छा से अच्छा काम ले सके; और इसके लिए उन्हे इस वात की शिक्षा देनी थी कि वह क़ायदे के साथ उसकी वात माने और उसके कहने मे रहे। वह स्वय धार्मिक था; धर्म ने ही उसे वह झडा दिया था जिसके नीचे उसने राजा और सामंतो के ख़िलाफ सघर्ष किया था। उसे यह मालूम करने में भी देर न लगी कि कुदरती तौर से अपने से हीन लोगो के विचारों को प्रभावित करने और उन्हे उन मालिको के मातहत रखने मे भी, जिनके नीचे इन हीन लोगो को ईश्वर ने कृपापूर्वक रख दिया था, यह धर्म वहुत सहायक हो सकता था। सक्षेप मे, अग्रेज़ी पूंजीवादी वर्ग को अव "नीची श्रेणियो" को, राष्ट्र की विशाल उत्पादक जनता को दलित रखने के काम मे हिस्सा लेना था, और इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए जो साधन काम मे लाये गये, उनमे धर्म का प्रभाव भी एक था।

एक और बात थी जिसने पूंजीवादी वर्ग की धार्मिक प्रवृत्तियो को मजबूत करने मे मदद दी। यह था इगलैड में भौतिकवाद का उदय। इस नये सिद्धान्त ने न केवल मध्यवर्ग की पवित्र भावनाओ को धक्का पहुँचाया, वल्कि उसने एक ऐसे दर्शन के रूप में भी अपने को घोपित कर दिया जो ससार के केवल विद्वानो और सुसंस्कृत व्यक्तियो के ही उपयुक्त था। इसके विपरीत धर्म था, जो अशिक्षित जनता के लिए, जिसमे पूँजीवादी वर्ग का भी शुमार था, काफी अच्छा था। हौब्स के हाथो मे वह राजाओ के विशेषाधिकारो और राजाओ की सर्वशक्तिमत्ता के रक्षक के रूप में मैदान मे आया। निरकुश राज्यतत्र का उसने आह्वान किया कि वह इस मोटे-तगड़े, मगर शैतान लड़के को —(puer robustus sed malitiosus), यानी जनता को, दवाये रखे। इसी तरह हौब्स के अनुवर्ती, वोलिंगब्रोक, शैफ्ट्सवरी, इत्यादि के दर्शन के रूप मे भौतिकवाद का नया ईश्वरवादी रूप एक अभिजातीय, कुछ चुने हुए लोगों का सीमित सिद्धान्त ही वना रहा; और इसीलिए मध्यवर्ग के लिए वह घृणा की वस्तु था —उसके धर्मविरोधी विश्वासो और उसके पूजीवाद विरोधी राजनीतिक संवधो दोनो ही के कारण। इसीलिए, प्रगतिशील मध्यवर्ग का मुख्य भाग, अभिजात वर्ग के भौतिकवाद तथा ईश्वरवाद के विरोध मे, अव भी प्रोटेस्टेंट मतवादी सप्रदायो का अनुगामी वना रहा। इन्ही सप्रदायों ने स्टुअर्ट राजाओ के खिलाफ़ लड़ाई के लिए झण्डा और लडने वाले आदमी दिये थे, और आज भी इगलैड की "महान् उदार पार्टी" की वही रीढ वने हुए है।

इसी वीच भौतिकवाद इगलैड से फ्रास पहुँचा, जहा दार्शनिको के एक दूसरे भौतिकवादी मत, कार्टेसियनवाद की एक धारा के साथ घुलमिल कर वह एक हो गया। फ्रास मे भी शुरू-शुरू मे केवल एक अभिजातीय सिद्धान्त ही वह वना रहा। परतु शीघ्र ही उसकी क्रांतिकारी प्रकृति उभरकर सामने आ गयी। फ्रांसीसी भौतिकवादियों ने अपनी आलोचना को धार्मिक विश्वास से सम्वधित बातो तक ही सीमित नही रखा, उन्हे

जितनी भी वैज्ञानिक परम्पराएँ या राजनीतिक सस्थाएँ मिली उन सबको उन्होंने अपनी आलोचना की लपेट मे ले लिया, और, अपने इस दावे को सही साबित करने के लिए कि उनका सिद्धान्त सर्वव्यापी है, उन्होने सबसे सीधा रास्ता अख्तियार किया, और अपने विराट ग्रंथ 'विश्वकोष' मे साहस के साथ ज्ञान के हर विषय पर उसे लागू किया। इसी विश्वकोष के कारण उनका नाम विश्वकोषवादी पड़ गया था। इस प्रकार, भौतिकवाद या ईश्वरवाद के अपने दो मे से एक न एक रूप मे वह फ्रांस के सभी शिक्षित युवको का मत बन गया। यह बात इस हद तक बढ गयी थी कि जब फ्रास की महान् क्राति की ज्वाला भड़की तो जिस सिद्धान्त का अग्रेज राजनिष्ठो ने पोषण किया था उसने फ्रासीसी गणतत्रवादियो और आतकवादियो के हाथो मे एक सैद्धान्तिक पताका देने का काम किया और "मनुष्य के अधिकारो की घोषणा" के लिए शब्द भी प्रस्तुत कर दिये। फ्रास की महान् क्राति पूंजीवादी वर्ग की तीसरी बगावत थी; लेकिन यह पहली बगावत थी जिसने मजहबी जामे को पूरे तौर से उतार फेंका था और जो खुल्लम-खुल्ला राजनीतिक ढंग से लड़ी गयी थी। और अब तक की बगावतो मे यह पहली बगावत थी, जिसे तब तक जारी रखा गया था जब तक कि दो लडाकू वर्गो मे से एक का, यानी अभिजात वर्ग का खात्मा नही हो गया था और दूसरा, यानी पूंजीवादी वर्ग सम्पूर्ण रूप से विजयी नही हो गया था। इगलैड मे क्रानि के पूर्व की और क्रांति के बाद की सस्थाओं का अविच्छिन्न क्रम चलता रहा था। जमीदारो और पूंजीपतियों मे वहाँ समझौता हो गया था। इसकी अभिव्यक्ति इस बात मे हुई थी कि कानून की नजीरे चलती रही थी और कानून के सामंती रूपो को धार्मिक रूप से अक्षुण्ण बनाये रखा गया था। फ्रास मे क्राति का अर्थ था अतीत की परम्पराओ से पूर्ण विच्छेद; वहाँ उसने सामतवाद के अवशेषो तक को निश्चिह्न कर दिया था और जाब्ता दीवानी (Code Civil) की शक्ल में, प्राचीन रोमन क़ानून को —उस रोमन कानून को जो उस आर्थिक मंजिल के कानूनी संबंधों की, जिसे मार्क्स ने माल का उत्पादन

कहा है प्राय सम्पूर्ण और निर्दोष रूप से अभिव्यक्ति करता है —आधुनिक पूंजीवादी परिस्थितियो के अनुरूप वडी होशियारी से एक नया सशोधित रूप दे दिया था —इतनी होशियारी से कि आज भी फ्रांस का यह क्रांतिकारी कानून इगलैंड सहित सभी देशो में मिल्कियत के कानून मे सुधार करने के लिए एक नमूने का काम देता है। फिर भी हमे यह नहीं भूल जाना चाहिए कि अंग्रेजी कानून अब भी पूजीवादी समाज के आर्थिक सबधो को अगर एक ऐसी वर्वर सामंती भाषा मे व्यक्त करता है जो व्यक्त वस्तु मे उसी तरह मेल खाती है जिस तरह कि अंग्रेजी हिज्जे अंग्रेजी उच्चारणों से मेल खाती है —किसी फ्रासीसी ने कहा है कि vous ecrıvez Londres et vous prononcez Constantınople*—तो यह भी एक वास्तविकता है कि यह अंग्रेजी कानून ही वह एकमात्र कानून है, जिसने व्यक्तिगत स्वतत्रता, स्थानीय स्वायत्त शासन और अदालत के अलावा बाकी हर तरह के हस्तक्षेप से निर्भयता और मुक्ति के प्राचीन जर्मन-अधिकारो के उस श्रेष्ठ भाग को सुरक्षित बनाये रखा है और अमरीका तथा उपनिवेशो तक पहुँचा दिया है, जो निरंकुश राजतत्र के युग मे योरप मे विलुप्त हो गया है और अभी तक भी कही भी फिर से प्राप्त नही हो सका है।

हम फिर अपने ब्रिटिश पूंजीपति पर वापिस आ जाएँ। फ्रांसीसी क्राति ने उसे इस बात का बढिया मौका दे दिया कि योरप के राजाओ की सहायता से फ्रास के सामुद्रिक व्यापार को वह नष्ट कर दे, फ्रांसीसी उपनिवेशो को हथिया ले, और समुद्री प्रतिद्वन्द्विता सम्बंधी फ्रास के आखिरी दावो को भी खत्म कर दे। उसने फ्रास की क्रांति से जो लोहा लिया, उसका एक कारण यह भी था। दूसरा कारण उसका यह था कि इस क्राति का तौर-तरीका उसकी फितरत के बिलकुल खिलाफ था। इस क्राति का 'घृणित' आतकवाद ही नही, बल्कि पूजीवादी शासन को अति

---

* आप लिखते तो हैं 'लदन' और बोलते हैं 'कुस्तुनतुनिया'। — संपादक

की हद तक ले जाने की उसकी कोशिश भी उसे नापसन्द थी। ब्रिटिश पूजीवादी सोचता था कि अपने अभिजात वर्ग के बिना वह कर ही क्या सकेगा ? जो भी तहजीब और कायदे उसे मालूम थे, इस अभिजात वर्ग ने ही उसे सिखाये थे। उसी ने उसके लिए नये-नये फैशन निकाले थे और उसी ने देश मे अमन कायम रखनेवाली सेना और बाहर के औपनिवेशिक देशो तथा नये बाजारो को सर करनेवाली नौसेना के लिए अफसर जुटाये थे। इसमे सन्देह नही कि पूजीवादी वर्ग का एक अल्प-संख्यक प्रगतिशील भाग भी था, जिसके हितो की ओर अभिजात वर्ग के साथ किये गये समझौते मे उतना ध्यान नही दिया गया था। यह भाग, जिसमे अधिकतर मध्यवर्ग के कम धनी लोग थे, क्राति से सहानुभूति रखता था, लेकिन पार्लमेंट के अन्दर उसकी कोई ताकत न थी।

इस प्रकार, भौतिकवाद यदि फ्रांसीसी क्रांति का दर्शन बन गया था तो धर्मभीरु अग्रेज पूजीवादी वर्ग अपने धर्म के साथ और भी मज़बूती से चिपक गया था। पेरिस के आतक-राज ने क्या यह नही दिखला दिया था कि जनता की धार्मिक प्रवृत्तियो के नष्ट हो जाने का क्या परिणाम होता है ? भौतिकवाद फ्रास से पड़ोसी देशो मे जितना ही अधिक फैलता गया और वैसी ही अन्य सैद्धान्तिक धाराओ से, विशेष रूप से जर्मन दर्शन से, उसे जितना ही अधिक बल मिलता गया, वस्तुत:, जितनी ही अधिक मात्रा मे भौतिकवाद तथा स्वतत्र विचार योरप मे किसी सुसस्कृत व्यक्ति के आवश्यक गुण बनते गये, उतनी ही मजबूती से ब्रिटिश मध्यवर्ग अपने विविध धार्मिक विश्वासो के साथ और भी अधिक चिपकता गया। ये विश्वास एक दूसरे से भिन्न हो सकते थे, परन्तु वे सब, स्पष्ट रूप से, धार्मिक, ख्रिष्टीय विश्वास ही थे।

जहा फ्रास मे क्राति ने पूजीवादी वर्ग की राजनीतिक विजय निश्चित कर दी थी, वही इंगलैंड मे वाट, आर्कराइट, कार्टराइट तथा अन्य लोगो ने एक ऐसी औद्योगिक क्रांति का सूत्रपात कर दिया था जिसने आर्थिक शक्ति के गुरुत्व के केंद्र को पूरी तरह स्थानान्तरित कर दिया। अभिजात

जमींदारो की अपेक्षा पूंजीपतियो का धन और वैभव बहुत तेज़ी से बढता गया। स्वय पूंजीवादी वर्ग के अदर भी कारखानेदार महाजनी अभिजात वर्ग को, बैंकरो, वगैरह को अधिकाधिक पृष्ठभूमि मे ढकेलते गये। १६८६ का समझौता, बावजूद इसके कि धीरे-धीरे उसमे पूजीवादी वर्ग के हित मे परिवर्तन होते गये थे, अब दोनो पक्षो की सापेक्ष स्थिति के अनुरूप नही रह गया था। इन पक्षो का स्वरूप भी बदल गया था, १८३० का पूंजीवादी वर्ग पिछली शताब्दी के पूंजीवादी वर्ग मे बहुत भिन्न था। जो राजनीतिक शक्ति अभिजात वर्ग के हाथ मे छोड दी गयी थी, और जिसका नये औद्योगिक पूंजीवादी वर्ग के दावो का विरोध करने के लिए वह उपयोग करता था, वह अब नये आर्थिक हितो से मेल नही खाती थी। अभिजात वर्ग के साथ एक नया संघर्ष आवश्यक हो गया था, और उसका अंत नयी आर्थिक शक्ति की विजय के रूप मे ही हो सकता था।

पहले तो १८३० की फ्रासीसी क्राति की प्रेरणा से, सारे प्रतिरोध के बावजूद, सुधार-कानून को पास कर दिया गया। इस कानून ने पार्लमेंट मे पूंजीवादी वर्ग को एक शक्तिशाली और सम्मानित स्थान प्रदान किया। इसके बाद, अनाज के कानूनो* को मसूख कर दिया गया और इसकी वजह मे सामती अभिजात वर्ग पर पूंजीवादी वर्ग का, विशेष रूप से उसके सबसे सक्रिय भाग का, यानी कारखानेदारो का सदा के लिए प्रभुत्व स्थापित हो गया। पूंजीवादी वर्ग की यह सबसे बडी विजय थी, परन्तु एकमात्र अपने हित मे प्राप्त की जाने वाली यही उसकी अन्तिम विजय भी

---

* **अनाज के कानून**—ये १८१५ में ब्रिटिश पार्लमेंट द्वारा जमींदारों के हित मे स्वीकृत की गयीं अनाज की ऊंची दरों से संबधित कानून थे। जन संख्या के गरीब तबकों पर भारी बोझ बने हुए ये कानून औद्योगिक पूंजीपतियों के लिए भी अलाभकर थे, क्योंकि उनके फलस्वरूप श्रम का मूल्य बढ गया था, घरेलू बाजार की क्रय-शक्ति घट गयी थी और विदेशी व्यापार के विकास के मार्ग मे रुकावट पैदा हो गयी थी। १८४६ मे इन कानूनों को मसूख कर दिया गया था। —सपादक

थी। वाद मे उसने जो जीते हासिल की उन्हें एक नयी सामाजिक शक्ति के साथ वाँटकर उसे उनका उपभोग करना पडा था। यह नयी शक्ति पहले उसके साथ थी, पर बहुत जल्द ही उसकी प्रतिद्वन्द्विनी बन गयी थी।

औद्योगिक क्रांति ने बडे-बड़े कारखानेदार-पूंजीपतियो के एक वर्ग को जन्म दे दिया था, लेकिन उसने एक और वर्ग को, बहुत बडे वर्ग को भी जन्म दे दिया था —यह वर्ग था कारखानों मे काम करनेवाली मजदूर जनता का वर्ग। जिस अनुपात मे कारखानो के उत्पादन की एक शाखा के वाद दूसरी शाखा मे औद्योगिक क्राति का असर फैलता गया उसी अनुपात मे इस वर्ग की भी सख्या धीरे-धीरे वढती गयी—और इसी अनुपात मे उसकी ताकत मे भी इजाफा होता गया। अपनी इस ताक़त का सबूत उसने १८२४ मे उस समय ही दे दिया था, जब पार्लमेंट को अनिच्छा-पूर्वक उन कानूनो को रद्द करने के लिए उसने मजबूर कर दिया था जिनके अन्तर्गत मजदूरो को अपना सगठन बनाने की मनाही थी। सुधार-आंदोलन के काल मे ये मजदूर सुधार-पार्टी के अदर उसके एक गरम दल की तरह काम करते थे। १८३२ के कानून में वोट देने के अधिकार से उन्हे वचित रखा गया था, इसलिए अपनी मांगों को उन्होंने जनता के एक अधिकार पत्र (People's Charter) के रूप मे सूत्र-बद्ध किया और अनाज कानून-विरोधी विशाल पूजीवादी पार्टी के मुकाबले मे अपने को एक स्वतत्र पार्टी के रूप मे, अर्थात् चार्टिस्ट पार्टी के रूप मे उन्होंने सगठित कर लिया। आधुनिक युग मे यही पार्टी मजदूरों की पहली पार्टी थी।

इसके वाद, फरवरी और मार्च, १८४८ की योरोपीय क्रांतियाँ हुई, जिनमे कमकर जनता ने इतना आगे वढ़कर हिस्सा लिया, और, कम से कम पेरिस में, ऐसी मांगे रखी जो पूजीवादी समाज के दृष्टिकोण से कभी भी क्षम्य नही थी। क्रांतियो के बाद चारो ओर जोरदार प्रतिक्रिया हुई। पहले १० अप्रैल, १८४८ को चार्टिस्टो की हार हुई; फिर उसी साल जून मे, पेरिस के मजदूर-विद्रोह को कुचल दिया गया; फिर इटली, हगरी,

दक्षिणी जर्मनी मे १८४६ की विपत्तियाँ नाजिल हुई और, अत में, २ दिसबर, १८५१ को पेरिस पर लुई बोनापार्ट की विजय हो गयी। कम से कम कुछ वक़्त के लिए, मज़दूर वर्ग के दावो के हौवे को दूर कर दिया गया, लेकिन इसके लिए कितनी बडी कीमत चुकानी पडी थी !

अग्रेज पूजीपति वर्ग ने आम जनता की धार्मिक भावना को बनाये रखने की जरूरत को अगर पहले ही से समझ लिया था, तो इन सारे अनुभवो के बाद, इस जरूरत को और भी कितनी शिद्दत मे उसने महसूस किया होगा ? अपने योरोपीय भाई-बदो की हिकारत-भरी हसी की परवाह न करके, साल दर साल, लगातार निम्न श्रेणियो के लोगो की धर्म-शिक्षा पर हजारो-लाखो पौण्ड वह खर्च करता रहा। मात्र अपने देश के धार्मिक उपकरणो से उसे सन्तोष न हुआ तो उसने व्यापार के रूप मे धर्म के सबसे बडे सगठनकर्त्ता, "जोनाथन भाई" [९५] * से मदद की अपील की, और अमरीका से पुनरुत्थानवाद का आयात किया तथा मूडी और साकी ** जैसे लोगो को बुला लिया। और, अत मे, उसने "ईसाई धर्म सेना" *** की खतरनाक मदद को भी कबूल कर लिया —खतरनाक इसलिए कि प्रारभिक ईसाई धर्म के सिद्धान्तो का प्रचार करके उनमे यह सेना फिर से जान डाल देती है, गरीबो को खुदा के बदे कहकर पुकारती है, पूंजीवाद के विरुद्ध धार्मिक तरीको से सघर्ष करती है, और, इस प्रकार, प्रारभिक ईसाई धर्म के वर्ग-विरोध सम्बधी तत्त्व का पोषण करती है।

---

* सयुक्त राष्ट्र अमरीका को इगित करने के लिए उस समय 'भाई जोनाथन' का प्रयोग किया जाता था। अब उसे "साम चाचा" कहा जाता है। —सपादक

** **पुनरुत्थानवाद** —गत शताब्दी का एक आदोलन, जिसने धर्म के नष्ट होते हुए प्रभाव को फिर से जीवित करने का प्रयत्न किया था। अमरीका के दो उपदेशक, मूडी और साकी इस आदोलन के बढे-चढे सगठनकर्त्ता थे। —सपादक

*** **मुक्ति सेना** —१८६५ मे इगलैंड मे स्थापित की गयी ईसाई-धर्मियों की यह एक परोपकारी धार्मिक सेना थी। —संपादक

यह सेना उन धनी-मानी लोगों को किसी भी दिन परेशानी मे डाल दे सकती है जो आज उसके लिए मुक्त हस्त से नकद रुपये दे रहे हैं।

ऐतिहासिक विकास का यह एक नियम मालूम होता है कि पूंजीवादी वर्ग किसी भी योरोपीय देश में —कम से कम स्थायी काल के लिए — राजनीतिक सत्ता को उस प्रकार अकेले अपने अधिकार मे नही रख सकता जिस प्रकार कि मध्ययुग मे सामंती अभिजात वर्ग उसे रखे रहा था। यहा तक कि फ्रास मे भी, जहा सामंतवाद को बिल्कुल ख़त्म कर दिया गया था, समूचा पूंजीवादी वर्ग शासन पर अपना पूर्ण अधिकार बहुत थोडे ही थोड़े समय के लिए कायम रख सका है। १८३० से १८४८ तक लुई फिलिप के शासन मे पूंजीवादी वर्ग के एक बहुत छोटे-से भाग ने राज्य पर शासन किया था, वोट देने की शर्तें उस समय इतनी ऊँची रखी गयी थी कि उस वर्ग का अधिकाश भाग इस अधिकार से वंचित था। १८४८ से १८५१ तक के द्वितीय गणतंत्र के काल मे, समूचे पूंजीवादी वर्ग ने हुकूमत ज़रूर की थी, लेकिन केवल तीन साल तक। उसकी अयोग्यता के कारण द्वितीय साम्राज्य की स्थापना हो गयी थी। अब कही जाकर तीसरे गणतंत्र के इस युग मे ही समूचा पूंजीवादी वर्ग बीस साल से ज़्यादा समय तक शासन की बागडोर को अपने हाथ मे रखे रह सका है। पर अब उसके पतनोन्मुख होने के भी लक्षण जोरदार तरीके से नजर आने लगे है। पूंजीवादी वर्ग का स्थायी शासन अमरीका जैसे देशों मे ही संभव हुआ है, जहाँ सामतवाद का कभी नाम ही न था और आरभ से ही समाज पूंजीवादी आधार पर चला था। पर फ्रास और अमरीका मे भी पूंजीवादी वर्ग के उत्तराधिकारी, —कमकर लोग अब दरवाजा खटखटाने लगे है।

इंगलैंड मे पूंजीवादी वर्ग का एकाधिपत्य कभी नही रहा। १८३२ की विजय के बाद भी बड़ी-बडी सरकारी नौकरियाँ एक तरह से अकेले अभिजात वर्ग के ही अधिकार मे बनी रही थी। इस चीज़ को धनी मध्य-वर्ग ने चुपचाप कैसे सह लिया था, यह बात मेरे लिए बहुत दिनो तक एक रहस्य ही बनी रही थी। इस रहस्य का उद्घाटन तब हुआ जब कि उस

महान् उदारवादी कारखानेदार, मि० डब्ल्यू० ए० फार्स्टर ने एक सार्वजनिक सभा मे बोलते हुए, ब्रैडफोर्ड के युवको से अपील की कि ससार मे अगर वे सफलता प्राप्त करना चाहते है तो उन्हे फ्रासीसी भाषा सीखनी चाहिए। स्वय अपने अनुभव का हवाला देते हुए उन्होने बताया कि मन्त्रिमडल के एक मत्री की हैसियत से, जब उन्हे एक ऐसे समाज मे आना-जाना पडा, जहाँ फ्रासीसी भाषा का ज्ञान कम से कम उतना ही आवश्यक था जितना कि अग्रेजी का, तब उन्हे कैसे मुह चुराना पडा था और किस तरह सब के सामने शर्मिदा होना पडा था! दरअसल बात यह थी कि उस जमाने का मध्यवर्ग सहसा धनी तो अवश्य हो गया था, लेकिन साधारणत: था वह अशिक्षित ही, और इसलिए उसके लिए इसके सिवा कोई चारा न था कि ऊपर की तमाम सरकारी नौकरियो को वह अभिजात वर्ग के लिए ही छोड दे, क्योकि इन नौकरियो के लिए उसकी व्यापार-बुद्धि के साथ-साथ जुडी हुई उसकी द्वीपीय कूपमडूकता तथा द्वीपीय अहकार के बजाय दूसरे ही गुणो की आवश्यकता थी।* आज भी मध्यवर्गीय शिक्षा के बारे मे अखबारो मे जो कभी खत्म न होनेवाली बहस

---

*और व्यापार तक के मामले में भी राष्ट्रीय अंधराष्ट्रवादी अहकार सही परामर्शदाता का काम नही कर सकता। अभी हाल ही तक एक औसत अग्रेज कारखानेदार किसी भी अग्रेज के लिए अपनी भाषा को छोडकर किसी दूसरी भाषा का बोलना अपमानजनक समझता था, और उसे इस बात पर गर्व होता था कि 'गरीब' विदेशी इगलैंड मे आकर बस गये और उसके माल को विदेशों मे खपाने की झझट और परेशानी से उसे उन्होने बरी कर दिया। इस बात पर उसने कभी गौर नहीं किया था कि इस तरह से इन विदेशियों ने, अधिकाश रूप से जर्मनों ने, ब्रिटेन के विदेशी व्यापार —आयात तथा निर्यात के एक बहुत बडे हिस्से पर अपना कब्जा जमा लिया था और विदेशों के साथ अग्रेजों का सीधा व्यापार, प्राय: उपनिवेशो, चीन, सयुक्त राष्ट्र अमरीका तथा दक्षिणी अमरीका तक ही सीमित रह गया था! न उसने इसी बात पर गौर किया था कि ये जर्मन दूसरे देशों के जर्मनों के साथ व्यापार करते थे और, धीरे-धीरे, पूरी दुनिया में व्यापारिक उपनिवेशो का उन्होंने जाल-सा बिछा लिया था। लेकिन करीब चालीस साल पहले, जर्मनी ने जब निर्यात के लिए जोर-शोर मे उत्पादन आरभ कर दिया तो

चल रही है, उससे जाहिर हो जाता है कि अब भी अंग्रेज मध्यवर्ग अपने को श्रेष्ठतम शिक्षा के योग्य नही समझता और अधिक साधारण शिक्षा की ही अपेक्षा रखता है ! इस तरह, अनाज-कानूनो के रद्द कर दिये जाने के बाद भी, इसी चीज को स्वाभाविक समझा गया कि कोवडेन, ब्राइट, फार्स्टर आदि जिन लोगो ने पूंजीपति वर्ग के लिए ये जीते हासिल की थी उन्हे देश के राजकीय शासन मे भाग लेने से वंचित रखा जाए। और बीस साल तक इससे वे वंचित रहे भी। इसके बाद ही एक नये सुधार-कानून ने उनके लिए मन्त्रिमण्डल के द्वार खोल दिये थे। ब्रिटिश पूंजीवादी वर्ग मे अपनी सामाजिक हीनता की भावना इतनी गहरी बिंध गयी है कि सभी राजकीय अवसरो पर शोभनीय रूप से राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करने के लिए, अपने और राष्ट्र के खर्च पर, अकर्मण्य व्यक्तियो की पूरी एक सजा-वटी कौम को उन्होने कायम कर रखा है, और उनमे से कोई भी इस विशिष्ट तथा विशेषाधिकार-सम्पन्न समाज मे, जिसका, अन्ततः, स्वयं उन्ही ने निर्माण किया है, जब प्रवेश पाने के योग्य समझ लिया जाता है तो वह इसे अपना भारी सौभाग्य समझता है।

इस तरह हम देखते है कि औद्योगिक तथा व्यापारी मध्यवर्ग अभी तक भूस्वामी अभिजात वर्ग को राजनीतिक सत्ता से वंचित करने में पूरी तौर पर सफल भी न हो पाया था कि एक दूसरा प्रतिद्वंद्वी मजदूर वर्ग उसके मुकाबले मे आ गया। चार्टिस्ट आंदोलन तथा योरोपीय क्रांतियों के

अनाज का निर्यात करनेवाले देश से कुछ ही समय में उसे अव्वल दर्जे के एक औद्योगिक देश में बदल देने मे इस व्यापारिक जाल ने उसकी खूब मदद की और तब, यह करीब दस साल पहले की बात है, अंग्रेज कारखानेदार घबराये और अपने राजदूतों और वाणिज्य-दूतों से पूछने लगे कि उनके ग्राहक क्यों छूटे जा रहे हैं। सारे राजदूतों और वाणिज्य-दूतों का एक ही उत्तर था : (१) तुम अपने ग्राहकों की भाषा नहीं सीखते, बल्कि यह आशा करते हो कि वे तुम्हारी भाषा सीखें; (२) तुम अपने ग्राहकों की आवश्यकताओं, आदतों और रुचियों के अनुकूल होने की कोशिश नहीं करते, बल्कि यह आशा करते हो कि वे अपने को तुम्हारे अनुकूल बनायेंगे। (एंगेल्स का नोट)

वाद होने वाली प्रतिक्रिया, और साथ ही १८४८ और १८६६ के वीच होने वाले ब्रिटिश व्यापार के अभूतपूर्व विस्तार ने (जिसका कारण भोडे तौर से केवल मुक्त व्यापार को बताया जाता है, लेकिन वास्तव मे जिसका कारण कही अधिक मात्रा मे रेलो, समुद्री जहाजो और परिवहन के आम साधनो का शक्तिशाली विकास था)मजदूर वर्ग को फिर लिबरल पार्टी (उदार दल) की शरण मे जाने को विवश कर दिया था। चार्टिस्ट युग से पहले की ही तरह वह फिर उस पार्टी का उग्र पक्ष बन गया था । बावजूद इसके, वोट के अधिकार का उनका दावा धीरे-धीरे दुर्निवार बन गया। लिबरल पार्टी के व्हिग नेता "डरते रहे", किन्तु डिजरायली ने टोरी दल को इस बात के लिए तैयार करके कि अनुकूल अवसर से लाभ उठा कर और पार्लामेट की सीटो का पुनर्वितरण करके वह नगरो मे पारिवारिक निर्वाचन (household suffrage) के अधिकार को लागू कर दे—यह दिखा दिया कि व्हिग नेताओ से वह कही अधिक होशियार था। इसके बाद चुनाव-पत्रो (ballot)के द्वारा चुनाव होना शुरू हुआ। और फिर, १८८४ मे, पारिवारिक निर्वाचन के अधिकार को काउटियो मे भी लागू कर दिया गया और सीटो का एक नये सिरे से वटवारा किया गया जिससे कुछ हद तक चुनाव-क्षेत्र एक-दूसरे के बराबर हो गये । इन तमाम कार्रवाइयो के फलस्वरूप मज़दूर वर्ग की निर्वाचन शक्ति काफी बढ गयी, यहा तक कि कम कम डेढ-दो सौ चुनाव-क्षेत्रो मे अधिकाश मतदाता आज इसी वर्ग के है। किन्तु पार्लामेटरी सरकार परपरा के प्रति आदर सिखाने का एक खास ही स्कूल है; इसलिए अगर मध्यवग उन लोगो को, जिन्हे लार्ड जौन मैनर्स ने मजाक मे "हमारे पुराने सामत" कहा था, भय और आदर की दृष्टि से देखता है, तो आम मेहनतकश जनता "अपने से वडे" कहे जाने वाले लोगो को, यानी मध्यवर्ग को और भी अधिक आदर तथा सम्मान की दृष्टि से देखती है । आज से पद्रह साल पहले अग्रेज़ मजदूर सचमुच एक आदर्श मज़दूर था । अपने मालिक का वह इतना खयाल और इतनी इज्ज़त करता था, और अपने हको को मागने मे वह इतना संकोची और

विनयशील था, कि उसे देखकर अपने देश के मजदूरों की असाध्य साम्यवादी तथा क्रांतिकारी प्रवृत्तियों से विक्षुब्ध, कैथेडर-सोशलिस्ट (Katheder-Socialist) मत के हमारे जर्मन अर्थशास्त्रियों को बेहद तसल्ली मिलती थी।

परन्तु यह व्यवहार कुशल अंग्रेज मध्यवर्ग जर्मन प्रोफ़ेसरों से ज़्यादा दूर तक देखता था। अपनी शक्ति का मजदूर वर्ग के साथ बांटकर उपभोग उसने अवश्य किया था पर अत्यंत अनिच्छा से। चार्टिस्टों के दिनों मे उसने यह देख लिया था कि यह puer robustus sed malitiosus, यानी जनता, क्या-क्या कर सकती है। और तब से विवश होकर जनता के अधिकार-पत्र के अधिकांश भाग को उन्हें ब्रिटेन के क़ानून का अंग बनाना पड़ा था। अगर कभी भी जनता को नैतिक साधनों के द्वारा वश मे रखना था तो जनता को प्रभावित करने का सर्वोत्तम नैतिक साधन धर्म था, और अब भी वही है। और इसीलिए हम देखते है कि स्कूलों की प्रबंध-समितियो मे अधिकतर पादरी हैं, और इसीलिए यह पूंजीवादी वर्ग, कर्मकांड से लेकर 'मुक्ति-सेना' तक, हर प्रकार के पुनरुत्थानवाद को प्रश्रय देने के लिए अपने-आप पर अधिकाधिक कर लगाता जाता है।

और अब ब्रिटिश सम्माननीयता की योरोपीय पूंजीवादी वर्ग के स्वतंत्र विचारों तथा उसकी धार्मिक शिथिलता पर विजय हुई। फ्रांस और जर्मन के मजदूर विद्रोही हो उठे थे। उन्हे समाजवाद की छूत बुरी तरह लग गयी थी और अपने को ऊपर उठाने के लिए जिन तरीक़ों का वे इस्तेमाल करते थे वे क़ानूनी हैं अथवा ग़ैरकानूनी इसकी उन्हें ज़रा भी फ़िक्र नहीं रह गयी थी। और इसकी माक़ूल वजह भी थी। हाल यह था कि यह "तगड़ा लड़का" (puer robustus) दिन-ब-दिन ज़्यादा "शैतान" (malitiosus) होता जा रहा था। फ्रांसीसी और जर्मन पूंजी-वादियों के लिए आख़िरी चारा अब यही रह गया था कि अपने स्वतंत्र विचारों को चुपके से वे तिलांजलि दे दें—उस लड़के की तरह जो जहाज़ पर तो बड़ी शान से सिगार पीता हुआ आता है किन्तु जहाज़

के हिचकोले खाने से ज्योही उसे मिचली आने लगती है त्योही चुपके से अपने जलते सिगार को समुद्र मे फेंक देता है। जो लोग पहले धर्म का मजाक उडाते थे अब वे, एक के बाद एक, अपने बाह्य आचरण मे धर्म-परायण बनने लगे, चर्च के बारे मे, चर्च के जड विश्वासो तथा आचार-विचार के बारे मे वे अब श्रद्धापूर्ण बाते करने लगे, और जहाँ तक सभव था आचरण भी उनके अनुकूल करने लगे। फ्रासीसी पूजीपति शुक्रवार को निरामिष आहार करने लगे, और जर्मन पूँजीपति रविवार को चर्च की बेचो पर बैठकर लबे-लबे प्रोटेस्टेट उपदेश सुनने लगे। भौतिकवाद के कारण वे मुसीबत मे फँस गये थे। "Die Religion muss dem Volk erhalten werden"—जनता के लिए धर्म को जीवित रखना जरूरी है—समाज को सम्पूर्ण विनाश से बचाने का यही एकमात्र और अन्तिम उपाय था। उनका दुर्भाग्य यह था कि इस बात को वे तभी समझ सके थे जब कि धर्म को हमेशा के लिए खत्म कर देने के लिए अपनी शक्ति भर उन्होने सब कुछ कर डाला था। अब अग्रेज पूँजीपतियो की बारी थी कि हिकारत से हसते हुए वे उनसे कहे : "बेवकूफो, तुमने अब समझा है! मै तुम्हे यह बात आज से दो सौ साल पहले ही बता दे सकता था!"

इसके बावजूद, मेरा विचार है कि न तो अग्रेजो की धार्मिक जडता और न योरोपीय पूजीवादी का post festum (घटना के बाद का) हृदय-परिवर्तन ही सर्वहारा वर्ग के उठते हुए ज्वार को रोक सकेगा। परम्परा एक जबर्दस्त बाधक शक्ति है, वह इतिहास की जड शक्ति (vis inertiae) है, परन्तु मात्र एक निष्क्रिय शक्ति होने के कारण उसका टूट जाना अवश्यभावी है। और इसलिए पूजीवादी समाज को बचाने के लिए स्थायी रूप से धर्म उसकी ढाल नही बन सकता। कानून, दर्शन और धर्म सम्बधी हमारे विचार यदि समाज मे प्रचलित आर्थिक सम्बधो से ही न्यूनाधिक परोक्ष रूप मे उत्पन्न हुए है तो, अन्त मे, ऐसे विचार इन सम्बन्धो मे होने वाले सपूर्ण परिवर्तन के प्रभाव से अछूते

नही रह सकते। और यदि हम दिव्य ज्ञान की वात मे विश्वास नही करते तो हमे मानना पड़ेगा कि ऐसे कोई भी धार्मिक विश्वास नही है जो किसी टूटते और चरमराते हुए समाज को टेक देकर बचा ले !

और, दरअसल, अब तो इगलैड मे भी श्रमजीवी जनता आगे बढने लगी है। इसमे सन्देह नही कि तरह-तरह की परम्पराओ से वह जकडी हुई है। पूँजीवादी परम्पराएँ उसे जकडे हुए है जैसे कि उसका यह विश्वास कि इगलैड मे दो ही पार्टियाँ सभव है—कजरवेटिव पार्टी और लिवरल पार्टी, और उसे, यानी मजदूर वर्ग को विशाल लिवरल पार्टी के द्वारा ही अपनी मुक्ति प्राप्त करने की कोशिश करनी चाहिए। स्वतत्र रूप से कार्य करने की पहली हिचकिचाती हुई कोशिशो से मिली हुई मजदूरो की परम्पराएँ भी उमे जकडे हुए है जैसे कि उसकी यह समझ कि बहुत-सारे पुराने मजदूर सघो से उन तमाम प्रार्थियो को बाहर रखना चाहिए जो वाकायदा उम्मीदवार रह कर अपनी शिक्षा पूरी न कर चुके हो। इसका मतलब होता है कि ऐसे हर मजदूर सघ मे उसके अपने हड़ताल-तोडक पैदा हो जाते है। लेकिन, इस सब के बावजूद, जैसा कि प्रोफेसर बेंटानो तक को बड़े अफसोस के साथ अपने कथेडर-सोशलिस्ट भाइयो को बताना पडा है, अग्रेज मजदूर वर्ग आगे बढ रहा है। और वह बढ़ रहा है ठीक उसी तरह जिस तरह कि इगलैड मे हर चीज बढती है, आहिस्ता-आहिस्ता, सभाल-सभाल कर क़दम उठाता हुआ। कभी वह हिचकिचाता है, तो कभी न्यूनाधिक मात्रा मे असफल और प्रयोगमूलक प्रयत्न करता है। कभी-कभी तो समाजवाद के नाम तक से शक करता हुआ वह बढ़ता है। समाजवाद के नाम से वह सशकित रहता है किन्तु समाजवाद के सार को धीरे-धीरे वह आत्मसात करता जाता है। और यह आदोलन बढता जाता है, फैलता जाता है, और मजदूरो के एक स्तर के बाद दूसरे स्तर को प्रभावित करता जाता है। इसने पूर्वी लदन के अनिपुण मजदूरो को झकझोर कर अब नीद से उठा दिया है, और हम सब जानते है कि बदले मे इन नयी शक्तियो ने भी इस आदोलन को कितनी शक्ति प्रदान

कर दी है। और अगर इस आदोलन की रफ्तार इतनी तेज़ नही है जितनी कि कुछ बेसब्र लोगो को चाहिए, तो उन्हे यह नही भूल जाना चाहिए कि अग्रेजी चरित्र के सर्वश्रेष्ठ गुणो को मजदूर वर्ग ही जीवित रखे हुए है; और न यह कि इगलैड मे आगे की तरफ जब एक कदम उठा लिया जाता है, तो साधारणत फिर वह पीछे नही जाता। इसलिए पुराने चार्टिस्टो के बेटे उपरोक्त कारणो से अगर पूरे खरे नही उतरे थे तो क्या हुआ, आसार इस बात के हैं कि उनके पोते अपने पूर्वजो के सर्वथा योग्य निकलेगे।

किन्तु योरोपीय मजदूर वर्ग की विजय केवल इगलैड पर नही निर्भर करती। उसे प्राप्त करने के लिए कम से कम इंगलैड, फ्रास और जर्मनी का आपस मे सहयोग करना जरूरी है। फ्रास और जर्मनी, दोनो मे, मजदूर-आंदोलन इंगलैड से काफी आगे बढा हुआ है। जर्मनी मे वह सफलता से बहुत दूर भी नही है। पिछले पचीस वर्षो मे उसने वहा जो प्रगति की है वह सचमुच अभूतपूर्व है। और वह तीव्र से तीव्रतर गति से आगे बढ रहा है। जर्मन मध्यवर्ग मे राजनीतिक योग्यता, अनुशासन, साहस, शक्ति और लगन आदि गुणो का यदि शोचनीय अभाव देखने मे आया है, तो जर्मन मज़दूर वर्ग ने इन सभी गुणो का प्रचुर प्रमाण दिया है।

चार सौ वर्ष पहले, योरोपीय मध्यवर्ग का पहला विद्रोह जर्मनी से शुरू हुआ था। आज जो स्थिति है, उसे देखते हुए, क्या यह बात सभावना के परे है कि योरोपीय सर्वहारा वर्ग की भी पहली महान् विजय की रगभूमि जर्मनी ही हो?

—फ्रेडरिक एंगेल्स

२० अप्रैल, १८९२

फ्रेडरिक एंगेल्स

प्रारम्भिक ईसाई धर्म का इतिहास

१

प्रारम्भिक ईसाई धर्म के इतिहास मे कई ऐसी महत्वपूर्ण बातें हैं जो आधुनिक मजदूर वर्ग के आन्दोलन मे भी पायी जाती हैं। आधुनिक मजदूर वर्ग के आन्दोलन की ही तरह, ईसाई धर्म भी आरम्भ में उत्पीडित लोगो का आन्दोलन था। सबसे पहले वह दासों और दासत्व से मुक्त दासो, समस्त अधिकारो से वंचित गरीब लोगों, रोम द्वारा गुलाम बनायी गयी अथवा छिन्न-भिन्न कर दी गयी क़ौमो के धर्म के रूप मे सामने आया था। ईसाई धर्म तथा मज़दूरो का समाजवाद दोनो ही गुलामी और दुख-दर्द से आसन्न मुक्ति का सन्देश देते है। ईसाई धर्म कहता है कि यह मुक्ति अगले जीवन मे, मृत्यु के बाद स्वर्ग मे प्राप्त होगी; समाजवाद कहता है कि वह इसी दुनिया मे, समाज को बदल कर मिलेगी। दोनो पर ही जुल्म और दमन किया जाता है, दोनो ही के समर्थको से नफ़रत की जाती है और उन्हे उन्ही के लिए बनाये गये ख़ास कानूनो का शिकार बनाया जाता है। ईसाई धर्म के समर्थको को मानव-जाति के शत्रुओ के रूप मे सजा दी जाती है, और समाजवाद के समर्थको

को राजसत्ता के शत्रुओ के रूप मे तथा धर्म, परिवार और सामाजिक व्यवस्था के शत्रुओ के रूप मे। और, इस समस्त दमन के बावजूद, बल्कि कहना चाहिए कि उससे और प्रेरणा प्राप्त करके, विजय प्राप्त करते हुए, बेरोक-टोक वे आगे बढते ही जाते हैं। उसके उदय के तीन सौ वर्ष बाद ईसाई धर्म को रोम के विश्व साम्राज्य मे राजकीय धर्म के रूप मे स्वीकार कर लिया गया था, और ६० वर्ष भी नही बीते कि समाजवाद ने अपने लिए ऐसा स्थान बना लिया है जिससे कि उसकी विजय १०० फी सदी निश्चित हो गयी है।

इसलिए अपनी कृति, **"श्रम की पूर्ण उपज प्राप्त करने का अधिकार"** मे प्रोफेसर एटन मैन्गर इस बात पर अगर आश्चर्य प्रकट करते हैं कि रोम के सम्राटो के पास जमीन का विशाल केन्द्रीकरण था और उस समय का श्रमजीवी वर्ग—जिसमे लगभग सबके सब दास थे—असीम कष्ट मे था, इसके बावजूद भी "रोमन साम्राज्य के अन्त के बाद पश्चिम मे समाजवाद की स्थापना क्यों नही हो गयी थी," तो इसकी वजह सिर्फ यह है कि वे यह नही देखते कि, जहाँ तक उस समय सम्भव था, ईसाई धर्म के रूप मे, यह "समाजवाद" वास्तव मे वहाँ मौजूद था। यहाँ तक कि उसने प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया था। अन्तर केवल यह था कि यह ईसाई धर्म, जैसा कि उस समय की ऐतिहासिक परिस्थितियो मे अनिवार्य था, इस दुनिया मे नही, बल्कि इसके परे, स्वर्ग मे, मृत्यु के बाद के शाश्वत जीवन मे, शीघ्र ही आने वाले "स्वर्ण युग" मे (ईसा-मसीह के शासन-काल में—अनु०) सामाजिक परिस्थितियो को बदलना चाहता था।

इन दो ऐतिहासिक घटना-प्रवाहो की सदृशता बहुत पहले, मध्ययुगो मे ही, उस वक्त के उत्पीडित किसानो तथा विशेष रूप से नगरो के साधारण जनो के प्रथम विद्रोहो के रूप मे, बर्बस हमारे सामने आ जाती है। यह अनिवार्य था कि, मध्ययुगों के सभी जन आन्दोलनो की तरह ये विद्रोह भी धर्म का बाना पहनकर सामने आएँ। ऐसा लगता था जैसे

कि उनका लक्ष्य यह था कि चारो ओर फैलते हुए अधःपतन* से उसे बचा कर पुराने ईसाई धर्म की पुनःस्थापना कर दी जाए। परन्तु धार्मिक उत्कर्ष की इस सारी बातचीत के पीछे हर बार कोई न कोई ठोस सांसारिक स्वार्थ छिपा रहता था। यशस्वी जान जिजका के नेतृत्व मे बनने वाले बोहेमियन (सामाजिक बन्धनो से मुक्त, अक्खड़—अनु०) टैबोराइटो के सगठन मे यह चीज अत्यन्त स्पष्ट रूप से देखने मे आयी थी; परन्तु यह विशेषता सम्पूर्ण मध्ययुगो मे ही व्याप्त पायी जाती है। जर्मन किसान युद्ध के बाद वह धीरे-धीरे खत्म हो गयी थी; किन्तु, १८३० के बाद, श्रमजीवी कम्युनिस्टो के उदय के साथ-साथ वह भी फिर दुबारा पनप उठी थी। रेनन ने कहा था, "ईसाई धर्म के आरम्भिक समुदायो के बारे मे अगर मै तुम्हे कुछ बताना चाहूँ तो मैं तुमसे कहूँगा कि इन्टरनेशनल वर्किंग मैन्स एसोसियेशन (अन्तर्राष्ट्रीय श्रमजीवी सघ—अनु०) की किसी स्थानीय शाखा को देख लो।" किन्तु फ्रान्स के क्रान्तिकारी कम्यूनिस्ट और ख़ास तौर से वाइटलिंग तथा उसके समर्थक इससे बहुत पहले से ही प्रारम्भिक ईसाई धर्म के बारे मे इसी तरह की बाते करते थे।

---

* इसके विरोध में एक विचित्र चीज देखने को मिली थी। मुसलमानी दुनिया में, ख़ासतौर से अफ्रीका में, धार्मिक विद्रोह उठ खड़े हुए थे। इस्लाम एक ऐसा धर्म है जो पूर्व के देशों के रहने वालों के लिए, खासतौर से अरबो के लिए बनाया गया है,—अर्थात्, एक तरफ तो व्यापार और उद्योग मे लगे शहरी लोगों के लिए वह बनाया गया है और, दूसरी तरफ, ख़ानाबदोश घुमक्कडों के लिए। किन्तु, इसी में, नियत कालों पर उसके अन्दर बार-बार पैदा होने वाली टक्करों का बीज छिपा हुआ है।

शहर के लोग पैसे वाले और ऐय्याश हो जाते है और "कानून" को मानने में ढिलाई दिखलाने लगते हैं। रेगिस्तानों में घूमने वाले अरब गरीब और, इसलिए, सख्त आचार-व्यवहार के मानने वाले होते हैं; इस धन-सम्पदा और इन ऐय्याशियों की ओर वे हसद और लालच की दृष्टि से देखने लगते हैं। फिर वे किसी पैगम्बर, किसी **मेहदी** (नबी, इस्लाम का नेता —अनु०) के नेतृत्व में एक होकर अधर्मियों को सजा देते हैं और रीति-रस्मों तथा सच्चे मजहब की फिर से स्थापना कर देते हैं

यह विद्वान् फ्रान्सीसी, जिसने बाइबिल की जर्मन आलोचना को इस प्रकार काट-कूट डाला था कि आधुनिक पत्रकारिता मे भी वैसी दूसरी मिसाल नही मिलती और फिर उसके आधार पर चर्च (ईसाई धर्म सघ—अनु०) के इतिहास से सम्बंधित अपने उपन्यास, "ईसाई धर्म की उत्पत्ति के स्रोत" (Origines du Christianisme) की रचना की थी—इस बात को स्वयम् नही जानता था कि उसके जिन शब्दो को अभी ऊपर उद्धृत किया गया है उनमे कितनी गहरी सचाई थी। पुरानी "इन्टरनेशनल" (अन्तर्राष्ट्रीय सघ) के ऐसे किसी व्यक्ति को मैं देखना चाहूँगा जो, उदाहरण के लिए, कुरिन्थियो (कोरिन्थियनो) के नाम पॉल

और जिन्होंने धर्म को छोड़ दिया है उनसे बदले मे उनकी धन-सम्पदा को खुद छीन लेते हैं।

स्वाभाविक है कि १०० वर्ष में वे भी उसी स्थिति में पहुँच जाते हैं जिसमें वे धर्म-हीन लोग थे : मजहब की फिर से सफाई करने की जरूरत पैदा हो जाती है। एक नये मेहदी का उदय होता है और एक बार फिर वही सिलसिला शुरू हो जाता है।

अफ्रीका के अल्मोरविदों और स्पेन के अल्मोहादों से लेकर खारतूम[१७] के आखिरी मेहदी के उन विजयी अभियानों तक का, जिन्होंने अंग्रेजों की कोशिशों को इतनी सफलता से निष्फल कर दिया था, यहीं परिणाम हुआ था। फारस तथा दूसरे मुसल-मान देशों मे होनेवाली बगावतों का भी इसी प्रकार का, अथवा ऐसा ही हश्र हुआ था।

ये तमाम तहरीकें मजहब का बाना पहने रहती हैं, किन्तु उनका स्रोत आर्थिक कारण होते हैं; और, इसके बावजूद, जब वे विजयी हो जाती हैं तब भी पुरानी आर्थिक परिस्थितियों को हाथ लगाये बिना वे अछूता ही छोड़ देती हैं। इसलिए, पुरानी परिस्थिति अपरिवर्तित ही बनी रहती है और नियत कालों पर, बार-बार, टक्करें होती हैं। इसके विपरीत, ईसाई धर्म को माननेवाले पश्चिम के देशो के जन-विद्रोहों का धार्मिक बाना पुरानी हो गयी आर्थिक व्यवस्था पर हमला करने के लिए केवल एक झण्डे और नकाब का काम करता है। अन्त में, इस आर्थिक व्यवस्था को उलट दिया जाता है, एक नयी आर्थिक व्यवस्था जन्म लेती है, और दुनिया आगे बढ़ती है। [एंगेल्स की टिप्पणी]

के तथाकथित द्वितीय धर्म-पत्र को बिना अपने पुराने घावो को फिर से कुरेदे हुए पढ जा सकता है। उसे पढते समय कम से कम एक चीज के सम्बध मे अवश्य उसकी यादे ताज़ा हो उठेंगी। आठवे अध्याय से आगे उस पूरे धर्म-पत्र मे यही शाश्वत, और इतनी प्रसिद्ध हो चुकी शिकायत प्रतिध्वनित होती है कि . les cotisations ne rentrent pas—दान नही आ रहा है ! सातवें दशक के कितने ही अत्यन्त उत्साही प्रचारक ऐसे निकल आएँगे जो उक्त धर्म-पत्र के लेखक के–वह चाहे कोई हो–हाथ को अपने हाथ मे लेकर सहानुभूतिपूर्वक आहिस्ता से उससे कहेगे : "अच्छा, तो तुम्हे भी इसी परेशानी का सामना करना पड़ा था ?" हम लोग भी—हमारे संघ मे भी कुरिन्थियो की भरमार थी–दानो (चन्दो) के न मिलने का गीत गा सकते है और वता सकते है कि हमारी आँखों के सामने ही जव वे साफ कतरा कर हमारे हाथ से निकल जाते थे तो हम किस प्रकार ललचाते रह जाते थे। "इन्टरनशेनल" (अन्तर्राष्ट्रीय सघ) के प्रसिद्ध "दसियो लाख" यही थे !

प्रारम्भिक ईसाइयो के सम्वन्ध मे जानकारी प्राप्त करने का हमारा एक सर्वोत्तम स्रोत समोसटा का लूशियन है जिसे प्रतिष्ठित (क्लासीकल) प्राचीन काल का वाल्तेयर कहा जाता है। हर प्रकार के धार्मिक अन्ध-विश्वास पर वह एक समान अविश्वास करता था और इसलिए ईसाइयो को दूसरे किसी प्रकार के एक धार्मिक समुदाय के रूप मे मानने के अलावा और किसी रूप मे देखने का उसके पास न तो कोई विधर्मी (पेगन)-धार्मिक आधार था, न कोई राजनीतिक आधार। इसके विपरीत, उनके अन्धविश्वासो के लिए उन सभी का वह मखौल वनाता था–उनका भी जो जुपिटर (देवराज इन्द्र) की प्रार्थना करते थे और उनका भी जो यीशु से दुआएँ माँगते थे। उसके छिछले तर्कशील दृष्टिकोण के अनुसार, एक तरह का अन्धविश्वास उतना ही मूढतापूर्ण था जितना कि किसी दूसरी तरह का अन्धविश्वास। यह गवाह, जो और चाहे जो कुछ हो किन्तु निष्पक्ष है, अन्य चीजो के साथ-साथ एक साहसी परदेसी (Peregrinus)

की जीवन-कथा वतलाता है। उस परदेसी का नाम प्रोटियस था। प्रोटियस हेलेस पोन्टस के पेरियम नामक स्थान का रहने वाला था। जव वह युवा ही था, इस परदेसी ने आरमीनिया के अन्दर व्यभिचार किया था। उसके रगमंच पर उसने इसी तरह सवसे पहले प्रवेश किया था। वह रगे हाथ पकड लिया गया था और, देश के रिवाज़ के अनुसार, लिन्च कर दिया (जिन्दा जला दिया) गया था। वह ख़ुशकिस्मत था इसलिए वहाँ से भाग निकला। पेरियम मे उसने अपने पिता का गला घोट दिया, इसके वाद उसे वहाँ से भी भागना पडा !

"और फिर ऐसा हुआ" —मैं शॉट के अनुवाद से उद्धृत कर रहा हूँ —"कि उसने भी ईसाइयो की आश्चर्यजनक विद्वत्ता के सम्वन्ध मे सुना। फिलिस्तीन मे उनके पादरियो और लेखको के साथ उसने आपसी सम्वन्ध स्थापित कर लिया था। थोडे ही समय मे उसने इतनी प्रगति कर ली कि उसके शिक्षक उसके सामने वच्चो जैसे लगने लगे। वह एक पैगम्वर वन गया, आरम्भिक ईसाई धर्म-सघ का अधिकारी वन गया; यहूदी उपासना गृह (सिनागीग) का गुरु वन गया; एक शव्द मे, वह हर चीज का सर्वेसर्वा वन गया। उसने उनके ग्रन्थो की व्याख्या की और स्वयम् भी अनेक ग्रन्थ रचे। इसके फलस्वरूप, अन्त मे, लोगो को लगने लगा कि वह एक विशिष्ट रूप से गुणवान व्यक्ति है। उन्होने उसे कानून वनाने का अधिकार दे दिया और उसे अपना ओवरसियर (विशप=वडा पादरी) वना दिया ... .. इसी आधार पर (अर्थात्, क्योंकि वह एक ईसाई था) प्रोटियस को आखिरकार अधिकारियो ने गिरफ्तार कर लिया और जेल मे डाल दिया . जिस समय वेड़ियो मे जकडा हुआ वह पडा था, ईसाइयो ने, जो उसकी गिरफ्तारी को महान् दुर्भाग्य समझते थे, उसे छुड़ाने की तमाम सम्भव कोशिशे की। किन्तु वे सफल नही हुए। तव फिर अधिकतम तत्परता के साथ हर सम्भव तरीके से उन्होने उसकी सेवा की। पौ फूटते ही उसके जेल के दरवाजे पर वृद्ध माताओ, विधवाओ तथा अनाथ वच्चो की भीड दिखलाई देने लगती। ईसाइयो मे जो सर्व-

प्रमुख लोग थे वे तो वार्डरों को घूस देकर उसके साथ पूरी-पूरी रातें विताने लगे। अपने साथ वे अपना खाना ले जाते और पवित्र पुस्तको को उसके सामने पढते। सक्षेप मे, अत्यन्त प्रिय पेरीग्रिनस (परदेसी)" [अव भी लोग उसे इसी नाम से पुकारते थे] "उनकी दृष्टि मे एक नये सुकरात से कम नही था। ईसाई समुदायो के दूत एशिया माइनर तक के नगरो से उसकी सहायता करने, उसे सान्त्वना देने और न्यायालय मे उसके पक्ष मे साक्षी देने के लिए आने लगे। जव भी इन लोगो के धार्मिक सम्प्रदायो का प्रश्न उठता है तो ये लोग कितनी तेजी से काम करते है, इस पर विश्वास करना भी कठिन है। फिर वे न तो परिश्रम करने मे कोई कोताही दिखाते है, न खर्च करने मे। और इस भाँति पेरीग्रिनस के पास चारों तरफ से रुपयो की वर्षा होने लगी जिससे कि उसकी क़ैद उसके लिए महान् आमदनी का साधन वन गयी। गरीव लोगों ने मन में विश्वास करना शुरू कर दिया कि उनका शरीर और उनकी आत्मा अमर है और वे अनन्त काल तक जीवित रहेगे; यही वजह थी कि मृत्यु को वे तुच्छ चीज समझने लगे थे और उनमे से अनेक ने तो स्वयम् अपनी मर्जी से अपने जीवनों तक की वलि चढ़ा दी थी। फिर उनके सर्वप्रमुख स्मृतिकार (विधिकर्त्ता) ने उन्हे विश्वास दिला दिया कि ज्योही वे धर्म परिवर्तन कर लेंगे, अर्थात्, यूनानी देवी-देवताओ को वे तिलांजलि दे देगे, जिस सूफीवादी को सलीव पर टाँग कर मार दिया गया था उस पर अपना ईमान ले आयेगे और उसके आदेशो के अनुसार रहना शुरू कर देगे, त्योही वे सव एक दूसरे के भाई-विरादर वन जायेंगे। यही वजह है कि वे विना किसी भेद-भाव के समस्त भौतिक पदार्थो को तिरस्कार की दृष्टि से देखते है और सामूहिक रूप से उनके स्वामी होते है : इन सिद्धान्तो को उन्होने पूर्ण विश्वास के साथ, बिना किसी स्पष्टीकरण अथवा प्रमाण के, स्वीकार कर लिया है। और जव कोई ऐसा चतुर ठग उनके पास आ जाता है, जो जानता है कि परिस्थितियो का चालाकी से कैसे इस्तेमाल किया जाय, तो थोड़े ही समय में वह मालामाल हो जाता है

और मुँह फिराकर चुपके-चुपके इन मूर्खो की मूर्खता पर हँसता है। वाकी जहाँ तक बात है, सीरिया के उस समय के प्रशासक (प्रीफेक्ट) ने पेरीग्रिनस को मुक्त कर दिया था।"

फिर, कुछ थोड़े से और इसी तरह के तजुर्वो के वाद,

"हमारे पूज्य महाशय" (पेरियम से) "दुवारा परिभ्रमण के लिए निकल पडे थे —उनकी यात्रा में ईसाइयो के नेक स्वभाव ने उन्हे पैसे की कमी का अनुभव नही होने दिया : हर जगह उनकी आवश्यकताओ की उन्होने पूर्ति की और कभी किसी प्रकार की तकलीफ उन्हे नही होने दी। कुछ समय तक उन्हे लोग उसी तरह खिलाते-पिलाते रहे। किन्तु फिर जव उन्होने ईसाइयो के नियमो का भी उल्लघन किया —मेरा खयाल है कि वह किसी वर्जित वस्तु को खाते हुए पकड लिये गये थे —तव उन्होने उन्हे अपने सम्प्रदाय से निकाल वाहर किया।"

लूशियन के जव इस विवरण को मै पढता हूँ तो युवावस्था की कैसी-कैसी स्मृतियाँ मेरे दिमाग मे जाग उठती हैं ! सवसे पहले "पैगम्वर अल्ब्रैख्ट" की याद मुझे आ गयी : लगभग १८४० के आस-पास से अनेक वर्षो तक स्विटजरलैण्ड के साम्यवादी वाइटलिंग समुदायो को उसने सच्चे मानो मे खूव लूटा था। वह एक लम्वा-तगडा आदमी था जो एक लम्वी दाढी रखता था। पैदल ही वह सारे स्विटजरलैण्ड मे घूमता था और विश्व के उद्धार के लिए रहस्यपूर्ण नयी ईश्वरीय वाणी का लोगो को जमा करके प्रचार करता था। किन्तु, आखिर मे, लगता है कि वह महज एक हानि-रहित धूर्त था। जल्दी ही वह मर भी गया था। उसके वाद फिर उसका उत्तराधिकारी, हौल्स्टीन का "डाक्टर" जौर्ज कुह्लमान आया जो इतना हानि-रहित नही था। उसने उस समय का, जव वाइटलिंग जेल मे था, फायदा उठाकर फ्रान्सीसी स्विटजरलैण्ड के समुदायो को स्वयम् अपनी ईश्वरीय वाणी का मुरीद वना लिया। और थोड़े समय तक तो इस कार्य मे उसने इतनी सफलता प्राप्त की थी कि आगस्ट वेकर को भी, जो उन नाकारों के हजूम मे सवसे अधिक चालाक होने के साथ-साथ सवसे वडा

भी था, अपने चक्कर मे फसा लिया था। यह कुह्लमान इन समुदायों के सामने भाषण दिया करता था। १८४५ में, जिनेवा मे, **"नया संसार, अथवा पृथ्वी पर आत्मा का राज्य है। घोषणा..."** के शीर्षक से ये भाषण प्रकाशित हुए थे। उसके समर्थको द्वारा (सम्भवतः आगस्ट वेकर द्वारा) लिखी गयी उसकी भूमिका मे हमे पढने को मिलता है :

> 'आवश्यकता एक ऐसे व्यक्ति की थी जिसके मुँह से हमारे तमाम कष्टो तथा हमारी तमाम कामनाओ और आशाओ की, अर्थात्, उन सब चीजो की, जो हमारे युग को अत्यन्त प्रगाढ रूप से प्रभावित करती है, अभिव्यक्ति हो सके .. .. ऐसे व्यक्ति का, जिसका हमारा युग प्रतीक्षा कर रहा था, अवतार हो गया है। यह व्यक्ति हौल्स्टीन का डाक्टर जौर्ज कुह्लमान है। वह अपने साथ नये ससार का, अथवा वास्तव मे आत्मा के राज्य का सदेश लेकर अवतीर्ण हुआ है।"

यह बताने की ज़रूरत नही है कि नये ससार का यह सन्देश इजील (बाइबिल) की आधी-चौथाई भाषा मे, **ल' लमेनियाज्ञ के ढंग से,** प्रस्तुत की गयी निरी देहाती और भावनापूर्ण ऐसी बकवास के अलावा और कुछ नही है जिसे पैगम्बरो जैसी प्रगलभता के साथ लोगो के सामने रखा जाता था। किन्तु इससे वाइटलिग के नेक निवासियो के व्यवहार मे कोई अन्तर नही आया और वे उस धूर्त को उसी तरह कन्धो पर उठाकर चलते रहे जिस तरह कि एशिया के ईसाई किसी समय पेरीग्रिनस को कन्धे पर लेकर चले थे। ये लोग —ज़ो अन्यथा कट्टर जनतत्रवादी और अतिशय की मात्रा तक समानतावादी थे और, इसकी वजह से, ऐसे किसी भी स्कूल मास्टर, पत्रकार तथा किसो भी आदमी पर, जो हाथ से काम नही करता था, वे एक ऐसा "ज्ञानी" होने का जबर्दस्त सन्देह करते थे जो उनका शोषण करना चाहता था —नाटकीय ढग से काम करने वाले इस कुह्लमान के चक्कर मे फस गये और विश्वास करने लगे कि "नये संसार" मे उनमे से जो मबसे बुद्धिमान् है वह, अर्थात्, कुह्लमान ही सुखो के वितरण की

व्यवस्था करेगा और इसलिए, उस समय भी, पुराने ससार मे भी, शिष्यो को उसी सबसे बुद्धिमान व्यक्ति के चरणो मे समस्त सुखो को लाकर उडेल देना चाहिए और स्वयम् उनके अंश मे जो टुकडे पड जाते है उन्ही से सन्तोष करना चाहिए। इस प्रकार, पेरीग्रिनस कुल्हमान समुदाय का शोषण करके खूब ठाठ से आनन्दमय जीवन बिताता रहा —तब तक जब तक कि ऐसा वह कर सकता था। निस्सन्देह, यह स्थिति बहुत दिनो तक न रह सकी; सन्देह करने वालो तथा अविश्वासियो की बढती हुई फुसफुसाहट तथा वादोई सरकार द्वारा दमन के खतरे ने लासान मे "आत्मा के राज्य" का अन्त कर दिया —कुल्हमान अन्तर्धान हो गया।

उस हर व्यक्ति को जिसे योरोप के मजदूर आन्दोलन के आरम्भिक दिनो की अनुभव-जन्य जानकारी है, इसी प्रकार के दर्जनो उदाहरण याद आ जायेंगे। आजकल इस तरह के इस हद तक जानेवाले किस्से, कम से कम बड़े केन्द्रो मे, असम्भव हो गये है; परन्तु दूर के जिलो मे, जहाँ आन्दोलन अभी नया ही है, इस तरह के किसी छोटे-मोटे पेरीग्रिनस को अब भी अस्थायी, सीमित सफलता मिल जा सकती है। और टीका लगाने के विरोधी से लेकर, ब्रह्मचर्य के समर्थक, शाकाहारी, जीवो को काटने के विरोधी, प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा निरोग करने वाले, उन मुक्त समुदायो के प्रचारक जिनके समुदाय टूट-टूटकर छिन्न-विच्छिन्न हो गये है, विश्व की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे नये सिद्धान्तो के रचयिता, असफल अथवा भाग्य-हीन आविष्कर्त्ता, वास्तविक अथवा काल्पनिक अन्यायो के शिकार वे लोग जिन्हे नौकरशाही "बिलकुल बेकार के टुटपुजिया झाँसेबाज" कहती है, ईमानदार मूर्ख और बेईमान धोखेबाज तक —यानी वे सब लोग जिन्हे वर्तमान सरकारी दुनिया से भविष्य मे किसी चीज की आशा नही रह गयी, अथवा वे लोग जो अपनी सहनशीलता की सीमा पर पहुँच गये है —जिस तरह तमाम देशो मे मजदूर वर्ग की पार्टियो मे घुस आते हैं, ठीक उसी तरह आरम्भिक ईसाइयो के समुदायो मे वे घुस आये थे। वे तमाम तत्व जिन्हे पुराने ससार के विघटन ने मुक्त कर

दिया था, अर्थात्, कही का न रखा था, एक के बाद एक, ईसाई धर्म की शरण मे आ गये थे, क्योंकि वही एक चीज थी जो विघटन की उस प्रक्रिया का विरोध करती थी। ईसाई धर्म इस प्रक्रिया का विरोध करता था, क्योंकि वह स्वयं उसी प्रक्रिया की आवश्यक उपज था। और इसी-लिए वह बना रहा था और प्रगति करता गया था जबकि अन्य तत्व क्षणभगुर मक्खियो की तरह अन्तर्धान हो गये। धर्मोन्माद की ऐसी कोई किस्म नही थी, ऐसी कोई मूर्खता नही थी, ऐसी कोई धूर्त योजना-बाजी नही थी, जिसके माननेवाले नये ईसाई समुदायो के अन्दर नही घुस आये थे और जिन्हे, कम से कम कुछ समय के लिए, अलग-थलग स्थानों में, उनकी बातें सुनने वाले और खुशी-खुशी उन पर विश्वास करने वाले लोग न मिल गये हो। और, हमारे प्रथम कम्युनिस्ट मजदूर सघों की ही तरह, आरम्भिक दिनो के ईसाई भी असामान्य अबोधता के साथ हर उस चीज पर विश्वास कर लेते थे जो उनके लक्ष्य के अनुकूल होती थी —इसलिए पक्के तौर से हम यह भी नही कह सकते कि ईसाई धर्म के लिए पेरीग्रिनस ने जो "अनेक ग्रन्थ" लिखे थे उनके किसी अश का हमारी नयी इंजील (New Testament) मे समावेश नही हो गया है।

२

इंजील (बाइबिल) की जर्मन आलोचना ही अभी तक प्रारम्भिक ईसाई धर्म के इतिहास के सम्बन्ध मे हमारे ज्ञान का एकमात्र वैज्ञानिक आधार है। इस आलोचना मे दो धाराएँ मिलती है।

उसकी पहली धारा का सम्बन्ध टूबिन्जेन सम्प्रदाय (Tubingen School) से था। व्यापक अर्थ मे डी० एफ० स्ट्रॉस को भी इसी सम्प्रदाय मे शामिल कर लिया जाना चाहिए। आलोचनात्मक जाँच-पड़ताल की दृष्टि से कोई भी धार्मिक सम्प्रदाय जितनी दूर तक जा सकता है उतनी दूर तक यह धारा जाती है। यह स्वीकार करती है कि ईसाई धर्म सम्बन्धी चारो पुस्तके आँखो देखे विवरण पर नही आधारित है, बल्कि उन्हे खो

गयी कृतियो के आधार पर बाद मे तैयार कर दिया गया था, और जो धर्म-पत्र दिव्य सन्देश-वाहक पॉल के बताये जाते है उनमे चार से अधिक प्रामाणिक नही है, इत्यादि। ऐतिहासिक विवरणो मे से चमत्कारो और असगतियो की तमाम चीजों को वह यह कहकर अलग कर देती है कि वे मानने योग्य नही हैं, किन्तु फिर जो शेष रह जाता है उसमे से "जितने को बचाया जा सकता है उतने को बचाने की" वह चेष्टा करती है और तब उसका असली स्वरूप, एक धर्मशास्त्रीय सम्प्रदाय का स्वरूप, एकदम स्पष्ट हो जाता है। उदाहरण के लिए, इसी की वजह से, (जर्मन आलोचना की) इसी पद्धति का उपयोग करते हुए, रेनान —जो अधिकांशतया इसी धारा को अपना आधार मानता है —और भी अधिक को "बचाने" में समर्थ हुआ था। इसके अलावा, नयी इंजील के अनेक ऐसे विवरणों को, जो अत्यधिक सन्दिग्ध है, ऐतिहासिक रूप से प्रामाणिक तथ्यो के रूप मे उसने हमारे ऊपर लादने की कोशिश की है। शहीदो के सम्बन्ध में और अनेक पौराणिक कथाएँ भी उसने उसमे जोड दी है। बहरहाल, टूबिन्जेन सम्प्रदाय जिन चीजो को अनैतिहासिक अथवा अप्रमाणित करार देकर बहिष्कृत कर देता है उन्हे तो विज्ञान की दृष्टि से अन्तिम रूप से खत्म हो गया मान ही लिया जा सकता है।

दूसरी धारा का केवल एक ही प्रतिनिधि है —ब्रूनो बेयर। ब्रूनो बेयर की सबसे बडी सेवा केवल यह नही है कि बाइबिलों और दिव्य सदेश-वाहको के धर्म-पत्रो की उन्होने निर्मम आलोचना प्रस्तुत की थी, बल्कि यह भी है कि उन्होने न केवल इन यहूदी और यूनानी अलेक्ज़ेन्ड्रियाई तत्त्वो की, बल्कि उन शुद्ध रूप से यूनानी और यूनानी-रोमन तत्वो की भी गम्भीरता से जाँच-पडताल करने का सर्वप्रथम बीडा उठाया था जिन्होने ईसाई धर्म के लिए सर्वप्रथम एक विश्वजनीन धर्म बनने का मार्ग प्रशस्त कर दिया था। ब्रूनो बेयर के बाद इस कहानी को अब कोई नही मानता कि ईसाई धर्म यहूदी धर्म के अन्दर से एकदम तैयार-शुदा तथा पूर्ण अवस्था मे निकला था और, फिलिस्तीन से श्रीगणेश करके सारी दुनिया को, उसने मात्र अपने

सिद्धान्तों के —जो मुख्यतया निश्चित हो चुके थे —अथवा अपनी नैतिकता के बल पर जीत लिया था। अब यह कहानी केवल धर्म-शास्त्रीय संस्थानो के अन्दर तथा उन लोगो के बीच ही चलती-घिसटती रह सकती है जो विज्ञान की बलि चढाकर भी "धर्म को जनता के लिए जिन्दा बनाये रखना" चाहते है। ईसाई धर्म के ऊपर, जो कोंसटेन्टीन के राज्यकाल मे राजकीय धर्म बन गया था, अलेक्जेन्ड्रिया के फिलोवादी सम्प्रदाय का तथा यूनानी-रोमन क्षुद्र दर्शन का —अफलातूनी तथा मुख्यतया स्टॉइक (विषय-विरागी) दर्शन का —जो जबर्दस्त प्रभाव पडा था उसे सविस्तार बताने का काम यद्यपि अभी तक पूरा कदापि नही हुआ है, किन्तु इस प्रभाव के अस्तित्व को प्रमाणित कर दिया गया है और इसका मुख्य श्रेय ब्रूनो बेयर को ही है। इस प्रमाण की आधार-शिला उन्ही ने रखी थी कि ईसाई धर्म को कही बाहर से —जूडिया से —लाकर रोमन-यूनानी दुनिया के ऊपर नही लाद दिया गया था, बल्कि, कम से कम एक विश्व धर्म के रूप मे, उसकी उत्पत्ति खुद उसी के अन्दर से हुई थी। निस्सन्देह, उन सभी लोगो की तरह जो गहरे तक जमी हुई गलत धारणाओ के खिलाफ लडते है, बेयर भी अपनी इस रचना मे ज़रूरत से ज़्यादा आगे चले गये थे।

साहित्यिक स्रोतो के माध्यम से भी इस बात को प्रमाणित करने की चिन्ता मे कि उठते हुए ईसाई धर्म पर फिलो का और खासतौर से सिनेका का प्रभाव पड़ा था तथा नयी टेस्टामेन्ट (नयी बाइबिल) के लेखक एकदम ऐसे साहित्यिक चोर थे जिन्होने इन दार्शनिको की चीजो को चुरा लिया था, ब्रूनो बेयर को इस नये धर्म के उदय-काल को लगभग आधी शताब्दी बाद बताना पड़ा था, रोमन इतिहासकारो के उन आख्यानो को, जो उनकी इस धारणा के विरुद्ध जाते थे ,उन्हे अस्वीकार कर देना पड़ा था, और इतिहास लेखन की क्रिया के सम्बन्ध मे आम तौर से काफी मनमानी करनी पड़ी थी। उनके अनुसार, ईसाई धर्म का उदय उसके असली रूप मे फ्लेवियनो के राज्यकाल मे हुआ था, और न्यू टेस्टामेन्ट (नयी बाइबिल) के साहित्य की रचना हेड्रियन, एन्टोनियस तथा मार्कस

औरेलियस के राज्यकाल मे हुई थी। इसके फलस्वरूप, नये टेस्टामेन्ट मे यीशु तथा उनके शिष्यो के जो विवरण मिलते है उनका, ऐतिहासिक पृष्ठि-भूमि के रूप मे, बेयर के लिए कोई महत्व नही रह जाता। वे उन कहानियो मे घुल-मिलकर खो जाते है जिनमे आन्तरिक विकास की अवस्थाओ तथा प्रार्थमिक समुदायो के नैतिक सघर्षो को कमोवेश मात्रा मे काल्पनिक व्यक्तियो के साथ जोड दिया गया है। वेयर के अनुसार, नये धर्म के जन्म-स्थान गैलिली और यरूशलम नही है, बल्कि अलेक्जेन्ड्रिया और रोम है।

इसलिए, उन कहानियो तथा साहित्य के अवशिष्टो के रूप मे जिन्हे नयी टेस्टामेन्ट ने अछूता छोड दिया था टूबिन्जेन सम्प्रदाय यदि हमारे सामने उस अधिकतम चीज को पेश करता है जिसे आज भी विज्ञान विवादास्पद वस्तु के रूप मे स्वीकार कर सकता है, तो ब्रूनो बेयर हमारे सम्मुख उस अधिकतम वस्तु को प्रस्तुत कर देते है जिसे स्वीकार नही किया जा सकता। वास्तविक सचाई इन दोनो सीमाओ के बीच मे है। हमारे पास आज जो साधन है उनकी सहायता से इस सचाई को निर्धारित किया जा सकता है, यह चीज़ बहुत सन्देहपूर्ण है। इस काम को पूरा करने मे किसी भी आलोचना की अपेक्षा नयी खोजो से, खास तौर से रोम तथा पूर्वी देशो मे की जाने वाली खोजो से और, सबसे अधिक, मिस्र मे की जाने वाली खोजो से अधिक मदद मिलेगी।

परन्तु नयी टेस्टामेन्ट (नयी बाइबिल) एक ऐसी भी पुस्तक है जिसके लेखन-काल को कुछ महीनो की सीमा के अन्दर निर्धारित किया जा सकता है। यह पुस्तक जून ६७ और जनवरी या अप्रैल ६८ के बीच लिखी गयी होगी। इस तरह, यह पुस्तक ईसाई युग के एकदम आरम्भ काल की है और एकदम भोली-भाली श्रद्धा के साथ तथा तत्कालीन मुहाविरो की भाषा मे उस युग के आरम्भ कालीन विचारो को प्रतिबिम्बित करती है। अस्तु, मेरे विचार से, यह चीज बताने के लिए कि आरम्भ-कालीन ईसाई धर्म वास्तव मे कैसा था शेष सम्पूर्ण नयी टेस्टामेन्ट की अपेक्षा —जो कि, अपने वर्तमान स्वरूप मे, बहुत बाद की रचना है —यह पुस्तक कही अधिक

महत्वपूर्ण स्रोत का काम कर सकती है। यह पुस्तक तथाकथित **जौन का दैवी-सन्देश** है। यह पुस्तक पूरी बाइबिल मे सबसे दुर्बोध लगती है, किन्तु, जर्मन आलोचना की कृपा से, यह आज सबसे सुबोध तथा स्पष्ट हो गयी है। अपने पाठकों को मैं उसका विवरण दूंगा।

इस बात को हृदयंगम करने के लिए कि न केवल उसका रचयिता, बल्कि "आसपास के व्यक्ति" भी, जिनके बीच वह घूमता-फिरता था, उमंग और उल्लास की किस उच्च अवस्था में उस वक़्त थे, इस पुस्तक को देख लेना ही काफी होगा। हमारी यह **"दैवी सन्देश की पुस्तक"** ही अपने किस्म और समय की अकेली पुस्तक नही है। रेनान ने गिन कर बताया है कि हमारे युग के १६४वे वर्ष से, जब कि हमे प्राप्त होनेवाली पहली पुस्तक, तथाकथित डेनियल की पुस्तक, लिखी गयी थी—हमारे युग के २५०वे वर्ष के आसपास तक, यानी कमोडियन द्वारा रचित, "कारमेन" [९८] के अनुमानित समय तक, "ईश्वरी ज्ञान" सम्बन्धी कम से कम पन्द्रह ऐसी पुस्तके लिखी गयी थी जो रेनान को मिली थी। बाद में जो नकली चीजे लिखी गयी थी उन्हें इनमे नही गिना गया था। (रेनान का कथन मै इसलिए उद्धृत करता हूँ कि जो लोग विशेषज्ञ नही है वे सबसे अधिक उसी की पुस्तक को जानते है, और वह मिल भी सबसे आसानी से जाती है।) यह वह समय था जब कि रोम और यूनान तक मे, और एशिया माइनर, सीरिया तथा मिस्र मे तो और भी अधिक, अत्यन्त भिन्न-भिन्न जातियो के निकृष्टतम अन्ध-विश्वासों के गड्ड-मड्ड मेल को एकदम बिना किसी आलोचना के अन्धो की तरह स्वीकार कर लिया जाता था और पवित्र धोखा-धड़ी तथा निरी प्रतारणा को उसमे जोडकर उसकी कमियो को पूरा कर दिया जाता था; यह वह समय था जब कि चमत्कार, परमानन्द की बातो, देवताओं के दर्शनो, भूत-पिशाचो, भविष्य-वाणियों, सोने की कीमियागिरी, यहूदियो की गुप्त विद्या (कबाला) [९९] तथा तरह-तरह के ऐसी ही दूसरे गुप्त जादू-टोनों का दौर-दौरा था। ईसाई धर्म का उदय इसी वातावरण मे, और, इसके अतिरिक्त, ऐसे लोगो

के बीच हुआ था जो इन अलौकिक कपोल-कल्पित बातों को अन्य लोगों की अपेक्षा कही अधिक दिलचस्पी से सुनने के लिए तैयार रहते थे। क्या यह सच नही है कि मिस्र मे हमारे युग की दूसरी शताब्दी मे ईसाई नौस्टिक १०० लोग (रहस्यवादी लोग) व्यापक रूप से कीमियागिरी का काम किया करते थे और, जैसा कि अन्य चीजो के साथ-साथ लीडेन मे मिली पैपीरस (श्रीपत्र के डठलो से बने कागज) की दस्तावेजें भी सावित करती है, कीमियागिरी की धारणाओ को उन्होने अपनी शिक्षाओ तक मे सम्मिलित कर लिया था? और चाल्डिया तथा जूडिया के वे गणितज्ञ भी —जो, टेसीटस के कथनानुसार, जादू-टोना करने के जुर्म मे रोम से दो वार निकाल दिये गये थे —एक वार क्लाडियस के राज्यकाल मे और दुवारा फिर विटैलियस के राज्यकाल मे — उस रेखागणित के अलावा और किसी प्रकार की रेखागणित पर अमल नही करते थे जो जौन के दैवी-सन्देश के मूल में हमे मिलती है।

इसमे एक चीज जोड़ना और जरूरी है। ईश्वर ज्ञान की सारी पुस्तकें इस वात का दावा करती है कि अपने पाठको को धोखा देने का उन्हे अधिकार है। आम तौर से इन पुस्तको को न केवल उनके तथा-कथित रचयिताओ से सर्वथा भिन्न लोगो ने लिखा था, वल्कि अधिकाश-तया ऐसे लोगो ने लिखा था जो उनसे वहुत वाद मे हुए थे। डेनियल की पुस्तक, हेनोच की पुस्तक, एजरा, वरूच, जूडा, आदि की ईश्वर ज्ञान की पुस्तके तथा भविष्यवाणी करनेवाली पुस्तके —इसी तरह की रचनाएँ है। और जहाँ तक उनकी मुख्य विषय-वस्तु का सम्वन्ध है, उनमे केवल उन्ही चीजो की भविष्यवाणी की गयी है जो वहुत पहले ही हो चुकी थी और जिनकी उनके असली लेखको को अच्छी तरह जानकारी थी।

मिसाल के लिए, डेनियल की पुस्तक का लेखक सन् १६४ मे, एन्टियोकस एपीफेनीज की मृत्यु से कुछ पहले, डेनियल के मुँह से —जिसे कि नेवूचडनेज्ज़ार के जमाने मे हुआ माना जाता है —फारस और मैसोडोनिया के साम्राज्यो के उदय और पतन के विषय मे तथा रोमन

साम्राज्य की स्थापना के विषय मे भविष्यवाणी करवाता है ! ऐसा वह इसलिए करवाता है कि भविष्यवाणी करने की अपनी इस शक्ति का प्रमाण देकर पाठक को अपनी इस अन्तिम भविष्यवाणी को मानने के लिए वह तैयार कर दे कि इजरायल के लोग तमाम मुश्किलों को पार कर लेगे और, अन्त मे, जीत उन्ही की होगी। अस्तु, जौन की दैवी सन्देश सम्बन्धी पुस्तक वास्तव मे यदि उसी लेखक द्वारा लिखी गयी थी जिसकी वह बतलायी जाती है तो ईश्वर ज्ञान सम्बन्धी समस्त साहित्य मे मात्र यही पुस्तक एक अपवाद होगी।

जौन, जो उक्त रचना का लेखक होने का दावा करता है, हर हालत मे, एशिया माइनर के ईसाइयो मे एक अत्यन्त विशिष्ट आदमी था। सात चर्चों के नाम भेजे गये सन्देश के स्वर से यह चीज़ सिद्ध हो जाती है। सम्भवतः देवदूत जौन वही था। ऐतिहासिक रूप से उसका अस्तित्व यद्यपि पूर्ण रूप से प्रमाणित नही हुआ है, फिर भी, बहुत सम्भव है कि, वह वही रहा हो। अगर यह देवदूत ही वास्तव मे उस पुस्तक का लेखक था तो यह हमारे दृष्टिकोण से और भी अच्छी बात है। यह चीज़ इस बात का सबसे अच्छा प्रमाण होगी कि इस पुस्तक मे वर्जित ईसाई धर्म ही सच्चा प्रारम्भिक ईसाई धर्म था। चलते-चलते यहाँ यह भी कह दिया जाय कि यह स्पष्ट मालूम होता है कि दैवी सन्देश की यह पुस्तक उस लेखक की नही थी जिसने बाइबिल या तीनो धर्म-पत्र लिखे थे यद्यपि इन्हे भी जौन द्वारा ही लिखा गया बताया जाता है।

दैवी सन्देश की पुस्तक मे कई दृश्य है। पहले दृश्य मे ईसा एक बड़े पादरी के भेष मे दर्शन देते है, वे एशिया के सात चर्चों की प्रतीक सात मोमबत्तियो के बीच जाते है, और बोल कर "जौन" से उन चर्चो के सात "देवदूतों" के नाम सन्देश लिखाते है। यहाँ एकदम आरम्भ मे ही इस ईसाई धर्म का और निकाइया की परिषद द्वारा सूत्र-बद्ध किये गये कौन्स-टैन्टीन के सार्वजनीन धर्म का फर्क साफ-साफ हमारे सामने आ जाता है। त्रिगुट (पिता, पुत्र तथा पवित्र आत्मा का त्रिगुट-अनु०) यहाँ न केवल

अज्ञात है, वल्कि असम्भव भी है। वाद की एक पवित्र आत्मा के स्थान मे यहाँ हमे "खुदा की सात आत्माएँ" मिलती है जिन्हे रब्वियो ने ईसाइया ११ (२) से निकाला था। यीशु ईश्वर का पुत्र है, प्रथम और अन्तिम पुत्र, वह उसका आरम्भ और उसकी इति है, किन्तु वह स्वयम् ईश्वर कदापि नही है और न ईश्वर के वरावर है। इसके विपरीत, वह "ईश्वरी सृष्टि का श्रीगणेश" है, अस्तु ईश्वर का वह एक ऐसा निस्सरण है जो समस्त शाश्वत काल से चला अया है किन्तु ऊपर उल्लिखित सात आत्माओ की ही भाँति ईश्वराधीन है। अध्याय १५ (३) मे हुतात्माएँ स्वर्ग में "ईश्वर के सेवक मोजेज़ का गीत, और मेमने का गीत" गाती हुई ईश्वरी गौरव का गुणगान करती है। यहाँ यीशु न केवल ईश्वर के अवीन दिखलाई देते है वल्कि, एक माने मे, मोजेज के वरावर भी जाहिर होते है। यीशु को जेरुसलम (यरूशलम) मे सलीव पर टाग कर मार दिया जाता है (११, ८), किन्तु वह फिर जी उठते है (१, ५, १८), वे वह "मेमने" है जिसे दुनिया के पापो के वदले मे वलि चढा दिया गया है। उनके खून से तमाम भापाओ और राष्ट्रो के भक्तो को मुक्ति मिल गयी है और वे ईश्वर के पास पहुँच गये है। यही वह वुनियादी विचार है जिसने प्रारम्भिक ईसाई धर्म को एक सार्वभौमिक धर्म के रूप मे विकसित होने मे मदद दी थी।

उस समय के सभी यहूदी (सैमिटिक) और योरोपीय धर्मो का विश्वास था कि मनुष्य के कार्य-कलापो से रुष्ट देवताओ को वलि चढाकर तुष्ट किया जा सकता है, ईसाई धर्म का पहला क्रान्तिकारी मूलभूत विचार (जिसे फिलोवादी सम्प्रदाय से ले लिया गया था) यह था कि, जहाँ तक श्रद्धालु लोगो का सम्वन्ध है, अगर कोई मध्यस्थ स्वेच्छित रूप से महान् कुर्वानी कर दे तो तमाम मनुष्यो तथा तमाम कालो के पापो का एक साथ ही सदा के लिए प्रायश्चित हो जायगा।—इस प्रकार, और अधिक कुर्वानियो की आवश्यकता को खत्म कर दिया गया था और, उसके साथ-साथ, विभिन्न धार्मिक कर्म-काण्डो की आवश्यकता भी मिट गयी थी।

किन्तु इन कर्म-काण्डो से, जो दूसरे धर्म के लोगो से मेल-जोल के कार्य को कठिन बनाते थे अथवा उसे एकदम रोकते थे, मुक्ति पाना सार्वभौमिक धर्म वनने के लिए उसकी पहली आवश्यकता थी। इसके वावजूद, वलि चढाने की आदत लोगों के रीति-रिवाजो मे इतनी गहराई से जम गयी थी कि कैथोलिकवाद ने भी — जिसने कि विधर्मी मूर्ति-पूजको की इतनी बहुत-सी चीजे अपना ली थी —इस वात को उचित समझा कि उक्त आदत के साथ समझौता करने के लिए कम से कम नमाज (Mass) के समय प्रतीकात्मक बलिदान की प्रथा का अपने अन्दर समावेश कर ले। दूसरी तरफ़, हमारी इस पुस्तक में मूल पाप के अन्धमत का कही कोई चिन्ह तक नही है।

किन्तु इन तमाम सन्देशो तथा पूरी पुस्तक मे सवसे खास वात यह है कि उनमे उनके लेखक को खुद अपने को और अपने सह-धर्मियो को **यहूदियों** के अलावा और किसी नाम से पुकारने का कभी और कही भी खयाल नही आता। समरना और फिलाडल्फिया के सम्प्रदायों के सदस्यो की वह भर्त्सना करता है और इस वात के लिए उन पर नाराज होता है कि वे "कहते है कि वे यहूदी है, लेकिन है नही, बल्कि शैतान के चर है।" परगामोस के लोगो के सम्वन्ध मे वह कहता है : वे वलाम के सिद्धान्त को मानते है, उस वलाम के जिसने वालाक को सिखलाया था कि **इज़रायल के बच्चो के मार्ग में** रोड़े डाल, मूतियो के सामने चढायी गयी वस्तुओ को खा, और व्यभिचार कर। इस तरह, यहाँ प्रश्न सचेत ईसाइयो का नही है, बल्कि ऐसे लोगो का है जो कहते है कि वे यहूदी है। माना कि उनका यहूदी धर्म पहले के यहूदी धर्म के विकास की एक नयी अवस्था का द्योतक है, किन्तु ठीक इसी वजह से तो वही एकमात्र सच्चा धर्म बन जाता है। इसलिए, ईश्वर के सिंहासन के सामने जव महात्मा-गण उपस्थित हुए तो सवसे पहले १,४४,००० यहूदी —हर कवीले से १२,००० —उनके सामने आये थे और उनके वाद ही उन अनगिनत काफिरो के समुदाय वहाँ आ सके थे जो इस नये यहूदी धर्म को मानने

लग गये थे। इससे ज़ाहिर होता है कि ईसाई सघ के ७९वे वर्ष मे हमारे इस लेखक को इस वात का कितना कम ज्ञान था कि वह एक ऐसे धर्म के विकास की विल्कुल नयी अवस्था का प्रतिनिधित्व कर रहा था जो कि आगे चलकर मानवी चिन्तन के इतिहास मे एक सर्वाधिक क्रान्तिकारी तत्व वन जाने वाला था।

अस्तु, हम देखते है कि उस समय का ईसाई धर्म, जिसे अभी तक ख़ुद अपनी खवर न थी, वाद के निसीन परिपद (Nicene Council) द्वारा अन्धमतवादी ढग से निर्धारित कर दिये गये सार्वभौमिक धर्म से उतना ही भिन्न था जितना कि आसमान पृथ्वी से भिन्न है; एक को देखकर दूसरे का कोई अनुमान नही किया जा सकता। इस समय उसमे न तो हमे वाद के ईसाई धर्म का अन्धमत देखने को मिलता है, न उसकी नैतिकता, वल्कि, उनकी जगह पर यह भावना व्याप्त मिलती है कि आदमी पूरी दुनिया के विरुद्ध सघर्ष कर रहा है और उसका यह सघर्ष अवश्य विजयी होगा। सघर्ष के लिए उसमे जो उत्सुकता और विजय के सम्वन्ध मे उसमे जो विश्वास मिलता है उसका आज के ईसाइयो मे पूर्णतया अभाव है। हमारे युग मे ये चीजे समाज की केवल दूसरी धुरी पर, केवल सोशलिस्टों मे देखने को मिलती है।

वास्तव मे, ऐसी दुनिया के खिलाफ जो शुरू मे अधिक ताकतवर थी तथा, साथ ही साथ, ख़ुद उन लोगो के भी खिलाफ जो पुरानी की जगह नयी चीजे लाना चाहते थे, सघर्ष का भाव आरम्भिक ईसाइयो तथा सोशलिस्टो दोनो ही मे एक समान पाया जाता है। इन दोनो महान् आन्दोलनो मे से किसी का भी निर्माण नेताओ अथवा पैगम्वरो ने नही किया था—यद्यपि उन दोनो ही के अन्दर पैग़म्वरो की कोई कमी नही है। ये जन-आन्दोलन है। और शुरू मे जन-आन्दोलनो मे उलझावो का होना लाजमी है, उलझावो का उनमे होना इसलिए लाज़मी है कि शुरू-शुरू मे जन समुदाय का सोचना अन्तर्विरोधपूर्ण होता है, उसमे स्पष्टता तथा सुसम्वद्धता की कमी होती है; और ऐसा होना इसलिए भी लाजमी

होता है कि शुरू के दिनो में पैगम्बर लोग भी उनके अन्दर एक भूमिका अदा करते है। यह उलझाव उन अनेक सम्प्रदायों के निर्माण में दिख-लायी देता है जो एक-दूसरे के खिलाफ भी कम से कम उतनी सरगर्मी से तो जरूर ही लड़ते हैं जितनी से बाहर के सामान्य दुश्मन के खिलाफ वे लडते है। आरम्भिक ईसाई धर्म मे भी यही चीज थी, और समाजवादी आन्दोलन के आरम्भ मे भी यही चीज थी —उन शुभ-चिन्तक सज्जनो के चिन्ता करने से इस बात मे कोई फर्क नही पडता था जो एकता का उपदेश देते थे जबकि एकता असम्भव थी।

अन्तर्राष्ट्रीय सघ क्या किसी एक ही सिद्धान्त के आधार पर एकताबद्ध था ? बात इसकी उल्टी ही थी। उसमे १८४८ से पहले की फ्रान्सीसी परम्परा के कम्युनिस्ट थे, और इनके अन्दर भी तरह-तरह के विचारो वाले लोग थे। उनमे वाइटलिंग सम्प्रदाय के कम्युनिस्ट थे और पुन-रुज्जीवित कम्युनिस्ट लीग के लोग थे; प्रूधोवादी थे जिनका फ्रान्स और बेल्जियम मे जोर था; ब्लाकीवादी थे, जर्मन मजदूर पार्टी के लोग थे; और, अन्तमे, बाकुनिनवादी अराजकतावादी थे जिनका कुछ समय तक स्पेन और इटली मे दबदबा था। यहाँ केवल मुख्य दलों का ही उल्लेख किया गया है। अन्तर्राष्ट्रीय सघ की स्थापना के बाद, अराजकतावादियों से अन्तिम तौर से तथा पूर्णतया हर जगह छुटकारा पाने और कम से कम सर्वसामान्य आर्थिक प्रश्नो के सम्बन्ध मे दार्ष्टिक एकता कायम करने मे एक पूरी चौथाई शताब्दी लग गयी थी। और इतना समय तब लगा था जब कि सचार के तमाम आधुनिक साधन—रेल, तार, विशाल औद्योगिक नगर, अखबार, सगठित जनता की एसेम्बलियाँ, आदि—हमारी मदद के लिए मौजूद थे।

प्रारम्भिक ईसाइयो मे भी ऐसा ही विभाजन था —उनके अन्दर अगणित सम्प्रदाय थे। ये सम्प्रदाय ही वे साधन थे जिनके माध्यम से बहस हुई थी और बाद मे उन्ही की मदद मे एकता स्थापित की जा सकी थी। इस पुस्तक मे इस चीज को हम पहले से ही मौजूद पाते है। असन्दिग्ध

रूप से ईसाई धर्म सम्बन्धी यह सबसे पुरानी दस्तावेज है। हमारा लेखक इसके खिलाफ भी उसी निर्मम उत्कटता से लडता है जिस निर्मम उत्कटता से बाहर की विशाल पापभरी दुनिया के खिलाफ वह लड़ता है। सबसे पहले एफीसस तथा परगामोस मे हर प्रकार के निकोलसवादी थे; फिर समरना और फिलाडल्फिया मे वे लोग थे जो यह कहते थे कि वे यहूदी हैं लेकिन थे शैतान के अनुचर, परगामोस मे बलाम के—जिसे झूठा पैगम्बर कहा जाता है—समर्थक थे; एफीसस मे वे लोग थे जो अपने को देवदूत बताते थे लेकिन थे नही, और, अन्त में, थियाटिरा मे उस मिथ्या ईश-दूतिका के समर्थक थे जिसे जैजेबेल (बदनाम या बेहया स्त्री—अनु०) कहा गया है। इन सम्प्रदायो के विषय में हमे और अधिक कोई ब्योरा नही दिया गया है; केवल बलाम और जैजेबेल के अनुयाइयो के विषय मे यह बताया गया है कि वे मूर्तियो के सामने बलि चढाई जाने-वाली चीजो को खाते थे और व्यभिचार करते थे। इस बात के प्रयत्न किये गये है कि इन पाचो सम्प्रदायो को पॉलवादी ईसाई मान लिया जाय और तमाम सन्देशो को मिथ्या ईश-दूत पॉल, तथाकथित बलाम और "निकोलास" के विरुद्ध दिये गये सन्देश मान लिया जाय। रेनान की कृति, सन्त पॉल (पेरिस, १८६९, पृष्ठ ३०३-०५ तथा ३६७-७०) मे इसी तरह के तर्क, जो मुश्किल से ही टिक सकते है, सग्रहीत पाये जाते है। वे सब सन्देशो को ईश-दूतो के अधिनियमो तथा पॉल के तथाकथित धर्मपत्रो के आधार पर समझाने की कोशिश करते प्रतीत होते हैं—यानी वे उन्हे उन रचनाओ के आधार पर समझाने की कोशिश करते है जो, कम से कम अपने वर्तमान स्वरूप मे, दैवी सन्देश से कम से कम साठ वर्ष बाद की है और, इसलिए, जिनमे दिये गये तत्सम्बन्धी तथ्य न केवल अत्यधिक सन्देहजनक है, बल्कि पूर्णतया परस्पर-विरोधी भी है। किन्तु निर्णायक बात यह है कि लेखक के दिमाग मे यह चीज नही आ सकती थी कि एक ही सम्प्रदाय को वह पाँच भिन्न-भिन्न नाम दे दे और फिर उन्हे अलग-अलग नामो से पुकारे। यहाँ तक कि वह यह भी नही कर

सकता था कि अकेले एफीसस को दो नाम (झूठे ईश-दूत तथा निकोलस-वादी)और परगामोस को दो नाम (वलामवादी तथा निकोलसवादी) दे कर फिर हर वार दो अलग-अलग सम्प्रदायो के रूप मे उनका उल्लेख करे। इसी के साथ-साथ इस बात की सम्भावना से भी कोई इन्कार नही कर सकता कि इन सम्प्रदायों मे ऐसे तत्व भी मौजूद थे जिन्हे आज पॉलवादी कहा जायगा।

इन दोनों ही उदाहरणो का सम्बन्ध, जिनके विषय में अधिक तफ़सील से बातें बतायी गयी है, इस अभियोग से है कि वे लोग मूर्तियो के सामने चढाया जाने वाला विभिन्न प्रकार का मास खाते थे तथा व्यभिचार करते थे। ये दो चीज़ें ऐसी है जिनको लेकर यहूदियों का —पुराने यहूदियों तथा ईसाई वन जाने वाले यहूदियो दोनो का—उन काफिरों (मूर्ति-पूजको) से, जिन्होने धर्म परिवर्तन कर दिया था, वरावर झगडा लगा रहता था। मूर्ति-पूजको द्वारा चढाये जानेवाले मास को न सिर्फ मागलिक उत्सव-भोजो के अवसर पर लोगो को परसा जाता था, — जहाँ उसे खाने से इन्कार करना अनुचित लगता और खतरनाक तक हो सकता था—बल्कि उसे सार्वजनिक बाजारों मे भी वेचा जाता था जहाँ हमेशा इस बात का पता लगाना भी सम्भव नही था कि कानून की दृष्टि से वह शुद्ध था या नही। व्यभिचार से यहूदियो का मतलब न केवल वैवाहिक सम्बन्ध से वाहर के यौन सम्बन्ध होता था, वल्कि सगोत्रता की जिन सीमाओं के अन्दर यहूदी क़ानून द्वारा विवाह वर्जित था उनके अन्दर के यौन सम्बन्ध भी होता था। यहूदी और गैर यहूदी (काफिर) के वीच का यौन सम्वन्ध भी व्यभिचार की श्रेणी मे आता था। दिव्य सन्देशो (१५), २० और २९ की नियमावलियो मे व्यभिचार शब्द का आमतौर से यही अर्थ है। किन्तु धर्म-परायण यहूदियो को जिस प्रकार के यौन सम्वन्ध की अनुमति है उनके विषय मे हमारे जौन के अपने अलग ही विचार हैं। १,४४,००० स्वर्गीय यहूदियो के सम्वन्ध मे (१४), ४ मे वह कहता है: "ये वे लोग हैं जो

स्त्रियो से दूपित नही हुए है, क्योंकि वे कुमारे है।" और, वास्तव मे तो, हमारे जौन के स्वर्ग मे एक भी स्त्री नही है! इस भाँति उसका सम्बन्ध उस विचारधारा से है जो यौन सम्बन्धो को आमतौर से पाप समझती है। प्रारम्भिक ईसाई धर्म की अन्य कृतियों मे भी यह विचारधारा अक्सर दिखलाई देती है। और, इसके अलावा, जब हम इस बात पर विचार करते है कि स्वय रोम को भी उसने ऐसी महान् गणिका (वेश्या) कहा है जिसके साथ पृथ्वी के राजाओ ने व्यभिचार किया है और इस व्यभिचार की मदिरा पीकर वे मदहोश हो उठे है, तथा उसके सुख-भोगो की प्रचुरता का लाभ उठाकर पृथ्वी के व्यवसायियो ने अपनी तिजोरियाँ भर ली है, तब सन्देशो मे इस्तेमाल किये गये इस शब्द का अर्थ उस सकुचित अर्थ मे लगाना हमारे लिए असम्भव हो जाता है जिसमे उसके धर्मशास्त्रीय पक्षपोपक लगाना चाहते है जिससे कि नयी टेस्टामेन्ट (नयी इन्जील) के अन्य अशो की कुछ पुष्टि तो वे कर दे। बात बिल्कुल उल्टी है। सन्देशो के ये अश स्पष्ट तौर से उस आम चीज को जाहिर कर रहे है जो तमाम महान् हलचलो के काल मे देखने मे आती है— यह चीज यह है कि ऐसे कालो मे अन्य तमाम शृखलाओ की ही तरह, यौन सम्बन्धो के परम्परागत बन्धन भी टूट जाते है। ईसाई धर्म की प्रारम्भिक शताब्दियों मे भी बहुत बार उन वैरागियो के साथ-साथ, जो शरीर को यातनाएँ देते थे, ईसाइयो की आज़ादी को इस हद तक बढा देने की प्रवृत्ति भी मिलती है जिसके अन्तर्गत पुरुष और स्त्री के सम्बन्धो के बीच फिर करीब-करीब कोई नियत्रण नही रह जाता। आधुनिक समाजवादी आन्दोलन मे भी यही चीज देखने में आयी थी। चौथे दर्शक मे सेन्ट साइमन ने यौन क्षुधा को पुन उसका उचित स्थान देने (Rehabilitation de la chair) की बात जब कही थी तो जर्मनी की उस समय की "नेकी की नर्सरी" मे कैसी अकथनीय घृणा की भावना फैल गयी थी! सेन्ट साइमन के इन शब्दो को जर्मन मे "Wieder einsetzung des Fleisches" (इन्द्रिय-लोलुपता को फिर से छूट दे

देने) के अर्थ मे अनूदित किया गया था ! ! और इस पर सबसे अधिक खीझभरी चिन्ता उस समय के शासक वर्ग के उन प्रतिष्ठित भूस्वामियों ने (उस समय तक हमारे देश मे वर्ग नही थे) प्रकट की थी जो बारम्बार विषय-भोग करके अपनी पुनः स्थापना किये बिना न तो बर्लिन मे रह सकते थे और न देहात की अपनी जागीरो मे ! अगर ये नेक लोग कही फूरिये की बातो को जान लेते, जिसने शारीरिक सम्बन्धो के विषय मे बिल्कुल ही दूसरी तरह की चुहलबाजी की कल्पना की थी, तब तो उनका न जाने क्या हाल हो जाता ! कल्पनावाद की इतिश्री होने के साथ-साथ इस तरह की असयमताओं का भी अंत हो गया और उनके स्थान पर एक अधिक बुद्धि-सगत तथा दरअसल एक कही अधिक उग्र धारणा की स्थापना हुई। और चूंकि जर्मनी हाइने की नेक नर्सरी की परिधि से बाहर निकल आया है तथा समाजवादी आन्दोलन के एक केन्द्र के रूप मे विकसित हो गया है, इसलिए इस खास संभ्रान्त और नेक दुनिया के पाखण्डी विक्षोभ पर अब लोग हँसते है !

सन्देशों का सैद्धान्तिक तत्व बस इतना ही है। बाकी में तो धर्म-परायण लोगो का बस इस बात के लिए आवाहन किया गया है कि प्रचार के काम को वे जोशो-खरोश से करे, अपने धर्म का दुश्मन के सामने साहस के साथ तथा अभिमान-पूर्वक एलान करे, अन्दर और बाहर दोनो ही जगहो के दुश्मनो के खिलाफ़ निर्ममता के साथ संघर्ष करें। जहाँ तक इनका सम्बन्ध है, ये तो दरअसल ऐसी चीजें हैं जिन्हे इन्टरनेशनल (अन्तर्राष्ट्रीय संघ) का कोई भी ऐसा उत्साही सदस्य लिख सकता था जिसे भविष्यवाणियाँ करने मे दिलचस्पी हो।

३

ये सन्देश तो वास्तव मे उस रचना की मात्र भूमिका हैं जिसे जौन का वह पत्र कहा गया है जिसे एशिया माइनर के सात चर्चो के नाम और

उनके द्वारा सन् ६९ के शेष परिष्कृत उस यहूदी धर्म के नाम उसने भेजा था जिससे बाद मे ईसाई धर्म पैदा हुआ था। यहाँ अब हम प्रारम्भिक ईसाई धर्म की अन्दरूनी पवित्रतम परिधि मे पहुँच जाते हैं।

पहले ईसाइयो की भर्ती किस प्रकार के लोगो के अन्दर से की गयी थी ? मुख्यतया "मेहनत करने वाले और दबे हुए लोगो" के अन्दर से, जनता के सबसे निचले स्तरो के उन लोगो मे से जो क्रान्तिकारी बन जाते है। और वे लोग थे कौन ? शहरो मे उनमे गरीब हो गये मुक्त लोग थे, तमाम तरह के लोग, जैसे कि दक्षिण के गुलाम राज्यो के "नीच श्वेत लोग" और औपनिवेशिक तथा चीनी बन्दरगाहो मे फिरने वाले योरोपीय आवारे तथा घुमक्कड लोग। फिर उनमे वे गुलाम थे जो मुक्त हो गये थे। और सबसे अधिक उनमे वास्तविक गुलाम थे। इटली, सिसली और अफ्रीका की बडी-बडी जागीरो के अन्दर उनमे गुलाम शामिल होते थे, और प्रान्तो के ग्रामीण क्षेत्रो से उनमे वे छोटे-छोटे किसान आते थे जो ऋणो की वजह से अधिकाधिक दासता के गढे मे गिर गये थे। इन तमाम लोगो के उद्धार का कोई भी सामान्य रास्ता नही था। उन सबका स्वर्ग अतीत मे विलुप्त हो गया था। तबाह हो गये मुक्त लोगो के लिए उनके स्वर्ग का मतलब था वह पुराना नगर राज्य (polis), जो एक ही साथ नगर भी होता था और राज्य भी, और जिसमे उनके पुरखे स्वतत्र नागरिक हुआ करते थे; युद्ध मे पकडे गये गुलामो के लिए उसका अर्थ उनके पकडे और बन्दी बनाये जाने से पहले की आजादी का काल था, छोटे किसानो के लिए उसका मतलब वह कुलीन समाज व्यवस्था तथा सामुदायिक भू-स्वामित्व की प्रणाली थी जिसका अन्त हो गया था। उसका अर्थ वास्तव मे वह सब कुछ था जिसे विजयी रोम की लौह मुष्टिका ने अपने प्रहार मे चूर-चूर कर दिया था। प्राचीन काल मे जो सबसे बडा सामाजिक समूह (group) कायम हो सका था वह कबीला तथा सगोत्र कबीलो का सघ था। बर्बर लोगो मे इस समूह का आधार परिवारों के सश्रय (मैत्री सम्बन्ध) हुआ करते थे और नगरो की स्थापना करने वाले

यूनानियों तथा इटलीवासियों मे उसका आधार नगर राज्य *(polis)* हुआ करता था। इसमे एक या एक से अधिक सगोत्र कबीले होते थे। फिलिप और अलेक्जेण्डर (सिकन्दर) ने यूनानी प्रायद्वीप को राजनीतिक-रूप से एकताबद्ध कर दिया था किन्तु इससे यूनानी राष्ट्र का निर्माण नही हुआ था। राष्ट्रो का निर्माण रोमन विश्व साम्राज्य के पतन के बाद ही सम्भव हो सका था। रोमनों के आधिपत्य ने छोटे-छोटे संघो का हमेशा के लिए अन्त कर दिया था, और उसकी सैनिक शक्ति तथा न्याय-प्रशासनीय और टैक्स इकट्ठा करने वाली मशीनरी ने परम्परागत आन्तरिक सगठन को पूर्णतया समाप्त कर दिया था। उनकी स्वतंत्रता तथा उनका अपना विशिष्ट संगठन तो चले ही गये थे, ऊपर से सैनिक तथा नागरिक अधिकारियो द्वारा जबर्दस्ती की जानेवाली लूट-खसोट का बोझ और उन पर बढ गया था। पराधीन बनाये गये लोगो की धन-सम्पत्ति को ये सैनिक और नागरिक अधिकारी लूट ले जाते थे और फिर सूद की भारी दरो पर कर्ज देकर वे उनका और भी अधिक दोहन करते थे। टैक्सो के भार ने तथा उन क्षेत्रो मे, जहाँ केवल या मुख्यतया प्राकृतिक अर्थ-व्यवस्था का ही चलन था, इसकी वजह से मुद्रा की जो ज़रूरत पैदा हो गयी थी —उसने किसानों को सूदखोर महाजनो की गुलामी मे और भी अधिक ढकेल दिया। इसकी वजह से लोगों की सम्पत्ति मे भारी अन्तर पैदा हो गया; धनी और धनी हो गये और गरीब एकदम निर्धन बन गये। विशाल रोमन विश्व साम्राज्य के खिलाफ अलग-अलग छोटे-मोटे कबीले या नगर जो प्रतिरोध करते थे वह बेकार था। निस्तार का, दासों, उत्पीड़ितो और इन गरीब लोगो की मुक्ति का ऐसा कौन-सा आम रास्ता था जिस पर चलकर इन सभी के समूह, —जिनके हित एक दूसरे से भिन्न अथवा परस्पर-विरोधी तक थे, —अपना उद्धार कर लेते? फिर भी अगर इन सबको एक महान् क्रान्तिकारी आन्दोलन के अन्दर समेटना था तो आवश्यक था कि ऐसा एक आम रास्ता ढूँढ़ निकाला जाय।

यह रास्ता ढूढ निकाला गया। परन्तु वह इस दुनिया में नहीं मिला।

उस समय जो स्थिति थी उसमे यह केवल एक धार्मिक रास्ता ही हो सकता था। फिर एक नयी दुनिया के द्वार खुल गये। शरीर की मृत्यु के वाद आत्मा के वरावर जीवित रहने की वात पूरी रोमन दुनिया में धीरे-धीरे एक धार्मिक विश्वास की चीज वन गयी थी। यह वात भी आमतौर से अधिकाधिक मानी जाने लगी थी कि मृत आत्माओ को पृथ्वी के अपने कार्यो के लिए या तो पुरस्कार मिलता है या दण्ड। जहाँ तक पुरस्कार की वात थी, मानी हुई चीज थी कि तस्वीर वहुत आशाप्रद नही थी · प्राचीन काल के लोग अपने-आप ही कुछ इतने भौतिकवादी थे कि अज्ञात राज्य के जीवन की अपेक्षा पृथ्वी के जीवन को वे हजार गुना अधिक मूल्यवान् समझते थे। यूनानी लोग तो मृत्यु के वाद जीवित वने रहने को एक दुर्भाग्य समझते थे। तभी ईसाई धर्म आया। इसने परलोक मे पुरस्कार और दण्ड पाने की वात को सच मान लिया और स्वर्ग और नरक की सृष्टि कर दी। इस प्रकार, मेहनतकश तथा दवे हुए लोगो को दुःख की इस घाटी से निकालकर शाश्वत स्वर्ग मे ले जाने का एक रास्ता ढूंढ निकाला गया। और, वास्तव मे, परलोक मे पारितोषिक प्राप्त करने की आशा के आधार पर ही योगियो तथा ससार का परित्याग करने के विरागवादी—फिलोवादी दर्शन को एक ऐसे नये सार्वभौमिक धर्म के मूलभूत नैतिक सिद्धान्त के उच्चासन पर प्रतिष्ठित किया जा सकता था जो उत्पीड़ित जन समुदायो मे उत्साह की सृष्टि कर सके।

किन्तु धर्मानुरागियो के लिए इस आसमानी स्वर्ग के द्वार केवल उनके मर जाने से ही नही खुल जाते। आगे हम देखेंगे कि नरक की ताकतो के साथ कठिन सघर्प के वाद ही ईश्वर के राज्य को, जिसकी राजधानी नया यरूशलम है, जीता तथा उसमे प्रवेश पाया जा सकता है। किन्तु शुरू के ईसाइयो का खयाल था कि ये सघर्ष फौरन ही आने वाले थे। जौन आरम्भ मे ही कहता है कि उसकी पुस्तक मे उन "चीजो" की ईश्वरीय सूचना है "जो जल्दी ही घटेंगी"। इसके फौरन बाद (१) ३,

मे वह वताता है कि "सौभाग्यशाली है वह जो इस भविष्यवाणी के शब्दों को पढता है और वे जो इसके शब्दो को सुनते है,.. .... क्योकि **समय समीप आ गया है** ।" फिलाडल्फिया के चर्च के नाम यीशु सन्देश भेजते हुए कहते है : "देखो, मैं **जल्दी** ही आ रहा हूँ ।" और अन्तिम अध्याय मे देवदूत कहता है कि जौन को उसने वे "चीजे" बता दी हैं "जिन्हे **जल्दी** ही पूरा किया जाना चाहिए" और वह उसे आदेश देता है "इस पुस्तक मे की गयी भविष्यवाणियो को बन्द मत करो क्योकि **समय समीप आ गया है** ।" और दो बार [(२२), १२, २०] यीशु स्वयम् कहते है : "मै तुरंत आ रहा हूँ ।" आगे स्पष्ट हो जायेगा कि उनके इस आगमन की कितनी जल्दी आशा की जा रही थी ।

ईश्वरी ज्ञान सम्बन्धी जिन चीजो के बारे मे लेखक हमे अब वतलाता है उन्हे बराबर, और अधिकाशतया तो अक्षरशः, पुरानी वाइबिल (इजील) के प्रतिष्ठित भविष्यवक्ताओ की रचनाओं से नकल करके रख दिया गया है । खासतौर से उन्हे एजेकील की रचना से, आशिक रूप से डेनियल की पुस्तक के नमूने पर लिखे गये वाद के यहूदियो के धार्मिक ग्रन्थो से, और विशेषतया हेनोक की पुस्तक से —जो उस वक़्त तक कम से कम आशिक रूप मे लिखी जा चुकी थी —ज्यो का त्यो उतार लिया गया था । "आलोचना" ने एकदम छोटी-छोटी चीजो तक यह स्पष्ट कर दिया है कि हमारे जौन ने उस हर कल्पना को, हर भय-प्रद सकेत कों, हर अभिशाप को —जिसे अधर्मी मानवता के सिर पर उसने थोपा था —कहाँ से लिया था । सक्षेप मे, "आलोचना" ने जाहिर कर दिया है कि अपनी पुस्तक की सम्पूर्ण सामग्री को उसने कहाँ से लिया था । इस प्रकार उसने न केवल यह जाहिर कर दिया है कि उसका मस्तिष्क कितना दरिद्र था, वल्कि इस बात को भी ख़ुद ही प्रमाणित कर दिया है कि जिन तथाकथित परमानन्दो तथा साक्षात्कारो का वह वर्णन करता है उनकी कल्पना तक मे भी कभी उसने अनुभूति नही की थी ।

उसने जो दिव्य झाकियाँ देखी थी उनका क्रम सक्षेप मे निम्न प्रकार

है : सर्वप्रथम जौन देखता है कि ईश्वर अपने राजसिंहासन पर बैठे है। अपने कर-कमलों मे सात मुहरो से बन्द एक पुस्तक वे लिये हुए है। उनके सामने वह मेमना है जिसे मार डाला गया है और जो फिर जी उठा है (यीशु) और जो अब पुस्तक की मुहरो को खोलने के योग्य हो गया है। मुहरो को खोलने के बाद तरह-तरह के चमत्कारपूर्ण भयावने सकेत दिखलायी देते है। जब ५वी मुहर खोली जाती है तो जौन को दिखलाई देता है कि ईश्वर की वेदी के नीचे यीशु के उन शहीदो की आत्माएँ मौजूद है जिन्हे ईश्वर के विषय मे बात करने के अपराध मे मार दिया गया था। तेज आवाज मे क्रन्दन करती हुई वे कहती है "हे प्रभु, तूने अभी तक उनका फैसला क्यो नही किया और उन लोगो से जो पृथ्वी पर रहते है हमारे खून का बदला क्यो नही लिया।" इसके बाद उन्हे श्वेत वस्त्र दे दिये जाते है और उनसे कहा जाता है कि थोडे समय और वे विश्राम करें, क्योंकि अभी और भी शहीदो के मारे जाने की जरूरत है।

इस भाँति, "प्रेम के धर्म", "अपने शत्रुओ से प्रेम करो, जो तुम्हे श्राप देते है उन्हे आशीर्वाद दो", आदि की बातें अभी तक यहाँ नही है। यहाँ खालिस प्रतिशोध का उपदेश दिया जाता है —ईसाइयो पर दमन करने वाले लोगो से डटकर, ईमानदारी से प्रतिशोध लेने का उपदेश। पूरी पुस्तक मे यही चीज है। सकट जितना ही अधिक नजदीक आता जाता है, आसमान से उतने ही अधिक बड़े-बड़े अभिशापो और दण्डो की वर्षा होती है और उतने ही अधिक सन्तोष के साथ जौन इस बात की घोषणा करता है कि आम जन समुदाय अपने पापो के लिए पश्चाताप नही करेगा, इसलिए आवश्यक है कि ईश्वर की नयी-नयी चाबुके उसकी चमडी उधेडे, यीशु उसके ऊपर एक लौह शलाका लेकर शासन करे और सर्वशक्तिशाली ईश्वर की क्रूरता और क्रोध की चक्की मे उसे पीसे। किन्तु अपवित्र लोगो के हृदयो का कोई परिवर्तन नही होता। वे अब भी दुरा-ग्रह पर अडे रहते है। इसमे स्वाभाविक, समस्त छल-कपट से मुक्त इस

बात की अभिव्यक्ति मिलती है कि एक लड़ाई चल रही है और—*a la guerre comme a la guerre* (लडाई मे लड़ाई की तरह लड़ो) !

जब सातवीं मुहर खोली जाती है तो सात तुरहियाँ लिये हुए सात देवदूत प्रकट हो जाते हैं और हर बार उनमे से कोई जब अपनी तुरही को बजाता है तो नयी-नयी डरावनी चीज़े दिखलायी पड़ती है। सातवी बार के तूर्यनाद के बाद सात और देवदूत घटनास्थल पर प्रकट हो जाते हैं। उनके हाथ मे ईश्वर के क्रोध की सात शीशियाँ होती हैं। इन्हे वे पृथ्वी पर उँडेल देते है। इससे और भी विपत्तियों तथा दण्डो की सृष्टि हो जाती है—यहाँ मुख्यतया फिर उन्हीं चीज़ों की उबानेवाली पुनरावृत्ति मिलती है जो पहले भी कई बार घटित हो चुकी है। इसके बाद वह स्त्री, महावेश्या बेबीलोन आती है। वह पानी के ऊपर लाल सिहासन पर बैठी हुई है। यीशु के सन्तों और शहीदों के ख़ून के नशे में वह धुत है। वह सात पहाड़ियों वाली वह महान् नगरी है जो पृथ्वी के तमाम राजाओं पर शासन करती है। वह एक ऐसे जानवर पर बैठी हुई है जिसके सात सिर हैं और दस सीग। उसके सात सिर सात पहाड़ियों के प्रतीक हैं और सात "राजाओं" के भी। इन राजाओ मे से पांच मिट चुके हैं, एक जीवत है, और सातवां अभी आया नहीं है; और इसके बाद पहले पांच में से एक फिर सामने आता है। वह घातक रूप से घायल हो गया था, किन्तु अच्छा हो गया है। दुनिया पर ४२ महीने, अथवा ३½ वर्ष तक (सात साल के एक सप्ताह के आधे काल तक) वह शासन करेगा और धर्म-निष्ठ लोगों का दमन करके उन्हें मरवा डालेगा तथा ईश्वर-विहीनता का शासन क़ायम करेगा। किन्तु इसके बाद ही वह महान् अन्तिम लड़ाई आती है जिसमे उस महावेश्या 'बेबीलोन' तथा उसके तमाम अनुयायियो का, अर्थात्, मानव-जाति के मुख्यांश का विनाश करके सन्तो तथा शहीदों का बदला लिया जाता है। शैतान को एक थाहहीन गड़े में फेंक दिया जाता है और एक हज़ार साल के लिए उसी मे बन्द कर दिया जाता है। इस काल में उन शहीदों के साथ जो

फिर जी उठे है यीशु शासन करते है। किन्तु हजार वर्ष बाद उस शैतान को फिर रिहा कर दिया जाता है और प्रेतात्माओ की फिर एक जबर्दस्त लड़ाई होती है जिसमे उसे अन्तिम रूप से पराजित कर दिया जाता है। इसके बाद दूसरी बार मृतोत्थान होता है, दूसरे मृत प्राणी भी एक बार फिर जी उठते है और ईश्वर के (ध्यान रखिए, यीशु के नही) न्याय सिंहासन के सम्मुख उपस्थित होते है। अब धर्म-निष्ठ लोग एक नये स्वर्ग, एक नयी पृथ्वी, और एक नये यरूशलम मे प्रवेश करेगे और अनन्त काल तक वही बने रहेगे।

यह पूरी रचना चूकि ईसाई धर्म से पहले की एकमात्र यहूदी सामग्री पर आधारित है, इसलिए उसमे लगभग अकेले यहूदी विचार ही मिलते हैं। असीरिया और बेबीलोनिया के लोगो ने जिस समय से उनसे कर वसूल करना शुरू कर दिया था, जिस समय से इजराइल और जूडा के दोनों राज्य नष्ट कर दिये गये थे और सेल्युकस के गुलाम बन गये थे, यानी जिस समय से इस दुनिया का घटना-चक्र इजराइल के लोगो के खिलाफ पडने लगा था उसी समय से, अर्थात् ईसाइया के काल से लेकर डेनियल के समय तक के हर अन्धकारपूर्ण काल मे एक उद्धारकर्त्ता के अवतार के विषय मे भविष्यवाणियाँ होती आयी थी। डेनियल, [१२], १-३ मे, तो माइकेल, यहूदियो की रक्षा करने वाली देवात्मा —तक के विषय मे एक भविष्यवाणी पायी जाती है। उसमे कहा गया है कि महान् मुसीबतो से उनकी रक्षा करने के लिए माइकेल पृथ्वी पर पुन: अवतार लेगे, अनेक मृत लोग फिर जिन्दा हो उठेगे, एक प्रकार से फिर अन्तिम फैसला होगा और वे शिक्षक जिन्होने अपने शिष्यो को न्याय की सीख दी है तारो की तरह शाश्वत काल तक जाज्वल्यमान रहेगे। इसमे ईसाई धर्म की एकमात्र चीज़ वह भारी जोर है जो यीशु मसीह के आसन्न शासन तथा निष्ठाशील लोगो के गौरव के सम्बन्ध मे, विशेषतया उन शहीदों के सम्बन्ध मे दिया जाता है, जो मृतावस्था से फिर जीवित हो उठे है।

जहाँ तक इन भविष्यवाणियो का उस समय की घटनाओं से सम्बन्ध है उनकी व्याख्या के लिए हम जर्मन आलोचना के, विशेपरूप से एवाल्ड, ल्यूक तथा फर्डीनेण्ड वेनारी के ऋणी है। रेनान ने उसे उन लोगो के लिए भी सुलभ बना दिया है जो धर्म-शास्त्री नही है। इस चीज़ को हम पहले ही देख चुके है कि महावेश्या वेबीलोन, रोम का, सात पहाडियों की उस नगरी का ही, नाम है। अध्याय [१७] ९-११ में हमें उस जानवर के बारे मे, जिस पर वह बैठी हुई है, बताया गया है कि :

> जानवर के "सात सिर वे सात पहाड है जिन पर वह औरत बैठती है। और सात ही राजा हैं : पाँच मिट चुके है, और एक मौजूद है, सातवाँ अभी आया नही है; और वह जब आयेगा तब थोड़े समय तक शासन करेगा। और जानवर जो कभी था, और अब नही रहा, वह भी आठवाँ है। वह उन्ही सात में से है, और नरक मे चला गया है।"

इसके अनुसार, रोमनो का विश्व आधिपत्य ही वह जानवर है। सात सीजर एक के बाद एक उसके प्रतिनिधि बने थे। उनमे से एक घातक रूप से घायल हो गया था और अब शासन नही करता है, किन्तु वह अच्छा हो जायगा और वापिस आ जायगा। आठवे सीजर के रूप में उसका काम होगा कि वह ईश्वर-निन्दा और ईश्वर-विरोध के राज्य की स्थापना करे। उसका काम होगा कि,

"सन्तो के साथ युद्ध करे और उनको पराजित करे.. .. और वे सब जो पृथ्वी पर रहते हैं उसकी पूजा करेंगे, उनके नाम मेमने के जीवन की पुस्तक मे नहीं लिखे हैं....... । और वह सब लोगों के, वे छोटे हो या बड़े, धनी हों या गरीब, स्वतत्र हो या दासता मे बधे —दाहिने हाथ या माथे पर एक चिह्न अंकित करवा देगा : और जिस आदमी के वह निशान, अथवा जानवर का नाम, अथवा उसके नाम की संख्या न खुदी होगी वह न खरीद सकेगा, न बेच। यही ज्ञान की बात है। जिसमे समझ हो वह

जानवर की संख्या को गिने, क्योंकि वह संख्या एक मनुष्य की सख्या है; और उसकी सख्या छः सौ छाछठ है।" [(१३), ७-१८]

यहाँ केवल हम इस बात को नोट करते है कि उन अस्त्रों मे, जो रोमन साम्राज्य द्वारा ईसाइयो के विरुद्ध इस्तेमाल किये जाने वाले है, वायकाट (वहिष्कार) के अस्त्र का भी उल्लेख किया गया है। उसका इस्तेमाल चूँकि रोमन साम्राज्य द्वारा किया जाने वाला है इसलिए स्पष्ट है कि उसका आविष्कार शैतान ने किया होगा। इसके वाद हम इस सवाल को लेते है कि यह रोमन सम्राट था कौन जिसने एक बार पहले भी शासन किया था, फिर घातक रूप से घायल हो गया था और हटा दिया गया था, किन्तु आठवे सम्राट के रूप मे अव फिर लौट आयेगा और यीशु-विरोधी का काम करेगा।

ऑगस्टस को पहला सम्राट मान लेने के वाद हम देखते है कि : दूसरा टाइवेरियस है, तीसरा कैलीगुला, चौथा क्लाडियस, पाँचवा नीरो, और छठा गाल्वा। "पाच मिट चुके है, और एक मौजूद है।" इसलिए, नीरो तो मिट चुका है और गाल्वा मौजूद है। गाल्वा ने ९ जून, ६८ से लेकर १५ जनवरी, ६९ तक राज्य किया था। किन्तु उसके गद्दी पर वैठते ही राइन की सेनाओ ने विटैलियस के नेतृत्व मे विद्रोह कर दिया था। इसी समय दूसरे सेनापति भी दूसरे प्रान्तो मे वगावतो की तैयारी कर रहे थे। स्वयम् रोम मे भी छावनी के सैनिको ने विद्रोह कर दिया था, गाल्वा को मार दिया था, और ओथो को सम्राट घोपित कर दिया था।

इससे हम देखते है कि हमारे इस ईश्वरी सन्देश की रचना गाल्वा के राज्यकाल मे की गयी थी। सम्भवतः उसकी रचना उसके शासन-काल के अन्त के आस-पास की गयी थी। अथवा, देर से देर मे, उसकी रचना ओथो "सप्तम" के शासन काल के तीन महीनो (१५ अप्रैल, ६९ तक) के दौरान की गयी थी। लेकिन वह आठवाँ कौन है, जो था और अव नही है? इसका पता हमे ६६६ की सख्या से मिलता है।

यहूदियो के अन्दर—कैल्डियनो और यहूदियो के अन्दर—उस समय

एक प्रकार के जादू का चलन था जो अक्षरो के दोहरे अर्थ पर निर्भर करता था। हमारे युग से लगभग ३०० वर्ष पहले सख्याओं को इंगित करने के लिए प्रतीकों के रूप में चूंकि हिब्रू अक्षरो का भी निम्न प्रकार प्रयोग किया जाता था : a = १, b = २, g = ३, d = ४, आदि—इसलिए यहूदी गुप्त विद्या को जाननेवाले ज्योतिषी लोग नाम के प्रत्येक अक्षर के मूल्य को जोड लेते थे और उसके योग के आधार पर उस आदमी का, जिसका वह नाम होता था, भविष्य बताने की कोशिश करते थे। ऐसा वे बराबर मूल्य के शब्दो के शब्द अथवा योग तैयार करके करते थे। गुप्त शब्दो, आदि को भी अको की इसी भाषा मे व्यक्त किया जाता था। इस कला को gematria, यानी ज्योमिति का यूनानी नाम दे दिया गया था। कैल्डिया के निवासियो को, जो इस काम को एक व्यावसायिक पेशे की तरह करते थे, टेसीटस ने गणितज्ञो (*mathematici*) का नाम दे दिया था। क्लाडियस के राज्यकाल मे, रोम से इन्हे निकाल बाहर किया गया था और विटैलियस के राज्यकाल मे, सम्भवत: "गम्भीर अव्यवस्था फैलाने" के जुर्म मे, उन्हे दुबारा वहां से निकाल दिया गया था।

६६६ का हमारा अक इसी प्रकार की गणित से निकला था। पहले पाच सीजरो में से एक के नाम का यह छद्म रूप है। किन्तु ६६६ के अलावा, दूसरी शताब्दी के अन्त मे, इरेनियस को एक और अक का पता था—यह अक ६१६ था। जो भी हो, इस अंक का प्रादुर्भाव ऐसे समय हुआ था जिस समय अको की पहेलियां व्यापक रूप से प्रचलित थी। निकाला गया हल सही है यह तभी प्रमाणित हो सकेगा जबकि वह दोनों अको पर लागू हो सके।

ऐसा हल बर्लिन के फर्डीनेण्ड बेनारी ने ढूंढ निकाला था। उस सीज़र का नाम नीरो है। उक्त अक ...... नेरोन केसर के नाम पर, यूनानी नेरोन कैसर—यानी सम्राट नीरो की हिब्रू हिज्जे पर आधारित है। इस बात को तालमुद तथा तालपत्रों पर मिले अभिलेखों की मदद

से सच्चा सिद्ध कर दिया गया है। यह इवारत नीरो के काल के उन सिक्कों पर खुदी मिली थी जो साम्राज्य के पूर्वीय अर्द्धभाग मे ढले थे। इस भाँति—*n (nun)*=*50; r (resh)*=*200; v (vau)0*=*6; n (nun)*=*50; k (kaph)*=*100; s (samech)*=*60; r (resh)*=*200*। जोड़ *666.*। अगर लैटिन हिज्जे *Nero Caesar* को हम आवार मान लें तो दूसरा *nun*=*50* अन्तर्धान हो जाता है और हमारे पास *666 - 50*=*616* का अक शेष रह जाता है। यही इरेनियस द्वारा वताया गया अक है।

वास्तव मे, गाल्वा के काल मे सम्पूर्ण रोमन साम्राज्य में यकायक भारी अव्यवस्था फैल गयी थी। स्वयम् गाल्वा ने नीरो को सिंहासन से हटाने के लिए स्पेनी और फ्रान्सीसी सेनाओ को लेकर रोम पर चढाई कर दी थी। नीरो भाग गया। गाल्व ने एक मुक्त हो गये गुलाम को आज्ञा दी कि वह उसे मार दे। किन्तु गाल्वा के खिलाफ केवल रोम की सैनिक छावनी के सिपाहियों ने ही नहीं षड्यत्र किया था, वल्कि प्रान्तों के सर्वोच्च सेनानायको ने भी उसके विरुद्ध साज़िश शुरू कर दी थी। हर तरफ राज्य सिंहासन के नये-नये दावेदार पैदा हो गये थे। उन सभी ने अपनी सेनाओं के साथ रोम पर चढाई करने की तैयारियाँ शुरू कर दी। ऐसा लगने लगा कि साम्राज्य के अन्दर गृह-युद्ध का होना अनिवार्य है। उसका विघटन आसन्न लगने लगा। इस सवके अलावा, यह अफवाह भी फैल गयी, ख़ासतौर से पूर्व मे, कि नीरो मरा नही है, वह केवल घायल हो गया था और भागकर खुरासानियो के पास चला गया था। एक सेना लेकर फरात के रास्ते से वह फिर हमला करने ही वाला है जिससे कि आतक के एक नये तथा और भी खूंखार शासन की शुरुआत वह कर सके। इस तरह की रिपोर्टों से अकाइया (यूनान) और एशिया ख़ास तौर से भयभीत हो उठे। और ठीक उसी समय जिस समय कि ईश्वरीय सन्देशो की रचना की गयी होगी एक वनावटी नीरो का प्रादुर्भाव हो गया था। अपने समर्थको की एक काफी वडी सख्या को लेकर वह

एजियन सागर (जिसे अब थर्मिया कहा जाता है) में स्थित कितनोस द्वीप पर बस गया। यह द्वीप पाटमोस और एशिया माइनर से बहुत दूर न था। यह नीरो तब तक वही जमा रहा था जब तक कि ओथो के शासन-काल में उसकी हत्या नही कर दी गयी थी। फिर इसमे आश्चर्य की क्या बात थी यदि ईसाइयों के अन्दर —जिनके ऊपर जबर्दस्त दमन की शुरुआत सबसे पहले नीरो ने की थी —यह धारणा फैल गयी कि यीशु-विरोधी के रूप मे वह फिर लौट आयेगा और उसका वापिस लौट आना तथा नये सम्प्रदाय को खून में डुबोने की और भी अधिक तेजी से कोशिश करना यीशु मसीह के लौटने का संकेत तथा उसका सूचक होगा, —नारकीय शक्तियो के विरुद्ध महान् विजयी संघर्ष के प्रारम्भ का, "जल्दी ही" स्थापित होने वाले सहस्रवर्षीय राज्य के श्रीगणेश का वह संकेत और सूचक होगा ? इस पक्की आशा ने ही ख़ुशी-ख़ुशी मृत्यु का सामना करने की शहीदो को प्रेरणा-प्रदान की थी।

पहली दो शताब्दियो के ईसाई तथा ईसाई धर्म द्वारा प्रभावित साहित्य मे इस बात के काफी सकेत मौजूद है कि अंक ६६६ के भेद से उस समय बहुत से लोग परिचित थे। इरेनियस उसे नही जानता था। किन्तु, दूसरी तरफ, वह तथा तीसरी शताब्दी के अन्त तक अन्य अनेक लोग भी इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि ईश्वरी वाणी मे जिस पशु का उल्लेख किया गया था उससे वापिस लौटनेवाले नीरो से ही मुराद थी। इसके बाद यह संकेत गुम हो जाता है और जिस रचना मे हमारी दिलचस्पी है धार्मिक विचारवाले भविष्यवक्ता उसकी बडे-बडे विचित्र ढग से व्याख्याएं करते है। जब मैं बच्चा था तब मैं खुद ऐसे बुड्ढे लोगों को जानता था जो, वयोवृद्ध जोहान अलब्रेख्त बेंगल के उदाहरण का अनुसरण करते हुए, विश्वास करते थे कि १८३६ के वर्ष मे दुनिया का अन्त हो जायगा और फिर अन्तिम फैसला होगा। यह भविष्यवाणी पूरी हुई थी, और ठीक उसी वर्ष। किन्तु, अन्तिम फैसले की बलि-वेदी पर यह पापी दुनिया नही चढ़ी थी, बल्कि ईश्वरी सन्देश के नेक व्याख्याकार स्वयम् उसकी वेदी

पर चढ़ गये थे। एफ० बेनारी ने १८३६ में ही संख्या ६६६ का अर्थ स्पष्ट कर दिया था और, इस प्रकार, तमाम भविष्य-सम्बन्धी गणनाओं का, उस नवीन *gematriah* (ज्यामिति) का दारुण अन्त कर दिया था।

स्वर्ग के उस राज्य का, जो धर्मनिष्ठ लोगों के लिए सुरक्षित है, हमारा जौन केवल एक सतही विवरण ही प्रस्तुत कर पाता है। नया येरूशलम काफी विस्तृत क्षेत्र में फैला हुआ है, कम से कम उस समय की धारणाओं के अनुसार तो वह बहुत ही काफ़ी बड़ा था। उसका विस्तार १२,००० फर्लांग, अथवा २,२२७ वर्ग किलोमीटर था; अर्थात् उसका क्षेत्र लगभग ५० लाख वर्ग किलोमीटर, यानी संयुक्त राज्य अमरीका के आकार के आधे से अधिक था। और उसकी रचना स्वर्ण तथा नाना प्रकार के बहुमूल्य हीरो-जवाहरों से हुई थी। ईश्वर अपनी प्रजा के साथ वहीं निवास करता है, सूर्य के स्थान में वह स्वयम् उसे प्रकाश देता है। और अब न मृत्यु होगी, न दुःख, और न कोई पीड़ा। उस नगर के बीचोबीच से जीवन के जल की एक शुद्ध नदी बहती है, नदी के दोनों तट पर जीवन के वृक्ष लगे हैं जिन पर १२ प्रकार के फल हैं। ये वृक्ष हर महीने फल देते हैं; और उनकी पत्तियाँ "राष्ट्रों को नीरोग करने का काम करती हैं।" (रेनान का खयाल है कि उनमें एक प्रकार का औषधीय पेय था। — *L'Antechrist*, पृष्ठ ५४२)। साधु पुरुष यहीं सर्व काल तक निवास करेंगे।

जहाँ तक हम जानते हैं, ६८वें वर्ष के आसपास, अपने मुख्य केन्द्र, एशिया माइनर में ईसाई धर्म का यही स्वरूप था। त्रिक का (त्रिदेवों का) वहाँ कोई चिह्न नहीं था। इसके विपरीत, वहाँ मिलता है बाद के यहूदी धर्म का अकेला तथा अविभक्तनीय पुराना जेहोवा। यहूदी धर्म ने यहूदियों के राष्ट्रीय ईश्वर के आसन से उठाकर इसे स्वर्ग तथा पृथ्वी के एकमात्र तथा सर्वोच्च ईश्वर के पद पर प्रतिष्ठित कर दिया था। वहाँ से वह समस्त राष्ट्रों के ऊपर शासन करने का दावा करता है; जिन लोगों ने धर्म परिवर्तन कर लिया है उन्हें वह अपनी दया का आश्वासन देता है और जो लोग अपनी हठधर्मी पर अड़े हुए हैं उन्हें इस प्राचीन कहावत

के अनुसार निर्ममता से वह मार देता है कि *parcere subjectis ac debellare superbos*। * इस प्रकार, यीशु नही —जैसा कि ईश्वरी वाणियो तथा धर्म-पत्रो के वाद के विवरणों में मिलता है —बल्कि यह ईश्वर स्वयम् अन्तिम निर्णय के समय निर्णायक का काम करेगा। उत्पत्ति के उस फारसी सिद्धान्त के अनुसार —जो वाद के यहूदी धर्म में प्रचलित था —मेमना रूपी यीशु शाश्वत रूप से इसी ईश्वर से उत्पन्न हुए हैं। "ईश्वर की सात प्रेतात्माएँ" भी, जिनका अस्तित्व एक काव्यात्मक अंश [ईसाइया, (११), २] की भ्रान्त धारणा पर आधारित है, इसी ईश्वर से उत्पन्न हुई है, किन्तु उनका पद नीचा है। ये सबके सब ईश्वर के अधीन है, न स्वयम् ईश्वर है, और न उसके वरावर हैं। दुनिया के पापों का प्रायश्चित् करने के उद्देश्य से मेमना अपनी वलि चढ़ा देता है। इसके उपलक्ष में स्वर्ग मे उसे काफी तरक्की मिलती है। सम्पूर्ण पुस्तक में उसकी इस स्वेच्छित मृत्यु को एक असाधारण कृत्य के ही रूप मे श्रेय दिया गया है —उसे ऐसी चीज़ के रूप में कही नही प्रस्तुत किया गया जिससे कि लगे कि वह उसके सहज स्वरूप का अनिवार्य परिणाम है। जैसा कि स्वाभाविक है, बुजुर्गों, भोले वच्चो, देवदूतो तथा सिद्ध पुरुषों का पूरा स्वर्गीय दरवार वहाँ मौजूद है। धर्म का पद प्राप्त करने के लिए एकेश्वरवाद को —जेन्द-अवेस्ता[१०१] के काल से ही —वहु-देववाद को वरावर रियायतें देनी पडी हैं। यहूदियों के यहाँ काफिरों के ऐन्द्रिक देवताओ की स्थिति वहुत दिनों तक लगातार गिरती गयी थी—जव तक कि, अपनी जलावतनी के वाद, स्वर्गीय दरबार ने धर्म को फारस के नमूने पर आम लोगों की कल्पना के और अधिक अनुरूप नही वना लिया था। और, यहूदियों के चिरन्तन रूप से स्वयं वरावर वने रहने वाले सनातन ईश्वर के स्थान पर खुद भेद पैदा कर लेने वाले रहस्यमय त्रिदेवो के ईश्वर की स्थापना कर देने के वाद भी, स्वयम् ईसाई धर्म को भी सन्तो की पूजा के

---

* 'जो विनम्र हैं उन्हें क्षमा दो, और जो अभिमानी हैं उनके साथ युद्ध करो।' —सं०

अलावा ऐसी कोई चीज़ अपने अन्दर नही मिली थी जिसे पुराने देवताओं की पूजा के स्थान पर वह प्रतिष्ठित कर दे। इस तरह, फालमेरेयर के अनुसार, पेलोपोनेसस, मैना और आर्केडिया मे जुपिटर (वृहस्पति) की पूजा की प्रथा का अन्त नवी शताब्दी के आस-पास ही हो सका था। (*Geschichte der Halbinsel Morea*, खण्ड १, पृष्ठ २२७) फिर सन्तों से केवल आधुनिक पूजीवादी काल और उसका प्रोटेस्टेन्टवादी धर्म ही नजात दिला सका है और भेदित एकेश्वरवाद को गम्भीरतापूर्वक ग्रहण कर सका है।

पुस्तक मे मूल पाप तथा आस्था के आधार पर चीजो को न्यायोचित ठहराने की बात का भी कोई उल्लेख नही मिलता। इन प्रारम्भिक लडाकू समुदायो का धर्म बाद के विजयी चर्च के धर्म से बिलकुल भिन्न था। इसमें मेमने की बलि की बात के साथ-साथ यीशु के तुरन्त वापिस लौटने और जल्दी ही आरम्भ होने वाले उनके सहस्र-वर्षीय राज्य की भी बात मूल तत्व के रूप मे मौजूद है। यह धर्म सक्रिय प्रचार, अन्दरूनी और बाहरी दुश्मनो के विरुद्ध अनथक सघर्प, अधर्मी न्यायाध्यक्षो के सम्मुख क्रान्तिकारी दृष्टिकोण की साभिमान की जानेवाली स्वीकारोक्तियो तथा विजय मे पूर्ण विश्वास के साथ की जानेवाली शहादतो के आधार पर ही जिन्दा है।

हम देख चुके है कि लेखक को अभी तक इस बात की चेतना नही है कि यहूदी के अलावा भी वह कुछ और है। इसलिए उसकी पूरी पुस्तक मे बपतिस्मा (ईसाई बनने के सस्कार—अनु०) का कही भी उल्लेख नहीं है। ऐसे अनेक तथ्य है जो बतलाते है कि बपतिस्मा की प्रथा का श्रीगणेश ईसाई धर्म के द्वितीय काल मे हुआ था। १,४४,००० धर्म-शील यहूदियों को "प्रमाणित घोषित" किया गया था, उनका बपतिस्मा नही किया गया था। स्वर्ग लोक के सन्तो तथा पृथ्वी के धर्मनिष्ठ लोगों के विषय मे कहा गया है कि उन्होने अपने पापो को धो डाला था, अपने वस्त्रों को धोकर साफ कर लिया था और मेमने के लहू से उनको श्वेत (पवित्र) बना लिया था; बपतिस्मा के पानी का उसमे कही उल्लेख नही किया गया। अध्याय (११)

में यीशु-विरोधी (Antichrist) के आगमन से पहले जो दो पैग़म्बर आते हैं वे वपतिस्मा नहीं करते; और [१६], १० के अनुसार, यीशु-भक्ति का प्रमाण वपतिस्मा नहीं है, बल्कि भविष्यवाणी की उसकी भावना को मानना है। अगर वपतिस्मा का ज़ोर होता तो इन तमाम चीज़ो के सम्बन्ध मे स्वाभाविक रूप से उसका भी उल्लेख किया जाता। इसलिए इस निर्णय पर लगभग पूर्ण विश्वास के साथ हम पहुँच सकते है कि वपतिस्मा के बारे मे लेखक को कोई जानकारी नही थी, और उसकी उत्पत्ति तब हुई थी जबकि अन्तिम रूप से ईसाई लोग यहूदियो से अलग हो गये थे।

न हमारा लेख द्वितीय महाप्रसाद के बारे मे, ईसा के स्मरण मे किये जाने वाले भोज के बारे में ही कुछ जानता है। लूथर के मूल पाठ मे यदि ईसा थाईएटिरनो से यह वादा करते दिखलाये गये है कि वे उन सब लोगो के साथ शाम का भोजन करेंगे जो दृढता से धर्म पर कायम रहते हैं *(das Abendmahl halten)*, तो इससे एक मिथ्या धारणा पैदा होती है। यूनानी पाठ मे लिखा है *deipneso*—मैं (उसके साथ) शाम का भोजन करूँगा, और अंग्रेज़ी की बाइबिल मे भी इस चीज़ का सही-सही अनुवाद किया गया है : मै उसके साथ शाम को खाना खाऊँगा। यहाँ स्मरणोत्सव भोज के रूप मे भी ईसा के महाभोज का कोई उल्लेख नही है।

इस विषय मे कोई सन्देह नही हो सकता कि यह पुस्तक, जिसकी तिथि सन् ६८ या ६९ प्रमाणित हो चुकी है, ईसाई धर्म सम्बन्धी समस्त साहित्य की सबसे पुरानी पुस्तक है। और कोई भी पुस्तक इतनी बर्बर भाषा मे लिखी हुई नही मिलती जिसमे इतना अधिक हिब्रूपन भरा हो, ऐसे अजीबो-गरीब वाक्य हो, और व्याकरण की इतनी भूले हो। उदाहरण के लिए, पहले अध्याय का चौथा पद्य अक्षरशः इस प्रकार है : "आपके ऊपर उसकी कृपा हो........जो है और जो था और जो आ रहा है।" अब केवल पेशेवर धर्मशास्त्री तथा वे अन्य इतिहासकार ही—जिनका

इसमें कोई स्वार्थ है—इस बात से इन्कार करते है कि ईसा की शिक्षाओ तथा देवपुत्रो से सम्बंधित आख्यानों को वाद मे कुछ ऐसी कृतियों के आधार पर तैयार कर लिया गया था जो अब खो गयी हैं और जिनकी हल्की-फुल्की ऐतिहासिकता को भी किस्से-कहानियो की भूलभुलैयो मे अब नही पहचाना जा सकता। वे थोडे-से धर्म-पत्र भी जिन्हे ब्रूनो वेयर ने "प्रामाणिक" मान लिया था या तो बाद की रचनाएँ हैं, अथवा, अधिक से अधिक, अज्ञात लेखको की पुरानी कृतियो के आधार पर तैयार कर ली गयी ऐसी चीज़े है जो बाह्य सामग्री के जोड तथा मिला दिये जाने की वजह से काफी बदल गयी है। इसलिए इस पुस्तक का महत्व और भी बढ जाता है, क्योकि इसके रूप मे हमारे पास वास्तव मे एक ऐसी रचना है जिसकी लेखन-तिथि लगभग उस महीने तक निर्धारित की जा चुकी है जिसमे वह लिखी गयी थी, यह ऐसी पुस्तक है जो हमे वतलाती है कि ईसाई धर्म जब अविकसित था तब उसका कैसा रूप था। चौथी शताब्दी के उस राजकीय धर्म के सामने, जिसके सिद्धान्त तथा जिसकी देवमाला पूर्णरूप से विकसित हो चुकी थी, ईसाई धर्म की यह रूपरेखा वैसी ही मालूम पडती है जैसी कि ईसाई तथा अन्य प्राचीन तत्वो से प्रभावित एड्डा के देवताओ की सुविकसित शिक्षाओ के सम्मुख टेसीटस की अभी तक अस्थिर देवमाला लगती है। सार्वभौमिक धर्म का बीज उसमे मौजूद था, किन्तु बिना किसी भेदभाव के विकास की अन्य हजारो सम्भावनाएँ भी उसमे अन्तर्निहित थी। बाद के अगणित सम्प्रदायो मे इन्ही सम्भावनाओ ने साकार रूप ग्रहण किया था। और ईसाई धर्म के उदय काल की यह सबसे प्राचीन कृति हमारे लिए इसलिए और भी विशेष रूप से मूल्यवान है कि, बिना किसी मेल-मिलावट के, वह हमे साफ-साफ बतलाती है कि ईसाई धर्म के निर्माण मे अलेक्जेन्ड्रिया से अत्यधिक प्रभावित यहूदी धर्म का कितना हाथ था। बाद मे जो सब मिलता है वह सब पाश्चात्य, यूनानी-रोमन सकलन–परिवर्द्धन का परिणाम है। इस एकेश्वरवादी यहूदी धर्म के माध्यम से ही बाद के

देहाती यूनानी दर्शन का सुसंस्कृत एकेश्वरवाद अपने को उस एकमात्र धार्मिक भेष में सजा-बना सका था जिसमें आम जन समुदाय को वह आकर्षित कर सकता था। किन्तु इस माध्यम के मिल जाने के बाद भी, केवल यूनानी-रोमन दुनिया में ही वह एक सार्वभौमिक धर्म का रूप ग्रहण कर सकता था —और ऐसा भी वह उस चिन्तन सामग्री का और विकास करके तथा उसमे घुल-मिलकर ही कर सकता था जिसे दुनिया उपार्जित कर चुकी थी।

टिप्पणियाँ

(१) Petri Gassendi Animadversiones in decimum librum Diogenis Laertii, qui est de Vita, Moribus, Placitisque Epicuri. (पियरे गासेन्दी, एपीक्यूरस के जीवन, आचार-व्यवहार तथा उनकी सम्मतियों के सम्बन्ध मे डायोजिनीस, लार्यटियस के दसवें स्कन्ध के विषय मे विचार) ल्यॉन्स, १६४९ । पृष्ठ १४

(२) १८३९ मे एपीक्यूरवादी, स्टाइकवादी तथा सशयवादी दर्शन के इतिहास के विषय मे मार्क्स ने सात नोट बुके लिखी थी । इनमे से कुछ का उन्होने अपनी थीसिस मे उपयोग किया था । ये कापियाँ आज भी सुरक्षित है । पृष्ठ १४

(३) डेविड ह्यूम, मानव प्रकृति के सम्बन्ध मे एक प्रबन्ध, खण्ड १, लन्दन १८७४, पृष्ठ ५३२ । पृष्ठ १५

(४) कोलनिशे जीटुंग (Kolnische Zeitung), यह एक दैनिक पत्र था जो १८०२ से कोलोन मे प्रकाशित हो रहा था । चौथी दशाब्दी तथा पाचवी दशाब्दी के प्रारम्भिक भाग मे, प्रशा मे प्रचलित प्रोटेस्टेन्टवाद के विरुद्ध उसने कैथोलिक चर्च का समर्थन किया था । १८४२ मे उसका राजनीतिक सम्पादक कार्ल हेनरिख हरमेज था, जो प्रशियाई सरकार का एक गुप्त भेदिया था । यह पत्र रेनीशी जीटुंग (Rheinische Zeitung) का, जिसके सम्पादक मार्क्स थे, कट्टर विरोधी था । पृष्ठ १७

(५) मार्क्स यहाँ जर्मन कृति, Griechische Prosaiker in neuen Ubersetzungen में से लूशियन का एक उद्धरण दे रहे हैं। Funftes Bandchen, स्टुटगार्ट, १८२७, पृष्ठ १७६।

पृष्ठ १८

(६) जड़पूजा (Fetishism)—ऐसी निर्जीव वस्तुओं की पूजा करना जिनमें अलौकिक शक्तियाँ बतायी जाती है। इसके अवशिष्ट आधुनिक धर्मों मे भी देखे जा सकते हैं। पृष्ठ २५

(७) स्टाइक लोग (Stoics) उस दार्शनिक प्रवृत्ति के अनुयायी जिसका हमारे युग से पहले, तीसरी शताब्दी में, यूनान में उदय हुआ था। यह प्रवृत्ति हमारे युग की छठी शताब्दी तक चलती रही थी। उसके अनुयायी भौतिकवाद और भाववाद के बीच में डगमगाते रहते थे। प्रारम्भिक काल में (प्राचीन और बीच के स्टोआ के काल मे) उनकी दिलचस्पी मुख्यतया प्राकृतिक नियमों तथा संज्ञान के सिद्धान्तो के अध्ययन मे थी। यह अध्ययन मुख्यतया भौतिकवादी दृष्टिकोण से वे करते थे। रोमन साम्राज्य के काल मे नये स्टोआ ने नैतिकता के प्रश्नो मे विशेष दिलचस्पी दिखलायी थी। वह उन्हे एक धार्मिक तथा भाववादी दृष्टि-कोण से देखता था तथा आत्मा के अशरीरी अस्तित्व, नियति के र मने मनुष्य की दीनता, बुराई का प्रतिरोध न करने, आत्म-निरोध करने, वैराग्य भाव रखने, ईश्वर की खोज करने, आदि की धारणाओ का समर्थन करता था। ईसाई धर्म के निर्माण मे इन सबका प्रभाव पड़ा था। पृष्ठ २६

(८) संशयवादी (Sceptics) : उस दार्शनिक प्रवृत्ति के अनुयायी जो यूनान और रोम मे दास प्रथा के क्षय के दिनो मे पैदा हुई थी। वस्तुगत सत्य का विश्वसनीय ज्ञान प्राप्त करने की सम्भावना में और इसीलिए वैज्ञानिक चिन्तन के विकास की सम्भावना में वे सन्देह करते थे। पुराने संशयवादियों की शिक्षाओ में प्राचीन काल की उस दार्शनिक विचार-शृंखला के, जो एक समय बहुत शक्तिशाली थी, अधःपतन के

चिह्न पहले से ही मौजूद थे। ये पुराने संशयवादी मनोगतवादी भाववादी दार्शनिक प्रवृत्ति के प्रवक्ता थे। पृष्ठ २६

(९) वेद—प्राचीन भारतीय ग्रंथ जिनमे वे स्तोत्र, अर्चनाएं तथा पूजन-विधि (कर्म-काण्ड) सम्बन्धी सूत्र सग्रहीत हैं जो वैदिक साहित्य तथा धर्म के आधार है। इनकी रचना कई शताब्दियों मे हुई थी, किन्तु वे सब ईसा पूर्व छठी शताब्दी से पहले के है। पृष्ठ २९

(१०) Charte Constitutionelle (विधान)—जिसे १८३० की फ्रान्सीसी क्रान्ति के बाद स्वीकार किया गया था। जूलाई के राजतंत्र का आधार यही विधान था। पृष्ठ ३१

(११) Rheinische Zeitung fur Politik, Handel and Gewerbe (राजनीति, व्यापार तथा उद्योग का राइन गज़ट), यह एक दैनिक पत्र था जो १ जनवरी, १८४२ से ३१ मार्च १८४३ तक कोलोन से निकला था। इस पत्र की स्थापना राइन के पूँजीपति वर्ग के उन प्रतिनिधियो ने की थी जो प्रशियाई निरंकुश शासन के विरुद्ध थे। कुछ नौजवान हीगेलवादी (वामपथी हीगेलवादी) भी उसमे लिखते थे। अप्रैल, १८४२ से मार्क्स ने भी उसमे लिखना शुरू कर दिया था। अक्टूबर १८४२ से वे उसके सम्पादक मण्डल के एक सदस्य बन गये थे। एंगेल्स द्वारा लिखे गये कई लेख उसमे प्रकाशित हुए थे। मार्क्स के सम्पादकत्व मे उसका रूप अधिकाधिक क्रान्तिकारी-जनवादी होता गया था। सरकार ने पहले उस पर सख्त सेन्सरशिप लागू की, किन्तु, अन्त मे, उसने उसे बन्द ही कर दिया। पृष्ठ ३५

(१२) कोलनिशे त्सीटुंग के सम्पादक, हरमेज की ओर इशारा है। अपने युवा दिनो में उसने जर्मन विद्यार्थियो के विरोध-आन्दोलन में भाग लिया था। पृष्ठ ३५

(१३) कोरीबैन्टीज़ (Corybantes)—देवी सिबिल के पुरोहित; कैबीरी (Cabiri) —इसी नाम के प्राचीन यूनानी देवताओं के पुरोहित। एशिया माइनर मे कोरीबैन्टीज़ और कैबीरी को क्रीट के पुरोहित

(क्यूरिटीज) ज़ियस (ग्रीक इन्द्र) की मा, देवी रीहा के पुरोहित माना जाता था। पौराणिक कथा के अनुसार, क्यूरिटीज़ ने नवजात ज़ियस की आवाज़ को अपनी ढालो पर तलवारो से वार करके उसके शोर में डुबा दिया था। पृष्ठ ३७

(१४) यहां उस भीषण शास्त्रार्थ की ओर इशारा किया जा रहा है जो जर्मनी के प्रतिक्रियावादी अखबारो ने धर्म की दार्शनिक आलोचना के विरुद्ध छेड़ दिया था। इस आलोचना का श्रीगणेश डी० एफ० स्ट्रॉस की पुस्तक, Das Leben Jese, खण्ड १, १८३५, खण्ड २, १८३६, के प्रकाशन के साथ हुआ था। पृष्ठ ३८

(१५) Berliner politisches Wochenblatt (बर्लिनेर पोलिटिशेज़ वोशेनब्लाट) — यह एक अत्यन्त प्रतिक्रियावादी पत्र था जो १८३१ से १८४१ तक निकला था। के० हालेर, लियो तथा रौमर उसमे लिखते थे। उसे राजकुमार फ्रेडरिक विलियम (१८४० के बाद से फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ) का समर्थन और सरक्षण प्राप्त था। पृष्ठ ३८

(१६) Hamburger Correspondent (हैम्बर्गर सम्वाद-दाता) —"हैम्बर्ग के स्वतत्र सम्वाददाता का राजकीय तथा वैज्ञानिक गजट" का यह सक्षिप्त रूप है। पाचवें दशक में यह गजट रोज निक-लता था। उसकी नीति प्रतिक्रियावादी और राजतत्रवादी थी। पृष्ठ ३८

(१७) Deutsche Jahrbucher (ड्यूश जहरबुख़ेर) — नौजवान हीगेलवादियों की साहित्यक तथा दार्शनिक पत्रिका, "विज्ञान तथा कला की जर्मन वार्षिकी" का सक्षिप्त रूप। यह लाइपजिग से प्रकाशित होती थी। जूलाई, १८४१ से जनवरी, १८४३ तक उसके सम्पादक ए० रयूज थे। पृष्ठ ३८

(१८) सन्त वार्थोलोम्यू की रात्रि —कैथोलिक पादरियों के उक-सावे से फ्रान्सीसी राज दरबार ने आज्ञा दे दी थी कि सन्त वार्थोलोम्यू के भोज से एक दिन पहले की रात्रि, यानी २४ अगस्त, १५७२ को कैथो-लिक लोग ह्यूजनाटों का पेरिस मे क़त्लेआम कर दें। यह क़त्लेआम तीन

दिन तक चलता रहा था और उसमें कई हजार ह्यूजनाट मारे गये थे। सारे फ्रान्स मे इसी प्रकार की हत्याएं करायी गयी थी। पृष्ट ४०

(१९) ह्यूजनाट—१६वी और १७वी शताब्दी में फ्रान्स के कालविनवादी प्रोटेस्टेण्टों को इसी नाम मे पुकारा जाता था। आन्दोलन के आरम्भिक दिनों मे मुख्यतया पूजीपति तथा शिल्पकार ही उसमें आये थे; किन्तु, वाद में, फ्रान्स के दक्षिणी भाग मे अभिजात वर्ग तथा सामन्ती प्रभुओं का वह भाग उस पर हावी हो गया था जो राजतंत्र के केन्द्रीकरण की नीति से असन्तुष्ट था। आन्दोलन वढ़ा तो कैथोलिकों और ह्यूजनाटों के वीच गृह-युद्ध छिड़ गया। इस गृह-युद्ध की शुरुआत १५६२ में हुई थी, सन्त वार्थोलोम्यू की रात्रि के वाद वह और तीव्र हो गया था और रुकता-चलता १५६४ तक जारी रहा था। १५९८ में नानतेज की राजाज्ञा से ह्यूजनाटो को धार्मिक कर्मकाण्ड की स्वतंत्रता दे दी गयी थी, किन्तु सरकार और कैथोलिक चर्च द्वारा उनका दमन जारी रहा था। पृष्ठ ४४

(२०) कोनिग्सवर्गर जीटुंग (Konigsberger Zeitung)—यह Koniglich—Preussische—Staats—Kriegs—und Friedens—Zeitung (प्रशिया के शाही राज्य, युद्ध और शान्ति का गजट) नामक दैनिक का सक्षिप्त नाम था। यह दैनिक कोनिग्सवर्ग मे १७५२ से १८५० तक प्रकाशित हुआ था। १९वी शताब्दी के पांचवें दशक मे उसका चरित्र एक प्रगतिशील पूजीवादी पत्र का था। पृष्ठ ४७

(२१) दक्षिणपंथियों का इतिहासवादी सम्प्रदाय—१८वी शताब्दी के अन्त मे, जर्मनी मे ऐतिहासिक तथा न्यायशास्त्रीय विज्ञान के क्षेत्र में उत्पन्न होने वाली यह एक प्रतिक्रियावादी विचारधारा थी। पृष्ठ ५३

(२२) मार्क्स यहाँ पर अनाकारसिस की ओर संकेत कर रहे हैं। जन्म से वह स्काइथियावासी था। दायोजिनीस लायरटियस के अनुसार, यूनानियो ने उसकी गणना यूनान के सात सिद्ध पुरुषो मे की है। पृष्ठ ५८

(२३) सितम्वर के कानून—ये वे प्रतिक्रियावादी कानून थे जिन्हें

फ्रान्सीसी सरकार ने सितम्वर १८३५ में वनाया था। इनके अन्तर्गत जूरी द्वारा मुक़दमो का फ़ैसला कराने की व्यवस्था प्रतिवन्धित कर दी गयी थी और अखवारो के ऊपर सख्त पावन्दियाँ लगा दी गयी थी। इन पावन्दियो में पत्र-पत्रिकाएं निकालने के लिए अधिक रूपया जमा करने की, तथा निजी सम्पत्ति और प्रचलित राज्य-व्यवस्था की आलोचना करने के जुर्म मे जेल भेजे जाने तथा भारी-भारी जुर्मानों की सजाएं शामिल थी। पृष्ठ ६६

(२४) अधिभूतवाद —चिन्तन तथा सज्ञान के क्षेत्र मे प्रचलित यह वह द्वन्द्ववाद-विरोधी पद्धति है जो वस्तुओ तथा घटना-प्रवाहो को पूर्ण, अपरिवर्तनीय, एक दूसरे स्वतत्र तथा आन्तरिक असंगतियों से मुक्त मानती है।

इस अश में उस अधिभूतवाद की वात की जा रही है जो १९वीं शताब्दी तक उस दर्शन के रूप मे प्रचलित था जो मनुष्य की उत्पत्ति, संसार के सार, ईश्वर, आत्मा, स्वतत्र इच्छा, आदि जैसी अनुभव के क्षेत्र में आनेवाली समस्याओं पर परिकाल्पनिक ढग से विचार करता था। सत्रहवी शताब्दी के अधिभूतवादियो से मार्क्स का मतलव उन वुद्धिवादियों से है जो तर्क को ही सच्चे ज्ञान का एकमात्र स्रोत मानते थे और इन्द्रिय-जन्य अनुभव को अविश्वसनीय करार देकर ठुकरा देते थे। सत्रहवी शताब्दी मे, धार्मिक अन्धमतवादी प्रवृत्ति के विरुद्ध सघर्ष मे तर्क की सर्वशक्तिशालिता की घोपणा करके इस प्रवृत्ति ने प्रगतिशील भूमिका अदा की थी, किन्तु १८वी शताब्दी मे वह भौतिकवादी दर्शन तथा विज्ञान के विकास के मार्ग मे एक वाधा वन गयी थी। पृष्ठ ७५

(२५) जानसेनवादी —इनका नामकरण डच धर्मशास्त्री जानसेनियस के नाम पर हुआ था। सत्रहवी शताब्दी मे तथा १८ वी शताब्दी के आरम्भकाल में, फ्रान्सीसी कैथोलिकों के अन्दर ये विरोधी प्रवृत्ति के प्रतिनिधि थे। सरकारी कैथोलिकवाद की सामन्ती विचारधारा के

विरुद्ध वे फ्रान्सीसी पूजीपति वर्ग के एक भाग के असन्तोष को व्यक्त करते थे। पृष्ठ ७८

(२६) नामवाद (Nominalism)—लैटिन nomen (नाम) से बना है। मध्ययुगीन दर्शन की यह वह धारा थी जो कहती थी कि आम धारणाएँ केवल ऐसे नाम है जो एक ही जैसी वस्तुओ की ओर इंगित करते है। दूसरे शब्दो मे, नामवादी वस्तुओ को प्रधान तथा धारणाओ को गौण मानते थे। इस अर्थ मे, नामवाद मध्ययुगों मे होनेवाली भौतिकवाद की प्रथम अभिव्यक्ति थी। पृष्ठ ८०

(२७) ईश्वरवादी —इसका सम्बन्ध ईश्वरवाद (आस्तिकता) से है। यह वह दार्शनिक तथा धर्मशास्त्रीय सिद्धान्त है जो केवल एक सगुण ईश्वर के, सृष्टि के सृष्टा के अस्तित्व को स्वीकार करता है। पृष्ठ ८२

(२८) देवतावाद—दर्शन और धर्मशास्त्र की यह वह धारा थी जो सगुण ईश्वर के विचार को अस्वीकार करती थी और कहती थी कि ईश्वर अवैयक्तिक रूप से संसार का प्रधान कारण है। सामन्तों तथा पादड़ियों के विश्व दर्शन के दौर-दौरे के समय देवतावाद अक्सर भौतिकवाद और अनीश्वरवाद (नास्तिकता) का ही एक छद्म रूप होता था। बाद में, देवतावाद ने धर्म को सही सावित करने मे पूँजीवादी विचारधाराविदो की मदद की थी। इस धर्म मे से केवल अधिक लचर तथा वदनाम हो चुके अन्धमतो और कर्मकाण्डो को उन्होने निकाल कर वाहर कर दिया था। पृष्ठ ८३

(२९) रेनीशेर व्यूबाख़्तेर (Rheinischer Beobachter)—उस अनुदार दैनिक पत्र का नाम था जो १८४४ से १८४८ के आरम्भ तक कोलोन से प्रकाशित हुआ था। पृष्ठ १०४

(३०) शिलर की कृति, Das Lied Von der Glocke (घंटा के गीत) से। पृष्ट ११६

(३१) यहाँ डोमेर की कृतियों, Der Feuer —und Moloch dienst der alten Hebraer (प्राचीन हिब्रुओ मे अग्नि तथा मोलोक

पूजा), ब्रुन्सविक, १८४२ तथा Die Geheimmisse des christlichen Alterthums (ईसाइयों के आदिकालीन रहस्य), हैम्बर्ग, १८४७। पृष्ठ ११८

(३२) यहाँ डोमेर की कृति, Mahomed und sein Werk (मोहम्मद और उनका कृतित्व), हैम्बर्ग, १८४८ की ओर व्यंगपूर्ण सकेत किया गया है। पृष्ठ ११६

(३३) निग्गे की रचना, Ueber den Umgang mit Menschen (मानवों के साथ सम्बन्ध) हैनोवर, १८०४ की ओर निर्देश किया जा रहा है। पृष्ठ १२१

(३४) गेटे की कृति, Wilhelm Meisters Lehrjahre की ओर सकेत है। पृष्ठ १२१

(३५) वाल्डवादी (Waldenses) : यह एक धार्मिक सम्प्रदाय था जिसका १२वी शताब्दी के उत्तरार्ध मे दक्षिण फ्रान्स के निम्न शहरी वर्गों के अन्दर जन्म हुआ था। कहा जाता है कि उसकी स्थापना पीटर वाल्ड नामक ल्योन्स के एक व्यापारी ने की थी। वाल्डवादी सम्पत्ति का अन्त कर देने की हिमायत करते थे, कैथोलिक चर्च द्वारा किये गये धन-संग्रहण की वे निन्दा करते थे और लोगों से अपील करते थे कि प्रारम्भिक ईसाई धर्म के रीति-रिवाजों की ओर लौट चलो। वाल्डवादियों की ये धर्म-विरोधी बातें दक्षिणी स्विटज़रलैण्ड तथा सेवाय के पर्वतीय क्षेत्रो की ग्रामीण आवादी मे ख़ास तौर से फैल गयी थी। इन क्षेत्रो मे आदिम सामुदायिक व्यवस्था तथा पितृसत्तात्मक सम्बन्धों के अवशेषो को उनसे समर्थन मिलता था। पृष्ठ १२८

(३६) अल्बीवादी (Albigenses) वारहवी और तेरहवी शताब्दियो मे दक्षिणी फ्रान्स तथा उत्तरी इटली के कस्बों मे व्यापक रूप से फैला हुआ यह एक धार्मिक सम्प्रदाय था। इसका केन्द्र फ्रान्स के दक्षिण मे स्थित अल्बी था। अल्बीवादी कैथोलिक चर्च के आडम्बरपूर्ण कर्मकाण्डों का तथा उसकी महन्तशाही का विरोध करते थे और दक्षिण

के कस्वों में सामन्तवाद के प्रति व्यापारियों तथा दस्तकारों के विरोध को धार्मिक रूप मे व्यक्त करते थे। फ्रान्स के दक्षिण का अभिजात वर्ग भी उनके साथ हो गया था क्योंकि वह चाहता था कि चर्च की ज़मीनों को धार्मिक चक्कर से छुड़ाकर सासारिक बना दिया जाय। १२०९ मे पोप इन्नोसेन्ट (निर्दोष) तृतीय ने उनके विरुद्ध एक जेहाद शुरू किया। एक लम्बे युद्ध तथा भयकर दमन के उपरान्त आन्दोलन को कुचल दिया गया। पृष्ठ १२८

(३७) १२५१ मे फ्रान्स मे हुए किसानो ('गडेरियो") के विद्रोह के एक नेता। पृष्ठ १२८

(३८) **कैलिक्सटसवादी तथा टेबरवादी**—जर्मन अभिजात वर्ग, जर्मन साम्राज्य तथा कैथोलिक चर्च के विरुद्ध १५वी शताब्दी के पूर्वार्ध मे बोहेमिया मे हुसवादियो के राष्ट्रीय मुक्ति तथा धर्म-सुधार आन्दोलन के अन्दर पायी जाने वाली धाराएँ। कैलिक्सटसवादियो का कहना था कि ईसा के सांयकालीन भोजन के समय प्याला और रोटी दोनो चीज़ें सामान्यजनों, यानी गृहस्थों को ही मिलनी चाहिए। बोहेमिया का अभिजात वर्ग तथा शहरी पूंजीपति वर्ग उनका समर्थन करता था। चर्च मे वे सिर्फ साधारण सुधार चाहते थे तथा यह चाहते थे कि चर्च की जमीनों को धार्मिक पचड़े से निकालकर सासारिक बना दिया जाय। **टेबरवादी**, जिनका यह नाम टेबर नाम के उस कस्बे के नाम पर पड़ा था जो आन्दोलन का केन्द्र था, हुसवादियो के आन्दोलन का क्रान्तिकारी जनवादी पक्ष थे। उनकी मांगो मे किसान वर्ग तथा शहरो के निम्न वर्गों की यह इच्छा प्रतिबिम्बित होती थी कि सामन्ती-उत्पीड़न को खत्म कर दिया जाय। कैलिक्सटसवादियो ने टेबरवादियो के साथ जो विश्वासघात किया था उसका फ़ायदा उठाकर सामन्ती प्रतिक्रियावादियो ने हुसवादी आन्दोलन को कुचल दिया था। पृष्ठ १३०

(३९) **फ्लैगेलाण्टवादी** (स्वयम् अपने को कोड़े मार कर यातना देने वाले—अनु०) —यह एक विरागी सम्प्रदाय था जो १३वी से १५वी शताब्दी

तक योरप मे बहुत फैला था। पापों का प्रायश्चित्त करने के लिए इसके मानने वाले कहते थे कि अपने आपको कोडों से मारकर यत्रणा दो। लोलर्डवादी (Lollards) —यह एक धार्मिक सम्प्रदाय था जो १४वीं शताब्दी मे इगलैण्ड में खासतौर से व्यापक रूप मे फैला हुआ था। कैथोलिक चर्च का वह सख्ती से विरोध करता था। इसके अनुयायी अग्रेज सुधारवादी वाइक्लिफ के शिष्य थे। उसकी शिक्षाओं से वे उग्रतम निष्कर्ष निकालते थे। सामन्ती विशेषाधिकारों के विरुद्ध उन्होने एक धार्मिक और रहस्यवादी रुख अपनाया था। उनमे से बहुतों ने १३८१ के वाट टाइलर के विद्रोह में भाग लिया था। १४वी शताब्दी के बाद से बहुत क्रूरता के साथ उनका दमन किया गया था। पृष्ठ १३२

(४०) **चिलियासवाद**—यूनानी Chiliasmos के आधार पर जो Chilias यानी, "हजार" से बना है। यह एक रहस्यवादी सिद्धान्त था जो यह उपदेश देता था कि ईसा का दोबारा अवतार होगा और दोबारा आने पर न्याय, समानता तथा समृद्धि पर आधारित एक हजार वर्ष के एक राज्य की स्थापना वे करेगे। चिलियासवाद का उदय दास समाज के पतन काल में हुआ था। इसका कारण श्रमजीवी जनता का असह्य उत्पीड़न तथा उसके वे कष्ट थे जिनकी वजह से वह मुक्ति की तरह-तरह की कल्पनाएँ करके शान्ति प्राप्त करती थी। प्रारम्भिक ईसाई धर्म के दिनों मे ये विश्वास व्यापक रूप से फैले हुए थे। बाद में, विभिन्न मध्ययुगीन सम्प्रदायों के सिद्धान्तो के रूप मे वे बार-बार पुनरुज्जीवित होते रहते थे। पृष्ठ १३३

(४१) **आग्सबर्ग का पाप-निवेदन**— लूथरवादी सिद्धान्तो के सम्बन्ध में यह एक वक्तव्य था जो १५३० में आग्सबर्ग में शाही पार्लियामेन्ट के अन्दर सम्राट चार्ल्स पंचम को पढ़कर सुनाया गया था। इस वक्तव्य में "सस्ते चर्च" के शहरी पूजीपतियों के आदर्शों को राजाओं के हित में ढालकर प्रस्तुत किया गया था —उसमे आडम्बरपूर्ण कर्मकाण्डों का अन्त करने, चर्च की महन्तशाही की प्रथा को सरल बनाने, आदि की बातें कही गयी थी। सम्राट ने उसे नामंज़ूर कर दिया था। ज़िन

राजाओं ने लूथरवादी धर्म-सुधार आन्दोलन को स्वीकार कर लिया था उन्होने सम्राट के खिलाफ लडाई छेड़ दी थी, यह लडाई १५५५ मे समाप्त हुई थी। इसके परिणामस्वरूप, आग्सवर्ग मे धार्मिक शान्ति कायम हो गयी थी। इससे राजाओ को इस बात का अधिकार प्राप्त हो गया था कि अपनी प्रजा के धर्म को वे अपनी मर्ज़ी के मुताविक तय कर दे। पृष्ठ १३७

(४२) उस पार्लियामेन्ट की ओर सकेत किया गया है जो प्रशिया द्वारा स्थापित किये गये "जर्मन सघ" मे सम्मिलित जर्मन राज्यों के प्रतिनिधियो को लेकर वनी थी। यह पार्लियामेन्ट २० मार्च से २९ अप्रैल, १८५० तक अर्फुर्ट मे वैठी थी। प्रतिकियावादी राजतत्रवादी प्रशिया के नेतृत्व मे जर्मनी को एक करने की योजनाएँ उसने तैयार की थीं। ये योजनाएँ फेल हो गयी थी और जर्मन सघ के विघटन के साथ ही साथ अर्फुर्ट पार्लियामेन्ट का भी अन्त हो गया था। पृष्ठ १३७

(४३) यह उस दुर्भावनापूर्ण पैम्फलेट का नाम था जिसे लूथर ने मई, १५२५ में उस वक्त, जब कि किसान युद्ध अपनी पूरी तेज़ी पर था, उसके खिलाफ प्रकाशित किया था। पृष्ठ १४०

(४४) एंगेल्स यहाँ पर भाववादी जर्मन दार्शनिक स्ट्रॉस तथा फायरवाख़ के विचारो की ओर संकेत कर रहे है। अपनी प्रारम्भिक कृतियों मे धार्मिक प्रश्नों की ओर फायरवाखने एक सर्वेश्वरवादी दृष्टिकोण अपनाया था। पृष्ठ १४५

(४५) डब्ल्यू० जिमरमान, Allgemeine Geschichte des grossen Bauernkrieges (महान् किसान युद्धका आम इतिहास), खण्ड २, स्टुटगार्ट, १८४२, पृष्ठ ७५। पृष्ठ १४६

(४६) एगेल्स यहाँ मुजर के निम्न पैम्फलेट का हवाला दे रहे हैं— Ausgedruckte Entblossung des falschen Glaubens der ungetreuen Welt durchs Zeugnis des Evangelions Lucae, vorgetragen der elenden erbarmlichen Christenheit zur

उपस्थिति पर निर्भर करती है। लोमोनोसोव तथा लेवॉयसियर के शोध कार्य ने बाद मे प्रमाणित कर दिया कि इस सिद्धान्त मे कोई सार नही है। पृष्ठ २०६

(५७) वह परिकल्पना जिसके अनुसार आकाशीय पिण्डों की उत्पत्ति जलती हुई नीहारकीय राशियो मे से होती है। पृष्ठ २११

(५८) **एम्फिआक्सस** (प्रासिका) --मछली की तरह का एक जीव जो लगभग ५ सेन्टीमीटर लम्बा होता है। यह हिन्द महासागर, प्रशान्त महासागर मे, मलय द्वीप-पुज तथा जापान के तटों के समीप तथा भूमध्य सागर और काला सागर के समीप तथा ऐसे ही अन्य स्थानो में पैदा होता है। वह अकशेरुकी तथा कशेरुकी प्राणियो के बीच की एक संक्रमणकालीन अवस्था मे होता है। **लेपीडोसिरेन** —अमेजन नदी में पायी जाने वाली यह एक पक-मीन है जो फुप्फस वाली मछलियों अथवा डिपनोई की श्रेणी मे आती है। इसके फुप्फस और गिल्स (क्लोम) दोनों होते है। यह दक्षिण अमरीका तथा अनेक अन्य स्थानो मे पायी जाती है। पृष्ठ २१५

(५९) **सेरेटोडस** (बडा मुण्डा—आस्ट्रेलिया की फुप्फस मछली) —यह डिपनोई है जो आस्ट्रेलिया में पैदा होती है। **आर्कियोप्टेरिक्स**— यह एक लुप्त हो गया प्राणी है जो पक्षी वर्ग का सबसे प्राचीन प्रतिनिधि था। साथ ही साथ, उसमे सरीसृपों की भी विशेषताएँ पायी जाती थी। पृष्ठ २१५

(६०) एंगेल्स यहाँ सम्भवतः हैकिल के उस कथन की ओर संकेत कर रहे है जिसमें उसने कहा था कि जिन सबसे सरल जीवो की जाँच-पड़ताल उसने की थी वे प्रोटीन के एकदम आकारहीन (बिना ढाँचे के) कण थे, —किन्तु, इसके बावजूद, जीवन के सारे आवश्यक कार्यो को वे पूरा करते थे। इन जीवो को उसने "मोनेरा" कहा था। देखिए : हैकिल की रचना, Generelle Morphologie der Organismen (**जीवों की सामान्य आकारकी**), खण्ड १, बर्लिन, १८६६, पृष्ठ १३३-३६। पृष्ठ २२०

(६१) **इओज़ून कैनाडेन्से** (Eozoon canadense)—कनाडा में कैम्ब्री से पहले यानी त्रिखण्ड युग मे किये गये खोदाई के कार्यो के दौरान पाया जाने वाला एक जीवाश्म जिसे प्राचीन आदिकालीन जीवो का अवशिष्ट माना गया है। इस जीवाश्म की सजीवी उत्पत्ति की धारणा का १८७८ मे मोबियस ने खण्डन कर दिया था। पृष्ठ २२१

(६२) "Alles was entsteht, ist wert, dass es zugrunde geht", गेटे के **फास्ट** मे मेफिस्टोफिलीज़ का कथन, भाग १, उपभाग ३। पृष्ठ २२४

(६३) एगेल्स यहाँ इटली के ज्योतिषशास्त्री ए० सेक्की की पुस्तक, Die Sonne (सूर्य) से उसके शब्द उद्धृत कर रहे है। जर्मन संस्करण, ब्रुन्सविक, १८७२। पृष्ठ २२५

(६४) **बराटेरिया** (स्पेनी बराटो, यानी ' सस्ते" के आधार पर) — यह वह नाम था जो अपनी रचना, डानक्विक्ज़ोट मे उस काल्पनिक द्वीप को सर्वान्तीज ने दिया था जिसका शासक सैन्को पान्जा था। पृष्ठ २३४

(६५) **थेलियम** की खोज क्रुक्स ने १८६१ मे की थी। क्रुक्स ने १८७४ मे रेडियो मीटर की रचना की थी —यह विकिरणो की तीव्रता को नापने का एक उपकरण था। पृष्ठ २४०

(६६) सेन्ट पीटर्सबर्ग विश्वविद्यालय की भौतिक सोसाइटी द्वारा बनाये गये "अध्यात्मवादी प्रपंचो की जाँच-पड़ताल के कमीशन" की ओर यहाँ सकेत किया गया है। इस कमीशन को उक्त विश्वविद्यालय ने ६ मई, १८७५ को कायम किया था। २१ मार्च, १८७६ को उसने अपने काम को पूरा कर लिया था। उन लोगो से जो रूस मे प्रेतात्मवाद का प्रसार कर रहे थे —यानी अक्साकोव, वटलरोव तथा अन्य लोगों से— उसने कहा था कि "सच्चे" प्रेतात्मवादी प्रपंचों के सम्बन्ध मे वे उसे आवश्यक सूचना दें। इस कमीशन के सदस्यों में मेन्डीलीव, वोबीलियोव तथा क्रायेविच नाम के वैज्ञानिक भी थे। यह कमीशन इस निष्कर्ष पर पहुँचा था कि

"प्रेतात्मवादी घटनाएँ अचेतन मानसिक क्रियाओं, अथवा जानबूझकर किये जाने वाले छल-प्रंपच के गर्भ से पैदा होती हैं और प्रेतात्मवादी सिद्धान्त निरे अन्धविश्वास की चीज़ है।" उसके निष्कर्ष **गोलोस** (वाणी) नामक पत्र के २५ मार्च, १८७६ के अक ८५ मे प्रकाशित हुए थे। कमीशन की सामग्री को मेण्डीलीव ने "**प्रेतात्मवाद के सम्बन्ध में निर्णय देने के लिए आवश्यक सामग्री**" के शीर्षक से १८७६ मे सेन्ट पीटर्सबर्ग मे प्रकाशित किया था। पृष्ठ २४४

(६७) मोजर्ट के आपेरा (गीति-नाट्य) **जादू की बांसुरी** की काव्य-कथा से। एक्ट १, दृश्य १८। पृष्ठ २४६

(६८) एंगेल्स यहाँ उन प्रतिक्रियावादी हमलो की ओर इशारा कर रहे है जो डारविनवाद के ऊपर, खास तौर से १८७१ के पेरिस कम्यून के बाद, जर्मनी मे किये गये थे। विरचाओ जैसे महत्वपूर्ण वैज्ञानिक ने भी, जिसने इससे पहले डारविनवाद का समर्थन किया था, १८७७ मे यह सुझाव दिया था कि डारविनवाद की शिक्षा पर रोक लगा दी जाय क्योकि समाजवादी आन्दोलन के साथ उसका घनिष्ट सम्बन्ध है और इसलिए वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के लिए वह अत्यन्त खतरनाक है। पृष्ठ २४६

(६९) पोप कभी गलती नही कर सकते --इस अन्धमत की स्थापना पादरियो की परिषद ने १८ जूलाई, १८७० को की थी। जर्मन कैथोलिक धर्मशास्त्री डौलिंजर ने इस अन्धमत को मानने से इन्कार कर दिया था। शुरू मे मेन्ज का बिशप (बड़ा पादड़ी) कैटलर भी उसके विरुद्ध था, किन्तु थोडे ही दिनो बाद वह उसे मानने लगा था और फिर उसका कट्टर समर्थक बन गया था। पृष्ठ २४८

(७०) ये शब्द जीवशास्त्री टॉमस हक्सले द्वारा लन्दन की द्वन्द्ववादी सोसाइटी के नाम लिखे गये पत्र मे से लिये गये है। टॉमस हक्सले को इस सोसाइटी ने उस कमेटी के काम में भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया था जिसकी प्रेतात्मवादी प्रपंचों का अध्ययन करने के लिए उसने नियुक्ति

की थी। हक्सले ने निमंत्रण को अस्वीकार कर दिया था और प्रेतात्मवाद के सम्बन्ध मे कई व्यंगपूर्ण बातें कही थी। २९ जनवरी, १८६९ की तिथि का उनका यह पत्र १७ अक्टूबर, १८७१ को द डेली न्यूज़ मे प्रकाशित हुआ था। डेवीज़ की पुस्तक **रहस्यवादी लन्दन** मे भी, जिसका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, पृष्ठ ३८९ पर वह दिया गया है। पृष्ठ २४९

(७१) यहाँ जो टिप्पणियाँ तथा छोटे-छोटे अंश दिये गये है वे एगेल्स की कृति, **प्रकृति में द्वन्द्ववाद** मे से है। मास्को, १९५४, पृष्ठ २५९-६२ और २६८-६९। यह शीर्षक **मार्क्सवाद-लेनिनवाद के संस्थान** ने दे दिया है। पृष्ठ २५१

(७२) टिप्पणी ५३ देखिए। पृष्ठ २५२

(७३) "Sire, je n'avais pas besoin de cette hypothese" (श्रीमन्, उस परिकल्पना की मुझे कोई ज़रूरत नही थी!) — नेपोलियन ने लाप्लास से जब यह पूछा था कि खगोलीय यात्रिकी के सम्बन्ध मे लिखे अपने ग्रन्थ मे उसने ईश्वर का क्यो नही उल्लेख किया था तो लाप्लास ने उसे यही उत्तर दिया था! पृष्ठ २५५

(७४) एंगेल्स यहाँ उस स्पीच का जिक्र कर रहे है जो "विज्ञान की उन्नति के लिए ब्रिटिश सघ" की १९ अगस्त, १८७४ को बेलफास्ट मे हुई एक बैठक मे टिण्डल ने दी थी। (यह स्पीच २० अगस्त, १८७४ के नेचर नामक वैज्ञानिक पत्रिका मे प्रकाशित हुई थी।) पृष्ठ २५६

(७५) Ignorantia non est argumentum : अपने ग्रंथ "आचार-शास्त्र" के प्रथम भाग की परिशेषिका मे स्पिनोज़ा ने लिखा है कि प्रकृति के सम्बन्ध मे पादड़ीवादी —धर्मशास्त्री दृष्टिकोण के प्रतिनिधियो का एक-मात्र तर्क लोगो के अज्ञान को अपील करना होता है। पृष्ठ २५७

(७६) हाइने की कृति, **एपोलगाट** (Apollgott)। पृष्ठ २६१

(७७) **टूबिंजेन स्कूल** —बाइबिल के सम्बन्ध मे शोध तथा आलोचना का कार्य करने के लिए यह एफ. बेयर द्वारा १९वी शताब्दी के पूर्वार्ध मे

स्थापित किया गया एक स्कूल था। उसके मानने वालों ने बाइविल की जो बुद्धिवादी आलोचना की वह इस असंगति के लिए प्रसिद्ध है कि उसके ये अनुयायी चाहते थे कि बाइबिल की किन्ही स्थापनाओं को ऐतिहासिक रूप से सच्चा मान लिया जाय। एक विश्वसनीय ऐतिहासिक स्रोत के रूप मे बाइविल की प्रामाणिकता के विषय मे सन्देह पैदा करने के सिल-सिले मे इस स्कूल ने बहुत काम किया था, यद्यपि उसका मंशा यह नही था। पृष्ठ २७३

(७८) देखिये: कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स द्वारा लिखित **जर्मन विचारधारा**। पृष्ठ २८५

(७९) एंगेल्स के दिमाग में हाइने की वह टीका है जो "दर्शन में जर्मन क्रान्ति" के सम्बन्ध मे अपने निवन्ध, Zur Geschichte der Religion und Philosophie in Deutschland (**धर्म और दर्शन का जर्मन इतिहास**) मे उन्होने की थी। यह निबन्ध १८३३ में लिखा गया था। पृष्ठ २८८

(८०) मैक्स स्टर्नर की रचना, Ber Einzige und Sein Eigenthum (**"अहम् और स्वयम् उसी का"**) की ओर सकेत है। यह १८४५ में लाइपजिग मे प्रकाशित हुई थी। पृष्ठ २९९

(८१) फ़ायरबाख़ का ग्रन्थ, Das Wesen des Christenthums (**ईसाई धर्म का सार**) १८४१ मे लाइपज़िग मे प्रकाशित हुआ था। पृष्ठ २९९

(८२) वरुण (नेपच्यून) —इसकी खोज एक जर्मन ज्योतिर्विद, जोहान गाले ने १८४६ मे की थी। पृष्ठ ३०६

(८३) "सर्वोच्च सत्ता" की पूजा-व्यवस्था कायम करने के लिए रोब्सपियर द्वारा किये जाने वाले प्रयत्न की ओर यहाँ सकेत किया गया है। पृष्ठ ३२१

(८४) **सादोवा का स्कूल मास्टर**—१८६६ के आस्ट्रो-प्रशियाई युद्ध

मे सादोवा मे हुई प्रशियाई विजय के बाद से जर्मन प्रचारकों ने इस मुहाविरे का इस्तेमाल करना शुरू कर दिया था। सकेत यह था कि प्रशिया की विजय का कारण प्रशिया की सार्वजनिक शिक्षा-व्यवस्था की श्रेष्ठता थी। पृष्ठ ३२७

(८५) राडामेन्थस (Rhadamanthus)— यूनानी पौराणिक गाथाओ मे पाये जाने वाले कठोर न्यायाधीश का प्रतीक। पृष्ठ ३२७

(८६) अल्बीजेन्सेज़, देखिए टिप्पणी ३६। पृष्ठ ३५३

(८७) इस शब्द का इस्तेमाल उस जर्मन साम्राज्य (जिसमे आस्ट्रिया नही था) के लिए इस्तेमाल किया गया है जिसकी १८७१ मे प्रशिया के नेतृत्व मे स्थापना हुई थी। पृष्ठ ३५६

(८८) एगेल्स की कृति, परिवार, निजी सम्पत्ति और राजसत्ता की उत्पत्ति की ओर सकेत है। पृष्ठ ३६५

(८९) देखिए : कार्ल मार्क्स, पूंजी, पुस्तक १, मास्को, १९५४, अध्याय १०, पृष्ठ २३१-३०२। पृष्ठ ३८२

(९०) यहाँ पी० वार्थ की पुस्तक, Die Geschichtsphilosophie Hegels und der Hegelianer bis auf Marx und Hartmann (हीगेल का इतिहास का दर्शन तथा मार्क्स और हार्टमैन तक के हीगेलवादी) से मतलब है। यह पुस्तक १८९० मे लाइपज़िग मे निकली थी। पृष्ठ ३८२

(९१) वोरवार्ट्स—गोथा की एकता कांग्रेस के बाद से जर्मन सोशल-डेमोक्रेटिक पार्टी का केन्द्रीय पत्र। १८७६-७८ मे लाइपज़िग में प्रकाशित। पृष्ठ ३८६

(९२) मार्क—यह पुराना जर्मन समुदाय था। "मार्क" के शीर्षक के अन्तर्गत जर्मन किसानों के प्राचीन काल से अब तक के इतिहास की संक्षिप्त रूपरेखा एंगेल्स ने तैयार कर दी थी। इसे उन्होने अपनी

पुस्तक, समाजवाद: काल्पनिक और वैज्ञानिक के प्रथम जर्मन संस्करण के एक परिशिष्ट के रूप में लिखा था। पृष्ठ ३८७

(९३) अज्ञेयवाद (Agnosticinn)—यह शब्द यूनानी उपसर्ग a, (नहीं) और gnosis, (ज्ञान) के मेल से बना है। यह दर्शन भौतिक वस्तुओं के अस्तित्व को तो स्वीकार करता है, किन्तु कहता है कि वे अज्ञेय है। पृष्ठ ३८९

(९४) इस संग्रह के पृष्ठ ७९ से ८४ तक देखिए। पृष्ठ ३९२

(९५) ब्रदर जोनेथन (Brother Jonathan)—अंकिल सैम (साम चाचा) से पहले इन्ही शब्दों का इस्तेमाल किया जाता था। पृष्ठ ४११

(९६) पुनरुत्थानवाद (Revivalism)—धर्म के गिरते हुए प्रभाव को फिर से उठाने के लिए चलाया गया एक धार्मिक आन्दोलन। पृष्ठ ४११

(९७) आल्मोराविद्स (Almoravids)—११वी और १२वी शताब्दी का उत्तरी अफ्रीका तथा दक्षिणी स्पेन का एक वर्बर (Berber) सामन्ती राजवंश। अल्मोहद (Almohads)—एक वर्बर सामन्ती राजवंश, जिसने अल्मोराविदों को हटा दिया था और १२वीं और १३वी शताब्दियो मे शासन किया था। खारतून का मेहदी, मोहम्मद अहमद (१८४४-१८८५) पूर्वी सुडान में अंग्रेजों तथा अन्य योरोपीय उपनिवेशवादियों के विरुद्ध वहाँ के किसानो तथा खाना-वदोशो के राष्ट्रीय विद्रोह (१८८१-१८८५) का नेता था। इस विद्रोह के फलस्वरूप, १८९८ में इन उपनिवेशवादियो को वहाँ से भागना पड़ा था। पृष्ठ ४२३

(९८) हवाला कमोडियन की रचना, Carmen apologeticum adversus Judaeos at gentes (यहूदियों और काफिरों के विरुद्ध क्षमा-याचना का गीत) का है। पृष्ठ ४३४

(९९) कवाला (Cabbala)—एक रहस्यवादी धार्मिक सिद्धान्त

जिसका जादू के साथ सम्बन्ध था तथा जो यहूदियों में व्यापक रूप से फैला हुआ था। पृष्ठ ४३४

(१००) नौस्टिक (Gnostics) —प्रारम्भिक ईसाई धर्म के अन्दर पायी जाने वाली एक धार्मिक रहस्यवादी धारा। दर्शन की यह एक प्रतिक्रियावादी सार-सग्रही (भ्रमरवादी) धारा थी। पृष्ठ ४३५

(१०१) जेन्द-अवस्ता (Zend-Avesta) —जोरोआस्ट्रियाई धर्म की "पवित्र पुस्तकों" का संग्रह। यह धर्म प्राचीन फारस, अजरबैजान तथा मध्य एशिया मे फैला हुआ था। यह खयाल किया जाता है कि यह सग्रह ईसा पूर्व की नवी शताब्दी तथा वर्तमान तीसरी शताब्दी के बीच तैयार किया गया था। पृष्ठ ४५८

नामों की अनुक्रमणिका

[ए]

[ओ]

[ड]

[प]

[फ]

[म]

[ल]

[व]

[स]

सरवितस, माइकेल (मिगूएल सर्वेटो) (१५११-१५५३) . स्पैनिश (स्पेन का) डाक्टर, रक्त-सचारण के सम्बन्ध मे महत्वपूर्ण खोज की थी; मुक्त विचारक होने के अपराध मे कैलविन ने जिनेवा मे टिकटी से बधवाकर उसे जलवा दिया था। २०४, २५२

स्मिथ, एडम (१७२३-१७९०) . अग्रेज अर्थशास्त्री, पूंजीवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के शास्त्रीय मत की इसी ने नीव डाली थी; पादडियो के सम्बन्ध मे अपने विरोध के लिए विख्यात; एक मुक्त चिन्तक के रूप में प्रतिष्ठित। १८३, १८६, ३६२

स्पिनोजा, बरूच (बेनेडिक्ट) (१६३२-१६७७) : प्रमुख डच भौतिकवादी दार्शनिक, अनीश्वरवादी। ४७, ७४, ७५, ७९, ८३, ८४ २०६

सिकिनजैन फ्रान्ज फॉन (१४८१-१५२३) : जर्मन सामन्त, धर्म-सुधार आन्दोलन मे सम्मिलित हो गया था, १५२२-१५२३ मे हुए सामन्तो के विद्रोह का नेता था। १३७, ४००

सिसरो, मार्कस टूलियस (१०६-४३ ई० पूर्व) : रोमन सुवक्ता, राजनेता तथा सार-सग्रहवादी दार्शनिक। १३, २६

सिनेका, लूसियस अनायेअस (लगभग ४-६५ ई०) : रोमन दार्शनिक, स्टॉइकवाद (विरागवाद) के तथाकथित "नये" मत का एक सबसे बडा प्रतिनिधि; उसके प्रतिक्रियावादी भाववादी सिद्धान्त ने ईसाईमतवादियो को पैदा करने मे मदद दी थी। २६०-२६४, २६७, २७६, ४३२

सीजर, गेयस जूलियस (लगभग १००-४४ ई० पूर्व) : प्रसिद्ध रोमन सैनिक तथा राजनेता। २६१

सुकरात (लगभग ४६९-लगभग ३९९ ईसा पूर्व) : प्राचीन यूनान का भाववादी दार्शनिक, गुलामी प्रथा पर आधारित अभिजात वर्ग का सिद्धान्तकार। २६

सुली, दरूदे मैक्सीमिलियाँ दे बेथून (१५५९-१६४१) फ्रान्स के बादशाह, हेनरी चतुर्थ का प्रथम मत्री, अपने राजनीतिक विचारों की दृष्टि से भू-अर्थशास्त्रियो का पूर्ववर्त्ती। १८३

[ह]

बाइबिल-सम्बन्धी तथा पौराणिक नामों की अनुक्रमणिका

विषय के अनुसार संक्षिप्त अनुक्रमणिका

●●●